Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक उपन्यास

अस्ताचल की ओर

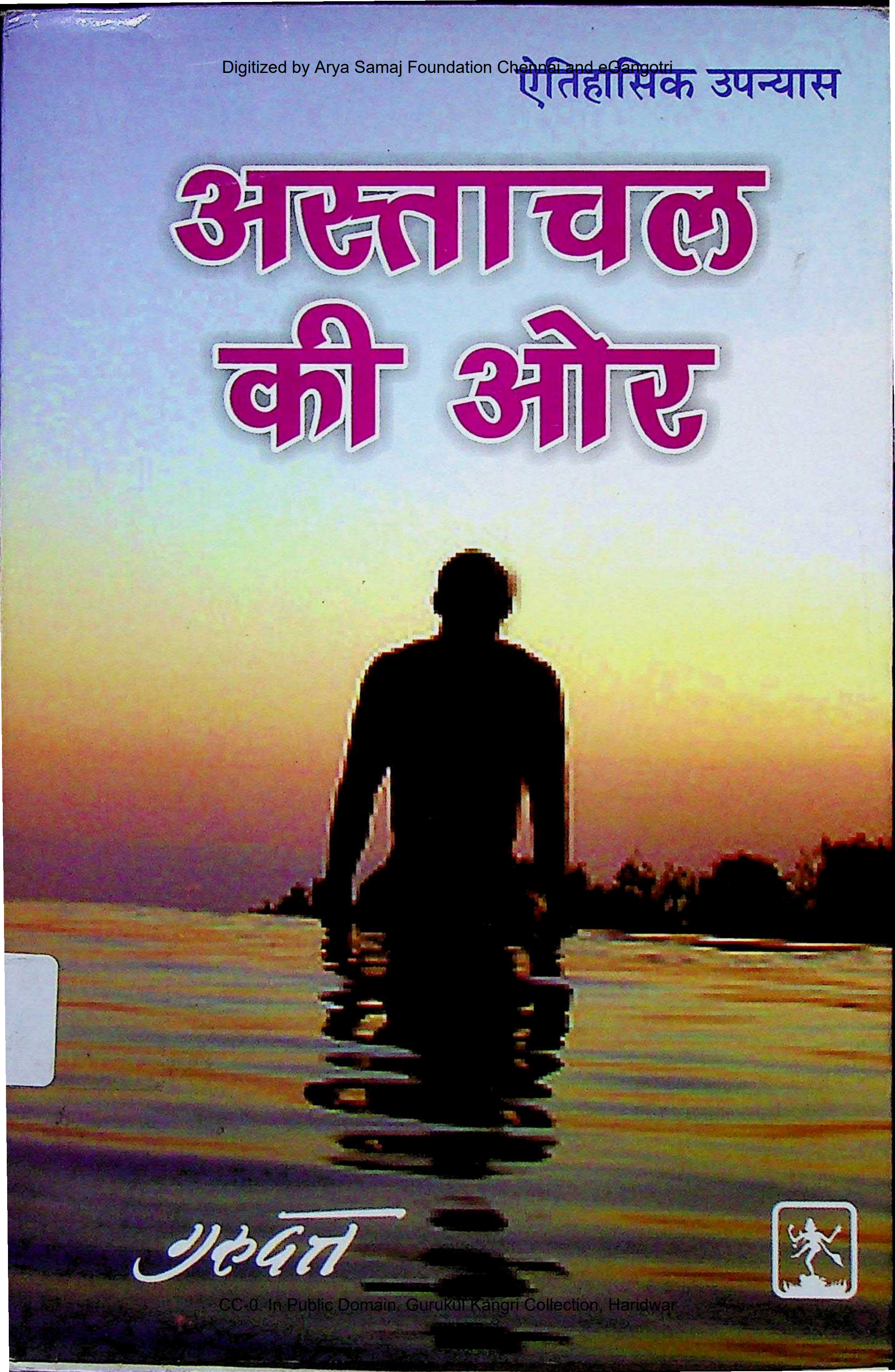

गुरुदत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

167884

श्री गुरुदत्त के
कुछ चुने हुए उपन्यास

राजनीति पर आधारित

स्वाधीनता के पथ पर, पथिक, स्वराज्यदान, विश्वासघात, देश की हत्या, दो लहरों की टक्कर, दासता के नये रूप।

पौराणिक कथाओं के आधार पर

कुमार सम्भव, उमड़ती घटाएं, (राम कथा पर आधारित) अमृत-मंथन, परम्परा, अग्नि परीक्षा, (महाभारत पर) परित्राणाय साधूनाम्।

ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि पर

कुमकुम, विक्रमादित्य, पुष्यमित्र, लुढ़कते पत्थर (अशोक-कालीन), पत्रलता (हर्षवर्धन पर), गंगा की धारा (अकबर कालीन), खण्डहर बोल रहे हैं (औरंगजेब के काल पर)

सामाजिक उपन्यास

अनदेखे बन्धन, एक और अनेक, मानव, गुण्ठन, आवरण, यह संसार, धरती और धन, भगवान भरोसे, घर की बात।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्ताचल की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्ताचल की ओर

Central Library
167884
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

लेखक : गुरुदत्त

081
167884

हिन्दी साहित्य सदन
2 बी डी चैम्बर्स, 10/54 डी बी गुप्ता रोड
करोल बाग, नई दिल्ली-05

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
089.9143
GUR-A

© ईशान दत्त

167384

मूल्य 200.00
प्रकाशक हिन्दी साहित्य सदन
2 वी.डी. चैम्बर्स , 10/54 देश बन्धु गुप्ता रोड,
करोल बाग , नई दिल्ली -110005
email: indiabooks@rediffmail.com
फोन 23553624, 23551344, 09213527666
फैक्स 011-23553624
संस्करण 2011
मुद्रक संजीव आफसैट प्रिंटर्स

पुस्तक अस्ताचल की ओर
लेखक *श्री गुरुदत्त*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

'ग्रस्ताचल की ग्रोर' एक ऐतिहासिक उपन्यास है। यह इतिहास है भारत के सांस्कृतिक पतन का।

ग्राजकल के बुद्धिमान इतिहासज्ञ यह मानते हैं कि सम्राट् ग्रशोक का काल भारत का ग्रति उज्ज्वल कीर्तिमान काल रहा है ग्रौर ग्रशोक के उपरान्त समुद्रगुप्त का काल भारत का कीर्तिमान काल रहा है। हम उनकी इस मान्यता से सहमत नहीं। किसी भी देश ग्रथवा जाति का कीर्तिमान ग्रौर उज्ज्वल काल वह होता है, जब उस काल में मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ कला ग्रर्थात् बुद्धि सुचारु रूप से कार्य कर रही हो।

इन दोनों सम्राटों के काल में भारत में बुद्धि का कार्य शून्य के तुल्य हो चुका था।

ग्रशोकवर्धन के काल को शान्ति का काल कहा जा सकता है। परन्तु वह काल जनमानस में बुद्धि-विहीनता का काल भी था। उस काल में बौद्ध भिक्षुग्रों ग्रौर विहारों के महाप्रभुग्रों की तूती बोलती थी। दूसरी ग्रोर समुद्रगुप्त के काल में ग्रनपढ़ रूढ़िवादी ब्राह्मणों का बोलवाला था। परिणाम में दोनों काल देश ग्रौर समाज को पतन की ग्रोर द्रुतगति से ले जाने वाले सिद्ध हुए थे।

समुद्रगुप्त ने ग्रश्वमेध यज्ञ किया था। परन्तु यह ऐतिहासिक तथ्य है कि समुद्रगुप्त का ग्रश्वमेध यज्ञ सर्वथा ग्रसंगत रहा था। ग्रश्वमेध यज्ञ के, उद्देश्य से विपरीत परिणाम प्रकट हुए थे। यह यज्ञ व्यर्थ में धन ग्रौर परिश्रम का व्यय ही कहा जा सकता है। केवल मात्र समुद्रगुप्त का कीर्तिस्तम्भ स्थापित करना, वह भी उसके ग्रपने राज्य के महामात्य द्वारा संकलित, कितनी शोभा की बात हो सकती है, विचारणीय है। यह ऐसे ही है जैसे ग्रशोक के काल में ग्रनपढ़ समाज के निम्न वर्ग में से बने भिक्षुग्रों का लिखा इतिहास। यह कितना विश्वस्त होगा, ईश्वर ही बता सकता है।

दोनों राज्यों के परिणाम भयंकर सिद्ध हुए थे। ऐसा क्यों? ग्रशोक के विषय में हमने ग्रपने उपन्यास 'लुढ़कते पत्थर' में ग्रपना ग्राशय स्पष्ट किया है ग्रौर गुप्त परिवार के 'वैभव' की कथा 'ग्रस्ताचल की ग्रोर' में प्रस्तुत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशोक के राज्य का परिणाम था सफल विदेशीय आक्रमण। उस सीदियन आक्रमण द्वारा प्रचलित अवस्था को पलटकर ही निस्तेज किया जा सका था। वैसा ही परिणाम गुप्त परिवार की प्रभुता से हुआ था। यही इस पुस्तक का विषय है। सीदियनों के आक्रमण से भी भयंकर हूण आक्रमण इस काल का परिणाम था।

हमारा विचारित मत है कि दोनों कालों में समाज के अस्तित्व का हीन होना ब्राह्मणों के रूढ़िवादी व्यवहार के कारण ही था। उस व्यवहार में बुद्धि का किंचित् मात्र भी सहयोग नहीं था।

इस तथ्य का हमने अपने विचार से मंथन करने का यत्न किया है। जहाँ तक सम्भव हुआ है, इस काल के ऐतिहासिक पुरुषों के क्रिया-कलाप को इतिहास के अनुरूप ही हमने रखने का यत्न किया है और काल्पनिक पात्रों का निर्माण उस काल की गतिविधियों को उग्र रूप से प्रकट करने के लिए किया है।

एक बात हम यहाँ पुनः दुहरा देना चाहते हैं। समुद्रगुप्त का तिथिकाल जो वर्तमान इतिहासकार मानते हैं, वह हमें स्वीकार नहीं है। उदाहरण के रूप में चन्द्रगुप्त मौर्य का काल ३२५ ईसा पूर्व माना जाता है। पुराणों से संकलित तिथि-काल के अनुसार यह १५०२ ईसा पूर्व बनता है।

इसी प्रकार समुद्रगुप्त का राज्यारोहण काल ३३३ ई० का बताया गया है। भारतीय प्रमाणों से समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारी को विक्रम सम्वत् का आरम्भ करने वाला माना जाता है। इसका अभिप्राय हुआ कि समुद्रगुप्त लगभग ९९ ई० पूर्व में राजगद्दी पर बैठा था।

इसी प्रकार सब तिथियाँ बदल जाती हैं। हमारा कहने का अभिप्राय यह है कि भारत का भी एक इतिहास है और उसके समझने का एक ढंग है। वर्तमान विश्वविद्यालयों के इतिहासकार भारतीय परम्पराओं से सर्वथा अनभिज्ञ, राज्य-आश्रय पर बगलें बजाते फिरते हैं।

इसी प्रकार सिकन्दर के आक्रमण की बात है। इस बात के प्रमाण तो मिलते हैं कि सिकन्दर ने सिन्धु नदी पार कर ली थी और झेलम नदी के तट पर पोरस से युद्ध हुआ था। परन्तु उसके बाद का वर्णन सिकन्दर के साथ आये इतिहासकार ने नहीं किया। एक यूनानी लेखक अरायन के अनुसार पोरस से सिकन्दर का युद्ध अनिर्णीत था। जीत किसी की नहीं हुई। सिकन्दर चौथे प्रहर थककर अपने डेरे पर चला गया था। वहाँ उसने पोरस को बुलाकर उससे सन्धि कर ली थी।

उसके उपरान्त यह कहा मिलता है कि वह नौकाओं में व्यास नदी से लौट गया था। परन्तु झेलम और व्यास के बीच दो नदियाँ और पड़ती हैं, उनका लम्बा-चौड़ा क्षेत्र भी है। वह क्षेत्र जनशून्य और राज्यशून्य नहीं था।

ऐसा प्रतीत होता है कि झेलम नदी में ही नौकाएँ डाल सिकन्दर लौट गया था। उन दिनों झेलम का नाम बतिस्ता था। इसी को यूनानियों ने व्यास लिखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसमें हमारा कथन यह है कि इस अनिर्णीत युद्ध के बाद पोरस के राज्यासीन रहने का अभिप्राय यही सिद्ध करता है कि सिकन्दर और उसकी सेना युद्ध से उपराम हो लौट गयी थी।

हम समझते हैं कि महाभारत काल से लेकर गुप्त काल के ह्रास तक का इतिहास पुराणों में लिखा है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत का इतिहास लिखने वाले कहे जाने वाले विद्वान् यहाँ की भाषा, भाव और पुराणों की शैली से अनभिज्ञ होने के कारण ऐसा लिख गये हैं, कि यह भारत का वैभव काल था।

हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्रगुप्त के द्वितीय पुत्र चन्द्रगुप्त ने शकों को सिन्ध पार भगाया था। दिल्ली में महरौली के समीप तथाकथित कुतुब मीनार के प्रांगण में लौह स्तम्भ में लिखे लेख के अनुसार वह विक्रम सम्वत् का आरम्भ काल था। यह समुद्रगुप्त की मृत्यु के उपरान्त चन्द्रगुप्त (विक्रम) के राज्य में हुआ था। यह राज्यारोहण के दूसरे वर्ष की बात है। रामगुप्त की मृत्यु के उपरान्त ही यह हो सका था।

इस विचार से ही इस उपन्यास का आरम्भ किया गया है। यह विक्रम सम्वत् पूर्व १२-१३ वर्ष था। ईसा सम्वत् के अनुसार यह ई० पूर्व ६९-७० वर्ष के लगभग होगा।

एक वंशावली जो एक विद्वान् लेखक पण्डित इन्द्रनारायण द्विवेदी ने पुराणों से संकलित की है, उसका सारांश यहाँ लिख दें तो ठीक होगा।

महाभारत युद्ध के उपरान्त मगध के राज्यों की तालिका इस विज्ञ लेखक ने इस प्रकार लिखी है—

	कलि सम्वत्		ईसवी सम्वत् ई० पूर्व	
वृहद वंश	१	१००१	३१०२	२१०१
प्रद्योत वंश	१००१	११३९	२१०१	१९६४
शिशुनाक् वंश	११३९	१५०१	१९६४	१६०२
पद्म नन्द वंश	१५०१	१६०२	१६०२	१५०२
मौर्य वंश	१६०२	१७३८	१५०२	१३६५
शुंग वंश	१७३८	१८५०	१३६५	१२५३

इस तिथिकाल के अनुसार बुद्ध का जन्म लगभग १२८५ कलि सम्वत् में अर्थात् ईसा से १८१८ वर्ष पूर्व बनता है।

इसी तालिका के अनुसार समुद्रगुप्त का काल विक्रम पूर्व ४२ से वि० पूर्व २ तक बनता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी गणना के अनुसार समुद्रगुप्त का राज्य हुआ ईसा पूर्व ९९ से ५९ तक। इस तिथिकाल का सीधा सम्बन्ध यद्यपि इस पुस्तक के कथानक से नहीं है, इस पर भी यह सब इस कारण बताया जा रहा है कि इससे कुछ घटनाओं को समझने में सहायता मिलेगी।

इतना और समझ लेना चाहिए कि भारतवर्ष के ह्रास का आरम्भ युधिष्ठिर के जुआ खेलने से पूर्व ही हो चुका था। वास्तव में जो कुछ जुआ खेलने में हुआ, उसका बीज पाण्डवों और कौरवों की शिक्षा में निहित था। दोनों के गुरु थे द्रोणाचार्य और वह राज्य-सेवा में पल रहे पतित ब्राह्मण ही थे। द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्य का पूर्ण जीवन राजाओं की चाटुकारी में व्यतीत हुआ था। यही महान् विनाश का आरम्भ कहा जा सकता है।

तब से लुढ़कती सभ्यता हर्षवर्धन के काल के उपरान्त ग्रस्त हो गयी प्रतीत होती है। यदि यह कहा जाय कि वर्तमान युग भारतीयता की मध्य रात्रि का काल है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। जैसे अन्धकार में मनुष्य कंचन और राँगा में भेद नहीं कर सकता, वैसे ही यही दशा अपने भारतवासियों की हो रही है। प्राचीन भारतीय धर्म और संस्कृति को राँगा समझा जा रहा है।

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के काल को भारतीय संस्कृति का मध्य दिवस काल कहा जा सकता है। प्रत्येक सफलता में ह्रास का बीज रहता है। यही उस यज्ञ में हुआ था।

उसके उपरान्त चिकनी ढलवान् भूमि पर फिसलते पगों की भाँति ह्रास आरम्भ हुआ। हमारा यह कहना है कि अशोक का राज्यकाल और गुप्त परिवार का काल भारतीय संस्कृति का तीसरा प्रहर था। समाज द्रुतगति से रात्रि के अन्धकार की ओर जा रहा था। यही हमारा अभिप्राय है 'अस्ताचल की ओर' से।

वर्तमान युग तो मध्य रात्रि ही माना जा सकता है। रात्रि के अन्धकार में टिमटिमाते दीपक ही प्रकाश का स्रोत प्रतीत होते हैं और उन्हीं को प्राप्त कर अपने को धन्य माना जाता है। यही बात इस समय हो रही है।

शेष तो यह उपन्यास है। ऐतिहासिक पात्रों के अतिरिक्त काल्पनिक पात्र भी हैं। यत्न किया गया है कि बुद्धि पर छा रहे अन्धकार का कुछ दर्शन कराया जाए।

दिनांक १ जनवरी, १९८४ —**गुरुदत्त**
निवास १८, मार्ग २८, पंजाबी बाग,
नयी दिल्ली-११००२६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम परिच्छेद

पण्डित शिवकुमार जब पाठशाला का कार्य पूर्ण कर अपने घर वापस लौटा तो उसकी पत्नी चन्द्रमुखी ने उसका स्वागत करते हुए प्रश्न किया, "आज तो आप बहुत प्रसन्न प्रतीत हो रहे हैं ?"

"हाँ, देवी ! तुम्हारा अनुमान सत्य है। आज एक विशेष घटना घटी है।"

"क्या ?"

तब तक पण्डित शिवकुमार और उसकी पत्नी द्वार से प्रांगण में पहुँच गये थे। वहाँ दीवार के सहारे खड़ी की गयी चारपाई को चन्द्रमुखी ने प्रांगण में बिछा दिया और पति को उसपर बैठने के लिए कहने के उपरान्त पूछने लगी, "वह शुभ समाचार अभी बतायेंगे अथवा दूध पीने के उपरान्त कुछ तरो-ताजा हो कर ?"

"समाचार इतना सुखकर है कि उससे भूख भी लग आयी है, इसलिए पहले दूध ले आओ, उसके बाद तुम्हें समाचार सुनाऊँगा।"

शुभ समाचार सुनने की लालसा में पण्डितजी की पत्नी तेजी से रसोईघर में घुसी और उसने गर्म करने के लिए दूध को अँगीठी पर रख दिया।

पण्डित शिवकुमार गाँव की पाठशाला में ही अध्यापक था। उस पाठशाला में दस वर्ष से कम आयु के बालक और बालिकायें पढ़ने के लिए आया करते थे। पाठशाला का कार्य मध्याह्नोत्तर समाप्त हो जाया करता था।

शिवकुमार के माता-पिता का देहान्त हो चुका था। उसके पिता का स्वर्ग-वास तो उसके होश सम्हालने से पहले ही हो गया था। बड़ा होने पर वह विद्या-ध्ययन के लिए काशी चला गया था और जब वह अपना अध्ययन पूर्ण कर घर लौटा तो तभी उसकी माता परलोक सिधार गयी।

जिस समय शिवकुमार के पिता का देहान्त हुआ था उस समय उनके घर की आर्थिक स्थिति अति दुर्बल थी। तदपि उसकी माता के मन में अपने पुत्र को प्रकाण्ड विद्वान् बनाने की उत्कट अभिलाषा थी। शिवकुमार का पिता भी काशी में अध्ययन के लिए गया था। वहाँ से वह तर्कभूषण की उपाधि से विभूषित होकर लौटा था। शिवकुमार की माता की इच्छा थी कि यदि उसका पुत्र अपने पिता से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक नहीं तो कम से कम उतनी विद्या तो ग्रहण कर ही ले ।

उनके गाँव से आधा कोस के अन्तर पर हस्तिनापुर नगर में उनके एक सम्पन्न यजमान रहते थे। उनका नाम था मुरारी कृष्ण। जिस समय शिवकुमार की आयु छः वर्ष की हुई कि उसने अपने पुत्र को मुरारी कृष्ण के पुत्र के साथ काशी भेज दिया। मुरारी कृष्ण का पुत्र काशी में रेशमी कपड़ा क्रय करने के लिए जाया करता था। तब शिवकुमार की माँ ने अपने पुत्र को उसे सौंपते हुए कहा था, "छोट सेठ ! हमारे शिव को काशी ले जाओ और इसे किसी विद्वान् के पास पढ़ने के लिए बैठा देना। तुम्हारी इस सहायता के लिए मैं आजीवन तुम्हारी ऋणी रहूँगी।"

मुरारी कृष्ण के लड़के ने शिव को अपने साथ ले जाना स्वीकार कर लिया और दूसरे दिन उसे अपने साथ लेकर काशी के लिए चल दिया। उस समय केवल दो टका ही शिव की माता अपने पुत्र को उसके मार्ग-व्यय आदि के लिए दे पायी थी। इससे अधिक उसके पास था ही नहीं।

मुरारी कृष्ण के पुत्र ने जब देखा कि शिव को वह दो टका बहुत कम-सा लग रहा है तो उसने मुस्कराते हुए उससे कहा था, "ले लो शिव ! किन्तु ध्यान रखना, इसका एक लाख गुणा करके माँ को वापस लौटाना होगा।"

तब शिव इसका अर्थ नहीं समझा था और वह विस्मय में सेठ का मुख देखने लगा था। सेठ ने पण्डिताइन को प्रणाम किया और शिव का हाथ पकड़कर उसको अपने रथ पर बैठा लिया। दोनों जब बैठ गये तो रथ पूर्व दिशा की ओर चल दिया।

इस प्रकार छोटे सेठ के सहारे शिव भी काशी जा पहुँचा। पन्द्रह वर्ष तक उसने काशी में अध्ययन किया और न्यायभूषण की उपाधि अर्जित कर वह पन्द्रह वर्ष उपरान्त ही घर लौटकर आया। सेठ मुरारी कृष्ण के परिवार का कोई-न-कोई व्यक्ति समय-समय पर माल क्रय करने के लिए काशी जाता रहता था और वही शिव की माता को शिव का कुशल समाचार और उसके पढ़ने की प्रगति के विषय में बताता रहता था। इस प्रकार शिव की माँ उत्सुकता से अपने पुत्र के विद्वान् बन कर वापस घर लौटने की प्रतीक्षा करती रही। निर्धनता के कारण कठोर परिश्रम और जीवन-संघर्ष में उसकी माता के स्वास्थ्य ने साथ छोड़ना आरम्भ कर दिया। वह असाध्य श्वास रोग से ग्रस्त हो गयी।

शिवकुमार की माता श्वास रोग के कारण इतनी दुर्बल हो गयी थी कि जब शिवकुमार उपाधि प्राप्त कर घर वापस लौटा तो वह अपनी माता को भी नहीं पहचान पाया। जिस समय वह आया था उस समय उसकी माँ कंकाल के रूप में अपने घर के प्रांगण में एक चारपाई पर पड़ी हुई थी। शिवकुमार उसका मुख देखता रह गया। शिव जब छः वर्ष की आयु में काशी के लिए गया था तो वह उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय सुकोमल बालक था। आज वह लम्बा-चौड़ा, स्वस्थ तथा दाढ़ी-मूंछ वाला नवयुवक जब उसके सामने खड़ा हुआ तो माता को भी अपने पुत्र को पहचानने में कुछ कठिनाई हुई। दोनों एक-दूसरे का मुख देखते रहे। पहले शिव ने ही अपनी माँ को पहचाना और उसने माँ को प्रणाम करते हुए कहा, "माँ! मैं शिव हूँ।"

माँ ने पुत्र को आशीर्वाद देते हुए कहा, "ईश्वर को अनेक धन्यवाद। बेटा! तुम समय पर पहुँच गये हो। मैं तो तुम्हें देखने की अभिलाषा ही छोड़ चुकी थी। अच्छा, अब तुम एक काम करो। पड़ोस के मकान में जाकर वहाँ से माताजी को बुला लाओ। कहना मैंने बुलाया है।"

शिव माता की आज्ञापालन करता हुआ पड़ोस के मकान में चला गया। उसने द्वार खटखटाया तो एक युवती द्वार खोलने बाहर आयी। द्वार खोलते ही एक अपरिचित नवयुवक को वहाँ खड़ा देख उसको विस्मय हुआ। उसने पूछा, "कहिए, किससे मिलना है?"

"मौसी से कहिये कि उनको मेरी माताजी बुला रही हैं।"

"किन्तु आप कौन हैं?" पूछते हुए युवती मुस्करा पड़ी थी।

"मेरा नाम शिवकुमार है।"

युवती नहीं समझ पायी तो उसने पूछा, "आपकी माताजी कहाँ रहती हैं?"

शिवकुमार समझ गया कि युवती ने उसको पहिचाना नहीं है। पहिचानना सम्भव भी नहीं था क्योंकि शिवकुमार जब काशी के लिए गया था तो उस समय वह एक-दो वर्ष की रही होगी। शिवकुमार ने भी अनुमान ही लगाया था कि कदाचित् यह युवती वही होगी। उसने उस युवती को समझाते हुए कहा, "मेरी माताजी आपके इस साथ वाले गृह में रहती हैं। मैं अभी-अभी काशी से वापस लौटा ही था कि मेरी माताजी ने मुझे उलटे पाँव आपकी माताजी को बुलाने के लिए यहाँ भेज दिया है।"

यह सब सुन और शिवकुमार की ओर देखकर युवती का मुख लज्जा से लाल हो गया और वह भागती-सी घर के भीतर चली गयी। शिव को लड़की के इस लज्जालु स्वभाव पर आश्चर्य हो ही रहा था कि तभी प्रौढ़ावस्था की एक महिला बाहर निकलकर आयी और उसने भी शिवकुमार को सिर से पाँव तक एक दृष्टि में देख लिया। फिर कुछ सन्तोष-सा व्यक्त करती हुई उससे पूछने लगी "तुम शिवकुमार हो?"

"जी।" शिव ने उत्तर में कहा। वह उस प्रौढ़ा को पहचान गया था। फिर बोला, "बहुत बदल गया हूँ न?"

यह उसके बाल सखा रामेश्वर का घर था और वह प्रौढ़ा उसकी माता थी। शिवकुमार ने उसको पहचाना तो उसने झुककर उनको प्रणाम किया। निर्मला देवी ने शिव को आशीर्वाद दिया और फिर बोली, "चलो, मैं अभी तुम्हारे घर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलती हूँ।"

इस प्रकार दोनों शिवकुमार के घर पहुँच उसकी माता की चारपाई के पास जाकर खड़े हो गये। शिवकुमार की माता ने दोनों को आये देख अपने पुत्र से कहा, "बेटा! तनिक आश्रय देकर मुझे उठाकर बैठाओ तो।"

शिवकुमार ने वैसा ही किया और अपनी माता को चारपाई पर सावधानी से बैठा दिया। कुछ स्वस्थ होने पर वह अपनी पड़ोसिन निर्मलादेवी से कहने लगी, "बहिन! यह शिव आ गया है। किन्तु मैं तो जा रही हूँ। मैं अब अधिक नहीं टिक सकती। यदि सम्भव हो तो मेरी मनोकामना पूर्ण कर दो।"

निर्मली बोली, "रामेश्वर के पिता बाहर गये हुए हैं, उनके आते ही मैं उनसे बात करूँगी।"

"कहाँ गये हैं वे?"

"प्रातःकाल ही हस्तिनापुर चले गये थे। अब आने वाले ही होंगे।"

"देखो बहिन! अब समय बहुत ही कम रह गया है।"

"मैं कल तक कर देने के लिए कह दूंगी।"

"नहीं बहिन! आज ही हो जाय तो ठीक है। कल तक तो...।"

निर्मला समझ गयी थी, इसलिए बीच में ही बोल पड़ी, "अच्छा शिव अभी स्नान आदि कर ले। मैं अभी आती हूँ।"

इतना कहकर निर्मला अपने घर को चल दी। उसके जाने पर राधा ने अपने पुत्र से कहा, "शिव बेटा! शीघ्र स्नान करके अपने वस्त्र बदल डालो। देखो, मैंने निर्मला बहिन से तुम्हारे विवाह के विषय में कहा है। कहीं अन्यत्र कोई मेरी प्रतीक्षा कर रहा है, इसलिए मैं यह कार्य जल्दी करने के लिए कह रही हूँ।"

शिव भी निर्मलादेवी के साथ हुए वार्त्तालाप का अभिप्राय समझ गया था, इसलिए माता की आज्ञा का पालन करता हुआ वह स्नान के लिए चला गया। वह प्रातःकाल सूर्योदय से एक मुहूर्त पहले चला था। घर पहुँचने तक उसने तीन योजन यात्रा की थी और वह इस यात्रा में धूल से भर गया था। उसने स्नान किया और फिर नये वस्त्र धारण कर जब वह पुनः अपनी माता के समक्ष उपस्थित हुआ तो उस समय उसके पड़ोसी ईश्वरकृष्ण भी वहाँ पर आ गये थे। उन्हें देख उसने प्रणाम किया।

ईश्वरकृष्ण ने उसे आशीर्वाद देते हुए पूछा, "बैठो बेटा! सुनाओ क्या-क्या पढ़कर आए हो?"

"चाचाजी! पढ़ा तो बहुत कुछ है, जैसे वेद, दर्शन, उपनिषद्, पुराण आदि। तात्पर्य यह कि मुझे न्यायभूषण की उपाधि प्राप्त हो गयी है।"

"अति उत्तम। तुम्हारे पिता तर्कभूषण थे, तुम न्यायभूषण बन गये हो। परमात्मा से प्रार्थना है कि वह तुम्हें सिद्धि और यश प्रदान करे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवकुमार की माँ चारपाई पर बैठी थी। अपने पुत्र को देख उसको सन्तोष हुआ था और अब उसकी सफलता की बात सुनकर उसको सुख का अनुभव हो रहा था। ईश्वरकृष्ण समीप बिछी चटाई पर बैठा था। उसने शिवकुमार को भी अपने समीप बैठा लिया। शिवकुमार के बैठने पर उसने कहा, "भोजन आ रहा है। मैंने अपने पुरोहितजी को भी बुलवा लिया है। पुरोहितजी के आते ही विवाह-संस्कार का प्रबन्ध कर देंगे।"

विवाह की बात सुन सहसा राधा के मुख से निकल गया, "भैया! जुग-जुग जिओ।"

शिव के लिए भोजन आया तो ईश्वरकृष्ण ने कहा, "लो, भोजन कर लो। यात्रा से थक गये होगे। भोजन करके कुछ देर विश्राम कर लेना।"

शिव ने वैसा ही किया। भोजन समाप्त कर वह भीतर गया और वहाँ एक चारपाई डालकर उसपर लेट गया। वास्तव में वह बहुत थक गया था। लगभग दो घड़ी विश्राम करके जब शिव बाहर आया तो तब तक ईश्वरकृष्ण का पुरोहित आ चुका था तथा वहीं प्रांगण में मण्डप तैयार किया जा रहा था।

प्रांगण में काफी भीड़ एकत्रित हो गयी थी। ईश्वरकृष्ण के सभी परिजन और समीप रहने वाले नाते-रिश्तेदार तथा गाँव के अन्यान्य व्यक्ति वहाँ एकत्रित हो गये थे। कुछ देर बाद जब एक कन्या विवाह योग्य वस्त्र धारण करके उसके प्रांगण में लायी गयी तो शिव उसको देखते ही पहचान गया। यह वही कन्या थी जो अभी दो-तीन घड़ी पूर्व उसको ईश्वरकृष्ण के द्वार पर मिली थी। उस समय वह शिव का नाम सुनकर लज्जा से भीतर भाग गयी थी।

शिवकुमार उसको देखकर मुस्करा दिया। कन्या के साथ उसकी माता निर्मला देवी थी। शिव को मुस्कराता देख वह पूछने लगी, "क्यों शिव! पसन्द है न?"

प्रश्न सुनकर शिव ने कुछ उत्तर तो दिया नहीं किन्तु उसके भावों से कृतज्ञता झलक रही थी।

मण्डप आदि बन जाने पर विवाह हुआ और फिर सभी उपस्थित जनों ने मिलकर जलपान आदि किया। इस विवाह से सबको ही प्रसन्नता हो रही थी। शिवकुमार की माँ भी चारपाई से उठकर उस समूह में सम्मिलित हो गयी थी। उसने अपनी पुत्रवधू चन्द्रमुखी की पीठ पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा, "बेटी! सुनो। मैं अपने पुत्र को तुम्हारे हाथों में सौंपकर जा रही हूं। भगवान् की कृपा से वह पढ़-लिखकर विद्वान् बनकर आया है। तुम इसे प्यार से रखोगी तो यह भी तुम्हें प्यार से रखेगा और तुम्हें संसार का सब सुख देने का यत्न करेगा। ईश्वर की कृपा हुई तो तुम दोनों का परिवार शीघ्र ही सुख-समृद्धि और सन्तति वाला हो जायेगा।"

चन्द्रमुखी को यह सब सुनकर लज्जा आ रही थी। उसने अपनी सास के आँचल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही अपना मुख छिपा लिया। जलपान और भोजन समाप्त होते-होते काफी रात हो गई थी। सब अभ्यागत विदा हो गये। निर्मलादेवी ने अपनी समधिन राधा के मकान में नवदम्पति के लिए एक कमरा ठीक कर दिया था। दोनों को उसमें सुला दिया गया और राधा के लिए अन्य कमरे में व्यवस्था कर दी गयी। विद्योपार्जन के बाद घर लौटने पर शिवकुमार के लिए अपने घर की पहली रात सुहागरात के रूप में आयी थी।

प्रातःकाल नींद खुलने पर शिवकुमार ने कहा, "हमें पहले अपनी माताजी और फिर तुम्हारे माता-पिताजी को प्रणाम करने चलना चाहिए।"

इस प्रकार निश्चय कर जब दोनों उठे और पहले राधा को प्रणाम करने गये तो देखा कि राधा के तो प्राण-पखेरू ही उड़कर कूच कर गये हैं। राधा के मुख पर शान्ति और सन्तोष की झलक दिखाई देती थी। शिवकुमार समझ गया कि उसके अपने ठीक समय पर लौटने और आते ही तुरन्त विवाह हो जाने से उसकी माता को असीम आनन्द का अनुभव हुआ है और उसी आनन्दानुभूति में उसका प्राणान्त हुआ है, जिसकी झलक अभी विद्यमान थी।

तेरह दिन तक तो शिव माँ के अन्तिम संस्कार में व्यस्त रहा। यह कार्य पूर्ण करने के उपरान्त उसने अपने गाँव में ही एक पाठशाला खोल ली। इस पाठशाला में दस वर्ष से कम आयु के बालक-बालिकायें प्रविष्ट किये जाते थे। उस पाठशाला की पढ़ाई पूर्ण कर जो कोई कुछ अधिक पढ़ना चाहता था उसे वह हस्तिनापुर की पाठशाला में जाने का सुझाव दे दिया करता था।

काशी से लौटने के उपरान्त इस प्रकार जीवन-यापन करते हुए शिवकुमार को पाँच वर्ष हो गये थे। अब तक उसके घर में दो बच्चे भी हो चुके थे। सबसे बड़ा बच्चा चार वर्ष का था और दूसरा दो वर्ष का।

शिवकुमार को ब्रह्ममुहूर्त में उठने का अभ्यास था। घर आने पर उसने उस को जारी रखा। उठकर वह स्नानादि से निवृत्त हो पहले स्वाध्याय करता था और फिर कुछ लेखन-कार्य भी करता था। इस प्रकार प्रातःकाल चार घड़ी का समय वह अपने इस कार्य के निमित्त निर्धारित किये हुए था। तब तक भोजन भी तैयार हो जाता और शिवकुमार भोजन कर अपनी पाठशाला को चल देता था। चौथे प्रहर पाठशाला से लौटता और कुछ दूध इत्यादि पीकर थोड़े समय तक विश्राम करता था।

उसी प्रकार आज भी वह घर लौटा था, किन्तु आने में कुछ विलम्ब हो गया था, तदपि उसको प्रसन्न देख उसकी पत्नी चन्द्रमुखी भी उसकी प्रसन्नता का कारण जानने के लिए उत्सुक थी। पति के दूध पीकर बताने की बात सुनकर वह जल्दी से रसोई घर में जाकर दूध गरम करने लगी थी।

चन्द्रमुखी ने एक ओर तो रसोई में दूध गर्म होने के लिए रख दिया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं उसने आँगन में ही चटाई बिछा दी तथा एक चौकी पर एक थाली में दो लड्डू ले जाकर रख दिये। शिवकुमार हाथ-पैर धोने चला गया।

दूध गरम होने पर चन्द्रमुखी दो गिलासों में दूध डालकर ले आई। तब तक शिवकुमार भी हाथ-पैर धोकर उस चटाई पर बैठ गया था। दोनों जब अल्पाहार करने लगे तो स्वयं ही शिवकुमार ने कहना आरम्भ किया, "कुछ मास पूर्व मैंने पाटलिपुत्र की विद्वत्सभा को अपना एक लेख भेजा था। उसका शीर्षक था 'अस्ताचल की ओर।' आज मुझे एक निमन्त्रण मिला है। हस्तिनापुर के आयुक्त का एक प्रतिहार वह पत्र लेकर आया था, जिसमें लिखा है कि मुझे इस निमन्त्रण को स्वीकार कर पाटलिपुत्र जाना चाहिए। पाटलिपुत्र जाने के सम्बन्ध में प्रबन्ध के लिए मुझे कल प्रातःकाल आयुक्त के कार्यालय में बुलाया गया है। मैं समझता हूँ कि यह उस लेख का परिणाम ही है।"

"किस विषय पर था आपका लेख ?"

"राज्य और संस्कृति का वियोग। इसे ही मैंने 'अस्ताचल की ओर' में सिद्ध करने का यत्न किया था।"

"कितना बड़ा लेख था ?"

"यही, चालीस पृष्ठ का।"

"बड़े आश्चर्य की बात है !"

"क्या ?"

"आज प्रातःकाल से ही आपका पगला पुत्र 'पाटलिपुल, पाटलिपुत्र' की रट लगाये हुए है। मैंने उससे जब पूछा कि तुम यह क्या कह रहे हो तो वह कहने लगा कि मैं वहाँ जाऊँगा। मैंने पूछा कहाँ जाओगे तो विस्मय करता हुआ वह मेरा मुख देखने लगा। फिर पूछने लगा कि क्या मैं नहीं जानती ? और जब मैंने पूछा कि मैं क्या नहीं जानती तो वह बोला, तुम कुछ भी नहीं जानतीं।"

शिवकुमार ने यह सब सुना तो उसको भी आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, "और भी कुछ कहता था ? मुझे तो ऐसा लगता है कि यह अपने किसी पूर्व जन्म की बात किया करता है।"

"सब तो इसे पागल कहते हैं।" पत्नी ने निराशा से कहा।

"इसे पागल कहने वाले अपने ही अज्ञान का परिचय देते हैं। अच्छा, उसे बुलाओ तो।"

उसकी पत्नी ने अपने पुत्र को आवाज लगायी, "बृहस्पति ! ओ बृहस्पति !"

तभी भीतर से दूसरे बच्चे का रोने का स्वर सुनायी दिया। चन्द्रमुखी उसे देखने भीतर चली गयी। इस समय पुकार सुनकर बड़ा पुत्र अपने पिता के समीप आकर उसे प्रणाम करने लगा। पिता ने पूछा, "कहाँ थे तुम ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर देने की अपेक्षा पुत्र ने पिता से पूछा, "तो आप पाटलिपुत्र जा रहे हैं ?"

"यह तुम्हें किसने कहा है ?"

लड़का इसका उत्तर नहीं दे पाया। वह टुकर-टुकर अपने पिता का मुख देखने लगा। उसको इस स्थिति में देख उसका पिता हँस पड़ा। बच्चे ने साहस पकड़कर पूछा, "पिताजी ! किसने कहा है ?"

शिव ने कह दिया, "मैंने।"

लड़का कहने लगा, "हाँ, याद आया। रात सोये-सोये कोई आपको कह रहा था और मैं सुन रहा था।"

शिवकुमार विस्मय में अपने पुत्र का मुख देखता रह गया। इस समय तक चन्द्रमुखी छोटे बच्चे को गोद में लिये हुए आयी और बैठकर उसको स्तनपान कराने लगी। तब शिवकुमार कहने लगा, "अब इसे अपना दूध पिलाना बन्द कर दो।"

"डर लगता है कहीं एक और पिल्ला न जन्म ले ले।"

"तो ये दोनों पिल्ले हैं ?"

"हाँ, अभी तो पिल्ले के समान ही हैं। यह तो भविष्य ही बतायेगा कि बड़े होने पर ये क्या बन पायेंगे। आरम्भ में तो मनुष्य और पशु में कोई विशेष अन्तर दिखायी नहीं देता। बुद्धि का विकास होने के बाद ही अन्तर दिखायी देने लगता है। छोटा तो अभी खाता-पीता और सोता ही है। बड़ा तो बस परमात्मा का नाम ही है। सभी इसको पगला कहते हैं।"

शिवकुमार ने बताया, "यह अभी कह रहा था कि रात सोये-सोये में कोई मुझको कह रहा था कि मुझे पाटलिपुत्र जाना है। यह उसकी बात को सुन रहा था। इसी कारण यह तुमसे कह रहा था कि यह भी मेरे साथ पाटलिपुत्र जायेगा। अभी इसका उच्चारण शुद्ध नहीं हो पाया है इस कारण इसकी जब कोई बात समझ में नहीं आती है तो लोग इसको पागल कहने लगते हैं।

"किन्तु मैं इसे कोई पुण्यात्मा ही मानता हूँ। इसका आत्मा अपने पूर्व जन्म की बात इसको बताता है और यह वही बात हमारे सम्मुख दोहरा देता है।"

समीप बैठा वृहस्पति यह सब वार्त्तालाप सुन रहा था। इसमें से कितना उसकी समझ में आया और कितना नहीं, यह कहना कठिन है। पिता का वाक्य पूर्ण होते ही वृहस्पति कहने लगा, "पिताजी ! वहाँ कोई आपकी प्रतीक्षा कर रहा है।"

"कौन प्रतीक्षा कर रहा है बेटे ?"

"मैं उसको तो जानता नहीं। उसके मुख पर सफेद-सी दाढ़ी है।"

"तुमने उसको कहाँ देखा है ?"

"रात्रि में वही तो आपको कह रहा था कि आपको पाटलिपुत्र जाना है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अच्छा बेटे ! यदि वह फिर आये तो उससे पूछना कि मुझे पाटलिपुत्र जाना चाहिए अथवा कि नहीं।"

इस प्रकार उसने अपने पुत्र को बहकाकर अपनी पत्नी से कहा, "मैं प्रातः-काल हस्तिनापुर जाकर वहाँ के आयुक्त को मिलूँगा। वहाँ जाकर मैं पहले तो यह जानने का यत्न करूँगा कि मुझे पाटलिपुत्र जाने का किसी ने निमन्त्रण दिया है अथवा कि आदेश। निमन्त्रण को तो टाला जा सकता है। किन्तु यदि आदेश हुआ तो उस अवस्था में जाना अनिवार्य हो जायेगा। तब मैं अकेला ही वहाँ जाऊँगा।

"दूसरी बात, मैं यह जानना चाहूँगा कि इस निमन्त्रण का कारण क्या है। और तीसरी बात यह कि क्या मैं सपरिवार भी जा सकता हूँ कि नहीं। चौथी बात यह कि वहाँ कितने दिन रहना होगा। मेरी तो इच्छा है कि यदि मुझे वहाँ कोई स्थायी काम मिल जाय तो वहीं रहने लग जाऊँ।"

"वहाँ रहने में आपका क्या हित है?"

"देखो, मैं स्वयं को इस राज्य-रूपी शरीर का मन और बुद्धि मानता हूँ। और मन और बुद्धि शरीर के मस्तिष्क में रहते हैं। हाथ, पाँव अथवा पेट में नहीं।"

"किसी भी देश का मस्तिष्क उसकी राजधानी होती है। इस कारण मैं वहाँ रहने की इच्छा करता हूँ।"

"तो आप देश का आत्मा बनना चाहते हैं?"

"आत्मा नहीं। आत्मा तो शरीर का स्वामी होता है। मैं तो ब्राह्मण और विद्वान् होने के नाते देश की बुद्धि बनना चाहता हूँ।"

"मैं माताजी को यह समाचार दे दूँ?"

"अभी क्या बताओगी? अभी कुछ भी तो निश्चय नहीं हुआ है।"

"मैं समझती हूँ कि निश्चय हो चुका है। यह निमन्त्रण हो अथवा आदेश, आपको जाना तो होगा ही। और यदि आप स्थायी रूप में वहाँ रहने गये तो हमें भी आपके साथ जाना होगा ही। इधर आपका यह पुत्र तो कह ही रहा है कि वहाँ आपकी कोई प्रतीक्षा कर रहा है।"

कहते-कहते चन्द्रमुखी मुस्करा दी। उसने वृहस्पति की ओर देखा। अपनी माता को अपनी ओर मुस्कराती देख वृहस्पति कहने लगा, "मैं तो जाऊँगा ही।"

"तुम वहाँ क्या करने के लिए जाओगे?"

"वह तो मैं वहाँ जाकर ही बताऊँगा।"

यह सुन पति-पत्नी दोनों ही हँस पड़े। पिता बोला, "तब तो तुमको अपने साथ ले जाना ही पड़ेगा।"

चन्द्रमुखी गम्भीर हो गयी। उसने कहा, "मैं भी माताजी को बता देती हूँ।"

"क्या बताओगी?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यही, कि हम एक-दो दिन में पाटलिपुत्र जाने वाले हैं।"

"हाँ ठीक है। किन्तु यह भी बता देना कि मैं कल प्रातःकाल आयुक्त से मिलने के लिए हस्तिनापुर जा रहा हूँ। वहाँ उससे मिलने के बाद ही किसी बात का निर्णय हो पायेगा। फिर अपनी यात्रा के व्यय का भी तो प्रबन्ध करना होगा।"

पत्नी ने बड़े विश्वास के साथ कह दिया, "वह भी हो जायेगा।"

इस प्रकार यह गोष्ठी समाप्त हुई। चन्द्रमुखी ने बच्चे को गोद से अलग किया और स्वयं अपनी माता के घर को चल दी। उसे जाती देख बृहस्पति उठा और वह भी उसके पीछे-पीछे अपनी नानी के घर को चल पड़ा।

: २ :

अगले दिन प्रातःकाल शिवकुमार के साथ उसका श्वसुर ईश्वरकृष्ण और उसका पुत्र तथा शिवकुमार का साला रामेश्वर भी हस्तिनापुर को गये। ईश्वर-कृष्ण आयुक्त भीमपाल को भलीभाँति जानता था और अपने उस परिचय का वह लाभ उठाना चाहता था, जिससे कि शिवकुमार को मिले निमन्त्रण का पूर्ण विवरण ज्ञात हो जाय। रामेश्वर हस्तिनापुर में अपने मोदी से मिलकर अपने बहनोई के लिए यात्रा-व्यय आदि की व्यवस्था करने के लिए साथ गया था।

उस काल में हस्तिनापुर स्वतन्त्र राज्य नहीं रहा था। युधिष्ठिर की सन्तान तो सम्राट अशोक के काल में ही राज्य से च्युत हो चुकी थी। युधिष्ठिर की सन्तान बौद्ध नहीं बनी थी। वे अशोक तथा उसके उत्तराधिकारियों के काल में पुरुवंशीय सामान्य नागरिक के समान ही रह रहे थे। परन्तु जब मगध पर शुंग वंश का राज्य हुआ तो इस परिवार के जनों को आयुक्त का पद प्रदान किया गया और तब से ही यह परिवार हस्तिनापुर में आयुक्त के पद पर आसीन था।

ईश्वरकृष्ण पुरुवंशियों की एक शाखा का पुरोहित था। यही कारण था कि उसकी उस क्षेत्र के शासक तक पहुँच थी। उसकी पुत्री और जामाता देश की राजधानी जा रहे थे, इसलिए वह चाहता था कि जहाँ तक सम्भव हो सके उनको वहाँ के मुख्य-मुख्य व्यक्तियों के नाम परिचय-पत्र दिला दिये जायें। इससे उसके जामाता को अपनी उन्नति करने में सुविधा होगी।

हस्तिनापुर के प्राचीन राज्य-परिवार का राज-प्रासाद इन दिनों क्षेत्र का राज्य कार्यालय भी था और उसी के दूसरे भाग में राज्य-परिवार भी रहता था।

ईश्वरकृष्ण उन दोनों को लेकर आयुक्त के कार्यालय में जा पहुँचा। तीनों ने अपना-अपना परिचय और हस्तिनापुर आने का कारण लिखकर द्वारपाल को दे दिया। द्वारपाल भीतर सूचना देकर आया और फिर तुरन्त ही उन तीनों को भीतर ले गया।

तीनों जब भीतर पहुँचे तो आयुक्त भीमपाल ने उठकर उनका स्वागत किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको बैठाकर आयुक्त भीमपाल ने पूछा, "शिवकुमार कौन हैं ?"

अपना नाम सुनकर शिवकुमार ने आयुक्त को नमस्कार कर कहा, "जी, मेरा नाम ही शिवकुमार है। पण्डित ईश्वरकृष्ण जी मेरी पत्नी के पिता होने के नाते मेरे संरक्षक हैं। मैं माता-पिता विहीन हूँ और इन्हीं के आश्रय रहता हूँ।"

"काशी में आपने क्या पढ़ा है ?"

"मैंने वहाँ से न्यायभूषण की उपाधि अर्जित की है।"

"सुनो वत्स ! दो दिन पूर्व राजधानी से आदेश आया था कि मंगला गाँव के पण्डित शिवकुमार को राजधानी भेज दिया जाय। यात्रा के लिए राजकीय रथ का प्रबन्ध करने का आदेश है और मार्ग-व्यय के लिए पचास स्वर्ण मुद्राएँ भी देने का आदेश हुआ है। यह भी आग्रह किया गया है कि आपको वहाँ भेजने की तुरन्त व्यवस्था कर दी जाय।"

यह सुन पण्डित ईश्वरकृष्ण ने पूछा, "महाराज ! क्या कोई ऐसा भी संकेत है कि वहाँ इनको किस निमित्त बुलाया जा रहा है ?"

"ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। न ही ऐसा कोई संकेत है कि इनके नाम की वहाँ किसने सिफारिश की है। मंगला ग्राम इतना समीप होने पर भी हमको आपके विषय में किसी प्रकार का ज्ञान नहीं है किन्तु वहाँ किस प्रकार आपकी ख्याति पहुँची, यह कुछ कहा नहीं जा सकता।"

"मेरा इनके साथ आने का उद्देश्य यही था कि यदि आपको इस विषय में पूर्ण विवरण ज्ञात हो तो मुझे भी जानकारी मिल जाय तथा यदि राजधानी की इस यात्रा के मार्ग-व्यय आदि का कोई निर्देश नहीं है तो उसकी व्यवस्था के लिए भी आपसे निवेदन करूँ।"

"इसकी आपको चिन्ता नहीं करनी होगी। राजधानी से पचास स्वर्ण का प्रावधान है। इतने में इनकी यात्रा राजसी शोभा से हो सकती है। अब जब हमें विदित हो गया है कि ये आपके जामाता हैं तो हम इनको रथ का ऐसा सारथी देंगे कि जो सारे मार्ग में इनका भलीभाँति ध्यान रखेगा और किसी प्रकार का भी कष्ट इनको नहीं होने पायेगा।"

शिवकुमार ने कहा, "मैं चाहता था कि मेरा परिवार भी मेरे साथ ही जाता तो अच्छा होता।"

"कितना बड़ा परिवार है ?"

"पत्नी और दो छोटे-छोटे पुत्र।"

"विचार कर लीजिये, मार्ग में कहीं उनको कष्ट न हो।"

"मैं वहाँ राजाज्ञा से जा रहा हूँ। किन्तु मुझे यह ज्ञात नहीं कि राज्य मुझसे क्या कार्य सम्पन्न कराना चाहता है। तदपि मेरा विचार वहाँ जाकर स्थायी रूप से रहने का हो रहा है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरी शुभकामना तुम्हारे साथ हैं। परन्तु वत्स ! वह राजधानी है। वहाँ सावधानी से रहना होगा।"

"परमात्मा का आश्रय है। अपने विचार से तो मैं वहाँ राज्य और राष्ट्र की सेवा के लिए जा रहा हूँ। ब्राह्मण के लिए तो न कोई स्थान भय का है और न कोई व्यक्ति ही।"

"भगवान् तुम्हारी रक्षा करेगा।"

"कब जाना होगा ?"

"यह तो तुम पर निर्भर करता है। तुम बताओ कि शीघ्रातिशीघ्र तुम कब प्रस्थान कर सकते हो ? उस दिन हम रथ और मार्ग-व्यय के लिए निर्धारित धन भेज देंगे। मंगला यहाँ से तो पाटलिपुत्र के मार्ग पर ही है।"

"मेरी तैयारी दो दिन में पूर्ण हो जायगी। तदुपरान्त आप कोई भी दिन हमारे जाने के लिए निर्धारित कर दीजिए। मैं तैयार मिलूंगा।"

आयुक्त बोला, "ठीक है। आज शनिवार है। मंगलवार के दिन सूर्योदय से एक घड़ी पूर्व तुम्हारे द्वार पर रथ उपस्थित हो जायगा। तुम तैयार रहना। धूप के दिन हैं इसलिए ठण्ड-ठण्ड में जितना दूर आप लोग निकल सकें उतना ही अच्छा होगा।"

वहाँ से विदा होने से पूर्व ईश्वरकृष्ण ने कहा, "यदि आप वहाँ के लिए कुछ परिचय-पत्र भी दे सकें तो आपका बड़ा उपकार होगा। यदि कुछ सम्पन्न और सामर्थ्यवान् व्यक्तियों से वहाँ इनका परिचय हो जायगा तो उसके आधार पर इनको उन्नति करने में सुविधा हो जायेगी।"

भीमपाल बोला, "वहाँ पण्डित हरिषेण को मैं भली प्रकार जानता हूँ। यह भी सुनने में आया है कि आजकल वहाँ उनकी बड़ी मान्यता है। मैं उनके नाम परिचय-पत्र दे दूंगा। वहाँ वे जिससे भी उचित समझेंगे इनका परिचय करा देंगे।"

तीनों व्यक्तियों को यह सब जानकर परम सन्तोष हुआ और प्रसन्नतापूर्वक वे अपने गाँव लौट आये।

जाने के लिए केवल दो दिन का अवसर मिला था। इस कारण पण्डित ईश्वरकृष्ण के घर इन दो दिनों में काफी व्यस्तता रही थी। उस रात्रि को तो कोई सो ही नहीं पाया था, जिसकी प्रातःकाल उनको प्रस्थान करना था। कन्या और जामाता बहुत दूर की तथा बहुत दिनों की यात्रा पर जा रहे थे, अतः कन्या की माता अपना सारा ज्ञान और अनुभव अपनी पुत्री की झोली में उड़ेल देना चाह रही थी। इस प्रकार बात करते-करते प्रभात वेला आ पहुँची।

रामेश्वर मन-ही-मन विचार कर रहा था कि यदि उसका बहनोई तथा बाल-सखा शिव पाटलिपुत्र में स्थिर हो गया तो फिर कालान्तर में वह भी वहीं जाकर रहने लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R 089.9143
GUR-A
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्योदय से एक मुहूर्त पूर्व ही हस्तिनापुर का रथ उनके द्वार पर आकर खड़ा हो गया। रथवान से रामेश्वर पूछने लगा, "भैया! पहले भी कभी तुमने पाटलिपुत्र की यात्रा की है?"

"अनेक बार पण्डितजी!"

"फिर तो अनुभवी व्यक्ति हो। बच्चों को किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं होगा?"

"आप चिन्ता न कीजिये पण्डित जी! महाराज का आदेश है कि पण्डितजी के परिवार की सुख-सुविधा का पूर्ण ध्यान रखा जाय तथा उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न होने पाये।"

"बहुत ठीक। क्या नाम है तुम्हारा?"

"रक्षपाल।"

"तुम्हें लौटकर हस्तिनापुर आना है अथवा वहीं रहोगे?"

"जी, मैं दो दिन विश्राम कर वापस लौट आऊँगा।"

"हमारा गाँव मार्ग में ही है। लौटते हुए यहाँ रुककर हमें इनका कुशल समाचार अवश्य देते जाना। तुम्हारी कृपा होगी।"

"आप चिन्ता मत करिये पण्डितजी! मैं अवश्य समाचार लाकर दूंगा।"

तबतक शिवकुमार का सामान बाहर लाया जाने लगा था। सारे परिवार के वस्त्र, बिछौना तथा मार्ग में भोजन की सामग्री थी। सबको रथ में यथास्थान रख दिया गया।

शिवकुमार ने तथा उसकी पत्नी ने माता-पिता के चरण स्पर्श किये। माता-पिता ने उन्हें भरपूर आशीर्वाद दिया। समवयस्क परस्पर गले मिले। बच्चों को प्यार किया गया। तदनन्तर वे रथ पर बैठ गये और फिर रथ वहाँ से पाटलिपुत्र के लिए चल पड़ा।

छोटे-छोटे पड़ाव करते हुए, गर्मी से बचते हुए हस्तिनापुर से पच्चीस दिन में उनका रथ पाटलिपुत्र पहुँच पाया। सारा मार्ग गंगा के किनारे-किनारे होकर जाता था। इस कारण मार्ग के दोनों ओर हरियाली होने से यात्रा अधिक दुःखद नहीं रही।

पाटलिपुत्र से पूर्व आर्यपुरा आया। वहाँ रुककर सूर्योदय से एक मुहूर्त बाद इनका रथ राजधानी के मुख्य पंथागार के द्वार पर जा लगा।

पंथागार का भवन बड़ा ही भव्य था। यह इतना विशाल था कि पाँच सौ यात्री यहाँ एक साथ निवास कर सकते थे। पंथागार के एक ओर गंगा बह रही थी और दूसरी ओर राजपथ था। भीतर विशाल प्रांगण के मध्य सुन्दर पुष्पवाटिका थी। पुष्पवाटिका के मध्य एक पुष्करिणी भी थी। पंथागार की निचली मंजिल पर भोजनालय तथा यात्रियों की सुख-सुविधा की विभिन्न सामग्री की

Central Library
167884
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुकानें थीं।

शिवकुमार का रथ 'महारानी पद्मावती' नाम के इस पंथागार के द्वार पर जाकर रुका तो रथवान ने रथ से उतरते हुए कहा, "पण्डितजी ! आप बैठे रहिये। मैं देखता हूँ कि आपके रहने योग्य कोई स्थान है अथवा नहीं। यदि यहाँ स्थान न हुआ तो किसी अन्य पंथागार में जाना पड़ेगा।"

यह कहकर रथवान भीतर चला गया। वह तुरन्त ही लौट भी आया और बोला, "आपके लिए प्रथम तल का कक्ष संख्या १४० पहले से ही आरक्षित है।"

"किसने उसको आरक्षित किया है ?"

"यहाँ राज्य की ओर से आपके लिए प्रबन्ध किया गया है। प्रबन्धक को तीन-चार दिन पूर्व से ही यह सूचना थी कि आप पधारने वाले हैं इसलिए आपके लिए कक्ष आरक्षित रखा जाय।"

"सम्भव है हमारे देश के आयुक्त भीमपाल महोदय ने हमारे आने की सूचना किसी तीव्रगामी व्यवस्था द्वारा यहाँ भेज दी होगी। उसके अनुसार ही यह आरक्षण किया गया होगा।"

"कदाचित् ऐसा ही हो। क्योंकि मैं इससे पूर्व अनेक बार राज्याधिकारियों को लेकर आ चुका हूँ किन्तु इस प्रकार पूर्व आरक्षण की बात तब कभी भी नहीं हुई थी। इस प्रबन्ध से तो ऐसा लग रहा है कि आप किसी अन्य राज्य के शासक हैं और तदनुकूल ही आपका स्वागत-सत्कार किया जा रहा है।"

यह सुनकर शिवकुमार के मुख पर मुस्कराहट खेल गई। पंथागार का एक कर्मचारी इनके रथ के समीप आया और बड़ी नम्रता से शिवकुमार को नमस्कार कर कहने लगा, "पधारिये भगवन् ! मुझे प्रबन्धक महोदय ने आपको आपके लिए नियत आगार तक पहुँचाने का आदेश दिया है।"

शिवकुमार तथा उसका परिवार रथ से उतरा और पंथागार के कर्मचारी के साथ उस आगार की ओर चल पड़ा। विस्मयजनक बात तो यह थी कि वृहस्पति इस प्रकार आगे-आगे चल रहा था मानो कि वह इस पंथागार में सदा से रहता आया हो। शिवकुमार के मन में इस बात की पुष्टि हो गयी कि उसका पुत्र अपने पूर्व जन्म की ही बात स्मरण कर समय-समय पर उसको बताता रहता है। वह मुस्कराता हुआ पत्नी की ओर देखने लगा। चन्द्रमुखी भी अपने पुत्र को उस पंथागार के गलियारों से परिचित-सा देख विस्मय कर रही थी।

आगार संख्या १४० बहुत बड़ा था तथा उसमें सब प्रकार की सुख-सुविधा की सामग्री विद्यमान थी। आगार की सजावट भी राजसी ठाट की थी। बैठने के लिए सुन्दर चौकियाँ थीं। सोने के लिए पलंगों पर बिस्तर बिछे हुए थे। कर्मचारी ने शिवकुमार को वहाँ की सारी व्यवस्था से अवगत कराया और फिर आगार की चाबी उसको सौंपकर वह अपने कार्य पर चला गया। रथवान के लिए पृथक्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान था। रथ तथा घोड़ों के लिए भी स्थान नियत था तथा उनकी व्यवस्था का भी ध्यान रखा गया था।

कर्मचारी ग्रौर रथवान जब चले गये तो शिवकुमार ने वृहस्पति से पूछा, "वृहस्पति ! तुम बहुत प्रसन्न प्रतीत होते हो, तुम्हें स्थान पसन्द है ?"

"पिताजी ! मैं समझता हूँ कि मैं इस स्थान को पहचानता हूँ।"

"कौन-सा स्थान है यह ?"

"यह पाटलि…" ग्रागे उससे बोला नहीं गया तो वह परेशानी में ग्रपनी माता का मुख देखने लगा।

माँ उसको देखकर मुस्करा रही थी। वृहस्पति ने उससे पूछा, "माँ ! मैं भूल गया हूँ मैंने क्या नाम वताया था ?"

"कब बताया था ?"

"घर पर बताया था न, जिस दिन हम वहाँ से चलने लगे थे ? हाँ, याद ग्रा गया—पाटलिपुत्र। क्यों ठीक है न ?"

"हाँ ठीक है। तुम तो सब स्मरण रखते हो, तब तो तुम वहुत बड़े ग्रादमी बनोगे।"

वृहस्पति बहुत प्रसन्न था। जब उसके माता-पिता नित्य कर्म से निवृत्त होकर प्रातःकाल के ग्रल्पाहार के लिए तैयार हुए ही थे कि रथवान के साथ राज्य का प्रतिहारी ग्रा उपस्थित हुग्रा।

रथवान ने बाहर से ही ग्रावाज दी, "पण्डितजी !"

ग्रावाज सुनकर शिवकुमार बाहर ग्रा गया। रथवान के साथ प्रतिहारी को देखकर शिवकुमार समझ गया कि राज्याधिकारियों को उसके पाटलिपुत्र पहुँचने का समाचार मिल गया है। रथवान ही बोला, "यह ग्रापको ले जाने के लिए ग्राया है।"

शिवकुमार ने प्रतिहारी से पूछा, "तुम्हें किसने भेजा है ?"

"मगध के महामात्य पण्डित हरिषेण जी ने ग्रापको तथा ग्रापकी पत्नी एवं बच्चों को ग्रपने निवास पर ग्रल्पाहार करने के लिए ग्रामन्त्रित किया है।"

शिवकुमार को हरिषेण का नाम सुनकर ग्राश्चर्य हुग्रा। उसने पूछा, "हरिषेण जी इस राज्य के महामात्य हैं ?"

शिवकुमार को स्मरण हो ग्राया कि हस्तिनापुर के ग्रायुक्त भीमपाल ने उसके हाथ पण्डित हरिषेण जी के नाम एक परिचय-पत्र दिया था।

प्रतिहारी बोला, "पण्डितजी ही यहाँ के सर्वेसर्वा हैं।"

"ठीक है, चलो।"

इस प्रकार शिवकुमार ग्रपनी पत्नी ग्रौर बच्चों को साथ लेकर महामात्य पण्डित हरिषेण जी के निवास पर जा पहुँचा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ३ :

पाटलिपुत्र मगध साम्राज्य की राजधानी थी। जिस युग का हम वर्णन कर रहे हैं उस समय वहाँ का शासक महाराजाधिराज समुद्रगुप्त था। उस काल में उस साम्राज्य की सीमाएँ उस समुद्र से जहाँ गंगा सागर से मिलती थी, से आरम्भ कर उस समुद्र तक थीं जो द्वारिकापुरी के चरण पखारता है।

पूर्व काल में तो अंग-बंग इत्यादि राज्यों को विजय कर इस साम्राज्य के अधीनकरलेने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हुई थी, परन्तु पश्चिम में शकों का राज्य था। शकों को पराजित करने में कठिनाई हो रही थी। तदपि एक बार तो महाराजाधिराज की सेनाएँ अरब सागर के तट पर खड़ी हो अस्तगत सूर्य को देख चुकी थीं। पश्चिम में शतदु नदी इस साम्राज्य की सीमा थी। इसके पार अभी तक भी शकों और नागाओं का अधिकार था।

उस समय कलि सम्वत्[1] ३०२३ चल रहा था। इसे विक्रमपूर्व सम्वत् ११ भी कहा जा सकता है। शिवकुमार जब पाटलिपुत्र पहुँचा, वह वर्ष का वैशाख मास था। शिवकुमार को विदित था कि समुद्रगुप्त का राज्य समुद्र से समुद्रपर्यन्त विस्तीर्ण है।

समुद्रगुप्त को शासनारूढ़ हुए अब तक उनतीस वर्ष हो चुके थे। इस समय महाराज के सम्मुख एक समस्या उपस्थित हो गई थी। कुछ ब्राह्मणों ने महाराज को परामर्श दिया था कि अपने राज्य का इतना विस्तार करने के उपरान्त अब उनको अश्वमेध यज्ञ करना चाहिए।

इस सम्मति की सूचना हस्तिनापुर भी पहुँची थी। शिवकुमार को जब यह सूचना मिली तो उसने इसके परिपेक्ष्य में चालीस पृष्ठ का एक लेख लिखकर पाटलिपुत्र की विद्वत् सभा को भेज दिया था। उन दिनों पत्रों का आवागमन साहूकारों की हुण्डियों के साथ ही हुआ करता था। शिवकुमार ने भी अपना लेख अपने ग्राम के सेठ मुरारीकृष्ण के कागज-पत्रों के साथ पाटलिपुत्र भेजा था।

विद्वत्परिषद् के मन्त्री ने उस लेख को आद्योपान्त पढ़ा और फिर उसको परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। उस परिषद् में राज्य के महामात्य पण्डित हरिषेण भी उपस्थित थे। उसने लेख सुना तो वह चकित रह गया। उसके विचार में यह लेख किसी सुपठित और अत्यन्त अनुभवी व्यक्ति द्वारा लिखा गया है। यह विचार आते ही उसने लेख के लेखक को पाटलिपुत्र में आमन्त्रित करने का निर्णय कर लिया।

तदनुसार सम्वत् ३०२३ के वैशाख मास के अन्त में शिवकुमार पाटलिपुत्र जा पहुँचा।

---

१. कलि सम्वत् ३०२३ विक्रम सम्वत् आरम्भ से ११ वर्ष पूर्व था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्तिनापुर से शिवकुमार को विदा कर वहाँ के आयुक्त ने तीव्रगामी अश्वारोही के हाथ एक पत्र महामात्य को लिखकर भेज दिया कि अमुख तिथि को मंगला गाँव के पण्डित शिवकुमार को पाटलिपुत्र के लिए भेज दिया गया है। यह भी लिखा कि पण्डितजी सपरिवार पधार रहे हैं।

पत्र के राजधानी पहुँचते ही महामात्य ने पण्डित शिवकुमार के निवास की व्यवस्था करवा दी थी। जिस पंथागार में शिवकुमार के निवास का प्रवन्ध किया गया था, वह पाटलिपुत्र का प्रख्यात पंथागार था। उसमें अधिकांशतया राजसी निमन्त्रण पर आये व्यक्ति ही ठहराये जाते थे और उनके निवास और सब प्रकार के सुख-सुविधा की व्यवस्था वहाँ की जाती थी।

इस प्रकार शिवकुमार पाटलिपुत्र पहुँचकर कुछ घड़ी बाद ही वहाँ के महामात्य पण्डित हरिषेण के निवास पर प्रातःराश के लिए पहुँच गया। महामात्य स्वयं शिवकुमार की अगवानी के लिए द्वार पर पधारे। जब उन्होंने एक नवयुवक को रथ पर से उतरते देखा तो वह विस्मय करने लगे क्योंकि जिस लेख के आधार पर महामात्य ने शिवकुमार को आमन्त्रित किया था उनकी दृष्टि में उसको लिखने वाला कोई अनुभवी वृद्ध नहीं तो प्रौढ़ावस्था का अवश्य होना चाहिए।

शिवकुमार रथ से उतरा तो उसने भवन की ड्योढ़ी पर एक प्रौढ़ावस्था के व्यक्ति को अपनी अगवानी के लिए खड़ा देखा। उसका अनुमान था कि महामात्य ने अपने किसी विश्वस्त कर्मचारी को उसकी अगवानी के लिए वहाँ खड़ा किया है। अतः अपने परिवार को रथ से उतारकर उसके सम्मुख उपस्थित होते हुए उसने कहा, "मेरा नाम शिवकुमार है। हस्तिनापुर के अन्तर्गत मंगला ग्राम से मैं महामात्य महोदय के निमन्त्रण पर यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।"

ड्योढ़ी पर खड़ा व्यक्ति साठ-पैंसठ वर्ष का प्रतीत होता था। परिधान के नाम पर उसके शरीर पर मात्र एक धोती थी। गले में यज्ञोपवीत था। सिर पर स्थित शिखा को भली प्रकार गठित किया गया था। पैरों में काष्ठ-पादुका पहन रखी थीं।

शिवकुमार के मुख से उसका परिचय सुन सहसा महामात्य के मुख से निकल गया, "मैं ऐसा नहीं समझता था।"

यह सुन शिवकुमार को चिन्ता-सी होने लगी। उसे सन्देह होने लगा कि किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा भ्रमवशात् उसको बुला लिया गया है। अब तो उसको यह भी सन्देह होने लगा था कि पंथागार में जो राजसी व्यवस्था उसके लिए की गयी थी, वह भी उसी व्यक्ति के लिए होगी, जिसकी प्रतीक्षा में "मैं ऐसा नहीं समझता था" कहने वाला व्यक्ति यहाँ पर खड़ा है।

शिवकुमार के मुख से निकला, "तो क्या मुझसे कुछ भूल हो गयी है?"

"भूल नहीं भ्रम। आइये, भीतर पधारिये।" महामात्य ने उसे बुलाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवकुमार इसका अभिप्राय भी नहीं समझ पाया। उसके लिए यहाँ की प्रत्येक बात अब विस्मयकारक हो रही थी। महामात्य ने उसे अनमना देखा तो उसकी पत्नी और बच्चों को भीतर चलने का संकेत किया और फिर शिवकुमार से कहा, "आओ वत्स !"

इतना कहकर वह स्वयं आगे-आगे चल पड़ा। जब वे भीतर पहुँचे तो वैसी ही प्रौढ़ावस्था की महिला भीतर के कक्ष से उस कक्ष में आ गई। तब स्वागतकर्ता महानुभाव ने कहा, "देवी ! ये हैं पण्डित शिवकुमार और यह इनकी पत्नी तथा बालक। इन बच्चों को तो तुम भीतर ले जाओ। हम लोग यहीं बैठते हैं। जब अल्पाहार का समय हो, हमको बुला लेना।"

गंगा नाम्नी प्रौढ़ा ने एक हाथ से चन्द्रमुखी का हाथ थामा और दूसरे से बृहस्पति का हाथ थाम बोली, "आओ बेटा !"

गंगा शिवकुमार की पत्नी और बच्चों को लेकर भीतर गयी तो स्वागतकर्ता ने शिवकुमार को बैठने का संकेत किया और स्वयं भी यथास्थान बैठकर उसने बताया, "मेरा नाम हरिषेण है और मैं इस राज्य का महामात्य हूँ।"

शिवकुमार प्रसन्न हुआ और एक बार फिर उसको नमस्कार कर उसने अपनी जेब से हस्तिनापुर के आयुक्त का पत्र निकालकर उसके सम्मुख रख दिया।

महामात्य ने पत्र को ध्यान से पढ़ा और उसी प्रकार तह करके उसे समीप रखी एक सन्दूकची में रख दिया। फिर बोला, "भीमपाल जी तो बहुत ही सरलचित्त व्यक्ति हैं। उन्होंने कहा है कि वह यह पत्र मुझे महामात्य के नाते नहीं अपितु अपने मित्र के नाते लिख रहे हैं।

"खैर छोड़िये, इस बात को। यह बताइये, यात्रा में किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं हुआ ?"

"भगवान् की कृपा से यात्रा निर्विघ्न पूर्ण हुई है। किन्तु अभी जो आपने कहा था कि भ्रम हो गया है, उससे मुझे चिन्ता होने लगी है। कृपया बताइये कि भ्रम किसको हो गया है, मुझे अथवा श्रीमान् को ?"

महामात्य ने विस्तार से बताते हुए कहा, "विद्वत्सभा में जब आपका लेख पढ़ा जा रहा था, तो उस समय मैं भी वहाँ पर उपस्थित था। मैं उसे सुनकर समझ रहा था कि उस लेख का लेखक बहुत ही सुलझे हुए विचारों का व्यक्ति है। मेरी दृष्टि में ऐसे विचारवान् व्यक्ति की आयु चालीस वर्ष से अधिक ही होनी चाहिए। किन्तु आपको देखकर तो लगता है कि आप लगभग पच्चीस वर्ष के ही हैं। इस लिए मैंने कहा था कि 'भ्रम हो गया है।' भ्रम से मेरा यही अभिप्राय था।

"आपका लेख पढ़कर मुझे प्रसन्नता हुई और यह भी प्रसन्नता का ही विषय है कि भारत भूमि से अभी बुद्धि का पूर्णतया निर्गमन नहीं हुआ है। इससे विस्मय भी हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वत्स ! क्या पढ़ा है ?"

"श्रीमान् ! मैंने पन्द्रह वर्ष तक काशी जी में पण्डित चक्रपाणि जी महाराज के चरणों में बैठकर विद्याध्ययन किया है। वैसे तो न्याय-दर्शन मेरा प्रिय विषय रहा है तदपि मैंने इतिहास, पुराण और उपनिषद् आदि का भी गहन अध्ययन किया है। स्मृति-शास्त्र और राजनीति में भी मेरी पैठ है ! हमारे गुरुजी को तो स्मृति-शास्त्र का महान् पण्डित माना ही जाता है।

"मैं समझता था कि आपने किसी अन्य विद्वान् के स्थान पर भूल से मुझे बुला लिया है, इसीलिए आप 'भ्रम' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं और यही मेरी चिन्ता का कारण था।"

"नहीं, भूल नहीं, मैंने इसीलिए कहा था कि भ्रम हो गया है। कारण मैंने पहले ही समझा दिया है।"

यह सुन स्वस्थ होकर शिवकुमार ने फिर मुस्कराते हुए कहा, "भगवन् ! जो भी हो, मैं तो सपरिवार यहाँ आ गया हूँ। मैंने चलते समय निश्चय कर लिया था कि अब अपना शेष जीवन पाटलिपुत्र में ही व्यतीत करूँगा।"

"गाँव में क्या कर रहे थे ?"

"दस वर्ष से कम वयस् के बालकों के लिए एक पाठशाला का संचालन कर रहा था। यही मेरी आजीविका थी। इस पर भी राजधानी में यहाँ आकर रहने के लिए प्रयत्नशील था। उसके लिए नित्य चार घड़ी तक स्वाध्याय करता रहता था।"

"महाभारत पढ़ा है ?"

"जी हाँ, उसका तो मैं नित्य पारायण करता हूँ। वह ज्ञान का भण्डार तो सदा ही मेरे सम्मुख खुला रहता है। स्वयं ग्रन्थकार ने कहा है—

"ब्रह्मन् वेदरहस्यं च यच्चान्यत् स्थापितं मया।
सांगोपनिषदां चैव वेदानां विस्तरक्रिया ।।
इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत्।
भूतं भव्यं भविष्यं च त्रिविधं कालसंज्ञितम् ।।"[1]

अब महामात्य बोले, "मैं तुम्हारी योग्यता का रहस्य समझ गया हूँ। यह

---

१. हे ब्रह्मन् ! मैंने इस महाकाव्य में वेदों का गुप्ततम् रहस्य तथा अन्य सब शास्त्रों का सार संकलित कर स्थापित कर दिया है। वेदों का ही नहीं, वरन् उसके अंग उपनिषदों का भी इसमें विस्तार से निरूपण किया है। इस ग्रन्थ में इतिहास-पुराणों का मन्थन कर उनका प्रशस्त रूप प्रकट किया है। भूत, वर्तमान और भविष्य काल की इन तीनों संज्ञाओं का वर्णन किया है। —म० भा० १-६२, ६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थ इतिहास, पुराण, ज्ञान, विज्ञान, राजनीति के अतिरिक्त असीम कल्पना को उत्पन्न करने की सामर्थ्य वाला है।

"मैंने तुम्हें यहाँ इसलिए बुलाया है कि यहाँ के ब्राह्मण और अन्य कर्मचारी महाराज को यह प्रेरणा दे रहे हैं कि देश के एक बहुत बड़े भाग को विजय कर, उनको अश्वमेध यज्ञ का पुण्यलाभ करना चाहिए।

"मैं चाहता हूँ कि तुम उन लोगों का नेतृत्व करो। इससे जहाँ तुम यहाँ के ब्राह्मणवर्ग को उचित दिशा निर्देश दे सकोगे वहाँ तुम अपने स्वप्न को भी साकार करने का यत्न कर सकोगे।

"बोलो, कर सकोगे यह कार्य ?"

"भगवन् ! यत्न तो कर ही सकता हूँ। साथ ही मैं इस यज्ञ का सर्व प्रधान अग यह समझता हूँ कि इस यज्ञ करने वाले को जीवन-भर की पूर्ण जीती हुई भूमि और धन-सम्पदा ब्राह्मणों को दान में दे देनी चाहिए। वर्तमान अवस्था में तो एक बात और करनी होगी कि देश-देश की भूमि और वहाँ से हवि में प्राप्त धन उस देश के ब्राह्मणों को ही दान में दिया जाय।"

"इससे क्या लाभ होगा ?"

"इससे यह लाभ होगा कि यदि वहाँ के ब्राह्मणों में बुद्धि हुई तो वे उस भूमि को पुनः वहाँ के शासकों को वापस कर देंगे।"

"तब भारतवर्ष की एकता और विदेशियों से इसकी रक्षा का क्या प्रबन्ध होगा ?"

"मैं जब महाराज को अश्वमेध यज्ञ की उसके वास्तविक रूप में करने की प्रेरणा दूंगा तो वहाँ ब्राह्मणों को भी प्रेरणा दूंगा कि वे अपने प्रिय विषय, संस्कृति को तो पूर्ण भारतवर्ष के ब्राह्मण समाज के अधीन ही रहने दें। उसे इन क्षत्रिय राजाओं के अधीन न करें। और भारतवर्ष का सैनिक संगठन यहाँ के चक्रवर्ती राजा के अधीन कर दें। शेष राज्य स्थानीय शासकों के अधीन कर दें।"

"यदि राजा ने इस प्रकार स्वीकार न किया तो ?"

"तब तो भगवन् ! अकेला ब्राह्मण यही कर सकता है कि वह अकेला ही राज्य भर में धर्म की दुन्दुभि बजाता फिरे। मैं इस बात को स्वीकार नहीं कर सकता कि अश्वमेध यज्ञ का जो शास्त्रीय स्वरूप है, उसे जन-जन को न बताया जाय।"

"इस वर्तमान विकृत समाज को किस प्रकार यह सब समझा पाओगे ?"

"श्रीमन् ! शाश्वत सत्य कभी भी बदलता नहीं है। उसके समझने के लिए मन और बुद्धि को निर्मल करने की आवश्यकता है। ब्राह्मण का कर्तव्य तो केवल इतना ही है कि वह पथ का प्रदर्शन करता रहे।

"देखिए भगवन् ! वेद में मानव समाज की मानव शरीर से तुलना की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर में बुद्धि का स्थान मस्तिष्क है। इस कारण मस्तिष्क का प्रतीक ब्राह्मण वर्ग यदि राज्य को आत्मसात् करने लगे तो वह महान् अनर्थ का भागी बनेगा। इसी प्रकार यदि क्षत्रिय अथवा राज-वर्ग ब्राह्मण का कार्य अपने हाथ में लेने लगेगा तो वह घोर नरक का भागी बनेगा।"

महामात्य बोले, "यह सब बाद में देख लेंगे। मेरी योजना तो यह है कि मैं तुम्हें महाराजाधिराज समुद्रगुप्त का राज-पुरोहित बनाना चाहता हूँ। इसके साथ ही मैं ब्राह्मण वर्ग में तुम्हारे लिए प्रतिष्ठा का स्थान बनाने का भी यत्न करूँगा।"

"ठीक है भगवन्! इस पर भी श्रीमान् जानते ही होंगे कि पुरोहित किसी का सेवक नहीं होता। यह तो आपने देख ही लिया है कि मैं सपरिवार यहाँ आया हूँ। इस कारण अपनी आजीविका का स्वतः प्रबन्ध करना चाहता हूँ। यह शास्त्र का वचन है कि जब ब्राह्मण किसी का वेतनधारी हो जाता है तो फिर वह ब्राह्मण न रहकर शूद्र बन जाता है। उसकी विद्वत्ता भी लोप हो जाती है।"

"मैं तुम्हारी भावना को समझता हूँ और उसका आदर भी करता हूँ। इस पर भी मेरी यही सम्मति है कि अभी तुम एक मास तक उस पंथागार में रह ही सकते हो जिसमें तुमको ठहराया गया है। तब तक तुम अपने स्वतन्त्र जीवन का निर्माण कर लो। मैं तुमको महाराज तक पहुँचाने का यत्न करूँगा। अब हम परस्पर मिलते ही रहेंगे। मैं यहाँ की राजनीति को प्राचीन वैदिक रीति पर चलाने के लिए यत्नशील हूँ। इसमें तुम मेरी सहायता करोगे ऐसा मेरा विश्वास है।"

यह कहकर उन्होंने विषयान्तर करते हुए पूछा, "यहाँ जो परिवार आया है उसके अतिरिक्त घर पर किस-किस को छोड़ आये हो?"

"मेरे अपने माता-पिता तथा भाई-बहिन कोई नहीं हैं। हाँ, मेरी पत्नी के माता-पिता आदि हैं। मेरे श्वसुर हस्तिनापुर के आयुक्त के पुरोहित हैं।"

"ठीक है, श्वसुर आयुक्त के पुरोहित तो जामाता महाराजाधिराज का पुरोहित बन जायेगा।"

पण्डित शिवकुमार ने इसके उत्तर में केवल हाथ जोड़ दिये।

: ४ :

महामात्य और शिवकुमार का यह प्रकरण समाप्त हुआ ही था कि भीतर से अल्पाहार तैयार होने की सूचना आ गयी।

हरिषेण ने आसन पर से उठते हुए कहा, "चलो अल्पाहार कर लें। उसके बाद तुम पंथागार में जाकर विश्राम करना। मैं अपने कार्य में प्रवृत्त हूँगा। विश्राम के उपरान्त पंथागार में ही रहना। वहाँ तुमको पण्डित चतुरानन मिश्र मिलेंगे और वे तुम्हारा परिचय यहाँ के विद्वानों से करायेंगे। उचित अवसर देखकर मैं भी तुमको मिलूँगा और शीघ्र ही महाराज से तुम्हारा परिचय कराने का यत्न करूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम अपने लिए उचित कार्य और स्थान प्राप्त करने का यत्न करो। यदि किसी कार्य के लिए मेरी सहायता की आवश्यकता हो तो यहाँ आकर मुझको मिल सकते हो। मध्याह्न चतुर्थ प्रहरोपरान्त मैं यहाँ पर मिला करता हूँ।"

वार्तालाप पूर्ण कर दोनों भीतर भोजनालय में जा पहुँचे। महामात्य की पत्नी तथा शिवकुमार की पत्नी एवं बच्चे वहाँ विद्यमान थे। महामात्य की पत्नी गंगा के साथ एक अन्य युवती भी खड़ी थी। महामात्य के भोजनालय में प्रवेश करते ही उसकी पत्नी बोली, "यह तो आपके घर में एक चमत्कार आया है।"

कहती-कहती वह हँस पड़ीं।

"कैसा चमत्कार?" पण्डित हरिषेण ने विस्मय से पूछा।

"आपके अतिथि का यह ज्येष्ठपुत्र।"

"इसने क्या चमत्कार कर दिखाया है?"

"यह कहता है कि यह मुझे जानता है। मैंने पूछा कि मैं कौन हूँ तो बोला 'कमलिनी'।"

महामात्य बोले, "तब तो यह बहुत कुछ जानता है। क्यों भई, कौन हो तुम?" महामात्य ने बच्चे से पूछा।

वृहस्पति उनको देखकर अपनी माता के पीछे छिप गया था। तब गंगा ही कहने लगी, "इसकी माताजी कहती हैं कि गाँव में सब इसको पागल कहते हैं।"

"परन्तु यह बात तो इसने पागलों की सी नहीं की है।" महामात्य ने पुनः बालक से कहा, "इधर आओ, वहाँ क्यों छिप रहे हो?"

सबने हाथ धोये और फिर चौकियों पर बैठ गये। गंगा के बायीं ओर वह युवती बैठ गयी, जो भगवती के समीप खड़ी थी। यह गंगा की बड़ी बहू थी। उसका नाम था रोहिणी। रोहिणी के साथ चन्द्रमुखी और उसका छोटा लड़का बैठे थे। उसके बराबर में शिवकुमार बैठा था। गंगा ने वृहस्पति को अपने और अपने पति के बीच में बैठा लिया था।

वृहस्पति को हाथ से पकड़ अपने पास बैठाते हुए गंगा ने पूछा, "तुम्हारा क्या नाम है? मैं तो किसी वृहस्पति को जानती नहीं।"

"परन्तु मैं तो आपको जानता हूँ।"

"तुम मुझे कहाँ मिले थे?"

"गाँव में। तब आप मिट्टी के कच्चे मकान में एक फूस के छाजन के नीचे खड़ी थीं।"

"किन्तु तुम वहाँ क्या कर रहे थे?"

"यह मुझे इस समय स्मरण नहीं आ रहा है।"

"तो मैं कैसे स्मरण रह गयी?"

"हाँ, मैं फिर कभी बताऊँगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अपनी माताजी से पूछकर बताओगे ?"

"नहीं, ये तो वहाँ थीं ही नहीं। मैं भूल गया हूँ फिर याद करके बताऊँगा।"

"परन्तु तुम हो कौन, यह तो बता दो ?" महामात्य ने उससे प्रश्न किया, "यह तो तुम मेरी पत्नी का बचपन का नाम बता रहे हो।"

"हाँ, याद आया, मैं भगीरथ हूँ।"

भगीरथ नाम सुनकर तो पचपन वर्ष की प्रौढ़ा के मुख पर भी लज्जा की लाली झलकने लगी।

हरिषेण ने यही उचित समझा कि इस समय इस वार्तालाप को बदल दिया जाय। उसने अपनी पत्नी को बताना आरम्भ किया, "पण्डित शिवकुमार अपने परिवार को साथ लेकर आये हैं। ये अब पाटलिपुत्र में ही रहना चाहते हैं। इस प्रकार तुम्हारे इस पूर्व परिचित बालक से भी मेल-जोल होता रहेगा।"

इसके बाद रोहिणी बातों का केन्द्र बन गयी। रोहिणी बोली, "बहिन चन्द्रमुखी भी कह रही हैं कि ये लोग पाटलिपुत्र में ही रहेंगे। मैंने इनको अपने पिताजी से मिलने के लिए कहा है।"

"क्यों ?" हरिषेण ने पूछा।

"वे इनके निवास की व्यवस्था में सहायक होंगे।"

"मैं इनको तुम्हारे पिताजी से मिला दूँगा।"

"मैं तो चाहती हूँ कि ये लोग यहीं कहीं समीप ही रहने लगें।"

"किन्तु मैं इनको अपने समीप नहीं रहने देना चाहता।"

"वह क्यों ?"

"इसमें राजनीति कारण है।"

बात समाप्त हो गयी। सब अल्पाहार करने लगे। महामात्य की राजनीति में घर का अन्य कोई प्राणी हस्तक्षेप नहीं करता था।

अल्पाहार समाप्त हुआ तो हरिषेण ने अपने रथ में शिवकुमार के परिवार की पंथागार में जाने की व्यवस्था कर दी और वह स्वयं अपने कक्ष में जाकर वस्त्र धारण करने लगा। जब तक वह वस्त्र धारण कर बाहर निकला तब तक रथ भी वापस आ गया था। महामात्य रथ पर आरूढ़ होकर अपने कार्यालय चला गया।

कार्यालय में महामात्य के पहुँचते ही एक प्रतिहारी स्वर्णपात्र में एक पत्र लेकर उपस्थित हुआ। महामात्य ने पत्र उठाकर पढ़ लिया। उस पर केवल 'समुद्र' लिखा था। इसका अभिप्राय यह था कि महाराज ने उसको बुलाया है।

"कहाँ हैं इस समय महाराज ?" उसने चोबदार से पूछा।

"अपने राज-प्रासाद की बैठकघर में बैठे हैं। इस समय उनसे मिलने के लिए पण्डित चतुरानन मिश्र भी आये हुए हैं।"

महामात्य उठा और महाराज से मिलने चल दिया। महामात्य राज-प्रासाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की परिधि में प्रविष्ट हुआ कि एक सुभट्ट, जो द्वार पर ही खड़ा था, उसके साथ हो लिया। यह राज-प्रासाद की प्रथा थी। राज-प्रासाद में प्रविष्ट होने वाला कोई भी व्यक्ति वहाँ एकाकी प्रविष्ट नहीं हो सकता था।

इस प्रकार चलकर महामात्य महाराज की बैठकघर के द्वार पर जा खड़ा हुआ। वहाँ एक चोबदार चाँदी की चोब लिये खड़ा था। वह इस बात का संकेत था कि महाराज इस समय आगार में विराज रहे हैं।

महामात्य को आते देख चोबदार तुरन्त भीतर गया और तत्क्षण वापस लौट कर महामात्य को झुककर प्रणाम करता हुआ बोला, "महाराज प्रतीक्षा कर रहे हैं।" यह कहते हुए उसने बैठक का द्वार खोल दिया।

महामात्य के द्वार के भीतर प्रविष्ट होते ही द्वार पुनः बन्द हो गया और साथ आने वाला सुभट्ट भी अपने स्थान पर वापस लौट गया।

भीतर प्रविष्ट होते ही महामात्य ने महाराज को आशीर्वाद दिया और फिर उनके सम्मुख जाकर खड़ा हो गया।

महाराज के पास एक व्यक्ति बैठा था। उसके सिर पर बड़ी-सी शिखा लटक रही थी, मस्तक पर चन्दन चर्चित था तथा उसने कौशेय वस्त्र धारण किये हुए थे। महाराज ने संकेत से महामात्य को बैठने के लिए कहा और फिर अपनी बात करते हुए बोले, "पण्डितजी आज फिर अश्वमेध यज्ञ के विषय में बात करने के लिए आये हैं। इनका कहना है कि काशी की विद्वन्मण्डली से सम्मति लेनी चाहिए कि यह यज्ञ किया जाय अथवा नहीं ?

"यह तो वास्तविकता है कि अभी तक भारत भूमि पूर्णरूपेण म्लेच्छों से मुक्त नहीं हो पायी है। शतद्रु पार का क्षेत्र अभी अविजित ही है। वहाँ अभी भी विदेशियों का शासन है। क्या अश्वमेध से पूर्व उसको विजय कर अपने साम्राज्य में मिला लेना चाहिए ?

"एक दूसरा पक्ष भी है। इस कलिकाल में यह सम्भव नहीं, अतः जितना है उतने पर ही यज्ञ कर लेना चाहिए।"

"परन्तु महाराज ! काशी जी से व्यवस्था लेने की आवश्यकता ही क्या है ? आज एक महान् विद्वान् पण्डित पाटलिपुत्र पधारे हैं। पहले उनसे व्यवस्था ले ली जाय तो उपयुक्त होगा।"

समीप बैठे चतुरानन मिश्र अस्थिर हो उठे। पूछने लगे, "कौन है वह ?"

"पण्डित शिवकुमार। तीन मास पूर्व जिसका निबन्ध यहाँ की विद्वत्सभा में पढ़ा गया था और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा भी हुई थी।

"उनकी शिक्षा-दीक्षा काशी में ही हुई है। वहाँ से उन्होंने न्यायभूषण की उपाधि अर्जित की है। काशी जी के प्रख्यात विद्वान् पण्डित चक्रपाणि के वे शिष्य रहे हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वह यहाँ किस प्रयोजन से ग्राया है ?" मिश्रजी ने ग्रगला प्रश्न किया।

महामात्य ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "उस दिन जब विद्वत्परिषद् में उसका निबन्ध पढ़ा जा रहा था तो मैं वहाँ उपस्थित था। उस निबन्ध के ग्राधार पर मैंने उसको गूढ़ ज्ञान का ज्ञाता समझा। मैंने उपयुक्त समझा कि ऐसे व्यक्ति को एक बार पाटलिपुत्र ग्रामन्त्रित किया जाय। तदनुसार हस्तिनापुर के ग्रायुक्त भीमपाल जी को पत्र लिखकर मैंने उसे यहाँ बुलवा लिया है।"

"किस प्रयोजन से ?"

"मेरा यह प्रयत्न रहता है कि भारत के श्रेष्ठतम् विद्वान् हमारी राजधानी को सुशोभित करें। उसी योजना के ग्रधीन पण्डित चतुरानन मिश्र ग्रौर पण्डित विभूतिचरण के चरण यहाँ पड़े हैं। मैंने ही यहाँ उनके स्थायी रूप से रहने की व्यवस्था करवायी थी। इस युवक को भी मैंने इसी प्रयोजन से बुलवाया है।"

"ग्राप उससे मिले हैं ?" महाराज ने पूछा।

"जी, ग्रभी उसको ग्रपने घर पर ग्रल्पाहार के लिए ग्रामन्त्रित किया था। परन्तु उसके निबन्ध के विषय पर ग्रभी किसी प्रकार की कोई चर्चा नहीं हुई।"

"हमसे मिलायेंगे उसे ?" महाराज ने पूछा।

"इसी उद्देश्य से तो बुलाया है। मैंने उसको संकेत भी कर दिया है कि उस को ग्रापसे मिलना चाहिए। तब उसका कहना था कि वह ग्राचार-विचार से ब्राह्मण है। इस कारण वह कभी किसी से याचना करने के लिए नहीं जाता। तदपि वह एक बार ग्रापसे भेंट करने के लिए ग्रायेगा ग्रवश्य।"

"कोई धन-धान्य सम्पन्न ब्राह्मण मालूम पड़ता है।"

"उसने बताया था कि वह माता-पिताविहीन है। किसी व्यापारी की सहायता से विद्याध्ययन के लिए काशीजी में जा पाया था। वहाँ ब्रह्मक्षेत्र में भोजन करता हुग्रा पन्द्रह वर्ष तक शिक्षा ग्रहण करता रहा है। गाँव वापस लौटने पर उसने वहाँ दस वर्ष से कम ग्रायु के बालकों के लिए पाठशाला का संचालन किया है। ग्रब वह राज्य के व्यय पर यहाँ बुलाया गया है।"

महाराज मुस्करा दिये। बोले, "इस पाठशाला के ग्रध्यापक से एक बार मिलवाइये ग्रवश्य।"

"ग्राप जब ग्राज्ञा करें।"

"ग्राप बता दीजिये कि कहाँ उसके निवास की व्यवस्था है, शेष हम स्वयं देख लेंगे।"

"उसकी व्यवस्था पद्मावती पंथागार के ग्रागार संख्या १४० में है।"

"ग्राप उससे कुछ मत कहिये। हम स्वयं ही उससे मिलने का यत्न करेंगे।"

"जैसा ग्राप उचित समझें।"

तदनन्तर महामात्य ने पण्डित चतुरानन की ग्रोर मुख कर कहा, "पण्डित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी ! एक दिन उसको विद्वत्परिषद् में बुलाकर अश्वमेध यज्ञ के विषय में उसका विचार जानने का यत्न करना चाहिए। यदि वहाँ किसी प्रकार का निर्णय न हो सके तो फिर काशी जी से व्यवस्था का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।"

"मंगला के इस विद्वान् के लेख के विषय में सुना तो हमने भी है। अब हम इसका लेख भी विद्वत्परिषद् के पुस्तकालय से मँगवाकर पढ़ेंगे।" महाराज ने कहा।

इतना कहकर वे उठ खड़े हुए। इसका अभिप्राय था कि भेंटवार्त्ता पूर्ण हुई।

मिश्रजी गये तो महाराज ने महामात्य से कहा, "जो विधि-विधान हमने अश्वमेध यज्ञ का सुना है वह चतुरानन मिश्र जी द्वारा बताये विधि-विधान से सर्वथा भिन्न है। और आप जो कहते हैं वह उन दोनों से ही भिन्न है। यही कारण है कि हमने इस विवादस्पद विषय पर काशी जी से व्यवस्था लेने की आवश्यकता अनुभव की थी।"

"महाराज ! इस युवक से मिल लीजिये। मिलने से पूर्व उसका वह लेख भी पढ़ लीजिये। मैं समझता हूँ कि यह समस्या यहीं सुलझ जायेगी।"

"हाँ, निबन्ध तो हम आज ही मँगवाकर पढ़ लेते हैं। उससे उसके बाद ही मिलेंगे।"

महामात्य हरिषेण ने बात बदलते हुए कहा, "महाराज ! आपने अपने जीवन काल में बहुत परिश्रम किया है। अब राम को चाहिए कि वह दक्षिण की ओर से शकों पर आक्रमण करे और उन्हें देश से बाहर खदेड़ दे।"

इस सुझाव पर महाराज गम्भीर विचारों में खो से गये। महामात्य देख रहा था कि महाराज के मुख पर एक रंग जाता है तो दूसरा आता है। बहुत देर बाद महाराज ने कहा, "हमने राम की माँ के साथ न्याय नहीं किया। इस कारण उसके पुत्र को ऐसी कोई आज्ञा देते हुए हमें संकोच होता है।"

"क्षमा करें महाराज ! महारानी चन्द्रावती से आपका व्यवहार आपका निजी है। इसमें किसी बाहरी व्यक्ति को, चाहे वह महामात्य ही क्यों न हो, झाँकने का अधिकार नहीं है।

"परन्तु महाराज ! जब आप दोनों का निजी व्यवहार देश और जाति को हानि पहुँचाने लगे तो महामात्य का यह कर्तव्य बन जाता है कि वह उसके दुष्परिणामों की ओर संकेत कर दे।"

"महामात्य ! हमने आपको इस विषय पर चर्चा करने से कब रोका था ?"

"मैं अब इसीलिए तो कह रहा हूँ महाराज कि राजकुमार को मगध जैसे विशाल साम्राज्य का उत्तराधिकारी बनने के योग्य सिद्ध करने के लिए कोई अवसर तो दिया जाना चाहिए। इसमें राजकुमार के माता-पिता का परस्पर सम्बन्ध बाधक नहीं बनना चाहिए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो क्या आप समझते हैं कि राजकुमार को राज-समरों में भाग लेना ही चाहिए ?"

"हाँ महाराज ! आपने भी तो इसी प्रकार सीढ़ियाँ पार कर राज्यारोहण किया था। यह परम्परा तो देवराज इन्द्र और विष्णु के काल से चली आ रही है।

"महाराज ! पिछली बार जब हम सौराष्ट्र में शकों के विपरीत समर चला रहे थे तो समरभूमि से आपने राजकुमार को लिखा था कि तीव्रगामी अश्व पर आरूढ़ होकर आपके साथ समर में सम्मिलित हो जाये। तब उसकी माता ने आपको लिखा था कि क्या राज्य के सब सेनापति मर चुके हैं जो उनके पुत्र को समर में सम्मिलित होने का आदेश भेज दिया है ?

"इस घटना को पाँच वर्ष व्यतीत हो गये हैं। तब वह पन्द्रह वर्ष का कुमार था। अब वह बीस वर्ष का हो चुका है। उसे राज्य के कार्यों में रुचि प्रकट करनी चाहिए।"

"क्या युद्ध में भाग लिये बिना कोई राज्य का उत्तराधिकारी नहीं बन सकता ?"

"जब राज्य का उत्तराधिकारी ही युद्ध जैसे कार्य में भाग लेने में संकोच करे तो फिर उसके अधीनस्थ कर्मचारी भी युद्ध से पीठ मोड़ने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करेंगे।

"आपने और महारानी दत्तदेवी ने अपने पुत्र विक्रम को कभी भी समर में जाने से नहीं रोका तो फिर यह विशेष दृष्टि राम के विषय में ही क्यों है ?"

"यह दोनों की माताओं की इच्छा के अनुरूप ही है। आज से पाँच वर्ष पूर्व जब सौराष्ट्र समर में जाते हुए विक्रम हमारे साथ था तब हमने राम को भी वहाँ बुलवाया था। विक्रम अपनी माता की प्रेरणा से ही हमारे साथ था और राम अपनी माता की इच्छानुरूप वहाँ उपस्थित नहीं हुआ था।"

"तो महाराज ! आप राम को किसी ग्राम का अध्यक्ष बनाकर उसको वहाँ पर शान्तिपूर्वक रहने का निमन्त्रण दे दीजिये। वह किसी साम्राज्य का सम्राट् बनने के योग्य नहीं है।"

"हम इन दोनों बातों में परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं देखते।"

"आज अंग नरेश यहाँ पधारने वाले हैं।" सहसा पण्डित हरिषेण ने विषय परिवर्तन कर यह बात कह दी।

"क्या प्रयोजन है उनके पधारने का ?"

"वे महाराज के परिवार से अपना सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं।"

"किस कुमार पर उनकी दृष्टि है ?"

"उनकी दृष्टि तो विक्रम पर है। किन्तु महाराज ! जब राज्य बड़े लड़के को मिलने वाला हो तो फिर अंग नरेश अपनी कन्या उसी को दान करने के विषय में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचेंगे। युवराज का विवाह पहले होना चाहिए।"

"महामात्य! आज आप कुछ बहकी-बहकी-सी बातें कर रहे हैं।"

"नहीं महाराज! मैं ठीक ही कह रहा हूँ कि मगध के कनिष्ठ राजकुमारों का सम्बन्ध देश के अन्य नरेशों से इस प्रकार से नहीं होने देना चाहिए। यह राजनीति है। इस प्रकार के सम्बन्ध तो राज्य में भारी अव्यवस्था उत्पन्न करने में सहायक होंगे।"

महामात्य इस प्रसंग पर अधिक बात करना नहीं चाहते थे। अतः उन्होंने इसे समाप्त करते हुए कहा, "महाराज! अब मुझे आज्ञा दीजिये।"

महाराज गम्भीर विचारों में खोये से लगे। महामात्य ने अवसर देखा तो उनको प्रणाम कर वहाँ से खिसक गये।

महामात्य के जाते ही महाराज ने ताली बजाई। द्वार पर विद्यमान चोबदार तुरन्त उपस्थित हुआ। उसे देख महाराज ने कहा, "विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष पण्डित विभूतिचरण मिश्र को सूचना भेजो कि हमने उन्हें स्मरण किया है।"

उधर हरिषेण जब अपने कार्यालय में पहुँचा तो राज्य के अर्थ मन्त्री सेठ रामगोपाल को प्रतीक्षा करते पाया। दोनों तब राज्य की व्यवस्था के विषय पर बात करने लगे। इस वार्त्तालाप के मध्य अश्वमेध यज्ञ की भी चर्चा हुई, जिसका निष्कर्ष यही था कि महाराज को इस बात से अवगत करा देना चाहिए कि इस यज्ञ में कितना व्यय होगा और इससे राज्य पर कितना बोझ बढ़ जायेगा।

अर्थ मन्त्री गया तो महामात्य ने रक्षा मन्त्री वीरभद्र को बुलवा लिया। रक्षा मन्त्री के आने पर महामात्य ने पूछा, "अंग राज्य से लगने वाली सीमा पर हमारी क्या सुरक्षा व्यवस्था है?"

"अपनी ओर की सीमा तो यथावत् है परन्तु अंग देश के भीतर और अपने देश से लगने वाली सीमा पर उस ओर से समर की तैयारी होती जैसी दीख रही है।"

"आज अंगराज अपनी दो कुमारी कन्याओं के साथ आने वाले हैं।"

"यह तो विदित है। और मुझे तो यह भी पता चला था कि उनकी वे दोनों ही कन्यायें अल्पवयस्क हैं। उनमें से एक की आयु तो दस वर्ष की है, दूसरी की आठ वर्ष। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों भिन्न-भिन्न माताओं की सन्तान हैं।"

"यदि किसी कारणवश आज ही अंग देश से युद्ध करना पड़ जाय तो हम वहाँ अपनी कितनी सेना भेज सकते हैं?"

"श्रीमन्! इस समय तीन लाख सैनिक एक दिन की पूर्व सूचना पर युद्ध के लिए तैयार बैठे हैं। पन्द्रह दिवस के भीतर पाँच लाख और तैयार हो जायेंगे।"

"यह स्थिति सन्तोषजनक ही है। परन्तु मैं समझता हूँ कि इतनी सेना की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। जो बात आवश्यक है वह यह कि हमें वह स्थान पता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहिए जहाँ से अंग देश में प्रविष्ट होकर बिना अधिक जन-हानि किये हम उसकी राजधानी में पहुँच सकें।

"हमारे गुप्तचर विभाग का यह कहना है कि उस देश के उत्तर के क्षेत्र सर्वथा असुरक्षित हैं। परन्तु उस ओर नेपाल राज्य है और हमारी सेना नेपाल राज्य की सीमा का उल्लंघन किये बिना उधर से आक्रमण नहीं कर पायेगी। नेपाल हमारा मित्र देश है।"

सुरक्षा मन्त्री बोला, "इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि आक्रमण के लिए हमें नेपाल से स्वीकृति लेनी पड़ेगी?"

इस प्रकार विचार-विमर्श के उपरान्त सुरक्षा मन्त्री वीरभद्र चला गया। तब महामात्य ने विदेश मन्त्री को बुलवाया। विदेश मन्त्री पण्डित नरहरिसिंह आया तो महामात्य ने पूछा, "वर्तमान में हमारे नेपाल महाराज से कैसे सम्बन्ध हैं?"

"अति सुखद् हैं पण्डित जी!"

"क्या हमारे शत्रु को वे अपना भी शत्रु समझ सकते हैं?"

"इस दृष्टि से तो कभी विचार-विमर्श हुआ नहीं।"

"हम समझते हैं कि यदि उनको विश्वास हो जाय कि कोई राज्य अकारण ही हमसे शत्रुता कर रहा है तो उनको उसे भी हमारी मित्रता के नाते अपना शत्रु समझना चाहिए।"

"यह तो एक प्रकार से विकट समस्या है। उस राज्य को हमारे शत्रु से अपनी हानि होने का विश्वास हो जाय तब तो वह उसे अपना शत्रु समझ सकता है।"

"यही विश्वास कराना तो हमारे विदेश मन्त्रालय का कार्य है।"

"पहले यह तो विदित हो कि निकट भविष्य में किस देश से अपने युद्ध की सम्भावना है, तभी तो नेपाल को अपने पक्ष में करने का यत्न किया जा सकता है।"

महामात्य के मुख पर मुस्कराहट झलक पड़ी। बोले, "जब से साम्राज्य स्थापित करने की लालसा जागी है, तब से सभी पड़ोसी देशों से युद्ध की सम्भावना बढ़ती जा रही है।"

"परन्तु अंग नरेश तो अपनी राजकुमारी का सम्बन्ध बनाने के लिए पाटलिपुत्र की यात्रा कर रहे हैं?"

"जितना निकट का सम्बन्ध बनाने की लालसा होती है उतने ही बड़े विग्रह की भी सम्भावना हो जाया करती है। तीव्र प्रकाश की ओट में ही घटाटोप अन्धकार होता है।"

"भगवन्! मैं आपके संकेत को समझ गया हूँ। अब मैं वहाँ की वास्तविक स्थिति जानने का यत्न करूँगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार महामात्य चार प्रहर तक अपने साम्राज्य की विभिन्न प्रकार से देख-रेख कर चतुर्थ प्रहर के समय अपने घर वापस लौटे।

: ५ :

महामात्य के घर की बैठक में उस समय महामात्य का बड़ा पुत्र भृगु, उसकी पत्नी रोहिणी तथा रोहिणी के पिता पण्डित विभूतिचरण बैठे हुए थे। महामात्य ने पण्डित विभूतिचरण को बैठे देख अभिवादन किया और पूछा, "कहिए, किस प्रकार कष्ट किया ?"

"प्रातःकाल महाराज ने बुलाया था। तब उन्होंने मुझे कोई कार्य सौंपा। उस कार्य के लिए आपके सुपुत्र से सहायता की अपेक्षा से यहाँ आया था तो रोहिणी कुछ बात करने लगी, बस उसे सुनने के लिए बैठ गया हूँ।"

तब तक महामात्य खड़ा ही था। उसने कहा, "यदि कोई रहस्य की बात हो तो मैं इस समय जाऊँ और जब आपकी बात समाप्त हो जाय तो मुझे सूचना दे दीजियेगा। तब मैं आपसे बात करना चाहूँगा।"

"नहीं पिताजी।" रोहिणी बीच में ही बोल पड़ी। उसने अपने श्वसुर के लिए आसन बिछा दिया और फिर बोली, "न तो हम राजनीति पर चर्चा कर रहे हैं और न राज्य के महामात्य से गुप्त किसी प्रकार की कोई बात कर रहे हैं।"

यह सुन महामात्य बैठ गया।

रोहिणी ने कहा, "पिताजी ! वार्त्तालाप का विषय है एक ब्राह्मण कुमार। वह आज प्रातःकाल अल्पाहार करने के लिए अपने माता-पिता के साथ हमारे यहाँ आया था।"

"तुम मंगला के पण्डित शिवकुमार के पुत्र के विषय में बात कर रही हो ?"

अब विभूतिचरण ने स्वयं बात आरम्भ करते हुए कहा, "आज मध्याह्न के समय महाराज ने आदेश भेजा कि मंगला के पण्डित शिवकुमार के निबन्ध की प्रति उनके पास सायंकाल से पूर्व पहुँच जानी चाहिए। इसलिए मैंने तीन लिपिकों को इस कार्य पर नियुक्त कर एक प्रहर में ही उसकी प्रतिलिपि तैयार करवाली।

"प्रतिलिपि तैयार होने पर मैं स्वयं ही महाराज को वह प्रति देने के लिए उपस्थित हुआ था। उस समय महाराज ने एक अन्य आदेश दिया। वे कहने लगे कि पण्डित शिवकुमार पाटलिपुत्र आया है, और मुझे उससे मिलकर अश्वमेध यज्ञ के विषय में परामर्श करना चाहिए।

"उनकी बात सुनकर मैं पंथागार में गया था। संयोग की बात है कि पण्डित जी स्वयं नहीं मिले। उनकी धर्मपत्नी वहीं थीं। इसलिए पण्डितजी से मिलने के लिए अब किसी अन्य समय पर जाऊँगा। इस समय मैं महाराज का एक अन्य सन्देश लेकर भृगु जी से मिलने के लिए आया था। महाराज का कहना है कि अश्वमेध यज्ञ की पूर्ण व्यवस्था और उसके सम्पूर्ण विधि-विधान का सविस्तार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवरण भृगु जी तैयार करें ग्रौर यथाशीघ्र उसे महाराज के समक्ष प्रस्तुत किया जाय।

"भृगु जी कर्मकाण्ड के विद्वान् हैं इसी कारण इनको यह विवरण तैयार करने के लिए कहा जा रहा है। बस इसी निमित्त मैं यहाँ ग्राया था।

"भृगु जी से वार्त्तालाप समाप्त ही हुग्रा था कि रोहिणी ने पण्डित शिवकुमार के पुत्र के विषय में चर्चा ग्रारम्भ कर दी। बस तभी ग्रापका ग्रागमन हो गया।"

ग्रब पुनः रोहिणी ने बात ग्रारम्भ करते हुए कहा, "प्रातःकाल के ग्रल्पाहार के उपरान्त ग्रापके चले जाने पर मैंने माताजी से पूछा कि वह बालक उनको कहाँ का ग्रौर किसका परिचय दे रहा था?

"माताजी ने बताया कि उनका एक सहपाठी था। उस सहपाठी ने एक समय उनसे कुछ निवेदन किया था। उस निवेदन के विषय में हम दोनों के ग्रति-रिक्त ग्रन्य किसी को कुछ भी विदित नहीं है। उस बालक ने उस वार्त्तालाप की ग्रोर ही संकेत किया था। वह बालक पूर्व जन्म का योगी प्रतीत होता है।

"उस सहपाठी के विषय में पूछने पर माताजी ने बताया कि उसका नाम भगीरथ था ग्रौर वह उनके साथ विवाह की ग्रभिलाषा करने लगा था। एक दिन वह उनसे उनके माता-पिता के निवास पर मिलने के लिए ग्राया। उस समय माताजी की ग्रायु सत्रह वर्ष की था तथा भगीरथ उस समय बाईस वर्ष का था। माताजी उस समय झोंपड़े के बाहर खड़ी बाहर की दृश्यावलि पर मुग्ध-सी थीं कि सहसा उसने ग्राकर ग्रपने विवाह की बात कर दी।

"तब माताजी ने उसको कहा था कि यह बात वह ग्रपनी माताजी द्वारा उनकी माताजी से कहलवाये। उनका यह भी कहना था कि उनकी माताजी निस्सन्देह इसको स्वीकार कर लेंगी।

"उस समय प्रसन्नवदन भगीरथ घर लौट गया किन्तु ग्रगले दिन किसी के मुख से सुना गया कि सर्पदंश से भगीरथ का देहावसान हो गया है। उसके कुछ दिन बाद ही माताजी के ग्रामवासी पण्डित शेखरानन्द के पुत्र का सन्देश मिला। सन्देशवाहिका स्वयं पण्डित शेखरानन्दजी की धर्मपत्नी थीं ग्रौर उनको विवाह का वचन भी दे दिया गया था।

"इस घटना को लगभग पैंतीस वर्ष हो चुके हैं ग्रौर इसपर कभी किसी से चर्चा भी नहीं हुई। माताजी कहती हैं कि केवल एक बार 'ग्रापसे' इसकी चर्चा हुई थी। तबतक ग्राप यहाँ के महामात्य पद पर प्रतिष्ठित हो चुके थे ग्रौर महामात्य बनने पर ग्रापने माताजी से कहा था कि ग्रब तो उनको ग्रापसे विवाह का खेद नहीं होना चाहिए। माताजी ने ग्राश्चर्य प्रकट किया तो ग्रापने उनको स्मरण कराया कि वे प्रेम तो भगीरथ नामक युवक से करती थीं।

"तब माताजी ने कहा कि प्रेम तो वे ग्रब भी करती हैं किन्तु प्रेम ग्रौर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह दोनों में अन्तर होता है। प्रेम मानसिक स्थिति है और विवाह सामाजिक तथा पारिवारिक कृत्य। इन दोनों का पात्र किसी स्थिति में एक भी हो सकता है और किसी अन्य की स्थिति में पृथक्-पृथक्। माताजी की स्थिति में यह पृथक्-पृथक् है। उनको इस विवाह का कोई दुःख और खेद कभी नहीं था।

"माताजी का कहना था कि उस दिन के उपरान्त इस विषय पर फिर कभी किसी से किसी प्रकार की कोई चर्चा नहीं हुई। आपसे भी नहीं। इस कारण जब उस बालक ने भगीरथ से अन्तिम भेंट का स्मरण कराया तो माताजी के मुख पर लालिमा छा गयी थी। तब आपने स्थिति को समझा और बातों की दिशा बदल दी थी।"

हरिषेण ने पूछा, "यह तो ठीक है। किन्तु तुम उनकी यह कथा उनसे पूछकर ही सबके सामने प्रकट कर रही हो अथवा कि भावावेश में आकर यह सब हो रहा है?"

"उन्होंने जब यह कहा कि मन से प्रेम करना पृथक् बात है और विवाह के उत्तरदायित्व को निभाना उससे सर्वथा पृथक् है, तो मैं यह समझी हूँ कि यह किसी प्रकार भी लुकाव-छिपाव की बात नहीं है।"

"समझता तो मैं भी ऐसा ही हूँ। तदपि इस विषय पर मतभेद हो सकता है। मेरी तो उस बालक से यह जानने की इच्छा है कि वह बीच के तैंतीस वर्ष कहाँ रहा और क्या करता रहा है।"

"यदि उसने यह बता दिया तो निस्सन्देह यह चमत्कार की ही बात होगी।"

विभूतिचरण ने विषय-परिवर्तन कर कहा, "इस बालक का पिता स्वयं कम चमत्कारिक नहीं है। विद्वत्परिषद् में तो उसके निबन्ध की भाषा और उसके द्वारा प्रस्तुत शास्त्र के प्रमाणों पर ही सब मुग्ध थे। किन्तु आज प्रतिलिपि की तुलना करते हुए उस निबन्ध को दो बार पढ़ने का अवसर मिला तो मुझे उसमें इतिहास की एक नवीन विवेचना झलकने लगी।"

हरिषेण केवल मुस्करा दिया। विभूतिचरण ने ही आगे कहा, "इसने लगभग यह सिद्ध कर दिया है कि कौटिल्य शास्त्र का लिखने वाला न केवल नास्तिक ही था अपितु वह असुर प्रवृत्ति का भी था। तत्कालीन मूर्ख तान्त्रिकों की प्रतिक्रिया-स्वरूप ही उसकी ख्याति हुई थी। उसने तन्त्र को तो स्वीकार कर लिया किन्तु उस तन्त्र के आधार को अस्वीकार कर ऐसा प्रपंच रचा कि यदि उसपर कार्य किया गया तो शीघ्र ही समस्त भारत घोर नरक के गर्त में समा जायेगा।"

हरिषेण अभी भी मुस्करा रहा था। विभूतिचरण कहता जा रहा था, "उसने लिखा है कि भरत मुनि के भारत पर शासन से आरम्भ कर महापद्मनन्द के काल तक भारतवर्ष पर असुरों का आक्रमण नहीं हुआ था। असुरों का आक्रमण महापद्मनन्द के काल के उपरान्त ही आरम्भ हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वह मानता है कि इसका एक कारण है साम्राज्य पद्धति। इसका दूसरा कारण है नास्तिक्य का प्रसार। इन दोनों का ही चलन वह महापद्मनन्द के काल से मानता है।

"हम समझ रहे हैं कि साम्राज्यों की स्थापना विदेशीय आक्रमणों को रोकने में सबल होती है। परन्तु उसका कथन है कि साम्राज्य देश की दुर्बलता का लक्षण है।

"पण्डितजी! वह लेख मैं महाराज को दे तो आया हूँ परन्तु मैं नहीं समझता कि महाराज को पसन्द आयेगा। उसकी योजना तो गुप्त साम्राज्य की जड़ों में तेल देने वाली सिद्ध होगी।

"मैं यह भी समझता हूँ कि आपने उस युवक को यहाँ बुलाकर स्वयं उसका भी किसी प्रकार भला नहीं किया है। इससे तो उसके अनिष्टों का वीजारोपण हो गया है।"

यह बात हो रही थी कि महामात्य की पत्नी अपनी सेविका के हाथ पीने के लिए दुग्ध लेकर उपस्थित हो गयी। दुग्ध के साथ खाने के लिए मिष्ठान्न भी था।

उनके आते ही वार्त्तालाप का विषय बदल गया। उन्होंने आते ही कहा, "सर्वभाष का समाचार आया है कि उसकी शिक्षा में विघ्न पड़ रहा है।

"सर्वभाष की कर्मकाण्ड में तनिक भी रुचि नहीं है। उसके गुरु महाराज उसको कर्मकाण्ड में दक्ष बनाने के लिए कृतसंकल्प प्रतीत होते हैं। इस कारण उसकी रुचि उस शिक्षा के प्रति अब नहीं रही है।"

महामात्य ने पूछा, "कौन लाया है यह समाचार?"

"हरिद्वार से आने वाले एक यात्री द्वारा उसने पत्र भेजा है। सर्वभाष ने यह भी लिखा है कि मैं पत्रवाहक को पाँच स्वर्ण मुद्राएँ दे दूँ।"

"मुद्रायें दीं उसको?"

"जी हाँ, दे दी हैं और उसके भोजन की भी व्यवस्था कर दी है।"

"सर्वभाष तो अपने भाई से भी बढ़कर ज्ञानवान होता जा रहा है।"

"कर्मकाण्ड और ज्ञान, ये दोनों परस्पर विरोधी बातें हैं।"

हरिषेण मुस्कराता हुआ अपने बड़े लड़के का मुख देखने लगा। भृगु अपने माता-पिता में होने वाले वार्त्तालाप को सुन रहा था और अब अपने पिता को अपनी ओर देखते हुए पाकर उसने समझा कि वे इसमें उसकी सम्मति चाहते हैं। उसने कहा, "सर्वभाष को मेरे विचार से वापस बुला लेना चाहिए क्योंकि याज्ञवल्क्य आश्रम में उसकी दर्शनशास्त्र की शिक्षा चलना कठिन है।"

"ठीक है, मैं इस विषय में विचार करूँगा।"

: ६ :

रात्रि को भोजन के समय पण्डित हरिषेण ने अपनी पत्नी से कहा, "देवी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारी पुत्रवधू तो आज तुम्हारे विवाह-पूर्व की घटना का ढिंढोरा पीट रही थी। मैं समझता हूँ कि शीघ्र ही तुम चर्चा का विषय बन जाओगी।"

"देव ! मैंने उस प्रेम को कभी भी छिपाकर नहीं रखा। जिससे लोग प्रायः ऐसी बातों को छिपाने की आवश्यकता समझते हैं उसको तो मैंने अपना विवाह होते ही यह सारा रहस्य बता दिया था। जो इस बात का बतंगड़ बनाते हैं मैं उनको मूर्ख मानती हूँ।"

"किन्तु तुम्हारे प्रेमी ने तो अपने इस लोक में आने की घोषणा भी कर दी है ?"

"हाँ, यह विस्मयकारक तो है। शास्त्र की भी तो इसमें कुछ सम्मति होगी ?"

"इस विषय में शास्त्र का यह मत है कि मानव शरीर में स्मृति-यन्त्र के रूप में कार्य करने वाला मन है। वह मन मानव शरीर के साथ ही विनष्ट भी हो जाता है। नित्य और बार-बार जन्म लेने वाला जीवात्मा तो संस्कार का ही संचय कर सकता है। कभी स्मृति अति गहन होती है और बार-बार मनन का विषय बन जाती है तो जीवात्मा उसको अपने साथ अगले जन्म में ले भी जाता है।

"इसके अतिरिक्त एक मत यह भी है कि योगाभ्यास द्वारा मन और बुद्धि जीवात्मा को निरन्तर प्रभावित करती रहती हैं और तब अनेक जन्म की स्मृतियाँ स्पष्ट हो जाया करती हैं।

"जीवात्मा पर संस्कार तो प्रत्येक कर्म के बनते हैं और उन संस्कारों से प्रेरित होकर ही इन्द्रियाँ कार्य करती हैं। इससे वे जीवात्मा के कर्मों का शुभाशुभ फल देने वाली हो जाती हैं।"

"मैं चाहती हूँ कि इस बालक से जाना जाय कि उसको और क्या-क्या स्मरण है।"

"हाँ, मैं भी यह जानना चाहता हूँ कि इस बीच की अवधि में वह कहाँ और क्या करता रहा है ?"

अब भृगु ने बीच में बोलते हुए कहा, "इससे क्या लाभ होगा ?"

"मेरे अध्यात्म ज्ञान में वृद्धि होगी।"

"वह उसके मस्तिष्क का विभ्रम भी तो हो सकता है ?"

"हाँ, हो सकता है। फिर भी यह होगा तो विचित्र ही।"

रोहिणी कहने लगी, "मैंने पिताजी से कहा है कि उनके परिवार के लिए किसी अच्छे निवासगृह तथा उनकी जीविका के लिए कोई अच्छा प्रबन्ध करने की व्यवस्था कर दें।"

"वे क्या कहते हैं ?"

"उनका कहना था कि वे उनसे मिलकर विचार करेंगे। निवास के लिए तो वे अपने भवन का एक भाग भी देने के लिए उद्यत हैं। किन्तु मैंने इसके लिए मना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दिया है।"

"क्यों ?"

"क्योंकि ग्राप उनका समीप रहना उचित नहीं समझ रहे थे।"

"मैं समझता हूँ कि शिवकुमार की शीघ्र ही महाराज से भेंट होने वाली है; तब उसकी यह समस्या सुलझ जायेगी।"

रोहिणी के लिए ग्रागे कुछ कहने को नहीं था।

पण्डित हरिषेण स्वयं कहने लगा, "मेरी योजना तो यह थी कि पहले शिवकुमार की ख्याति स्थापित हो जाय फिर उसको महाराज किसी कार्य पर नियुक्त कर दें। किन्तु ग्रब यह सम्भव नहीं है क्योंकि महाराज को उसके पाटलिपुत्र में विद्यमान होने की सूचना मिल गई है। वे उससे मिलने के लिए ग्रातुर प्रतीत होते हैं।

"ऐसी स्थिति में ग्रब उसको मुझे उसके भाग्य के भरोसे छोड़ देना होगा।"

हरिषेण की पत्नी बोली, "सर्वभाष के विषय में शीघ्र ही निर्णय करिये ग्रौर उसकी सूचना उसको भिजवा दीजिये।"

"मैं कल ही उसको वापस बुलाने का यत्न करूँगा। पूर्वसूचना भेजने की ग्रब कोई ग्रावश्यकता नहीं है।"

गंगा को इस प्रवन्ध से सन्तोष हो गया।

भृगु ने विषयान्तर करते हुए बताया, "मैंने ग्रश्वमेध के व्यय का विवरण बना दिया है। लगभग बीस करोड़ स्वर्ण मुद्रा इसपर व्यय होंगे। इसलिए इससे कुछ ग्रधिक ही ग्राय की व्यवस्था का होना ग्रावश्यक है।"

"इसका ग्रभिप्राय तो यह हुग्रा कि तुम इसको व्यवसाय का रूप देना चाह रहे हो। यज्ञ में हानि-लाभ ग्रथवा ग्राय-व्यय कैसा ?"

"पिताजी! सभी राज्य-कार्य व्यवसाय का ही तो रूप होते हैं ?"

"परन्तु इसे तो यज्ञ कहते हैं।"

"यज्ञ जब राज्याधीन होगा तो व्यवसाय के रूप में ही होगा। देखिये, ग्रतुरालय, पशुशालायें, चिकित्सालय, शिक्षणालय प्रत्यक्षतया तो लोककल्याण के कार्य समझे जाते हैं, किन्तु वास्तव में ये राज्य की श्रेष्ठता ग्रौर लोकप्रियता के लिए हैं। यह भी तो एक प्रकार का व्यापार ही है। राज्य यदि छोटी-सी मक्खी भी मारता है तो उसमें राज्य का हिताहित देखा जाता है।

"राज्यहित का ग्रर्थ लोकहित नहीं होता। इन तथाकथित लोकहित के कार्यों की पृष्ठभूमि राज्य-सत्ता को सुदृढ़ कर राज्य ग्रथवा राज-परिवार की स्थिति को सुदृढ़ करना ही तो है।

"ग्रश्वमेध यज्ञ को भी मैं इसी श्रेणी का कार्य समझता हूँ। यह राज्य की सत्ता को सुदृढ़ करने के लिए होता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामात्य ने यह सब सुनकर फिर कुछ नहीं कहा। अश्वमेध यज्ञ के विषय में उसके जो विचार थे वह उनको किसी पर प्रकट नहीं करना चाहता था। वह चुप ही रहा।

महामात्य का वास्तविक कार्य रात के समय ही होता था। तब वह अपने घर की बैठक में बैठा हुआ स्थान-स्थान के सन्देश प्राप्त किया करता था। उन सब सन्देशों का उत्तर भी अधिकांशतया वह घर से ही दे दिया करता था। कुछेक ही सन्देश ऐसे होते थे जिनपर महाराज से परामर्श करना अथवा उनकी सम्मति लेना आवश्यक होता था। ऐसे सन्देशों को वह अगले दिन के लिए स्थगित कर दिया करता था।

रात के भोजन के उपरान्त पाँच कर्मचारी उसकी बैठक में आ जाया करते थे और सन्देशों का आदान-प्रदान उस समय होता था। महामात्य तो आधी रात बीतने पर उठकर सोने चला जाता था, जिससे कि प्रातःकाल सूर्योदय से दो मुहूर्त पूर्व वह उठ सके। उस समय वह रात्रि का कार्य समाप्त कर उन पाँच कर्मचारियों को विदा कर दिया करता था।

अपने निजी गुप्तचर विभाग से भी महामात्य रात के समय ही काम लिया करता था। उसके गुप्तचर विभाग का मुखिया सदाशिव मध्यरात्रि से कुछ ही पूर्व आया करता था। तब वह दिन का सारा विवरण महामात्य को दे जाया करता था।

आज मध्यरात्रि को जब सदाशिव आया तो महामात्य उसको लेकर किसी अन्य कक्ष में चला गया। बैठने पर सदाशिव ने सूचित किया, "आज रात मध्य-रात्रि से दो घड़ी पूर्व महाराज साधारण नागरिक के वेश में पद्मावती पंथागार के निकट घूमते हुए देखे गये हैं। उनके दो अंगरक्षक यद्यपि उनके साथ थे किन्तु वे भी साधारण नागरिक की वेशभूषा धारण किये हुए थे।"

महामात्य पर इस समाचार का कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ। उसने इसे एक प्रकार से अनसुना ही कर दिया।

सदाशिव ने दूसरा समाचार दिया, "अंग नरेश जब अपनी कन्या के साथ राजप्रासाद के समीप आये तो मेरे दो कर्मचारियों ने उनका पीछा किया। वे महाराजकुमार चन्द्रगुप्त विक्रमदेव के निवासस्थान को चले गये। वहाँ वे दो घड़ी-भर रहे और फिर द्वार बन्द होने से पूर्व ही वापस होकर अपने निवास-स्थान पर चले गये।"

महामात्य ने कहा, "अंग नरेश की गतिविधियों का पूर्ण वृत्तान्त लिखकर कल प्रातःकाल मेरे कार्यालय में पहुँचा देना।"

"और महाराज के भ्रमण के विषय में क्या आज्ञा है?"

"कुछ विशेष नहीं। हाँ, सावधानी का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे किसी प्रकार का अनिष्ट न हो।"

अगले दिन अल्पाहार के समय से पूर्व ही पण्डित शिवकुमार महामात्य से मिलने के लिए उनके निवासस्थान पर उपस्थित हो गया। उस समय पण्डित हरिषेण अपने पूजागृह में था। शिवकुमार के आगमन की सूचना मिलने पर उसने उसको भी वहीं बुलवा लिया।

शिवकुमार ने पहुँचकर प्रणाम किया तो हरिषेण ने पूछा, "कहिये, कैसे आना हुआ ?"

शिवकुमार ने अपनी जेब से एक सुलेख में लिखा हुआ पत्र निकालकर कहा, "मैं यह जानना चाहता हूँ कि इस पत्र के विषय में मैं क्या समझूँ ?"

महामात्य ने पत्र देखा। उसमें लिखा था कि कल प्रातःकाल आधा प्रहर व्यतीत होने पर पण्डित शिवकुमार को महाराज से मिलने के लिए जाना चाहिए। राजप्रासाद में प्रवेश के लिए वह ही पर्याप्त है, ऐसा उसमें संकेत था।

"कौन दे गया है इसे ?"

"एक सामान्य-सा नागरिक पंथागार में आया था। मैं उस समय वहाँ पर नहीं था। तब मैं पण्डित विभूतिचरण जी के निवास पर गया हुआ था। पत्नी ने जब बताया कि मैं वहाँ गया हूँ तो उस व्यक्ति ने उससे मसिपत्र लिया तथा वहीं पर यह पत्र लिखकर दे दिया।"

उस पत्र पर किसी के हस्ताक्षर नहीं थे। शिवकुमार ने पूछा, "इस प्रकार के आदेश का पालन करने का मेरा अभ्यास नहीं है। मैं यहाँ नया प्राणी हूँ, इस लिए आपकी सम्मति जानने के लिए मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।"

महामात्य बोले, "इस पर लिखा हुआ है कि इस पत्र को दिखाने से ही राजप्रासाद में प्रवेश मिल जायेगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि इस पत्र के लिखने वाले के इस प्रकार के लिखे गये पत्रों के आदेश का पालन हुआ करता है। निश्चय ही वह कोई बड़ा व्यक्ति होगा जो इस प्रकार साधिकार लिखकर दे सकता है। इस कारण मेरी सम्मति यही है कि तुम इसकी वास्तविकता की परीक्षा करो। यदि यह किसी प्रकार का छल-छद्म हुआ तो द्वार पर जाने पर इसका ज्ञान हो जायेगा।"

शिवकुमार महामात्य का आशय समझ गया। उसने उठते हुए पण्डित को नमस्कार किया और वहाँ से चलकर सीधा राजप्रासाद के द्वार पर जा पहुँचा। शिवकुमार ने यह अनुभव किया कि पत्र को देखकर तथा उससे बात करते समय महामात्य के मुख पर मुस्कान थी। इसका अभिप्राय यह हुआ कि महामात्य लेख के आधार पर उस पत्र-लेखक को जानता है।

पहचानने को तो उसके पुत्र वृहस्पति ने भी उसको पहचान लिया था। रात्रि के समय ही जब उसकी पत्नी ने उसको पत्र दिया तो वृहस्पति ने कह दिया था,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं इस पत्र लिखने वाले को जानता हूँ।"

"कौन है वह ?"

"वह यहाँ के महाराज हैं। नाम मैं भूल गया हूँ। हाँ, वह कहाते महाराजाधिराज ही थे।"

हरिषेण की मुस्कराहट ने वृहस्पति के कथन का समर्थन ही किया था।

शिव राजप्रासाद के द्वार पर पहुँचा तो सुभट्ट ने पूछा, "पण्डितजी! आपको किससे मिलना है ?"

"मुझे इनसे मिलना है।" शिव ने वह पत्र उसको दिखा दिया।

सुभट्ट ने पत्र पढ़ा तो बड़ी नम्रता से बोला, "मेरे साथ चलिये।"

राजाप्रासाद की भूल-भुलैया जैसी वीथियों में से लें जाकर सुभट्ट ने एक द्वार पर खड़े प्रतिहारी से कुछ कहा और प्रतिहारी तुरन्त भीतर सूचना देने चल दिया। प्रतिहारी उलटे पाँव लौटा और शिवकुमार से बोला, "आइये पण्डितजी।"

शिवकुमार उसके साथ भीतर चला गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि एक प्रौढ़ावस्था का व्यक्ति वड़े राजसी ठाठ-बाट में उच्चासन पर विराजमान है।

शिवकुमार ने पहुँचते ही कहा, "स्वस्ति महाराज!"

महाराज ने हाथ जोड़े और कहा, "पण्डितजी! पधारिये।"

शिवकुमार निर्धारित स्थान पर बैठ गया तो महाराज ने पूछा, "पंथागार में किसी प्रकार का कोई कष्ट तो नहीं ?"

"नहीं महाराज! किसी प्रकार का कष्ट नहीं। वहाँ सब प्रकार की सुविधा उपलब्ध है।"

"कल दिन भर आप कहाँ रहे ? बहुत ढूँढ़ने पर भी आप मिले नहीं।"

शिवकुमार ने स्पष्ट कहा, "मैं इस नगर में सर्वथा नवीन व्यक्ति हूँ। मेरा विचार अब स्थायी रूप से यहाँ रहने का है। अपने स्थिर भविष्य के लिए ही इधर-उधर हाथ-पैर चला रहा था।"

"कहाँ-कहाँ हाथ-पैर चलाये और क्या-क्या उपलब्ध हुआ ?"

"कल मैं इस नगर में सात-आठ श्रेष्ठियों से मिला हूँ और विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष पण्डित विभूतिचरण से भी भेंट की है।"

"क्या निश्चय करने गये थे और क्या निश्चय कर पाये हैं ?"

"सेठ घनश्याम वाटक महोदय ने तो जबतक मैं चाहूँ, तबतक के रहने के लिए अपना भवन देने का वचन दिया है। मैंने भवन देख लिया है। उस भवन में मैं वेदांग की पाठशाला चलाने का विचार कर रहा हूँ।

"भवन के भूमि तल पर पाठशाला होगी और ऊपर के तल पर मेरा निवास होगा।"

"हाँ, और ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इस विषय में पण्डित विभूतिचरणजी से चर्चा की थी। उन्होंने सेठ घन-श्याम वाटक की प्रशंसा ही की है।"

"किन्तु हमने आपकी सहायता के लिये किसी अन्य श्रेष्ठि का प्रबन्ध किया है।"

"महाराज! आज्ञा कीजिये। कौन हैं वे श्रेष्ठि, मैं उनसे भी मिल लूंगा।"

"इस नगर में समुद्रगुप्त नाम का एक राजा रहता है, नाम कदाचित् आपने भी सुना होगा।"

"परन्तु महाराज! ब्राह्मण होते हुए मैं राजा की सेवा में तो रह नहीं सकता। सेवा-कार्य स्वीकार करने पर मेरा ब्राह्मणत्व ही नष्ट हो जायेगा।"

"हमारे यहाँ तो अनेक ब्राह्मण कार्यरत हैं। यहाँ तक कि हमारे महामात्य स्वयं ब्राह्मण हैं।"

"हाँ, महाराज मुझे विदित है। उनसे मिला भी हूँ। सज्जन प्रकृति के मानव हैं।"

"तो क्या आप मानव नहीं हैं?"

"महाराज! मानवों की श्रेणी में तो निकृष्ट हिंस्र प्राणी से प्रारम्भ कर इन्द्रादि देवता तक हो चुके हैं। महामात्यजी से मेरा बहुत ही अल्पकालिक परिचय है। इस कारण मैं यह नहीं कह सकता कि वे किस स्तर के मानव हैं। परन्तु महाराज! मैं अपने विषय में जानता हूँ। मैं उस स्तर का व्यक्ति हूँ जो सेवा-कार्य को स्वीकार नहीं कर सकता।"

"परन्तु हमारा अभिप्राय भी आपको सेवक बनाकर आपकी सहायता करने का नहीं है।"

"तो फिर?"

"जिस प्रकार कोई राजा किसी पुरोहित की सहायता करता है, हमारा उद्देश्य भी वही है।"

"सम्भवतया यजमान और पुरोहित के सम्बन्धों का ज्ञान तो महाराज को होगा ही?"

"हाँ, थोड़ा-बहुत तो था, अधिक हमने विद्याभूषण महामात्य पण्डित हरिषेण जी के ज्येष्ठ सुपुत्र मीमांसाचार्य पण्डित भृगुदेव से जानने का यत्न किया है। उन्होंने बताया है कि यजमान रूपी परिवार के रथ के दो चक्र होते हैं। एक चक्र तो यजमान स्वयं होता है और दूसरा चक्र होता है उसका पुरोहित। उस परिवार के संचालन में दोनों का समान रूपेण योगदान होता है।

"पण्डित भृगुदेव ने एक अन्य प्रकार से भी बात को स्पष्ट करने का यत्न किया है। उन्होंने बताया है कि यजमान के घर में दो प्रकार की अग्नियाँ जलती हैं। एक अग्नि का नाम है गार्हपत्य और दूसरी का नाम है आह्वनीय। आह्वनीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि को प्रज्वलित करने वाला पुरोहित होता है। दोनों अग्नियों के प्रज्वलित रहने से ही परिवार का कल्याण माना जाता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार रथ के दोनों चक्रों में परस्पर सहयोग और समन्वय बना रहने से रथ की गति होती है।"

"हाँ, महाराज! मेरा भी आशय कुछ इसी प्रकार का है। इस परिभाषा की कुछ विस्तृत व्याख्या करने का मेरा अभिप्राय था। वह यह कि किसी सामान्य गृहस्थ और किसी सम्राट् के परिवार रूपी रथ के मार्गों में कुछ अन्तर है। कर्म-काण्डी सामान्य परिवार के रथ का स्थिर और सुदृढ़ मार्ग निर्धारित होता है। वह आँख मूंदकर उस मार्ग पर यदि अपने रथ को ले जाना चाहे तो ले जा सकता है।

"किन्तु महाराज! किसी भूपति के पुरोहित का मार्ग अति विस्तृत होता है। यह आवश्यक नहीं कि उसका मार्ग स्थिर और सदृढ़ ही हो। उसके रथ को कभी-कभी ऊबड़-खाबड़ भूमि पर भी चलना पड़ सकता है। भूपति का कर्मक्षेत्र युद्ध-क्षेत्र की भाँति की भूमि होती है। इस प्रकार की भूमि पर अपने रथ को ले चलना केवल चक्रों का ही कार्य नहीं अपितु बहुत कुछ उसके सारथी पर भी निर्भर करता है।

"इस पृष्ठभूमि में पण्डित भृगुदेव की व्याख्या पूर्णतया ययार्थ नहीं है। महर्षि व्यास ने कहा है—

ब्रह्म वर्धयति क्षत्रं क्षत्रतो ब्रह्म वर्धते।
एवं राज्ञा विशेषेण पूज्या वै ब्राह्मणाः सदा ॥[1]

इसी कारण व्यासजी ने कहा है—

राज्ञा पुरोहितः कार्यो भवेद् विद्वान् बहुश्रुतः।
उभौ समीक्ष्य धर्मार्थावप्रमेयावनन्तरम् ॥"[2]

इतना कहकर शिवकुमार मौन हो गया। उसका विचार था कि उसने अपना भाव भली प्रकार राजा पर प्रकट कर दिया है। अब महाराज की प्रतिक्रिया जानने के लिए उनकी ओर देखता रहा।

महाराज समुद्रगुप्त ने ध्यान से पण्डित शिवकुमार की बातों को सुना था और वे आँख मूंदकर किसी गम्भीर विचार में खो से गये।

---

१. ब्राह्मण क्षत्रिय को बढ़ाता है और क्षत्रिय से ब्राह्मण की उन्नति होती है। अतः राजा को विशेष रूप से सदा ही ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए।
—म० भा०, शा० ७३-३२

२. इस कारण राजा को चाहिए कि धर्म और अर्थ की गति को अत्यन्त गहन समझते हुए अविलम्ब किसी ऐसे ब्राह्मण को पुरोहित बना ले, जो विद्वान् और बहुश्रुत हो।
—म० भा० १२, शा० ७३-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार लगभग दो पल का समय बीत गया। महाराज के नेत्र निमीलित ही थे और शिवकुमार भी निश्चल बैठा महाराज की प्रतिक्रिया जानने के लिए उत्सुक था। तदनन्तर महाराज ने आँखें खोलीं और प्रश्न किया, "आपको अब और अधिक कुछ नहीं कहना ?"

"हाँ महाराज ! इस यजमान पुरोहित रूपी रथ के विषय में केवल एक बात और कहनी रह गयी है। किन्तु उससे पूर्व मैं अपने पूर्वकथन की प्रतिक्रिया जानना चाहता था।"

"आप अपनी बात कह जाइये, हम उसके बाद ही अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करेंगे।"

"जो बात मैं कहना चाहता था वह यह कि साधारण रथ के चक्र एक धुरी से संचालित होते हैं। उसके स्थिर होने पर दोनों ही चक्र स्थिर हो जाया करते हैं। किन्तु यजमान-पुरोहित के रथ के चक्र का केन्द्र कोई धुरी नहीं होती। यदि रथ का एक चक्र स्थिर हो जाय तो दूसरे की गति चलायमान रहने पर वह स्थिर चक्र को भी आगे चलने के लिए विवश कर देता है। कभी-कभी यह भी होता है कि एक चक्र दूसरे चक्र को अनुपयोगी समझकर उसके स्थान पर किसी अन्य चक्र को भी स्थापित कर देता है।"

"कौन-सा चक्र बदलना पड़ता है ?"

"जो सर्वथा स्थिर हो जाय और यत्न करने पर भी न चल सके।

"किन्तु महाराज ! इसमें अधिकांश होता यही है कि पुरोहित बदल दिया जाता है। पुरोहित स्वयं यजमान को छोड़कर कम ही जाता सुना गया है।"

महाराज समुद्रगुप्त विचारलीन हो गये। वह समझ नहीं पा रहे थे कि यह युवा ब्राह्मण केवल अपनी विद्वत्ता के कारण ही यह सब व्याख्या कर रहा है अथवा उसको इसका कुछ अनुभव भी है। महाराज जब विचारलीन हो गये तो वार्त्तालाप पुनः बन्द हो गया। शिवकुमार समुद्रगुप्त के मुख पर आने-जाने वाले रंगों और उस पर होने वाले परिवर्तन को देखता रहा।

लगभग एक पल के चिन्तन के उपरान्त महाराज ने कहा, "पण्डित प्रवर ! आपका यह संक्षिप्त वर्णन अति गम्भीर अर्थ वाला है। इस कारण इसपर तुरन्त किसी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करना सम्भव नहीं है। हम यथासमय अपनी सम्मति आपको आपके निवास-स्थान पर ही भेज देंगे।

"अभी तो आप यह बताइये कि आपने जो निबन्ध यहाँ की विद्वत्परिषद् के समक्ष भेजा था, उसको तैयार करने में कितना समय लगा था ?"

"आपने उस निबन्ध को पढ़ा है ?"

"हाँ, एक बार नहीं, अपितु दो बार पढ़ा है। उसको पढ़ने के उपरान्त ही हमने आपसे मिलने की उत्कण्ठावश छद्मवेश में आपके पंथागार की यात्रा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। किन्तु आपके दर्शन नहीं हो पाये। आपकी धर्मपत्नी वहाँ विद्यमान थीं। हमने आपको पत्र लिखने की सामग्री माँगी तो आपकी पत्नी ने आपके थैले में से निकाल कर दे दी। और जब हम पत्र लिखकर चलने लगे तो वह बालक बोला, 'इस पर हस्ताक्षर तो करिये।'

"हमने कहा, 'किए तो हैं?'

"वह विस्मय में हमारा मुख देखने लगा। उस समय वह मुस्करा रहा था। हम पुनः किसी दिन उससे मिलेंगे।"

शिवकुमार ने बताना नहीं चाहा कि वृहस्पति ने उनको पहचान लिया था। विषय-परिवर्तन कर शिवकुमार ने पूछा, "महाराज ! उस निबन्ध को पढ़कर आप पर क्या प्रतिक्रिया हुई है?"

"उस विषय में हम अपने पुरोहित को ही बताना चाहेंगे। पहले यह निश्चय हो जाय कि आप हमारे पुरोहित बन सकेंगे अथवा नहीं। उसके उपरान्त ही उस पर अपनी प्रतिक्रिया के विषय में हम आपको बतायेंगे।

"ठीक है, अब आप जा सकते हैं। हम फिर कभी किसी उचित समय पर आपसे भेंट करेंगे और आपके कथन पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने का यत्न करेंगे। आप हमारे सन्देश की प्रतीक्षा कीजिये। उसके उपरान्त यदि आप आवश्यकता समझें तो सेठ घनश्याम वाटक के प्रस्ताव पर विचार कीजिये।"

शिवकुमार ने महाराज को आशीर्वाद दिया और उस कक्ष से बाहर निकल आया। उसके बाहर निकलते ही एक प्रतिहारी ने उसका मार्गदर्शन किया और इस प्रकार वह राजप्रासाद के दक्षिण द्वार से उसको प्रासाद से बाहर कर गया।

: ७ :

शिवकुमार जब अपने निवास-स्थान पर पहुँचा तो पण्डित विभूतिचरण वहाँ उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। पण्डितजी को नमस्कार कर शिवकुमार उनके समीप ही बैठ गया।

"आप तो सुना है महामात्य से भेंट करने के लिए गये हुए हैं, मैं प्रतीक्षा करने बैठ गया।"

"जी हाँ, उनसे भेंट हुई थी।"

"मैं आपको विद्वत्परिषद् का सदस्य नियुक्त करना चाहता हूँ। इसके लिए आप आज सायंकाल परिषद् के भवन में पधारने की कृपा कीजिये। महामात्यजी भी उस परिषद् के एक सदस्य हैं।"

"आपकी इस कृपा के लिए मैं आपका आभारी हूँ। मैं अवश्य निर्धारित समय पर उपस्थित हो जाऊँगा।"

"उस भवन में बिना प्रवेश-पत्र के प्रविष्ट होने की अनुमति नहीं है। मैं आपके लिए प्रवेश-पत्र लेकर आया हूँ। कृपया इसे रख लीजिये और आते समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ लेने आइयेगा।"

पण्डित विभूतिचरण ने अपने उत्तरीय में से एक डिबिया निकालकर उसमें रखे एक स्वर्ण पत्र को, जिस पर एक विशेष चिह्न बना था, निकालकर पण्डित शिवकुमार को दे दिया। इसके ऊपर के भाग पर एक छिद्र में एक डोरी बँधी थी, जिसके आश्रय उसको उत्तरीय पर टाँगा जा सकता था। उसे देते हुए उन्होंने कहा, "इसे आप अपने उत्तरीय से लगाकर आएँगे तो द्वार पर आपको कोई रोकेगा नहीं।"

शिवकुमार ने मुद्रा को हाथ में लिया और उसका निरीक्षण-परीक्षण कर रहा था कि पण्डित विभूतिचरण ने एक बात और कह दी, "आज की परिषद् का विचारणीय विषय अश्वमेध यज्ञ है। कई सप्ताह पूर्व से इस विषय पर विचार-विमर्श चल रहा है। आज इस विषय पर सदस्यों की इच्छा है कि वे आपके विचार सुन सकें।"

"मैं आज्ञा का पालन करूँगा।"

इस प्रकार अपना कार्य समाप्त कर विभूतिचरण पण्डित शिवकुमार से विदा माँगकर वापस चला गया। शिवकुमार ने वह मुद्रा रखने के लिए अपनी पत्नी को पकड़ा दी। शिवकुमार जब घर में प्रविष्ट हुआ था तो उसने देखा था कि वृहस्पति अपने अतिथि से वार्तालाप कर रहा है। अब उसने अपने पुत्र से पूछा, "उनसे क्या बात कर रहे थे?"

"मैं उनको बता रहा था कि मैं उनके गुरुजी से मिला हूँ।

"इस पर उन्होंने पूछा कि मैं उनसे कब मिला हूँ, क्योंकि उनका देहान्त हुए तो दस वर्ष बीत गये हैं। तब मैंने उनसे कहा कि मैं उनसे उनके जीवनकाल में ही मिला था। उन्होंने मेरी आयु के विषय में पूछा। मैंने इस विषय में माताजी से पूछा। माताजी ने बता दिया कि मेरी आयु इस समय चार वर्ष और चार मास है। यह सुनकर पण्डितजी को हँसी आ गयी। उसके साथ ही मेरी खिल्ली भी उड़ाने लगे। पण्डितजी शायद नहीं जानते कि मैं उनके कान मरोड़ा करता था।"

"वृहस्पति बेटा! एक काम करो।"

"क्या पिताजी!"

"तुम अपने मन की बात किसी को मत बताया करो। ऐसी बातें केवल मुझे और अपनी माताजी को ही बताया करो। अन्यथा पण्डितजी की ही भाँति अन्य जन भी तुम्हारी खिल्ली उड़ाने लगेंगे।"

"पिताजी! यह स्थान तो मेरा भली-भाँति देखा-भाला है। मैं कभी यहाँ रहा हूँ। क्योंकि इस स्थान का कोना-कोना मुझे स्मरण है। और जो-जो लोग मुझे यहाँ दिखाई दिये, उनके विषय में भी ऐसा लगता है कि जैसे कल ही तो मैं उनसे मिला था।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवकुमार ने तब अपनी पत्नी से कहा, "देवि ! अब इसको कुछ पढ़ाना भी आरम्भ कर दो, जिससे कि इसकी बुद्धि जागृत हो सके।"

"मैंने आरम्भ किया था। इसने दो दिन में ही बाल बोध समाप्त कर लिया है। अब यह पढ़ने के लिए अगली पुस्तक माँग रहा है।"

"वह मैं आज ही लाकर दे दूंगा।"

चन्द्रमुखी ने पूछा, "कल वह पत्र देने वाला कौन था ?"

"महाराज स्वयं।"

"तब तो मैंने ठीक ही पहचाना था।" वृहस्पति बोल पड़ा।

"हाँ, पहचाना तो तुमने ठीक ही था किन्तु वे तुमसे बहुत रुष्ट प्रतीत होते थे।"

"क्यों ?"

"क्योंकि तुमने उनसे पत्र के नीचे हस्ताक्षर करने के लिए जो कहा था।"

"क्या किसी को उसकी भूल बतानी ठीक नहीं ?"

"तुम्हें स्मरण है महाराज ने क्या कहा था ?"

"क्या कहा था ?"

"यही कि हस्ताक्षर तो किये हैं।"

"हाँ कहा तो यही था किन्तु हस्ताक्षर किए नहीं थे।"

"नहीं बेटा ! हस्ताक्षर किये थे। उनको देखकर ही तो राजप्रासाद के प्रतिहारी मुझे सीधे उनके पास ले गये थे, अन्यथा कैसे ले जाते ?"

यह वृहस्पति की बुद्धि से परे की बात थी। इस कारण उसने कोई उत्तर नहीं दिया और वह अपने पिता के मुख की ओर देखने लगा। शिवकुमार बोला, "देखो बेटा ! वह जब यहाँ आये थे तो साधारण वेश में थे, राजाओं के वेश में नहीं। इसका अभिप्राय यह था कि वह नहीं चाहते थे कि कोई उनको पहचाने। इस कारण तुमने उनको पहचान कर उचित नहीं किया।'

"परन्तु मैंने उनको तो बताया नहीं था कि मैंने उनको पहचान लिया है।"

शिवकुमार वृहस्पति की बातों से सन्तुष्ट था। वह समझ रहा था कि चार वर्ष का बालक होने पर भी वह युक्तिपूर्ण बात ही कर रहा है।

"पिताजी !" इतना कहते ही वृहस्पति चुप हो गया। इससे यह आभास मिला कि वह कुछ कहना तो चाहता है किन्तु क्या कहना चाह रहा है यह वह भूल गया है।

"हाँ, हाँ। कहो, क्या कहना चाहते हो ?" पिता ने प्रोत्साहित किया।

"एक बार की बात है कि हम अपने घर में बैठे थे। रात्रि का समय था। तब वर्षा होने लगी थी। घर के भीतर अन्धकार था। जब बिजली कौंधती थी तो क्षण भर के लिए भीतर की सारी वस्तुएँ चमक उठती थीं। मुझे यहाँ की वस्तुएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी उसी प्रकार जानी-पहचानी-सी लगती हैं जैसी बिजली कौंधने पर घर की वस्तुएँ दीखती हैं।"

शिवकुमार ने उसे समझाते हुए कहा, "तो ऐसा करो पहले रात्रि बीत जाने दो। जब दिन का प्रकाश हो जायेगा तो जिस प्रकार घर की सब वस्तुएँ स्पष्ट दीखती हैं उसी प्रकार तुम यहाँ की वस्तुओं को समझने और पहचानने लग जाओगे।"

"परन्तु पिताजी! बिजली तो मेरे मन में कौंधती है?"

"मैं भी तो दिन का प्रकाश तुम्हारे मन में होने की बात कर रहा हूँ।"

"यह कैसे और कब होगा?"

"तुम नित्य प्रातः उठकर मेरे साथ पूजा-पाठ किया करो। उसके माध्यम से तुम्हारा मन प्रकाशित होने लगेगा।"

निर्धारित समय पर पण्डित शिवकुमार पाटलिपुत्र की विद्वत्परिषद् के भवन में जा पहुँचा। उसके उस भवन में प्रविष्ट होते ही विभूतिचरण ने उसको देख लिया और वह उठकर शिवकुमार के समीप आया और बड़े आदर से उसको ले जाकर अपने समीप वाले आसन पर आसीन कर दिया। अब तक लगभग चालीस विद्वान् वहाँ उपस्थित हो चुके थे और शेष आ रहे थे।

शिवकुमार के बैठने पर पण्डित विभूतिचरण ने कहा, "मैंने घोषणा की थी कि 'अस्ताचल की ओर' निबन्ध के लेखक पण्डित शिवकुमार आज इस सभा में पधारने वाले हैं। पण्डितजी कल ही अपने गाँव से पधारे हैं और मैंने आज ही उनको आमन्त्रित कर लिया है। हमारी सदस्य संख्या डेढ़ सौ है। पचास के लगभग ऐसे विद्वान् भी यहाँ समय-समय पर उपस्थित होते रहते हैं जो सदस्य न होने पर भी परिषद् के कार्य में रुचि प्रकट करते हैं। इस प्रकार मेरा विचार है कि आज यह सभा-भवन पूर्णतया जनाकीर्ण हो जायेगा।"

शिवकुमार को राजधानी में आये दो दिन हो गये थे। अपने दो दिन के कार्य की प्रगति से वह सन्तुष्ट था। इन दो दिनों में वह इस विशाल साम्राज्य के सम्राट् समुद्रगुप्त से आरम्भ कर सेठ घनश्याम वाटक तक और राज्य के महामन्त्री से लेकर विद्वत्परिषद् के प्रख्यात विद्वानों से परिचय प्राप्त कर चुका था। आज की विद्वत्सभा में महामात्य हरिषेण और अनेक श्रेष्ठिजन भी पधारे हुए थे।

वेद-विहित सरस्वती वन्दना से सभा की कार्यवाही आरम्भ हुई। दो युवकों ने इस प्रकार सरस्वती का वन्दन आरम्भ किया—

इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गिरीणां तविषेभिः ऊर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ।।[1]

इस प्रकार वेदमन्त्रों द्वारा सरस्वती का पूजन हो सभ्य गण बैठे तो सभा के अध्यक्ष पण्डित विभूतिचरण ने उठकर पण्डित शिवकुमार का परिचय कराया। कई मास पूर्व सभा में पढ़े गये उसके निबन्ध का सदस्यों को स्मरण कराया। सभी की ओर से पुष्पमालाओं से पण्डित शिवकुमार का अभिनन्दन किया गया और सभा के अध्यक्ष के नाते पण्डित विभूतिचरण ने उसको सभा का सदस्य नियुक्त किये जाने की घोषणा भी की।

इस प्रकार प्रशस्ति और तालियों की गड़गड़ाहट और माल्यार्पण के उपरान्त शिवकुमार का स्वागत सम्पन्न हुआ। तदनन्तर पण्डित विभूतिचरण ने विगत सप्ताह भर 'अश्वमेध' के सम्बन्ध में जो चर्चा परिषद् में होती रही उसका पूर्ण विवरण सुना दिया। अन्त में उसके निष्कर्ष में विभूतिचरण ने कहा, "परिषद् का यह मत है कि भारत की वर्तमान परिस्थिति में अश्वमेध यज्ञ करने की अपेक्षा शकों पर विजय प्राप्त कर इस भारतभूमि को म्लेच्छों से मुक्त किया जाय। और यदि यज्ञ करना ही अभीष्ट हो तो वह यज्ञ इस विजय के उपरान्त किया जाय।

"परिषद् में एक अल्पमत भी है। उसका कथन है कि जितनी भी विजय अब तक प्राप्त की गयी है उसकी स्मृति में एक महोत्सव आयोजित किया जाय।

"ये दोनों ही मत मैंने महाराजाधिराज के सम्मुख प्रस्तुत कर दिए हैं। महाराज स्वयं अश्वमेध यज्ञ करने के लिए उत्सुक प्रतीत होते हैं। मैंने उनको परामर्श दिया है कि इस स्थिति में वे काशी जी से परामर्श कर लें। महाराजाधिराज ने अपने महामात्य से परामर्श किया। उन्होंने परामर्श दिया है कि भारत के प्रख्यात विद्वान् न्यायभूषण पण्डित शिवकुमार पाटलिपुत्र में विद्यमान हैं, अतः पहले उनसे परामर्श कर लिया जाय। यदि उसके उपरान्त भी आवश्यकता अनुभव की गयी

---

१. सरस्वती वाणी अश्व की भाँति वेग से चलने वाली है। इसका गान करने वाला पुरुष शोभा को प्राप्त होता है। यह वाणी निरन्तर उन्नति को स्थिर रखने वाली, व्यवहार योग्य ज्ञान को देने वाली है। संयम से इसका प्रयोग करने वाले और स्वयं को इसके अर्पण करने वाले को यह अभ्युदय का वर देती है।

जिस प्रकार नदी कमल दल को बहाकर ले जाती है, जैसे विद्युत् पर्वतों के शिखरों को फोड़ देती है, उसी प्रकार वाणी तरंगों में, छन्दों में उठती हुई बड़े-बड़े विद्वानों को भय के योग्य कर देती है। इस वाणी सरस्वती का परमात्मा तक पहुँचाने की सामर्थ्य रखने वाली का भली-भाँति अभ्यास हो।

—ऋ० वे० ६-६१-१,२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो काशी जी से भी व्यवस्था की जा सकती है।

"ऐसी परिस्थिति में सब सदस्यों की ओर से मैं पण्डित शिवकुमारजी से निवेदन करना चाहता हूँ कि इस विवादास्पद विषय पर वे अपने विद्वत्तापूर्ण विचारों से परिषद् को अवगत कर कृतार्थ कर सकें तो उनकी कृपा होगी।"

सभी सदस्यों ने करतल ध्वनि से इस निवेदन का समर्थन कर दिया।

तब पण्डित शिवकुमार अपने स्थान पर से उठा और उसने बोलना आरम्भ किया—

"अपने देश के राजसी व्यवहार में अश्वमेध यज्ञ और राजसूय यज्ञ की प्रथा बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। किन्तु जिस काल की यह प्रथा है उस काल में आज से भिन्न प्रकार की शासन-पद्धति थी। इस विशाल भारत देश में छोटे-बड़े इस प्रकार सहस्रों की संख्या में राज्य शासन थे। वे सभी अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र रहते थे। उनका कार्य स्थानीय प्रजा का पालन तथा दस्युओं से संरक्षण था। राज्यान्तर्गत विषयों में सब राज्य स्वतन्त्र होते थे। सबको भारत का नागरिक माना जाता था। सभी नागरिक एक राज्य से दूसरे राज्य में जाकर बस सकते थे अथवा अपनी आजीविका अर्जित कर सकते थे।

"यदि किसी स्थान पर कोई ओजस्वी और धर्मात्मा होता था तो उसको वहाँ का राजा मान लिया जाता था। अन्यथा सभा तथा समितियों द्वारा ही राज्य का कार्य संचालित होता था।

"राजा अथवा सभा समितियाँ राज्य में नियन्त्रण और व्यवस्था के लिए सेना का विधान भी करते थे। तदपि ये राज्य दो बातों पर परस्पर निर्भर रहा करते थे। एक तो किसी विदेशीय आक्रमण के समय वे दूसरे राज्यों से सहायता की अपेक्षा करते थे। भारत के बाहर से आने वाले शत्रु का विरोध सम्मिलित रूप से किया जाता था।

"दूसरी निर्भरता थी संस्कृति की। सम्पूर्ण भारत में एकमेव भारतीय संस्कृति के संरक्षण और प्रचलन के लिए सभी यत्नशील रहते थे। तब समान संस्कृति के प्रतीक रूप में ही ये यज्ञ कराये जाते थे।"

"यज्ञ का अभिप्राय था परस्पर सहयोग, और सामूहिक हितों का चिन्तन। समान संस्कृति का अभिप्राय भी यही समझा जाता था कि जो यज्ञ के इस रूप को स्वीकार नहीं करता था उसको इस परिधि में लाने के लिए अश्वमेध अथवा राजसूय यज्ञ करने की प्रथा थी। अश्व अथवा राजा के दूत यज्ञ के लिए हवि संग्रह करने के लिए राज्यों की यात्रा करते थे।

"जो राज्य सर्वहिताय जीवनधारा रूपी इस यज्ञ संस्कृति को स्वीकार करते थे वे यज्ञ के लिए हवि दे दिया करते थे। और जो इसको स्वीकार नहीं करते थे वे हवि नहीं देते थे। जो हवि नहीं देते थे उनको सन्मार्ग पर लाने के लिए यज्ञकर्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा उनसे युद्ध करता था। इस प्रकार समस्त देश में पर-हित की भावना को जीवित एवं स्थायी रखने के लिए इस प्रकार का यत्न किया जाता था।

"पर-हित का विचार ही स्वाभाविक रूप में व्यक्ति के मूलाधिकारों की स्वतन्त्रता का प्रतीक माना जाता था। जो शासक प्रजा का उत्पीड़न करता था, वह यज्ञ रूप संस्कृति को अस्वीकार करता माना जाता था।

"इस प्रकार समय-समय पर किये जाने वाले इस प्रकार के यज्ञों से इसका परीक्षण होता रहता था। इससे यह विदित होता था कि भारत में अथवा भारत से बाहर भी इस प्रकार की पर-हित की भावना रखने वाले कौन-कौन से देश हैं। जो इस प्रकार की भावना से रहित हैं उनको इसकी परिधि में लाने का यत्न किया जाता था। जब यह हो जाता था, तब राजसूय अथवा अश्वमेध यज्ञ किया जाता था।

"जब सब राज्य यज्ञ की पद्धति के अन्तर्गत आ जाते थे तब इतने बड़े राज्य-समूह पर किसी विदेशीय राज्य को आक्रमण करने का साहस ही नहीं होता था।

"यज्ञ के इस लाभ के अतिरिक्त इस यज्ञ का एक अन्य लाभ भी था। वह यह कि यज्ञ के लिए एकत्रित की गई हवि और चक्रवर्ती राज्य अर्थात् यज्ञ करने वाला राजा अपनी सम्पत्ति यज्ञ में हवि के रूप में प्रदान कर सब कुछ ब्राह्मणों को दान में दे देता था। इस यज्ञ में समस्त भारतवर्ष के सभी राज्यों के ब्राह्मण आमन्त्रित किये जाते थे, और फिर वह एकत्रित हवि उन सब विद्वानों में परस्पर बाँट दी जाती थी। इस प्रकार देश की सम्पत्ति देश के विद्वानों में वितरित की जाती थी। वे विद्वान् देश के जनमानस का स्तर ऊँचा करने और उनका बौद्धिक विकास करने में संलग्न हो जाते थे।

"इस प्रकार राज्यों की बहुत-सी सम्पत्ति देश के विद्वानों को मिल जाया करती थी और वे देश में यज्ञरूपी विचारधारा अर्थात् परहिताय व्यवहार का विचार जीवित रखने में यत्नशील होते थे।

"इस प्रथा से जहाँ व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, स्थानीय स्वतन्त्रता और कम-से-कम बन्धनों से रहित जीवन की सृष्टि होती थी वहाँ देश में विचार ऐक्य होने से देश की अपूर्व सामर्थ्य का प्रदर्शन भी होता रहता था।

"ब्राह्मण, अभिप्राय यह कि विद्वान् लोग धन-धान्य सम्पन्न होकर स्वतन्त्रता-पूर्वक देश में धर्म और संस्कृति के प्रचार-प्रसार तथा उनकी एकता में सहायक सिद्ध होते थे।

"कई बार तो पूर्ण भारतवर्ष की भूमि ब्राह्मणों को मिल जाती थी। तब वे स्वयं को उस भूमि के प्रबन्ध में अशक्त पाकर पुनः राजाओं को अपनी धरोहर के रूप में दे दिया करते थे।

"राजा लोग ब्राह्मणों के नाम पर राज्य चलाते थे और ब्राह्मण लोग सांसारिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्ता से मुक्त होकर वेदाध्ययन और ज्ञान के प्रसार में लिप्त रहते थे।

"जब से इस देश में बौद्ध विचारधारा का व्यापक प्रचार हुआ है तबसे न तो ऐसे शासक ही रह गये हैं जो ब्राह्मणों के नाम पर राज्य शासन करें और न वैसे ब्राह्मण ही अब उपलब्ध हैं जो प्राचीन वैदिक परम्परा का ज्ञान रखकर उसका प्रचार-प्रसार करें।

"बौद्ध विचारधारा के उपरान्त शुंग परिवार ने कई बार अश्वमेध यज्ञ किये थे किन्तु वे अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हो सके। उसका कारण यह था कि कौटिल्य-शास्त्र के व्यापक प्रचार से राजा लोग राज्यों को ब्राह्मणों की धरोहर मानकर राज्य चलाने के लिए तैयार नहीं हुए। इसके अतिरिक्त बौद्ध प्रथाओं के कारण ब्राह्मण स्वयं को प्राप्त भूमि का प्रबन्ध स्वयं ही करने लगे। यही कारण है कि शुंग परिवार वालों के यज्ञ सफल नहीं हो सके।

"राजा और प्रजा की मनोवृत्ति अभी भी वही बनी हुई है जो मौर्य परिवार के काल में थी और ब्राह्मण वर्ग में निःस्वार्थ एवं निष्काम भावना, धर्मपालन का अभ्यास नहीं रहा।

"इस कारण समाज की वर्तमान अवस्था में उस काल की यज्ञ-प्रथा को चलाने से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होने की सम्भावना है।

"तदपि मैं समझता हूँ कि यज्ञों की परिपाटी तो प्रचलित रहनी ही चाहिए। अतः मेरे मत में यज्ञों का उद्देश्य तो वही रहना चाहिए जो प्राचीनकाल में था, परन्तु उसके प्रचलन में परिवर्तन होना चाहिए।

"यज्ञों का उद्देश्य होता था लोक-कल्याण और यज्ञों के प्रचलन से अभिप्राय है प्राचीन रीति-रिवाज। इन सबमें किस प्रकार का परिवर्तन हो यह भी विचारणीय है।

"यज्ञों का अर्थ है राजा के लिए प्रजा का हित और ब्राह्मण के लिए लोक ज्ञान में वृद्धि। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यज्ञों के रीति-रिवाज में ऐसे परिवर्तन करने की आवश्यकता है जिनसे वर्तमान समाज की अवस्था में अधिक-से-अधिक उद्देश्यों की सिद्धि हो सके।

"इस कारण मेरी सम्मति है कि यज्ञ तो होना ही चाहिए। यज्ञ का मूलोद्देश्य यह कि राज्य का सर्वस्व ब्राह्मणों के द्वारा लोक-कल्याण के लिए व्यय हो। प्राचीन काल की प्रथा कि राजा अपना सर्वस्व ब्राह्मणों को दान दे और ब्राह्मण पुनः उसे राजा को धरोहर के रूप में दे दें, यह आज चल पाना सम्भव नहीं है। न तो उस सम्पत्ति को प्राप्त करके ब्राह्मण ही राजा को वापस लौटाने की सिद्धता रख पायेंगे और न राजा ही राज्य को ब्राह्मणों की धरोहर समझकर उसको उनकी इच्छानुसार चलाने में रुचि प्रकट करेंगे।

"यज्ञ के इस व्यवहार को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिए नवीन प्रथाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और विधि-विधानों के पुनर्निर्माण की आवश्यकता है। इसके लिए मेरी सम्मति है कि राज्य भर के विद्वानों की एक समिति गठित की जाय। वह समिति अश्वमेध यज्ञ की पूर्ण प्रथाओं पर विचार करके उनमें समयोचित परिवर्तन का सुझाव प्रस्तुत कर सके।"

शिवकुमार के इस वक्तव्य से एक बात स्पष्ट रूप में परिलक्षित होने लगी कि विद्वत्परिषद् के दोनों पक्षों ने उसके वक्तव्य को अपनी बात की पुष्टि के अनुरूप पाया। विद्वानों का एक पक्ष यह चाहता था कि अश्वमेध यज्ञ किया जाय। यह पक्ष कर्मकाण्डी पण्डितों का था। ये विद्वान् कर्मकाण्ड के किसी भी विधि-विधान में परिवर्तन को अशास्त्रीय समझते थे।

एक अन्य पक्ष था जो समझता था कि यज्ञ से किसी प्रकार का भी लाभ सम्भव नहीं है। जितना धन यज्ञ पर व्यय किया जाने वाला है, उसके आधार पर युद्ध करके भारतभूमि को म्लेच्छों से मुक्त किया जाय।

पण्डित शिवकुमार ने इन दोनों पक्षों में समन्वय की बात की थी। उसने प्राचीन यज्ञों के विधि-विधान को सर्वथा अनुपयुक्त बताकर यज्ञों की प्रथा को रखते हुए उनके विधि-विधानों में परिवर्तन पर विचार केन्द्रित करने का यत्न किया था। दोनों पक्ष अपने मत की विजय होती समझकर प्रसन्न हो करतल ध्वनि से शिवकुमार का समर्थन करने लगे। इस प्रकार 'साधु-साधु' की गूंज सभा-भवन को गुंजायमान कर उठी।

इसके उपरान्त वक्ता पर प्रश्नों की बौछार होने लगी। किसी ने पूछा, "क्या आप प्राचीन संस्कृति में किसी प्रकार के परिवर्तन के पक्षपाती हैं?"

"नहीं श्रीमन्! मैं तो यज्ञ के उद्देश्य को संस्कृति ही मानता हूँ। इसी प्रकार यज्ञ के कर्म-काण्ड को मैं सभ्यता मानता हूँ। सभ्यता में परिवर्तन तो सदा और सर्वत्र ही होता आया है। मैं केवल यज्ञ के कर्म-काण्ड में परिवर्तन चाहता हूँ। उसके मूल उद्देश्य अर्थात् वैदिक संस्कृति में किसी प्रकार के परिवर्तन का इच्छुक नहीं हूँ।

"यज्ञ का अर्थ ही लोककल्याण है। भगवद्गीता में कहा है :

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥"[1]

एक अन्य विद्वान् ने प्रश्न किया, "क्या यज्ञ में असुर और म्लेच्छों से भी हवि प्राप्त करना उपयुक्त होगा?"

१. पूर्ण कार्य परमात्मा के अधीन हो। उस कार्य में हवि परमात्मा के कार्य में हवन कर दी जाय। पूर्ण कार्य परमात्मा के निमित्त किया जाय। ऐसा यज्ञ करने वाला मनुष्य परमात्मा का स्वरूप ही हो जाता है।—भ० गी० ४-२४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हवि प्राप्त करने में तो किसी प्रकार की हानि नहीं है। परन्तु उसका वितरण विद्वानों के परामर्श से होना चाहिए।"

"ग्रसुर ग्रौर म्लेच्छों ने यदि हवि दी तो फिर वे उसका वितरण भी ग्रपनी इच्छानुसार ही करवाना चाहेंगे?"

"इसे हवि देना नहीं मानना चाहिए। यह तो किसी कार्य के लिए शुल्क देने के समान होगा। क्योंकि जो शुल्क देता है उसका प्रयोग दाता की इच्छानुसार किया जाता है।"

एक ग्रन्य विद्वान् ने पूछा, "जो यज्ञ में हवि न दे उसके साथ क्या किया जाय?"

"इसका ग्रभिप्राय तो यह हुग्रा कि वह यज्ञ प्रथा ग्रर्थात् लोककल्याण की भावना को स्वीकार नहीं करता। ऐसी स्थिति में उसकी प्रजा के हित में उसके राज्य को पराजित करके उसको फिर यज्ञ प्रथा के ग्रनुकूल चलाया जाय। उस राज्य से ग्रहण की गयी हवि वहाँ के विद्वानों को वापस कर देनी चाहिए। यदि सम्भव हो तो चक्रवर्ती राजा स्वयं ग्रपने पास से कुछ उसमें मिलाकर वहाँ के विद्वानों को दान कर दे।"

एक ग्रन्य का प्रश्न था, "ग्राज तो समस्त भारतवर्ष में महाराजाधिराज समुद्रगुप्त का साम्राज्य है, इस कारण पूर्ण यज्ञ की हवि महाराजाधिराज को ही देनी पड़ जायेगी।"

"यह व्याख्या ग्रौर रीति-रिवाज का विषय है। इसके लिए ही मैंने विद्वत्समिति के निर्माण की सम्मति दी है। हवि की प्राप्ति ग्रौर हवि का वितरण ही उस समिति के निश्चयानुसार किया जाना चाहिए।"

ग्राज की सभा सुदीर्घकाल तक चली थी। ग्रधिक समय होता जान महामात्य पण्डित हरिषेण ग्रपने ग्रासन से उठे ग्रौर उन्होंने पण्डित शिवकुमार का धन्यवाद करते हुए कहा, "पण्डित शिवकुमार ने जिस स्पष्टता से ग्रश्वमेध यज्ञ के विधि-विधान ग्रौर इसके उद्देश्य का वर्णन किया है, उसकी प्रशंसा किए बिना कदाचित् कोई ही रह पाये।

"सर्वाधिक जटिल समस्या यह थी कि ग्राज की परिस्थिति में यज्ञ का क्या लाभ है? ग्रौर यदि कोई लाभ है तो उसको किस प्रकार प्राप्त किया जाय? इसका समाधान भी विद्वान् महोदय ने कर दिया है।

"ग्रतः मैं ग्राप सबकी ग्रोर से पण्डितजी का ग्राभार प्रकट करते हुए उनका धन्यवाद करता हूँ।"

सभा-भवन पुनः करतल ध्वनि से गूंज उठा ग्रौर इस प्रकार सभा विसर्जित हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ८ :

शिवकुमार स्वयं भी विद्वत्सभा में दिये अपने भाषण से सन्तुष्ट था। उसको सर्वाधिक सन्तोष इस बात का था कि श्रोता समाज ने उसके विचारों को सराहा था और उसकी प्रशंसा में करतल ध्वनि की थी।

सभा से घर पहुँच कर पण्डित शिवकुमार ने भोजन किया और विश्राम करने के लिए वह वस्त्र बदलने लगा ही था कि किसी ने उसका द्वार खटखटाया। शिवकुमार ने द्वार खोला, देखा कि महाराज का प्रतिहारी द्वार पर दस्तक दे रहा है। शिवकुमार ने प्रश्नमयी मुद्रा में उसकी ओर देखा तो प्रतिहार ने कहा, "महाराज ने आपको स्मरण किया है।"

शिवकुमार इस निमन्त्रण को अस्वीकार नहीं कर सकता था। तदपि उसको विस्मय हो रहा था कि दिन के आठों प्रहर इस राज्य का कार्य चलता रहता है, किसी समय महाराज विश्राम भी करते हैं अथवा नहीं ?

जिस समय शिवकुमार राज-प्रासाद के बैठकघर में प्रविष्ट हुआ उस समय रात्रि का द्वितीय प्रहर पूर्ण हो रहा था। और जब वह वहाँ से निकला था उस समय मध्य रात्रि से भी अधिक समय हो गया था।

जब वह राजप्रासाद से अपने निवास पर पहुँचा तो उस समय तक भी उसकी पत्नी उसकी प्रतीक्षा में बैठी हुई थी। वह सोई नहीं थी। उसने पहुँचते ही पूछा, "क्या काम था जो इस कुसमय में आपको बुलवाया गया ?"

प्रश्न सुनकर शिवकुमार हँस पड़ा। बोला, "कुछ नहीं, मेरे आज के भाषण के विषय में वार्त्तालाप हुआ था। जब वार्त्तालाप हो चुका तो मैंने महाराज से पूछा कि यह वार्त्तालाप तो कल प्रातःकाल भी हो सकता था।

"मेरा अभिप्राय समझकर महाराज मुस्करा दिये। फिर कहने लगे कि क्या मैं यह समझता हूँ कि कल प्रातःकाल तक के लिए मेरे पास अन्य कार्य हैं ही नहीं ? उनका कहना था किसी भी राजा के लिए दिन और रात्रि के समय में कोई अन्तर नहीं होता। राजा का प्रति क्षण राज्य के लिए अर्पित होता है।

"यह सुनकर मैं भी मुस्करा दिया। मैंने फिर अन्य प्रश्न नहीं किया। यद्यपि मैं समझ रहा था कि महाराज भूल कर रहे हैं तदपि मैंने उनसे कुछ कहा नहीं। क्योंकि अभी उन्हें किसी प्रकार की भी सम्मति देने का मेरा कोई अधिकार नहीं है। यह कार्य महामात्य अथवा उनके पुरोहित का है। मैं न तो महामात्य हूँ और न पुरोहित ही।

"अतः वार्त्तालाप समाप्त होने पर मैंने महाराज को नमस्कार किया और वहाँ से चला आया।"

रात को विलम्ब से सोने के कारण प्रातःकाल वह सूर्योदय से केवल एक घड़ी पूर्व ही जग पाया था। उसने देखा कि बृहस्पति उसके पलंग के समीप खड़ा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके जगाने पर ही शिवकुमार की नींद टूटी थी।

शिवकुमार की नींद खुली और उसने अपने पुत्र को अपने गाल पर गुदगुदी करते पाया तो उससे पूछने लगा, "वृहस्पति ! यह क्या कर रहे हो बेटा !"

"पिताजी प्रणाम।"

वृहस्पति की माँ ने उसको सिखाया हुआ था कि प्रातःकाल किसी प्रकार का वार्त्तालाप आरम्भ करने से पूर्व वह अपने पिता को प्रणाम करे।

शिवकुमार ने जब बाहर की ओर दृष्टि की तो उसको भास हुआ कि पर्याप्त समय बीत गया है। वह तुरन्त उठ बैठा। उसने वृहस्पति को अपने समीप बैठा कर पूछा, "तुम्हारी माताजी कहाँ हैं ?"

"वे नित्यकर्म में संलग्न हैं, अभी आती होंगी।"

"और तुम ?"

"मैं तो वहुत देर से उठा हुआ हूँ। परन्तु आगार से बाहर जाना सम्भव नहीं था क्योंकि द्वार की अर्गला बहुत ऊँची है, वहाँ तक मेरा हाथ नहीं पहुँचता। जब मैं बैठा-बैठा ऊब गया तो मैंने पहले माताजी को जगाया और अब आपको जगाने लगा।"

"और सूर्य ?"

"वह अभी सो रहा है। माताजी ने कहा था कि उसे नहीं जगाना चाहिए। वह समय पर स्वयं ही उठ जायेगा।"

समय-समय पर अपने पुत्र से इस प्रकार की बातें सुनकर शिवकुमार को प्रसन्नता होती थी। वह विचार करता था कि इसके पूर्व जन्म के संस्कार जागृत हो रहे हैं।

पिता ने अपने पुत्र से कहा, "तुम प्रात.काल उठकर अपना पाठ स्मरण किया करो।"

"पिताजी ! वह तो मैंने कल सायंकाल ही स्मरण कर लिया था। कहिये तो आपको सुनाऊँ ?"

"हाँ सुनाओ, उसके बाद तुमको आगे का पाठ पढ़ाया जायेगा।"

वृहस्पति कूदकर गया और अपनी पुस्तक उठा लाया। पिछले दिन ही उसकी माता ने उसको यह पुस्तक लाकर दी थी। यह भाषा की प्रथम पुस्तक थी। अपनी पुस्तक को उसने अपने पिता के हाथ में दे दिया और स्वयं उसके समीप बैठकर प्रथम पाठ सुनाने लगा।

सुनाते हुए उसने कहा, "पिताजी ! इसका पहला पाठ है बिल्ली और कुत्ता।"

उसने फिर सुनाना आरम्भ किया, "बिल्ली और कुत्ता परस्पर शत्रु हैं। इस कारण बिल्ली को भगाने के लिए कुत्ता पालना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कुत्ता आज्ञाकारी जन्तु है। तदपि वह बुद्धिशील नहीं होता। उसको कोई बात समझाने के लिए उसे आज्ञापालन का अभ्यास कराया जाता है।

"जब एक बात उसकी बुद्धि में बैठ जाती है तो फिर यह उसके अनुसार ही कार्य करने लगता है।"

इस प्रकार वृहस्पति ने आद्योपान्त अपनी पुस्तक का प्रथम पाठ अपने पिता को सुना दिया।

तबतक उसकी पत्नी शौचालय से आ गयी थी। शिवकुमार उठा और वह शौचालय के लिए चला गया। वृहस्पति बोला, "माँ! मैंने पिताजी को जगा दिया है।"

"हाँ, तुमने ठीक किया।"

"आज आप लोग विलम्ब से क्यों उठे हैं?"

"रात तुम्हारे पिताजी को किसी अत्यावश्यक कार्य से बाहर जाना पड़ा था। वे बहुत विलम्ब से लौटे। मैं उनकी प्रतीक्षा करती रही थी। इस कारण हम दोनों ही विलम्ब से सोये थे।"

शिवकुमार स्नानादि से निवृत्त हो पूजा पर बैठने ही लगा था कि उसके आगार के द्वार पर खटखटाहट हुई। चन्द्रमुखी तुरन्त उठी और द्वार पर चली गयी। द्वार खोलने पर देखा कि पण्डित विभूतिचरण खड़े हैं।

चन्द्रमुखी ने उनको हाथ जोड़ नमस्कार किया और बोली, "पण्डितजी पूजा पर बैठने वाले हैं।"

अपने आगार के कोने में ही शिवकुमार ने पूजा के लिए स्थान बना लिया था। वहाँ आसन बिछा रहता था। उसी आसन पर वह स्वाध्याय भी किया करता था। पण्डितजी को आया देख शिवकुमार उठकर उनके समीप जा प्रणाम कर बोला, "कहिए किस प्रकार आना हुआ?"

"पण्डितजी महाराज! पूजा के लिए तो आप सूर्योदय से पूर्व का समय नियत करिये। यहाँ राजधानी में विलम्ब से उठने वालों को पूजा का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। सूर्य का प्रकाश तो सांसारिक कार्य के लिए होता है।"

"पण्डितजी महाराज! यह तो तभी सम्भव है जब रात को समय पर सोने का अवसर प्राप्त हो। यदि सोने का अवसर ही मध्य रात्रि के उपरान्त मिले तो फिर कोई सूर्योदय से पूर्व किस प्रकार उठ सकता है?"

"क्यों मध्य रात्रि तक क्या करते रहे थे?"

"वही कुछ करता रहा जिसके विषय में बताने के लिए स्वतन्त्र नहीं हूँ।"

विभूतिचरण को यह सुनकर विस्मय हुआ। वह यही अनुमान लगा सका कि कदाचित् महामात्य ने किसी काम पर नियुक्त किया होगा। यही कारण है कि शिवकुमार उसको बता नहीं रहा है। विभूतिचरण ने कहा, "अच्छा ठीक है, मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी पूजा में बाधक नहीं बनूंगा। मैं तो यह कहने आया था कि जिस विद्वत्समिति का कल आपने उल्लेख किया था उसका एक सदस्य तो आप स्वयं बनने की स्वीकृति प्रदान कीजिये और दूसरे यह कि उसके अन्य सदस्यों के नाम भी आप ही सुझाइये तो उपयुक्त होगा।"

"किसकी ओर से इस समिति का गठन हो रहा है?"

"राज्य की ओर से। महाराज यह चाहते हैं कि राज्य की ओर से दो नाम होंगे और तीन नाम विद्वत्परिषद् की ओर से होंगे।

"विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष के नाते मुझे समिति के सदस्यों के नामांकन का अधिकार है। इस कारण उन तीन नामों में से मैं एक नाम आपका दे रहा हूँ।"

"अपने विषय में तो मैं महामात्य से विचार विनिमय कर ही स्वीकृति दे पाऊँगा।"

"क्यों, महामात्य से क्यों?"

पण्डित विभूतिचरण महामात्य से परामर्श की बात सुनकर गम्भीर हो गये थे। पुनः वह स्वयं ही बोले, "राज्य की ओर से नियुक्त किये जाने वालों में एक नाम तो निश्चित ही महामात्य का होगा।"

"मैं भी यह तो समझता हूँ कि महामात्य को मेरे इस समिति के सदस्य नियुक्त किए जाने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होगी। तदपि मैं उनके निमन्त्रण पर ही पाटलिपुत्र आया हूँ, इस कारण अपनी गतिविधि से मैं उनको अवगत रखना अपना कर्तव्य समझता हूँ।"

"ठीक है, सायंकाल तक अपनी स्वीकृति से सूचित कर दीजियेगा।"

शिवकुमार बोला, "विद्वत्परिषद् के अन्य किसी भी सदस्य को मैं जानता नहीं, इसलिए किसी अन्य के नाम का सुझाव देने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ।"

"इस विषय पर भी महामात्य से परामर्श कर लेना।"

इस प्रकार खड़े-खड़े ही विभूतिचरण से बात हो गयी। पण्डितजी विदा हुए तो शिवकुमार की हँसी निकल गयी। हँसते हुए उसने अपनी पत्नी को कहा, "अब मैं समझा हूँ कि ब्राह्मण का राजा अथवा राज्य का सेवा-कार्य करना शास्त्रों में क्यों वर्जित बताया गया है। वहाँ कहा है कि यदि ब्राह्मण किसी राज्य में सेवा का कार्य करे तो वह शूद्र समान हो जाता है। विद्वानों को उसे अपनी पंक्ति में नहीं बैठाना चाहिए। इन लोगों को पूजा-पाठ-उपासना तथा धारणा और ध्यान के लिए समय ही नहीं मिलता। यही कारण है कि सभी राज्य-सेवक शूद्र समान समझे जाते हैं।"

विभूतिचरण के जाते ही चन्द्रमुखी ने आगार का द्वार भीतर से बन्द कर दिया और अपने पति से कहने लगी, "आप अपनी पूजा में बैठिये, न जाने फिर किसी प्रकार का विघ्न न उपस्थित हो जाय।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवकुमार ने नित्य की भाँति पूजा की। वह पूजा से उठा ही था कि महामात्य हरिषेण आ उपस्थित हुए। महामात्य ने द्वार नहीं खटखटाया अपितु बोले, "शिव जी ! मैं हरिषेण आया हूँ।"

शिवकुमार स्वयं द्वार खोलने के लिए गया।

महामात्य को प्रणाम कर उसने उनको भीतर बुला लिया। कहने लगा, "किसी को भेजकर मुझे ही क्यों न बुलवा लिया महाराज !"

"मैं राज-प्रासाद जा रहा था। आपके लिए कोई संदेश था, इस कारण विचार किया कि आपको भी साथ ही ले चलूं। उधर भृगु की माताजी आपके ज्येष्ठ सुपुत्र को स्मरण कर रही थीं। मुझे आपको महाराज का सन्देश भी देना है, इसलिए वहाँ चलकर अल्पाहार भी करेंगे और ये दोनों बातें भी हो जायेंगी।

"बस अब आप लोग तुरन्त चल पड़िये। अल्पाहार के तुरन्त बाद मुझे अंग नरेश से मिलने के लिए जाना है।"

महामात्य के ऐसा कहने से तो फिर विचार करने का भी अवसर नहीं था। दोनों पुरुष आगार के बाहर हो गये और चन्द्रमुखी तथा बच्चे महामात्य के घर चलने के लिए तैयार होने लगे।

ज्यों ही महामात्य शिवकुमार और उसके परिवार को लेकर अपने रथ के समीप पहुँचे कि तभी वहाँ पर एक अन्य रथ आकर खड़ा हो गया। इस नये रथ से एक ओजस्वी कुमार उतरा और महामात्य के समीप आकर उनको प्रणाम करने लगा।

महामात्य ने पूछा, "सुनाओ राजकुमार ! कहाँ भ्रमण कर रहे हो ?"

"इस समय तो मैं पण्डित शिवकुमार से मिलने के लिए आया हूँ। कल के विद्वत्परिषद् में दिए उनके भाषण से तो राजधानी में विवाद उठ खड़ा हुआ है।"

महामात्य ने कहा, "शिवकुमार तो यह आपके समीप खड़े हैं। किन्तु इस समय तो ये सपरिवार मेरे घर पर अल्पाहार के लिए जा रहे हैं।"

समुद्रगुप्त का बड़ा पुत्र राम अपनी माता के साथ उज्जयनि में रहता था। किन्तु चन्द्रगुप्त महाराज के साथ राजधानी में ही रहता था। उसकी माता भी महाराज के साथ ही रहती थीं। चन्द्रगुप्त को महाराज ने एक अन्य नाम भी दिया था 'विक्रम'। यह नाम उन्होंने उस समय दिया था जब चन्द्रगुप्त के अधीन मगध की सेना वितस्ता नदी के तट पर शकों से युद्ध कर रही थी। इस युद्ध में चन्द्रगुप्त ने अपूर्व विक्रम का परिचय दिया था। तब सम्राट ने अपने पुत्र को 'विक्रम' नाम से सम्बोधित किया था।

महामात्य की बात सुन चन्द्रगुप्त ने शिवकुमार से पूछा, "आप मुझसे महामात्य जी के निवास पर मिलेंगे अथवा किसी अन्य समय, किसी अन्य स्थान पर ?"

शिवकुमार ने प्रश्नमयी मुद्रा में हरिषेण की ओर देखा। बात को समझकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने कहा, "यदि राजकुमार भी हमारे साथ अल्पाहार ग्रहण करें तो दोनों में वहीं भेंट भी हो जाएगी।"

इस प्रकार दोनों रथ महामात्य निवास की ओर चल दिये।

महामात्य ने अपना रथ शिवकुमार के परिवार के लिए दे दिया और स्वयं वे राजकुमार के रथ पर थे। उन्होंने राजकुमार से पूछा, "पण्डितजी से किस विषय पर बात करनी है?"

"पण्डितजी ने कहा है कि यज्ञ का भाव तो बना रहना चाहिए किन्तु उसका स्वरूप समय-समय पर बदलता रहना चाहिए। वह भूतकाल में भी बदता रहा है। वही अब भी होना चाहिए। मैं इसी विषय में जानने के लिए आया हूँ।"

"पण्डितजी ने तो यह भी कहा है कि वर्तमान काल में यज्ञ का क्या स्वरूप होना चाहिए। इसके लिए उन्होंने विद्वानों की एक समिति के गठन का सुझाव दिया है।"

"मैं समझता हूँ कि पण्डित शिवकुमारजी तो उस समिति में अवश्य ही नामांकित होंगे। इसलिए मैं उनको एक सुझाव देने के लिए आया हूँ।"

"राजकुमार! महाराज की यह आज्ञा है कि शिवकुमारजी तो राजपुरोहित होंगे। इस कारण उस समिति में वे राजा के प्रतिनिधि के रूप में होंगे। उस समय उस समिति में वह जो भी मत देंगे उसके विषय में महाराज से विचार-विनिमय करके ही देंगे।

"महाराज को विदित हुआ है कि विद्वत्परिषद् शिवकुमारजी को अपनी ओर से नामांकित करना चाह रही है। उधर महाराज चाहते हैं कि शिवकुमार उनके प्रतिनिधि हों।"

"यह तो और भी उपयुक्त होगा। मैं अपने विचार अपने परिवार के पुरोहित के माध्यम से ही प्रकट करूँगा। पहले मैं महाराज के सम्मुख अपने विचार व्यक्त करूँगा और तदनन्तर समिति के सम्मुख।"

"अभी-अभी पण्डित विभूतिचरण को यह बताया गया है कि उस समिति में राज्य के दो प्रतिनिधि होंगे। तब उन्होंने कहा था कि उस स्थिति में समिति के सदस्यों की संख्या सात हो जायेगी। पण्डित विभूतिचरण राज्य के प्रतिनिधियों और प्रजा के प्रतिनिधियों की संख्या में एक और तीन का अनुपात चाहते हैं। उनका तर्क यह है कि यज्ञ सांस्कृतिक और धार्मिक कार्य है। वह संस्कृति और धर्म का पोषक है। इस कारण ब्राह्मण वर्ग का प्रतिनिधित्व राजा के प्रतिनिधत्व के अनुपात में तिगुना होना चाहिए।"

यह सुनकर विक्रम विचारनिमग्न हो गया।

कुछ क्षण मौन रहकर विक्रम ने कहा, "मैं समझता हूँ कि पण्डित विभूति-चरण की सम्मति उचित है। यज्ञ के कार्य में विद्वत्समिति को बलवती होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही चाहिए।"

महामात्य को विदित था कि अंग नरेश अपनी कन्या के साथ पाटलिपुत्र मैं विराजमान हैं। उनको यह भी विदित था वह अपनी कन्या को साथ लेकर ही राजकुमार से मिलने के लिए गये थे। महामात्य उनके मध्य हुए वार्त्तालाप के विषय में जानने को उत्सुक थे तदपि उन्होंने इस प्रसंग को रथ में बैठे ही आरम्भ करना उचित नहीं समझा। इस सम्बन्ध में घर चलकर बात करने के अवसर की प्रतीक्षा करने में उनको किसी प्रकार की हानि नहीं दिखाई दी।

बात करते हुए दोनों रथ महामात्य के भवन के द्वार पर जा पहुँचे।

सब रथ पर से उतरे और महामात्य उन सबको अपने आगार में ले गये।

अल्पाहार तैयार था। महामात्य सबको सीधे भोजनालय में ही ले गये। पुरुष वर्ग एक ओर, स्त्री वर्ग दूसरी ओर बैठ गया। वृहस्पति और सूर्य अपनी माता के दोनों ओर बैठ गये।

अल्पाहार के समय कुछ विशेष बात नहीं हुई। अल्पाहार समाप्त होते ही महामात्य राजकुमार और शिवकुमार को लेकर अपने गृह के बैठक घर में जा पहुँचे। महिलाएँ भीतर के आगार में जा बैठीं।

बैठक घर में बैठते ही महामात्य ने शिवकुमार के सम्मुख वह पत्र रख दिया जो महाराज ने शिवकुमार को देने के लिए महामात्य को दिया था।

पत्र में लिखा था, "आदरणीय पण्डित शिवकुमारजी! हम चिरकाल से अपने राजपुरोहित की खोज में थे। हम इस पद पर किसी ऐसे पण्डित को नियुक्त करना चाहते थे जो हमारे तथा हमारे उत्तराधिकारी के मध्य कड़ी का कार्य कर सके। इस कारण हम चाहते थे कि पुरोहित हमसे आयु में कम, परन्तु ज्ञान और अनुभव में अधिक हो। इस कार्य के लिए हमें आप उपयुक्त प्रतीत हुए हैं।

"इस कारण हमारा आपसे आग्रह है कि आप राज-पुरोहित का पद स्वीकार कर हमारे राज-परिवार को अनुग्रहीत कीजिये।

"कल आपके साथ जो यजमान और पुरोहित सम्बन्धी वार्त्तालाप हुआ था, वह हमने भली प्रकार समझ लिया है और हम आपकी प्रत्येक बात को स्वीकार करते हैं।

"आप राज-परिवार के रथ के एक ऐसे चक्र की भाँति कार्य करेंगे जो रथ को आश्रय देते हुए भी उससे जुड़ा हुआ नहीं होगा।

"हमारा निवेदन है कि आप इस पद को स्वीकार कर लें। हम प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदय के समय से लेकर दो घड़ी पर्यन्त आपसे पारिवारिक समस्याओं पर विचार किया करेंगे। जिससे कि राज-परिवार का रथ सहज भाव से अपनी यात्रा में आरूढ़ रहे।

"आपकी स्वीकृति का सन्देश हमें पण्डित हरिषेणजी द्वारा ही मिल जाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए ।"

पत्र को आद्योपान्त पढ़ने के उपरान्त पण्डित शिवकुमार ने पण्डित हरिषेण से ही पूछा, "इस सम्बन्ध में आपकी क्या सम्मति है ?"

"इसमें विपरीत सम्मति के लिए तो कोई स्थान ही नहीं है। यदि आप ब्राह्मण हैं तो किसी के पथ-प्रदर्शन के कार्य को अस्वीकार कर ही नहीं सकते। विद्वान् ब्राह्मणों की इस कार्य के लिए ही तो इस लोक में सृष्टि हुई है।"

"मुझे आपके द्वारा इसका उत्तर लिखकर देना होगा अथवा कि मौखिक ही ?"

"उत्तर तो लिखकर ही देना होगा। आप मेरे अध्ययन कक्ष में बैठ जाइये और वहाँ शान्ति से विचार कर अपना उत्तर लिखकर मुझे दे दीजिए। वह मैं महाराज तक पहुँचा दूंगा।"

शिवकुमार उठा और महामात्य के अध्ययन कक्ष में चला गया।

तब महामात्य ने राजकुमार ने पूछा, "चन्द्र! रात अंग-नरेश आपसे मिलने के लिए क्यों आये थे, ऐसा क्या काम आ पड़ा था उनको ?"

चन्द्रगुप्त ने अंग-नरेश का नाम सुना तो वह चौंक गया। उत्तर देने की अपेक्षा उसने प्रश्नमयी मुद्रा में महामात्य की ओर देखा। पण्डित हरिषेण प्रश्न करने के उपरान्त मुस्करा रहा था।

हरिषेण ने उसकी दृष्टि पर जब कोई प्रतिक्रिया प्रकट नहीं की तो आखिर चन्द्रगुप्त ने ही पूछा, "लगता है राज-परिवार भी राज्य के गुप्तचर विभाग की देख-रेख से बाहर नहीं है ?"

"गुप्तचर विभाग तो राज्य का सेवक है, राजा का नहीं। राजा स्वयं भी राज्य का एक कर्मचारी ही होता है। राजकुमार को तो अभी वह सौभाग्य भी प्राप्त नहीं है। वह मात्र एक प्रतिष्ठित नागरिक ही है।

"राज्य का कर्तव्य है कि वह अपने राज्य के नागरिकों के कल्याण का चिन्तन करता रहे और जहाँ कहीं अकल्याण दिखाई देता हो, अथवा अकल्याण की सम्भावना भी हो तो उसकी चिकित्सा तुरन्त करे। और यह तबतक सम्भव नहीं जबतक कि सब पर दृष्टि न रखी जाय।

"राज्य तो सर्वज्ञ और सर्वव्यापक नहीं हो सकता। किन्तु वह इतना प्रयत्न अवश्य करता रहता है कि सबके विषय में अधिकाधिक जानकारी उसको प्राप्त होती रहे।

"गुप्तचर विभाग ही इसमें सहायक हो सकता है। तदपि यह यत्न किया जाता है कि सम्बन्धित व्यक्ति को किसी प्रकार का ज्ञान न हो और राज्य को उसका सम्यक् ज्ञान हो जाय। इस सम्बन्ध में परमात्मा के व्यवहार का अनुसरण करने का यत्न किया जाता है। परमात्मा सबके समीप, सबके भीतर और बाहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी रहता है, तो भी व्यक्ति को उसका ज्ञान नहीं रहता। ऐसा ही यत्न किया जाता है।

"राज्य का महामात्य होने के नाते यह दायित्व मेरा है। इस नाते राज्य के सर्वश्रेष्ठ अथवा सर्वप्रमुख व्यक्ति से लेकर निम्नतम स्तर के अनुचर के कल्याण का भार मुझे मिला हुआ है। मैं इस भार को निष्ठा से वहन करने का यत्न करता रहता हूँ।"

महामात्य की बात सुनकर राजकुमार के मुख पर किसी प्रकार के भाव दृष्टि-गोचर नहीं हुए। महामात्य के कथन से उसका समाधान हुआ अथवा नहीं, यह जान पाना कठिन था। राजकुमार बोला, "पण्डितजी! आपका तो यह कर्तव्य है कि आप राज्य भर की बात को जानें। किन्तु हम परस्पर जो वचन देते हैं उसका पालन करने का पूर्ण यत्न भी करते हैं। रात्रि की भेंट के अवसर पर हममें परस्पर यह वचन हुआ था कि उस भेंट का विवरण हम किसी को नहीं बतायेंगे।

"यदि आप परमात्मा का स्वरूप बनना चाहते हों तो बनिये। आप स्वयं ही जानने का यत्न कीजिये कि हममें परस्पर क्या वार्त्तालाप हुआ है।"

राजकुमार के इस कथन से स्पष्ट हो गया कि वह स्वयं पर की गयी गुप्त-चरी से रुष्ट है। तब महामात्य ने इस बात को हँसी में टालने का यत्न करते हुए कहा, "राजकुमार! आपको पूर्ण स्वतन्त्रता है कि आप किसी बात को गुप्त रखें। मैं आपसे पूछूंगा नहीं और यदि राज्य परमात्मा होने का दावा करता है तो उसे परमात्मा के समान अथवा लगभग उसके समान योग्यता अपने में उत्पन्न करने का यत्न करना चाहिए।

"अच्छा, यह तो बताओ कि उसकी दोनों कन्यायें कैसी हैं? मैं समझता हूँ कि यह तो गुप्त बात का विषय नहीं है।"

महामात्य का प्रश्न सुनकर राजकुमार को भी हँसी आ गई। उसने कहा, "यह तो बहुत ही सरल-सी बात है। वे राजकुमारियाँ अपने देश में राजपथ पर विचरती हैं तथा श्रेष्ठियों की भाँति अपनी आवश्यकता की वस्तुयें भी क्रय करती रहती हैं। आपका गुप्तचर विभाग उनके विषय में विस्तार से वर्णन कर सकता है। मैं आपके लिए गुप्तचर का कार्य नहीं करूँगा।"

हरिषेण समझ गया कि राजकुमार की रुष्टता सामान्य नहीं है। तब उसने कहा, "हमने इस विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त की है। क्योंकि यह बात आपसे सम्बन्ध रखती है, इसलिए राज्य का महामात्य आपको बता रहा है।"

यह सुन राजकुमार बड़ी उत्सुकता से महामात्य की ओर देखने लगा।

महामात्य ने कहा, "अंग-नरेश की दोनों ही कन्यायें सुन्दर हैं किन्तु उनमें से छोटी कन्या अधिक सुन्दर हैं। महाराज अंग उन कन्याओं को लेकर आपसे इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए भेंट करने के लिए आये थे कि आप उनमें से किसी एक को, और यदि चाहें तो दोनों को ही अपनी पत्नी अथवा पत्नियाँ बना सकते हैं।

"अंग नरेश ने आपसे बात करते हुए कुछ ऐसा भी कहा है कि यदि आप उससे सम्बन्ध बना लेंगे तो वह आपको राज्य पाने में सहायक होंगे।

"बोलो इतनी बात ठीक है अथवा नहीं? मैं इस विषय की व्याख्या नहीं चाहता। वह मुझे विदित है। यदि आप स्वीकार करें कि मेरी सूचना ठीक है तो फिर मैं आपसे राजनीति की एक बात करना चाहूँगा।

"किन्तु यदि आपने इस बात को स्वीकार नहीं किया तो जो बात मैं आगे करना चाहता हूँ फिर वह नहीं करूँगा। कारण यह कि यदि किसी को वट-वृक्ष की सुखद छाया भी न सुहाये तो फिर वह उठकर वहाँ से चला जाता है। तब वह छाया निरर्थक हो जाती है।"

तभी उस कक्ष में पण्डित शिवकुमार ने प्रवेश किया। उसने महाराज के नियुक्ति-पत्र का उत्तर महामात्य के हाथ में दे दिया। शिवकुमार ने कहा, "मैं इस नगर में आपको अपने पिता समान समझता हूँ, इस कारण आपसे आग्रह करता हूँ कि आप इस पत्र को पढ़ लीजिये और यदि इसमें कुछ अनुचित लिखा गया हो तो उस ओर संकेत कीजिये। मैं उस भूल को सुधार दूंगा।"

पण्डित हरिषेण ने पत्र पढ़ा और फिर उसको राजकुमार को देते हुए बोले, "इसका सम्बन्ध आपके परिवार से है, आप भी इसको पढ़ सकते हैं।"

राजकुमार चन्द्रगुप्त ने उस पत्र को उत्सुकता से लिया और पढ़कर लौटाते हुए कहा, "सुन्दर लिखा है। इसकी स्वीकृति तो महाराज ही देंगे और अपनी सम्मति भी मैं उनको दूंगा।

"आज तो मैं पंथागार में आपसे मिलने के लिए इस कारण आया था कि कल विद्वत्परिषद् में अश्वमेध यज्ञ के सम्बन्ध में जो बातें आपने कही थीं उनके विषय में कुछ जानने की इच्छा थी।"

"बोलिये, क्या जानना चाहते हैं आप? यदि आप चाहें तो उसकी विस्तृत व्याख्या भी मुझसे समझ सकते हैं। क्योंकि वह तो सभा में दिया गया वक्तव्यमात्र ही था।"

राजकुमार ने पूछा, "क्या कर्म आंशिक होने पर अथवा एक अंश में प्रथानुकूल और दूसरे अंश में प्रथा विलक्षण भी हो सकता है?"

"कर्म के दो पक्ष हैं। एक तो उसका बाहरी स्वरूप और दूसरा उसका भाव। भाव मुख्य होता है और स्वरूप गौण। तदपि स्वरूप का कुछ न कुछ अंश तो रखना ही पड़ता है जिससे कि उसकी पहचान रह सके। परन्तु भाव को तो पूर्णतया रखना होता है। कारण यह कि कर्म का स्वरूप उसका शरीर है और भाव उसकी आत्मा है। शरीर पूर्ण अथवा क्षत-विक्षत रहते हुए भी जब आत्माविहीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाता है तो वह मात्र शव रह जाता है। तब वह शरीर भी नहीं कहाता।

"यही बात यज्ञ-कर्मों की है। यज्ञ का नाम ग्रौर उसके कुछेक ग्रंग रहने ही चाहिए। ग्रन्यथा एक यज्ञ-कर्म तथा दूसरे यज्ञ-कर्म में विभ्रम हो जायेगा। परन्तु यदि यज्ञ की ग्रात्मा ग्रर्थात् उसका उद्देश्य ही नष्ट हो जाय तो फिर उस यज्ञ का करना ऐसा ही होगा जैसे शरीर शव हो जाने पर भस्म कर देने योग्य होता है।"

"इस यज्ञ का शरीर क्या है ग्रौर ग्रात्मा क्या है ?"

"यह बात तो मैंने सभा में ही स्पष्ट कर दी थी। यज्ञ की ग्रात्मा होती है लोक-कल्याण। ग्रश्वरूपी राज्य का लोककल्याण के लिए प्रयत्न ग्रश्वमेध कहलाता है।

"मैं यह समझता हूँ कि राजा ग्रपने राज्य के पूर्ण साधनों को देश के ब्राह्मण वर्ग ग्रर्थात् विद्वानों को ग्रर्पण कर दे, जिससे वे बिना किसी का सेवा-कार्य किये जीवन भर समाज की सेवा कर सकें। यह है ग्रश्वमेध का उद्देश्य।

"उसके बाद मैंने बताया था कि प्राचीन काल में विद्वानों द्वारा किस प्रकार यज्ञ का ग्राविष्कार किया गया था तथा उसका क्या स्वरूप था, उसका वर्णन भी मैंने किया था। यद्यपि ग्राज उसका वह स्वरूप नहीं रह गया है। परन्तु उसका नाम ग्रौर कुछ ग्रंशों में स्वरूप को रखते हुए उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है।

"कौन से स्वरूप का ग्रंश ग्रौर उसे किस रूप में रखा जाय, उसका विचार करने के लिये मैंने एक समिति के गठन का सुझाव दिया था। वह समिति बाहरी स्वरूप का निर्णय करेगी।"

"ग्राप इसमें क्या स्वरूप रखना चाहेंगे ?"

"यह ग्रब मैं यहाँ नहीं बताऊंगा। ग्रब जब मैंने महाराजाधिराज का राज-पुरोहित बनने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है तो ग्रब इस विषय में मैं वही कुछ कहना चाहूँगा जो राज-परिवार की सम्मति होगी।

"मैं राज-परिवार को राय दूंगा ग्रौर जिस रूप में वह राय स्वीकार होगी वही मेरी राय होगी।"

"यदि राज-परिवार ग्रापकी राय का विरोध करे तो ग्राप क्या करेंगे ?"

"राजकुमार! मैंने ग्रभी ग्रापको बताया है कि मैं ग्रपनी सम्मति राज-परिवार के समक्ष ही दूंगा। बाहरी रूप को मैं कुछ ग्रधिक महत्त्व नहीं देता। परन्तु यदि राज-परिवार ने यज्ञ के उद्देश्य में परिवर्तन करना चाहा तो मैं महाराज को सम्मति दूंगा कि वह यज्ञ न करें। तदपि यदि विकृत उद्देश्य से यज्ञ किया गया तो मैं पुरोहित-पद छोड़कर स्वतन्त्र हो जाऊँगा।"

"तब ग्राप क्या करेंगे ?"

"बालक-बालिकाग्रों की एक पाठशाला का संचालन करना मेरा लक्ष्य है।"

यह सुनकर तो राजकुमार को बड़ा विस्मय हुग्रा। वह मुख देखता रह गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमार ने ही फिर कहा, "इस नगर में तो पहले से ही एक सहस्र से अधिक पाठशालायें विद्यमान हैं । उनमें एक की वृद्धि से क्या होगा ?"

"किसी अन्य पाठशाला के साथ मेरी स्पर्द्धा नहीं होगी । बिना प्रतिस्पर्द्धा के यदि विद्यार्थी मिलेंगे तो मैं लोक-कल्याण की भावना से कार्य करूँगा । अन्यथा अपने गाँव लौट जाऊँगा ।

"मेरे गाँव में चालीस-पचास घर हैं । वहाँ एक ही पाठशाला थी, वह मेरी पाठशाला थी । मैं वहाँ जाकर उसको सम्हाल लूँगा ।"

"वहाँ आपकी क्या आय होती थी ?"

"मेरा निर्वाह हो जाता था ।"

"परन्तु यहाँ तो आपको पर्याप्त धन मिलने वाला है ?"

"वह राज-पुरोहित के नाते होगी और उसी नाते मैं उसको व्यय भी कर दूँगा । मेरी निजी आवश्यकतायें तो वही रहेंगी जो आज हैं ।"

राजकुमार यह सुनकर चुप हो गया ।

वार्त्तालाप समाप्त होता जान शिवकुमार ने पूछा, "अब मुझे आज्ञा है ?"

"कहाँ जायेंगे ?"

"पंथागार में जाऊँगा ।"

यह सुन राजकुमार उठ गया । हरिषेण भी उठा और शिवकुमार को लेकर भीतर के कक्ष में चला गया ।

: ६ :

अल्पाहार समाप्त होने पर जब पुरुष समुदाय बाहर आ गया तो गंगादेवी ने वृहस्पति का हाथ पकड़ा और उसको लेकर किसी अन्य कमरे में चली गयी । बाहर केवल चन्द्रमुखी और रोहिणी रह गयीं । वृहस्पति को जब गंगा भीतर ले गयी तो चन्द्रमुखी कुछ परेशानी-सी अनुभव करने लगी । किन्तु रोहिणी को उस-पर हँसी आ गयी । उसने पूछा, "आपके पुत्र ने अपनी पूर्व-परिचित कमलिनी के विषय में आप लोगों को कुछ और अधिक बताया है ?"

"नहीं, वह तो इस प्रकार की बातों को खेल समझता है । अल्पायु का बालक होने के नाते एक तितली को छोड़कर दूसरी को पकड़ने दौड़ने लगता है ।"

"तो किसी और को भी इसने कुछ कहा है ?"

"हाँ, आपके पिताजी को बता रहा था कि वह उनके गुरुजी को जानता है ।"

चन्द्रमुखी ने यह नहीं बताया कि वह रोहिणी के पिता के कान मरोड़ा करता था ।

रोहिणी बोली, "हाँ, पिताजी ने मुझे बताया था । उनका कहना था कि वह बालक विक्षिप्त मन वाला प्रतीत होता है ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"गाँव में भी सब उसे इसी प्रकार कहते हैं। किन्तु उसने वहाँ अपने से किसी बड़े व्यक्ति को कभी अपना पूर्व परिचित नहीं बताया है। वहाँ तो वह अधिकांश लोगों को यही कहा करता था कि 'तुम नहीं जानते परन्तु मैं जानता हूँ'।

"जब कोई पूछता कि वह क्या जानता है तो वह कह देता 'फिर बताऊँगा।' इस कारण सब उसको पागल कहते थे।"

"परन्तु माताजी की धारणा तो ऐसी नहीं है। उसने उन्हें अपने पूर्वजन्म की बातें बताई हैं।

"उस दिन उसने माताजी को कहा था कि उनका नाम 'कमलिनी' है। यह उनके बाल्यावस्था का नाम है जो उनके माता-पिता ने उनको दिया था। श्वसुराल में आकर उनका नाम गंगा रखा गया था।"

चन्द्रमुखी ने पूछा, "अच्छा, माताजी ही यह सब बता रही थीं?"

"हाँ, तभी तो आज वे उससे उस काल की अन्य बातें जानने के लिए पृथक् लेकर गयी हैं।"

"महामात्य को इस विषय में ज्ञात है?"

"हाँ, पिताजी को माताजी के बाल्यकाल का नाम ज्ञात है। वह यह भी जानते हैं कि माताजी के माता-पिता गाँव में एक झोंपड़े में रहा करते थे।"

चन्द्रमुखी को भय रहता था कि यह बालक किसी भी दिन किसी प्रकार का रहस्योद्घाटन कर उनको किसी संकट में डाल सकता है। उसे चिन्तित देख रोहिणी बोली, "हमारे घर में सबको यह विदित है कि बृहस्पति ने अपना पूर्व जन्म का नाम भगीरथ बताया है और भगीरथ बाल्यकाल का माताजी का परिचित है।"

"यह सुनकर महामात्य रुष्ट नहीं हुए?"

"नहीं, वे तो इस बात पर हँस दिया करते हैं।"

चन्द्रमुखी ने विषय को बदलते हुए पूछा, "आपका विवाह हुए कितना समय हो गया है?"

"लगभग दो वर्ष।"

"कोई सन्तान नहीं?"

"आशा है आगामी मार्गशीर्ष तक यह आकांक्षा पूर्ण हो जायेगी।"

"महामात्य के कितनी सन्तान हैं?"

"तीन। मेरे पति से जो छोटे हैं वे आजकल हरिद्वार में याज्ञवल्क्य आश्रम में पढ़ रहे हैं। वहाँ उनको कर्मकाण्ड पढ़ाया जा रहा है। परन्तु उन्होंने कर्मकाण्ड में अरुचि व्यक्त की है। पिताजी ने उनको वापस बुला लिया है। सबसे छोटी मेरी ननद है। उसका नाम है कालिन्दी। वह समीप ही आर्यनगर के गुरुकुल में अध्ययन कर रही है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कन्या की आयु क्या है ?"

रोहिणी के मुख पर मुस्कराहट खेल गई। कहने लगी, "आपके पुत्र के योग्य नहीं है। उसकी आयु इस समय पाँच वर्ष की है।"

"नहीं, मैं इस विचार से नहीं पूछ रही थी। मैं तो केवल आप लोगों के पूर्ण परिवार का परिचय जानने की दृष्टि से पूछ रही थी। महामात्य की हम पर असीम कृपा है।"

"हमारे पिताजी तो वृहस्पति के पिताजी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते रहे हैं।"

"यह तो उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा है, महापुरुष होने के कारण नहीं। महामात्य तो महापुरुष हैं। दोनों बातों में अन्तर है। विद्वान् तो स्वभाव का दुष्ट भी हो सकता है।

"विद्वान् होना बुद्धि का गुण है और महान् होना मन का।"

"परन्तु बहिन ! पिताजी तो वृहस्पति के पिता की बुद्धि की ही प्रशंसा कर रहे थे। इससे मैं उनको महान् ही कहती हूँ। बुद्धि और आत्मा की घनिष्टता है। बुद्धि यदि निर्मल हो तो आत्मा भटकती नहीं। तब मनुष्य सन्मार्ग पर चलता रहता है और यही महापुरुषों का मार्ग है।"

"यह तो वहिन जी अभी भविष्य के गर्भ में है। यह अल्पायु, जो पचास-साठ घरों वाले गाँव में ही व्यतीत हुई है, अभी परित्याग का समय नहीं आया है। यहाँ प्रलोभन बहुत हैं। यदि उनकी बुद्धि स्थिर रह पायी तो वे भी महापुरुष पद के योग्य मान लिये जायेंगे, फिर भी समय ही इसका निर्णय करेगा।"

दोनों महिलाओं में इस प्रकार परस्पर वार्त्तालाप चल रहा था कि तभी राज-कुमार को विदा कर महामात्य और शिवकुमार उधर आ पहुँचे। महामात्य ने पूछा, "तुम्हारी माताजी कहाँ हैं ?"

"दूसरे कक्ष में वे वृहस्पति से बातें कर रही हैं।"

हरिषेण ने क्षण-भर विचार किया और बोला, "तो ठीक है शिवकुमार जी! जब आप उचित समझें अपने पंथागार में चले जाइयेगा। मैं तो राज्य के सभा भवन को जा रहा हूँ। वहाँ महाराजाधिराज की आज अंग-नरेश से भेंट होने वाली है। उस भेंट के अवसर पर मेरा वहाँ उपस्थित रहना आवश्यक है।

"महाराज की ओर से आज किसी समय आपको उनका सन्देश मिल जायेगा और उसके साथ ही आपसे भेंट का समय भी आपको बता दिया जायेगा।

"अतः आप पंथागार में ही रहकर उनके सन्देश की प्रतीक्षा कीजिये।"

दोनों युवतियों के वार्त्तालाप में विघ्न न बनने के उद्देश्य से शिवकुमार ने कहा, "मैं बाहर बैठक में प्रतीक्षा करता हूँ। जब वृहस्पति आ जाय तब मुझे सूचित कर देना। उसके बाद हम अपने पंथागार को चल देंगे।"

इस प्रकार हरिषेण राजभवन चला गया और शिवकुमार बाहर बैठक में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकर द्रुतगति से इस परिवर्तनीय परिस्थिति पर विचार करने लगा।

एक घड़ी तक उसको वृहस्पति की प्रतीक्षा करनी पड़ी। जब महिलायें वाहर निकलकर आयीं तो शिवकुमार ने देखा कि गंगादेवी की आँखें तरल थीं। शिवकुमार यह देखकर विस्मित हो रहा था।

गंगादेवी स्वयं को रोक नहीं पायीं। कहने लगीं, "बेटा ! तुम्हारा यह पुत्र मुझे अतिप्रिय है। और यह भी स्वयं को मेरा पुत्र मानने लगा है। मेरी इच्छा होती है, मैं इसको तुमसे माँग लूं।"

शिवकुमार ने हाथ जोड़कर कहा, "माताजी, इसमें माँगने की क्या आवश्यकता है ? यह आपका ही पुत्र है, आप इसे रख सकती हैं।"

फिर कुछ सोचकर उसने कहा, "अभी यह अल्पायु है, इसे यहाँ रखने में आपको कष्ट होगा, इसलिए अभी यह हमारे पास ही रहेगा।"

"किन्तु मैं तो कह रही हूँ कि इसकी माताजी भी यहीं रहने लग जायें।"

तभी वृहस्पति ने चन्द्रमुखी की उँगली पकड़ी और बोला, "मैं तो आपके पास रहूँगा।"

सब हँस पड़े। चन्द्रमुखी ने स्थिति को सम्हालते हुए कहा, "वृहस्पति ! तुम बड़ी माताजी के घर में रहा करते थे न ?"

बड़ी माताजी से चन्द्रमुखी का अभिप्राय उसकी अपनी माता से था। वृहस्पति निर्मलादेवी के पास ही रहता था।

वृहस्पति बोला, "तो ये बड़ी माताजी हैं ?"

"हाँ।"

"नहीं, यह तो कमलिनी है।"

"और बड़ी माताजी का नाम क्या था ?"

वृहस्पति हताश हो गया। उसको बड़ी माताजी का नाम ज्ञात नहीं था, क्योंकि वहाँ उनका नाम लेने वाला कोई उनसे बड़ा था ही नहीं।

शिवकुमार ने कहा, "नाम तो बदलते रहते हैं। तुम तो कहते हो कि तुम भगीरथ हो किन्तु हम तुमको वृहस्पति कहते हैं।

"इसलिए तुम नाम की बात छोड़ो। यह बड़ी माताजी हैं। वह गाँव वाली बड़ी माताजी थीं और यह पाटलिपुत्र वाली बड़ी माता जी हैं।"

"अच्छी वात।" यह वृहस्पति ने इस प्रकार कहा कि मानो उसका समाधान हो गया हो। उसने कहा, "बड़ी माताजी के घर जाकर रहने की भाँति मैं यहाँ भी आया करूँगा और आपके पास भी रहूँगा।"

"हाँ, यह ठीक है।" गंगादेवी ने कहा। फिर पूछा, "अब कब आओगे ?"

"आपका घर वहाँ से दूर है। इसलिए मैं पिताजी से कहूँगा कि ये मुझको ले आया करें।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो शिवकुमार ! बात तुम पर ही आ गयी है ?"

"ठीक है माताजी ! आज तो महामात्य कुछ आदेश दे गये हैं। इस कारण हम सब तुरन्त ही पंथागार जा रहे हैं। साथ ही मेरी स्थिति में भी शायद परिवर्तन आ रहा है। वह भी देखना होगा। तबतक हमारे निवास का भी कोई स्थायी प्रबन्ध हो जायेगा। वह सब स्थिर होने के बाद ही वृहस्पति आपकी छत्र-छाया में रह पायेगा।"

वार्त्तालाप पूर्ण हुआ और वे लोग पंथागार के लिए चल दिये।

वे घर के बाहर द्वार पर आये थे कि महामात्य का रथ खड़ा देखा। रथवान ने आकर कहा, "पण्डितजी ! मुझे आज्ञा हुई है कि मैं आपको पंथागार तक पहुँचा दूँ।"

शिवकुमार अपने परिवार सहित रथ पर सवार हो गया। इस प्रकार शीघ्र ही वे पंथागार पहुँच गये। अपने आगार में पहुँचकर शिवकुमार ने अपनी पत्नी को बताया, "महाराज ने मुझे राज-पुरोहित के पद पर नियुक्त कर लिया है। मैंने भी इस नियुक्ति को सधन्यवाद स्वीकार कर लिया है।"

"यह तो शुभ समाचार है। परमात्मा को कोटिशः धन्यवाद कि उसने हमारी इतनी दूर की यात्रा को सफल कर दिया है।"

"हाँ, किन्तु इतना ध्यान में रखने की बात है कि यह सफलता जिस प्रकार अनायास ही प्राप्त हुई है उसी प्रकार समाप्त भी हो सकती है।"

"ठीक है, समय पर वह भी देख लिया जायेगा। अभी तो ईश्वर का धन्यवाद करना ही चाहिए। साथ ही उससे बल और बुद्धि माँगनी चाहिए कि जिससे आने वाली कठिनाइयों का सामना किया जा सके।"

शिवकुमार ने बात बदलकर कहा, "वृहस्पति ! वहाँ तुम बड़ी माताजी से क्या बातें करते रहे हो ?"

वृहस्पति पहले तो चुप रहा मानो कुछ सोच रहा हो और फिर बोला, "वे मुझे एक सुन्दर आगार में ले गयीं और अपनी गोद में बैठाकर पूछने लगीं कि मैं कमलिनी के विषय में क्या जानता हूँ।

"मैंने उनको वह सब बता दिया जो मुझे स्मरण था। मैं ज्यों-ज्यों बताता जाता था उनकी आँखों से आँसू टपकते जाते थे। जब एक आँसू मेरे गाल पर लुढ़ककर आया तो फिर मेरा ध्यान भंग हुआ। तब मैंने उनके मुख पर देखा। उनकी दोनों गाल भीगी हुई थीं। मैंने उनसे कहा, वे रो क्यों रही हैं।

"मेरी बात सुनकर उन्होंने आँचल से अपनी आँखें पोंछीं और बोलीं कि मेरे वर्णन से उनको अपने बाल्यकाल की बात स्मरण आ गयी थी। उससे उनका मन इतना प्रसन्न हुआ कि उस प्रसन्नता में उनके आँसू टपकने लगे।

"पिताजी ! क्या प्रसन्नता में भी कोई रोता है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ रोता है। परन्तु उसको रोना नहीं कहा जाता।"

"तो फिर ?"

"उसे मन का उद्रेक कहते हैं।"

"वह क्या होता है ?"

"यह बताया नहीं जा सकता। यह अनुभव किया जा सकता है। कभी तुम्हारे जीवन में भी ऐसी बात होगी कि जिससे प्रसन्न होने पर तुम्हारे आँसू बहने लगेंगे। तब तुम समझ पाओगे।"

वृहस्पति अपने पिता को बहुत बड़ा पण्डित मानता था। गाँव में उसका पिता बहुत से बच्चों को पढ़ाया करता था। अब अपने पिता को जब उसने यह कहते सुना कि वह इसका वर्णन नहीं कर सकता तो उसको उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ। वह विस्मित-सा अपने पिता का मुख देखता रहा।

चन्द्रमुखी ने बात बदलकर उससे कहा, "वृहस्पति। अब तुम कुछ पढ़ाई कर लो।"

"माताजी ! पुस्तक तो समाप्त हो गयी है। वह मुझे कण्ठस्थ है। कहिये तो सुना दूं।"

"तुम अपने पिताजी को सुनाओ। तब तक मैं तुम्हारे लिए अगली पुस्तक लाती हूँ।"

इतना कह चन्द्रमुखी उठ गयी। उसने कुछ मुद्रायें लीं और बाहर को चल पड़ी।

चन्द्रमुखी गयी तो शिवकुमार ने पुस्तक का पाठ सुनने की अपेक्षा वृहस्पति से कहा कि वह उसको वह बात सुनाये जिसे सुनकर गंगादेवी के आँसू बहने लगे थे।

वृहस्पति बोला, "जब उन्होंने मुझसे पूछा कि कमलिनी के विषय में क्या जानता हूँ तो जो मुझे स्मरण आया वह मैंने कह दिया।

"एक दिन गुरुजी के आश्रम के पेड़ पर से कमलिनी अमरूद तोड़ रही थी। मैंने उसको कहा था कि मैं गुरुजी से उसकी शिकायत कर दूंगा। वह हँस पड़ी थी। उस समय मेरी आयु चौदह वर्ष की होगी। कमलिनी की आयु दस-ग्यारह वर्ष की होगी। उन दिनों वह अष्टाध्यायी के सूत्र स्मरण किया करती थी।

"मेरी शिकायत की बात सुनकर उसने कहा था कि वह चोरी नहीं कर रही है। गुरुजी से पूछकर तोड़ रही है। उसने कहा था कि यदि मैं चाहूँ तो वह मुझको भी दे सकती है। क्योंकि गुरुजी ने कहा था कि वह स्वयं और अपने किसी भी व्यक्ति के लिए अमरूद तोड़ सकती है।

"यह सुन मैंने कह दिया था कि मैं उसका हूँ ? तब तक कमलिनी पेड़ से नीचे उतर आयी। उसकी झोली में अमरूद भरे पड़े थे। उस समय वह मुझे बहुत अच्छी लग रही थी। मैं उसको एकटक देखता रहा था। वह मुझसे अमरूद देने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए पूछ रही थी किन्तु मुझे उसकी बात सुनायी ही नहीं दे रही थी। जब उसने मुझे अपने शरीर की ओर देखते पाया तो पूछा था कि मैं एकटक क्या देख रहा हूँ।

"मैंने कह दिया था कि मैं उसकी कटि को देख रहा था। कमलिनी ने झट-पट अपनी ओढ़नी, जिस पर अमरूद रखे थे, गले से नीचे की तो सारे अमरूद पृथिवी पर गिर पड़े। मेरी हँसी निकल गयी।

"उसने मुझसे जाने के लिए कहा। अब उसको मेरे सामने लज्जा आने लगी थी। मैंने उसकी स्थिति को समझा तो कह दिया था कि मैं अपने दुपट्टे में रखकर उसके अमरूद वहाँ पहुँचा दूंगा जहाँ वह ले जाना चाहती है। उसने कह दिया कि वह तो अपनी सखियों के साथ बैठकर खाने के लिए अमरूद तोड़ रही थी। उसकी सखियाँ गंगा-तट पर बैठी थीं।

"मैंने पूछा था कि वे लोग वहाँ क्यों एकत्रित हैं तो उसने कह दिया कि इस समय उनको खेलने का अवकाश मिला है। मैंने पूछा कि क्या मैं भी उसकी सखियों के साथ खेल सकता हूँ, तब उसने कह दिया था कि नहीं, मैं लड़का होने से उनके साथ नहीं खेल सकता।

"वह जाने लगी तो उसने एक सबसे बड़ा और बढ़िया-सा अमरूद उठाकर मुझे देते हुए कहा था कि मैं उसको बहुत प्रिय हूँ इसलिए वह मुझे वह अमरूद दे रही है।

"यह सुनकर माताजी की आँखों से आँसू निकलने लगे थे। जिनमें से गिरकर एक मेरी गाल पर आ पड़ा था।"

शिवकुमार ने पूछा, "तुम्हें यह सब स्मरण था ?"

"नहीं पिताजी ! स्मरण तो नहीं था किन्तु जब बड़ी माताजी ने पूछा तो मुझे ऐसा लगने लगा कि मेरे सम्मुख एक लिपटा हुआ पत्र-सा पड़ा है जो अब उनके पूछने पर खुलता सा जा रहा है। मैं उसको देखता जाता था और माताजी को बताता जाता था।

"अमरूद देकर उन्होंने मुझे जाने के लिए कह दिया। मैं अमरूद लेकर चला तो गया किन्तु सोचता रहा था कि कमलिनी को मेरी किस बात पर लज्जा अनुभव होने लगी थी।"

"अब तुम समझ गये हो कि उन्हें क्यों लज्जा अनुभव हो रही थी ?"

"किन्तु पिताजी ! लज्जा क्या होती है ?"

"बेटा ! वह भी वर्णन नहीं की जा सकती अपितु अनुभव की बात है। कभी अनुभव करोगे तो स्वयं ही जान जाओगे।"

शिवकुमार ने फिर बातों को उसी ओर मोड़कर पूछा, "फिर माताजी ने और क्या पूछा ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उन्होंने और कुछ नहीं पूछा। मैं उनकी गोद में बैठा था। उन्होंने मेरा मुख चूम लिया। मैंने उनसे पूछा, 'आपने यह क्या किया ?'

"उन्होंने कहा 'मैंने तुम्हें अपना पुत्र बना लिया है।'

"वह तो मैं अपनी माताजी का हूँ।

" 'उन्होंने कभी तुम्हारा मुख चूमा है ?'

"कभी कोई विशेष बात करता हूँ तो वे मेरा मुख चूमकर मुझे कोई पुरस्कार भी देती हैं।

" 'बस यही मैंने किया है। तुम मेरे पुत्र हो। तुमने आज मेरी एक विशेष बात बतायी है इसलिए मैंने तुम्हें यह पुरस्कार दिया है।'

"मैंने कहा, 'गाँव में मेरी एक बड़ी माँजी भी हैं।'

" 'क्या नाम है उनका ?'

"बड़ी माँ।

"तब वे हँस पड़ीं। मुझे अपनी गोद से उठाया और उँगली पकड़कर बाहर ले आयीं।"

"परन्तु उस आगार में तुम्हें देर तो बहुत लगी थी। हम बड़ी देर से तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठे थे।"

"पिताजी, वह चित्र-पत्र परतों में लिपटा हुआ सा था, धीरे खुलता था और तब मैं उसे देखकर माताजी को वता रहा था।"

"और अब वह पत्र एक बार खुल गया है तो तुमने जल्दी वह सब मुझे सुना दिया है न ?"

"अब वह लिपटा हुआ नहीं है। अब तो वह मुझे अपने पाठ की भाँति स्मरण हो गया है।"

शिवकुमार इस पूर्ण कथा को समझकर मन, बुद्धि और जीवात्मा के सम्बन्ध में विचार करने लगा था। वृहस्पति ने जो कुछ बताया था वह उसकी प्रक्रिया जानने का यत्न कर रहा था।

वह यही समझा कि कमलिनी से उसका घनिष्ट सम्पर्क रहा है। इस कारण कमलिनी का ज्ञान उसकी जीवात्मा पर अंकित हो गया था।

मृत्यु के समय मन और बुद्धि तो जीवात्मा के साथ रहते नहीं। इस कारण जो कुछ जीवात्मा पर अंकित था वही उसके जीवात्मा पर संस्कार के रूप में रह गया था।

अब जब वह नवीन बुद्धि को पुनः जीवात्मा पर केन्द्रित करता है तो उसके जीवात्मा पर अंकित संस्कार जागृत होने लगते हैं। जब वह उनका वर्णन करता है तो उसके नवीन बुद्धि पर वे अंकित हो जाते हैं जिन्हें फिर वह अपनी पुस्तक के पाठ की भाँति दोहरा सकता है। वे अब पुनः स्मृति का विषय हो गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि वृहस्पति इस प्रक्रिया को समझा नहीं सका था परन्तु शिवकुमार समझ गया था। शिवकुमार को शरीर-रचना और शरीर-क्रिया का ज्ञान था, इसके आधार पर वह इसे समझ पाया था।

इससे उसकी समझ में एक बात आयी कि यदि इसके जीवात्मा का संयोग गंगादेवी के जीवात्मा से हो रहा होगा तो वह पुनः जागृत हो उठेगा और यह किसी प्रकार के अनिच्छित कर्म की प्रेरणा देने लगेगा।

इसकी कल्पना से ही शिवकुमार भयभीत हो गया था। वह उसी अवस्था में निरन्तर अपने पुत्र के मुख की ओर देखता रहा था।

कितनी ही देर तक अपने पिता को अपने मुख की ओर देखता पाकर वृहस्पति ने पूछा, "पिताजी। आप मेरे मुख पर क्या देख रहे हैं?"

"वृहस्पति! कमलिनी के विषय में तुमसे फिर किसी समय बात करूँगा। वह देखो, तुम्हारी माताजी तुम्हारे लिए बहुत-सी पुस्तकें ले आयी हैं।"

वृहस्पति का ध्यान बदला और वह अपनी माता से नवीन पुस्तकें माँगने लगा।

चन्द्रमुखी चार पुस्तकें लाई थी। उसने उनको अपने पति को दिखाया।

पुस्तकें हस्तलिखित ही थीं। भाषा की दूसरी, तीसरी और चौथी पुस्तकें थीं साथ ही एक सरल भाषा में रामायण की पुस्तक भी थी।

पुस्तकों को देखकर शिवकुमार ने पूछा, "आज तो तुम काफी खर्च कर आयी हो?"

"हाँ, मेरे पास तो कुछ कम ही पैसे थे, किन्तु पुस्तक विक्रेता के पास बहुत-सी पुस्तकें देखने को मिलीं। मैंने इन चारों का चयन किया तो उसने इनका मूल्य तेरह मुद्रायें बताया।

"मैंने उससे प्रत्येक के पृथक्-पृथक् मूल्य बताने को कहा।

"उसने भाषा की प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पुस्तक का मूल्य एक-एक मुद्रा तथा रामायण का दस मुद्रा बताया। मैंने केवल दूसरी और तीसरी पुस्तक रख ली, शेष उसको लौटाते हुए कहा इन्हें रख लो, बाद में मूल्य लेकर आऊँगी तब ले जाऊँगी।

"वह बोला कि मैं पुस्तकें ले जाऊँ और मूल्य बाद में समय मिलने पर दे जाऊँ। उसने मुझे पहचान लिया था। क्योंकि उसने कहा कि मैं कल भी तो उससे पुस्तक क्रय करके ले गयी थी।

"मैंने उसको कहा कि मैं इनका मूल्य आज ही देने में असमर्थ हूँ तो वह बोला जब अवकाश हो दे जाइयेगा।

"पुस्तकें अच्छे सुलेख में लिखित हैं, इस कारण मैंने उसका धन्यवाद किया और मैं इन्हें ले आयी हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह तो इन्हें पाँच-छः दिन में ही समाप्त कर ग्रौर माँगने लगेगा ?"

"उसके बाद तो इसको किसी सार्वजनिक पुस्तकालय में ले जाइयेगा। वहाँ से इसको पुस्तकें पढ़ने की ग्रनुमति दिलवा दीजियेगा।"

शिवकुमार मुस्कराता हुग्रा चन्द्रमुखी का मुख देखने लगा।

बृहस्पति भाषा की दूसरी पुस्तक लेकर ग्रपनी लेखनी, मसी ग्रौर कागज की संदूकची के समीप जाकर लिखने बैठ गया।

उसे तल्लीन देख शेष पुस्तकों को ले चन्द्रमुखी ग्रपने सन्दूक में रखने के लिए चली गयी।

उस दिन तीसरे प्रहर पण्डित विभूतिचरण मिलने के लिए ग्राया। शिवकुमार तो महामात्य ग्रथवा महाराजाधिराज के किसी प्रतिहार के ग्राने की प्रतीक्षा में बैठा था। विभूतिचरण ग्राया तो चन्द्रमुखी उसकी ग्रोर प्रश्नभरी दृष्टि से देखने लगी।

"पण्डितजी कहाँ हैं ?" विभूतिचरण ने पूछा।

"वे इस समय स्वाध्याय में लीन हैं, बोलिए क्या कार्य है ?"

ग्रब तक चन्द्रमुखी विभूतिचरण को ग्रागार के द्वार पर ही रोके हुए थी। विभूतिचरण मुस्कराता हुग्रा बोला, "मैं उनके विस्तृत स्वाध्याय का प्रबन्ध लेकर ग्राया हूँ।"

"यहाँ या किसी पुस्तकालय में ?"

"यह तो मैं उनको ही बताऊँगा।"

चन्द्रमुखी ने उनको भीतर बुलाया ग्रौर ग्रपने पति के पास भेज दिया।

शिवकुमार उस समय महाभारत का ग्रध्ययन कर रहा था।

: १० :

शिवकुमार ने विभूतिचरण को देखा तो उनको नमस्कार कर पूछने लगा, "कहिए किस प्रकार ग्राना हुग्रा ?"

विभूतिचरण ने ग्रपने उत्तरीय के नीचे से एक निवेदन-पत्र निकालकर उसे शिवकुमार के सम्मुख रखते हुए कहा, "मैं मध्याह्नोत्तर महाराजाधिराज को ग्रश्वमेध यज्ञ के लिए गठित की जाने वाली समिति के सदस्यों के नाम बताने के लिए गया। मैंने उनको पाँच नाम सुझाये थे।

"उनमें एक नाम ग्रापका भी था। शेष चार में एक मैं था तथा तीन ग्रन्य विद्वान्। ग्रापका नाम सुनकर महाराजाधिराज ने यह निवेदन-पत्र दिया है ग्रौर साथ ही कहा है कि ग्राप राज्य के प्रतिनिधि के रूप में उस समिति में होंगे।

"मैंने जब कहा कि इस परिस्थिति में विद्वत्परिषद् की ग्रोर से पाँचवे नाम का निश्चय तो ग्रब कल ही होगा तो उन्होंने मुझसे यह निवेदन-पत्र ग्रापको देने के लिए कह दिया। महाराज ने बताया है कि उन्होंने महामात्य को ग्रापकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुचित व्यवस्था के लिए कह दिया है। आज सायंकाल तक कदाचित् वह व्यवस्था हो जायेगी।

"महाराज का कहना था कि जब आपका प्रबन्ध हो जायेगा और आप अपने नवीन निवास पर पहुँचें तब महाराज स्वयं आपसे भेंट करने के लिए पधारेंगे।"

शिवकुमार ने महाराज का निवेदन हाथ में लिया और खोलकर उसको देखने लगा।

सुन्दर स्वर्ण-पत्र पर रजताक्षरों में अंकित था। यह एक प्रकार का प्रमाण-पत्र जैसा था। जिसमें लिखा था, "हम पण्डित शिवकुमार, जो मंगला ग्राम के निवासी हैं, को राज-परिवार का पुरोहित नियुक्त करते हैं और आशा करते हैं कि वे इस पद को सुशोभित कर राज-परिवार को अनुग्रहीत करेंगे।"

नीचे महाराज के हस्ताक्षर थे और राजकीय मुद्रा अंकित थी।

शिवकुमार ने तुरन्त चन्द्रमुखी को आवाज दी। बोला, "देखो, महाराज ने यह प्रमाण-पत्र भेजा है।"

उस समय चन्द्रमुखी वृहस्पति के समीप बैठी उसके कार्य का अवलोकन कर रही थी। शिवकुमार के बुलाने पर वह उठकर वहाँ आ गयी। उसके पीछे-पीछे वृहस्पति भी वहीं आ गया।

चन्द्रमुखी ने वह पत्र अपने हाथ में लिया। पत्र पढ़कर उसने पहले अपने पति के चरण स्पर्श किये और फिर परमात्मा का धन्यवाद करने लगी।

यह सब देखकर पण्डित विभूतिचरण हँस पड़ा। पति-पत्नी ने उसकी ओर देखा। वह कहने लगा, "इस समय मुझे अपनी पत्नी का व्यवहार स्मरण हो आया है। जब मैंने उसको बताया कि मैं पाटलिपुत्र की विद्वत्परिषद् का अध्यक्ष नियुक्त हुआ हूँ तो उसने सीधे प्रश्न किया था कि मुझे वेतन कितना मिलेगा।

"मैंने उसको समझाने का यत्न किया था कि यह सेवा-कार्य नहीं अपितु यह तो मेरी विद्वत्ता का सम्मान है तो उसके मुख से सहसा निकल पड़ा था, 'इस जल-मन्थन से लाभ क्या होगा?'

"मैंने सब प्रकार से उसको समझाने का यत्न किया था किन्तु उसकी समझ में कुछ नहीं आया। यह बात छः वर्ष पुरानी है। दो वर्ष पूर्व रोहिणी का विवाह हुआ था। विवाह के अवसर पर महामात्य नगर के समस्त विद्वानों तथा अन्यान्य श्रेष्ठियों को लेकर पधारे थे। ईश्वर की कृपा से मैंने सबका यथोचित सत्कार करने का यत्न किया था।

"अब इतने वर्ष बाद उसकी गृहस्थ की गाड़ी सुचारु रूप से चल रही है। वह विशाल भवन में रहती है। रोहिणी के तीन छोटे भाई हैं। सबकी शिक्षा-दीक्षा का उचित प्रबन्ध किया गया है। वस्त्रादि का भी कभी कोई कष्ट नहीं हुआ। अब वह समझने लगी है कि ब्राह्मण का निर्वाह तो स्वतः ही सम्पन्न हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान ही सबसे दुर्लभ वस्तु है।

"आपकी पत्नी का व्यवहार देखकर तो मैं यही कह सकता हूँ कि ये बहुत बुद्धिशील हैं। पण्डितजी ! आप बहुत भाग्यशाली व्यक्ति हैं।"

शिवकुमार ने मुस्कराते हुए पत्नी का मुख देखते हुए कहा, "यह हस्तिनापुर के आयुक्त भीमदेव जी के कुल पुरोहित की कन्या है। यह जानती है कि पुरोहित का कार्य अवैतनिक ही होता है। इनके पिता का ग्राम में तथा उसके आस-पास पर्याप्त आदर-सम्मान है। ग्राम के ब्राह्मण समाज को भी उनसे बहुत आशायें हैं।

"मेरे तो वे सर्वेसर्वा ही रहे हैं। मेरे पिताजी का देहान्त तो उस समय हो गया था जब मेरी आयु तीन वर्ष की थी। पाँच वर्ष की आयु में मेरी माताजी ने मुझे काशी जी भिजवा दिया था। उसके बाद उनके निर्वाह का सारा प्रबन्ध चन्द्र के पिताजी ने ही किया था।

"मैं जब काशी जी से लौटा था तो माताजी चिरकाल से रुग्ण थीं और उनका उसी दिन प्राणान्त हो गया जिस दिन मैं काशी जी से वापस लौटा था।

"माताजी के कहने पर चन्द्र के पिताजी ने उनके उस अल्पजीवन काल में ही अर्थात् कुछ घड़ी के अवकाश में ही हम दोनों का विवाह कर दिया था।"

"तब से उनके आश्रय ही मैं अब तक अपना जीवनयापन करता आया हूँ।"

"मेरी पत्नी चन्द्रमुखी पुरोहित परिवार की कन्या होने से पुरोहित की महिमा को भली प्रकार जानती है।"

"शिवकुमार जी, यह किसी भी कारण हो किन्तु आपकी पत्नी मेरी पत्नी की अपेक्षा अधिक समझदार और सुशील है। परमात्मा इसको दीर्घायु प्रदान करें, और तुम्हारी यश, कीर्ति तथा समृद्धता का सुख-भोग इसे भी प्राप्त हो।"

यह आशीर्वाद सुन चन्द्रमुखी ने मुस्कराते हुए कहा, "पिताजी ! बस और कुछ नहीं ?"

"बेटी ! कोई भी मनुष्य इसी प्रकार की कामना कर सकता है। शेष तो तुम्हारे अपने करने की बात है। जिस बात की तुम अभिलाषा करती प्रतीत होती हो उसके लिए यदि निरन्तर प्रयत्न नहीं करती रहोगी तो परमात्मा भी उसको नहीं दे पायेगा।

"सांसारिक वैभव तो कर्म का फल होता है, मोक्ष तो कर्म का फल नहीं। यह तो धारणा, ध्यान और समाधि का फल है।"

यह सुनकर शिवकुमार हँस दिया। फिर पूछने लगा, "तो क्या महाराज ! धारणा, ध्यान आदि कर्म के फल नहीं हैं ?"

सभी हँस पड़े। इस प्रकार हँसी के वातावरण में पण्डित विभूतिचरण ने वहाँ से प्रस्थान किया। बृहस्पति समीप ही बैठा यह सब सुन रहा था। अब उसने पूछा, "पिताजी ! क्या हुआ है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मुझे महाराज ने अपना पुरोहित नियुक्त किया है।

"पुरोहित क्या होता है ?"

"पुरोहित उसे कहते हैं जो यजमान का इस लोक और परलोक में हित-चिन्तन करता रहे और अपने चिन्तन का परिणाम यजमान को बताता रहे।"

"यजमान किसे कहते हैं ?"

"जो अपने व्यवसाय में इतना व्यस्त हो कि अपने विषय में विचार करने के लिए उसके पास समय ही न हो।

"देखो वृहस्पति! यह तुम्हारा शरीर है, तुम जानते हो वह क्या होता है ?"

"जी हाँ। यह मेरा हाथ, पैर, पेट और मेरा सिर इत्यादि।"

"तुमको अवकाश नहीं और तुमको ज्ञान नहीं कि तुम इस शरीर की रक्षा कर सको। इस कारण परमात्मा ने तुम्हारी माताजी को नियुक्त किया है कि वह तुम्हारे इस शरीर की तब तक देखभाल किया करे जब तक तुम्हें इसकी देखभाल करने के लिए अवकाश और ज्ञान नहीं हो जाता।

"तुम्हारी आयु कम होने से तुम्हें ज्ञान नहीं है। तुम्हारी शिक्षा भी कम है। इस कारण तुम्हारी माताजी को नियुक्त किया गया है कि वे तुम्हारी सहायता कर दिया करें। वह तुम्हें स्नान कराती हैं, तुम्हें वस्त्र पहनाती हैं, तुम्हें भोजन कराती हैं इस प्रकार अन्य अनेक कार्य वे करती हैं। अब यह तुम्हें पढ़ाने भी लगी हैं।

"इस प्रकार यहाँ के जो महाराजाधिराज हैं वे अपने राज्य-कार्य में इतने व्यस्त हैं कि उनको अपनी बहुत-सी आवश्यक बातों पर विचार करने के लिए समय ही नहीं मिल पाता। उनकी उन बातों का ध्यान रखने के लिए, उनको सम्पन्न करने-कराने के लिए तथा उनका स्मरण दिलाने के लिए महाराज ने मेरी नियुक्ति की है। जो काम मैं वहाँ करूँगा, उसको सम्पन्न करने वाले को पुरोहित कहते हैं।"

"इस कार्य के लिए वे आपको क्या देंगे ?"

"जो तुम अपनी माता को देते हो। वे प्रातःकाल से सायंकाल तक तुम्हारे अनेक कार्य करती हैं, तुम इसके लिए उनको क्या देते हो ?"

"मैं उनका पुत्र जो हूँ।"

"महाराज मेरे यजमान होंगे।"

वृहस्पति कितना समझा और कितना नहीं, यह कहना कठिन है। तदपि वह इस वार्तालाप के परिणामस्वरूप गम्भीर अवश्य हो गया था।

तदन्तर वृहस्पति को पढ़ने के लिए बैठा दिया गया। नयी पुस्तक के दो पाठ आज उसको पाटी पर लिखने थे। वह जब लिखने लगा तो उसे यह अनुभव होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा कि पाठ स्मरण करने का सुगम उपाय उसको लिखना है। इस प्रकार वह विचारों में खो गया। इस समय उसको अपने अतीत जीवन का स्मरण होने लगा।

वृहस्पति को कार्य पर लगाकर दोनों पति-पत्नी पण्डित शिवकुमार के नये कार्य के सम्बन्ध में चर्चा और विचार-विमर्श करने लगे।

चन्द्रमुखी ने कहा, "आपकी राज-पुरोहित के पद पर नियुक्ति की बात सुन कर रोहिणी के पिता गम्भीर हो गये थे। मैं तो इसका यही अभिप्राय समझ पाई हूँ कि यजमान और पुरोहित में अधिक समय तक पट नहीं पायेगी।"

"मुझे तो कुछ विचित्र-सा आभास हो रहा है। मैं समझता हूँ कि हमारे जीवन का कठिन समय निकट आ रहा है। इस कारण अपने जीवन को अभी से इतने सरल ढाँचे में ढालने का यत्न करो कि यदि यह सब कुछ छोड़-छाड़कर अपने गाँव वापस लौटना भी पड़ा तो इससे हमें किसी प्रकार का कष्ट अथवा दुःख का अनुभव न हो।

"बच्चों का विशेष ध्यान रखना होगा। इनको यह आभास नहीं होना चाहिए कि हम गाँव के कठोर जीवन से नगर के सरल जीवन के क्षेत्र में आ गये हैं।"

इस प्रकार उस दम्पति में भावी स्थिति पर विचार-विमर्श होता रहा और उसका परिणाम यह हुआ कि दोनों ही अपने किसी कार्य में मन नहीं लगा सके।

सायंकाल महामात्य हरिषेण आये। उन्होंने कहा, "पण्डित शिवकुमार जी! मुझे आज्ञा हुई है कि मैं आपको राज-पुरोहित के लिए नियत निवास-स्थान पर ले जाकर वहाँ आपको ठहरा दूं।"

शिवकुमार तो तैयार ही बैठा था। उसने कहा, "हम तो तैयार हैं पण्डित जी!"

सामान बँधा हुआ रखा था। महामात्य पंथागार के सेवक को साथ ही लाये थे। उसकी सहायता से सारा सामान नीचे ले जाया गया। पंथागार के प्रबन्धक को सूचित करने के उपरान्त वे सब रथ में बैठकर नये निवास की ओर चल दिये।

तीन रथ आये थे। एक रथ पर सारा सामान था, दूसरे पर पण्डित शिवकुमार का परिवार विराजमान था और तीसरा रथ स्वयं महामात्य का था जिसमें वे विराजमान थे।

महामात्य का रथ सबसे आगे चल रह था, शेष दो रथ उसका अनुसरण कर रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय परिच्छेद

सम्राट् समुद्रगुप्त के मन में अश्वमेध यज्ञ करने की लालसा वहाँ के ब्राह्मणों द्वारा उत्पन्न की गयी थी। जोकि उचित ही थी। पिछले चार सौ वर्ष में भारत के शासन में पर्याप्त उथल-पुथल हुई थी। विशेष रूप में सम्राट् चन्द्रगुप्त के काल में तो सम्पूर्ण भारतवर्ष में साम्राज्य की रूप-रेखा निखर आई थी।

यद्यपि चन्द्रगुप्त का साम्राज्य अभी उतना बड़ा तो नहीं हो पाया था जितना कि सम्राट अशोक का था। अशोक का साम्राज्य कामभोज तक पहुँच गया था। काश्मीर की सीमा के साथ उसकी सीमा लगी थी। नेपाल से अशोक की मैत्री थी और अंग, बंग, असम इत्यादि के साथ भी उसकी मित्रता थी। कालिन्दी तो अशोक के राज्य में उजड़ा हुआ स्थान था। उसमें जो नर-संहार हुआ था वह अशोक के जीवनकाल में भरा नहीं जा सका था।

अशोक के राज्यकाल में ही दूर-दूर के नरेश स्वतन्त्र होने लग गये थे। तदपि उन्होंने परस्पर संघर्ष नहीं किया था। उसका कारण यह था कि अशोक का राज्य सैनिक शक्ति पर आधारित नहीं था। उसके साम्राज्य का कार्य तो बौद्ध भिक्षु सम्पन्न करते थे। उनका यत्न होता था कि दूर-दूर के नरेशों को वे अशोक के अनुकूल बनाये रखें। इस कारण जब वे स्वतन्त्र होने लगे तो उनमें सैनिक संघर्ष की आवश्यकता नहीं हुई।

तो भी इतने बड़े साम्राज्य को पचास वर्ष तक एक रखने के लिए बौद्ध प्रेरणा और महाप्रभुओं को कूटनीति से कार्य करना पड़ रहा था। कूटनीति जब सैनिक सामर्थ्य के बिना ही चलती है तो वह कूट न रहकर कुटिल हो जाया करती है। अशोक का राज्य जबतक रहा तबतक देश-भर में बौद्ध महाप्रभुओं की कुटिल नीति व्यापक रूप धारण कर चुकी थी। किन्तु कुटिलता सदैव तथा सर्वत्र ही नहीं चल सकती।

उसके दुष्परिणाम तो अशोक के जीवनकाल में ही प्रकट होने लग गये थे। अशोक के संन्यास लेकर वन में चले जाने पर तो उसका साम्राज्य संकुचित होता गया।

इस शिथिलता का ज्ञान जब भारतवर्ष के बाहर भी विख्यात होने लगा तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेशी आक्रमण भी आरम्भ हो गये।

शुंग परिवार अशोक के साम्राज्य की-सी प्रभुता प्राप्त करने में असमर्थ रहा था।

इसका कारण था भारत के मत-मतान्तरों को सदा से प्राप्त स्वतन्त्रता। आदिकाल से व्यक्ति के अपने आचरण में और वह भी उस प्रकार के आचरणों में जिनका समाज के अन्य घटकों के साथ सम्बन्ध हो, प्रतिबन्ध होता था। तथा अपने ही साथ सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति के कार्यों में वे पूर्णतया स्वतन्त्र होते थे।

परन्तु अशोक कालीन प्रथा से जनता, विशेषतया बौद्ध धर्माचार्यों के मन में व्यक्तिगत व्यवहार और समष्टिगत व्यवहार में अन्तर नहीं रहा था।

अशोक के काल में व्यक्तिगत व्यवहार में राज्य हस्तक्षेप करता था और व्यक्ति अपने व्यक्तिगत व्यवहार को राज्य से सम्बन्धित मानता था।

यह भावना इतनी व्यापक हो चुकी थी कि इसको जन-जन के मस्तिष्क में से निकालना कठिन हो रहा था।

अतः इसी अनुरूप महाराज समुद्रगुप्त के काल में उसके वेदानुयायी होने के नाते ब्राह्मण लोग उसे अपना विशेष संरक्षक मानते थे।

यही कारण था कि समुद्रगुप्त की ख्याति को विस्तृत करने को वहाँ के ब्राह्मण लोग यह समझ बैठे थे कि वे वैदिक धर्म का ही विस्तार कर रहे हैं।

उसका ही परिणाम यह था कि शिवकुमार के पाटिलपुत्र आने से पूर्व विद्वत्-परिषद् ने यह प्रस्ताव पारित कर दिया था कि महाराज समुद्रगुप्त को अश्वमेध यज्ञ करना चाहिए।

राज्य का महामात्य पण्डित हरिषेण इस प्रस्ताव के पक्ष में नहीं था। यही कारण था कि इस विचार की परिपक्वता में वह ढील करता जा रहा था।

विद्वत्परिषद् का अध्यक्ष पण्डित विभूतिचरण अश्वमेध किये जाने के पक्ष में था। वह प्रायः महाराज से मिलता भी रहता था और उनको अश्वमेध के लिए प्रेरित करता रहता था। उधर महाराज जब भी महामात्य हरिषेण से इस यज्ञ के विषय में बात करते तो वह इसमें आने वाली बाधाओं और कठिनाइयों का वर्णन कर दिया करता था।

विभूतिचरण इस बाधा को दूर करने में असमर्थ था। तब उसको एक उपाय सूझा और उसने तद्नुसार महाराज को सुझाव दिया कि इस विषय में काशी की विद्वत्सभा का मत जाना जाय।

जब काशी के विद्वानों के मत लिये जाने का प्रश्न उपस्थित हुआ तो उससे पूर्व शिवकुमार का निबन्ध विद्वत्सभा में पढ़ा जा चुका था। इस अवसर पर महामात्य हरिषेण को उसका स्मरण हो आया।

शिवकुमार ने अपने निबन्ध में संस्कृति और सभ्यता का भली-भाँति विश्लेषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया था और अन्त में यह निष्कर्ष निकाला था कि सभ्यता को पूजने वाले देश जाति और राष्ट्र के ह्रास का कारण सिद्ध हुए हैं तथा संस्कृति, जो मानव समाज की आत्मा है, को दृढ़ता से पकड़ने पर न केवल देश और राष्ट्र की प्रगति होती है वरन् मानव समाज भी सुख-शान्ति का अनुभव कर सम्पन्न होता है।

इस निबन्ध के भाव और भाषा तथा उसके निष्कर्ष को स्मरण कर हरिषेण को आभास हुआ कि उसके और निवन्ध लेखक के विचार समान ही हैं। अतः उसने विचार किया कि उस विद्वान् को किसी प्रकार राजधानी में ले आना चाहिए, जिससे कि वह उसका सहायक सिद्ध हो सके।

यह सोचकर महामात्य हरिषेण ने हस्तिनापुर के आयुक्त राजा भीमसेन को पत्र लिख दिया कि मंगला ग्राम के पण्डित शिवकुमार को शीघ्रातिशीघ्र रथ पर बैठाकर तथा पचास स्वर्ण मुद्रायें मार्ग-व्यय के लिए प्रदान कर पाटलिपुत्र भेज दिया जाय।

शिवकुमार के पाटलिपुत्र बुलाये जाने का यही मूल कारण था।

शिवकुमार जब पाटलिपुत्र आ गया तो उससे विभूतिचरण को भी उतनी ही प्रसन्नता हुई जितनी कि महामात्य हरिषेण को। अतः सबसे पहले विभूतिचरण ने अवसर से लाभ उठाने का संकल्प किया और महाराज को प्रेरित कर विद्वत्परिषद् में शिवकुमार का पहला व्याख्यान अश्वमेध के सम्बन्ध में ही करवा दिया।

उस परिषद् में महामात्य हरिषेण भी उपस्थित था और उसने बड़े ध्यान से शिवकुमार के व्याख्यान को सुना था। उसका व्याख्यान सुनकर स्वयं महामात्य शिवकुमार के व्याख्यान के उस अंश से पूर्णतया सहमत हो गया था जिसमें कि पण्डित शिवकुमार ने कहा था कि यज्ञ का कर्मकाण्ड, जिसे वह सभ्यता का नाम देता है, बदल देने पर भी यज्ञ का सांस्कृतिक रूप जीवित रह सकता है।

शिवकुमार ने इस बात पर विशेष बल दिया था कि परिस्थिति के अनुसार कर्मकाण्ड को बदला जा सका है। अतीतकाल में भी इसमें परिवर्तन होते रहे हैं।

शिवकुमार के व्याख्यान के उपरान्त महामात्य और महाराज के मध्य अश्वमेघ के सम्बन्ध में विचार-विमर्श होता रहा। 'यज्ञ तो किया जाय किन्तु उसका बाह्य रूप किस प्रकार का हो? इसके लिए समिति गठित की जाय।' शिवकुमार के व्याख्यान के इस अंश को जब महामात्य ने स्वीकार किया तो उन्होंने यत्न किया कि उसको राज-पुरोहित के पद पर प्रतिष्ठित करवाया जाय। महामात्य को इस कार्य में सफलता मिल गयी, और फिर उन्होंने शिवकुमार को उस उप-समिति का भी सदस्य बनवा दिया जो यज्ञ के बाह्य रूप के विषय पर विचार करने के लिए गठित की जा रही थी।

शिवकुमार को अपने नये निवास पर आये अभी दो ही दिन हुए थे कि उस दिन जब शिवकुमार प्रातःकाल का देवयज्ञ कर रहा था, महाराज उसके द्वार पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपस्थित हो गये। शिवकुमार को इसकी सूचना भेज दी गयी।

शिवकुमार का यह आवास उसके गाँव के आवास से कहीं अधिक बड़ा और साफ-सुथरा था। यद्यपि उसके गाँव के आवास में छोटी-सी बगिया थी और छोटा-सा प्रांगण भी था किन्तु निवास के लिए केवल तीन ही कक्ष थे। यहाँ यह सब कुछ था और निवास के लिए कक्ष अधिक होने के साथ-साथ वह बहुत विशाल था। इसका विस्तार तीस बीघा भूमि पर था। दस बीघा भूमि पर खेती होती थी। तीन बीघा भूमि पर फलोद्यान था और इसके अतिरिक्त आम्रकुंज पृथक् था।

एक बीघा भूमि पर उसके लिए भवन था जिसमें सात कक्ष थे। स्नान तथा शौचालय का प्रबन्ध था।

राज-पुरोहित का शद शिवकुमार को प्रदान किये जाने से पूर्व यदि कभी महाराज की इच्छा वन-विहार की होती थी तो वे इस भवन में आकर रहते थे। तब इसकी देख-रेख के लिए माली और कृषक आदि रखे हुए थे।

भवन की सफाई आदि के लिए अलग सेवक थे। वे इस समय भी विद्यमान थे।

जब हरिषेण शिवकुमार को लेकर इस भवन में आया और शिवकुमार ने इसकी विशालता को देखा तो उसके मुख से सहसा निकल गया, "पिताजी! इस विशाल भवन का प्रबन्ध तो मेरे वश की बात नहीं है।"

"तुम्हें इसकी चिन्ता नहीं करनी होगी। राज्य कर्मचारी यह सब तुम्हारे लिए करेंगे। उनके प्रबन्ध के लिए एक पृथक् विभाग है जो सर्वत्र कर्मचारियों पर नियन्त्रण रखता है। वह प्रबन्धक शीघ्र ही तुमसे मिलेगा और फिर तुम्हारी आज्ञानुसार इस भवन की व्यवस्था करेगा। उसका तथा अन्य कर्मचारियों का वेतन राज्य की ओर से दिया जायेगा।

"देखिये शिवकुमार जी! अब आप राज-पुरोहित नियुक्त किये गये हैं। नित्य अनेक जन आपसे परामर्श के लिए आया करेंगे। उनमें से कुछ तो राज्य की ओर से आयेंगे और कुछ व्यक्तिगत रूप से आयेंगे। अनेक पुजारी-पण्डित विभिन्न अनुष्ठानों आदि के विषय में भी आपसे परामर्श करने आया करेंगे। उसमें महाराज के पुजारी भी सम्मिलित हैं। उन सबका यथोचित आदर-सत्कार करना आपका कर्तव्य होगा। तदपि उसके साधन आपको यहाँ उपलब्ध रहेंगे।

"वास्तविकता तो यह है कि जबतक आप राज-पुरोहित पद पर प्रतिष्ठित हैं तबतक स्वयं को महाराज का माननीय अतिथि ही समझिये।

"मैं यह यत्न कर रहा हूँ कि यह मकान तुमको दान में मिल जाय। किन्तु उसमें अभी समय लगेगा। क्योंकि अभी तुममें वह सामर्थ्य नहीं है जो इतने विशाल भवन के प्रबन्ध के लिए आवश्यक है। जब मुझे यह आभास मिलेगा कि अब आप इसके लिए समर्थ हो तभी मैं वह प्रयत्न आरम्भ कर दूंगा। और मैं समझता हूँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वह सब हो जायेगा।"

इस प्रकार पण्डित हरिषेण शिवकुमार को निवास के आगार में ले गया। भवन सब प्रकार की सुख-सुविधाओं से युक्त पाया गया। यथास्थान दरी, चादर, कालीन आदि बिछे थे। चौकियाँ भी यथास्थान थीं और सर्वत्र प्रकाश के लिए दीपदान रखे हुए थे। भित्तियों की सजावट के लिए गुप्त वंश के चित्रों का उपयोग किया गया था। पाकशाला भी सर्व प्रकार से सज्जित थी और इसी प्रकार स्नानागार आदि भी।

सारा भवन शिवकुमार को दिखा और वहाँ की प्रक्रिया समझाकर हरिषेण ने कहा, "अब मैं चलता हूँ। यहाँ का प्रवन्धक तुमसे मिलने के लिए आयेगा, उसे अपनी आवश्यकतायें बता देना।

"महाराज की यह आज्ञा है कि यद्यपि राज-पुरोहित का वेतन कुछ भी नहीं है तदपि जबतक वह राज-पुरोहित पद पर नियुक्त है उसकी सुख-सुविधा का सारा प्रबन्ध राज्य के अधीन होगा।"

यह सब देख-सुनकर शिवकुमार अपने मन में अपनी ही योजना बनाने में लगा हुआ था।

हरिषेण के जाने पर शिवकुमार की पत्नी चन्द्रमुखी उससे पूछने लगी, "इस मकान में रहते हुए तो न केवल आपके अपितु आपके परिजनों के मस्तिष्क में भी फफूंद लग जायेगी।"

इस समय तक वे एक स्थान पर स्थिर हो गये थे। बच्चे भी उनके समीप ही बैठे थे।

शिवकुमार बोला, "किन्तु इस सबको अस्वीकार भी तो नहीं किया जा सकता। महामात्य ने एक विशेष बात यह भी बतायी थी कि मेरे इस पद के कारण बहुत से लोग मुझसे परामर्श तथा मिलने के लिए आया करेंगे, जिनका उचित आदर-सत्कार भी मुझे करना होगा। यद्यपि उसका प्रबन्ध भी राज्य की ओर से ही होगा।

"इसलिए यह सब कुछ ग्रहण भी करना होगा और फिर इसका उपयोग भी करना ही होगा। तदपि मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि मेरे जीवन और जीवनचर्या तथा आवश्यकताओं में किसी प्रकार का कोई भी अन्तर नहीं आयेगा। मैं राजसी ठाठ-बाट में भी उसी प्रकार रहूँगा जिस प्रकार अपने ग्राम में रहा करता था।"

यह सुनकर चन्द्रमुखी को प्रसन्नता हुई। वह बोली, "हाँ देव! मैंने भी कुछ इसी प्रकार विचार किया है। हमें इस भवन में ठीक उसी भाँति रहना होगा जिस प्रकार जल में कमल रहता है।"

"जब तुम्हारा दृष्टिकोण भी वैसा ही है तो फिर मेरा कार्य तो बहुत सुगम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जायेगा।"

इस परिस्थिति में दो दिन बाद शिवकुमार को यज्ञ से निवृत्त होने पर महाराज के पधारने की सूचना मिली।

उस समय यज्ञशाला में पति-पत्नी के अतिरिक्त उनका बड़ा पुत्र वृहस्पति भी था। शिवकुमार महाराज के स्वागत के लिए जा ही रहा था कि महाराज स्वयं उपस्थित हो गये।

अपने पुरोहित को आश्चर्यचकित करते हुए महाराज ने कहा, "पण्डितराज! विराजिये, हम आपसे यहीं पर परामर्श करने के लिए आये हैं।"

"परन्तु महाराज! यहाँ पर आपके बैठने योग्य उपयुक्त स्थान नहीं है।"

"है क्यों नहीं? यह कुशासन रखा हुआ तो है। यज्ञशाला में तो यही सर्वश्रेष्ठ आसन माना जाता है। यह राजसभा नहीं है। विराजिये। हम आपसे कुछ निवेदन करने के लिए आये हैं।

"बैठिये माताजी।" महाराज ने चन्द्रमुखी को सम्बोधित कर कहा।

"महाराज! मैं तो आपकी पुत्री समान हूँ?"

"वह आप आयु में हो सकती हैं। परन्तु पद आपका उससे उच्च है। आप राज-पुरोहित की पत्नी हैं। वह पद माता के समान ही उच्च है।"

तीनों बैठ गये। वृहस्पति बड़े ध्यान से यह सब देख रहा था। उसने महाराज के मुख पर बड़े ध्यान से देखा। तदपि वह मौन ही रहा।

बैठते ही महाराज ने कहना आरम्भ किया, "पण्डित विभूतिचरण आज यज्ञ के कर्मकाण्ड के लिए गठित उस समिति के सम्बन्ध में बातचीत करने के लिए आपके पास आयेंगे। हम समझते हैं कि उस उप-समिति की बैठकें इस भवन में ही होनी चाहिए। जब-जब भी उप-समिति की बैठक हो सभी सदस्यों का उसी प्रकार आदर-सत्कार होना चाहिए जैसेकि राजदरबार में हुआ करता है। यह उप-समिति मेरे तथा राज्य के कल्याण का मार्ग सुझाने के लिए गठित की गयी है। इस कारण जब भी उसकी सभा आवश्यक समझी जाय, की जाय और उसको राज्य की ओर से किया गया मानना चाहिए।

"इसके प्रबन्ध के लिए यहाँ का मुख्य कार्यकारी पार्षद नरसिंह देव आपकी सहायता करेगा।"

"एवमस्तु महाराज!"

"एक बात और। हमें जब भी अवकाश और आवश्यकता होगी इसी समय, इसी स्थान पर आपसे भेंट करने के लिए आया करेंगे।

"यह तो हुई यहाँ आने की बात।

"अब हम आपके सम्मुख अपनी एक समस्या प्रस्तुत करते हैं और उसका समाधान हमें तब करा दीजिएगा जब हम अगली बार आपसे भेंट करने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राएँ।

"समस्या यह है कि हमारी दो पत्नियाँ हैं। पहली पत्नी महारानी चन्द्रवती का एक पुत्र है। उसका नाम है राम। वह विक्रम से बड़ा है। उसे ग्रौर उसकी माता को हमें इस यज्ञ में निमन्त्रित करना चाहिए ग्रथवा कि नहीं? तथा यज्ञ में पत्नी के स्थान पर हम उसको बैठाएँ ग्रथवा दूसरी रानी दत्तदेवी को?

"बस यही समस्या है। ग्रब हम जाते हैं।"

इतना कहकर महाराज फटाफट उठे ग्रौर चल दिए।

शिवकुमार ग्रभी यज्ञशाला से बाहर निकला ही था कि उस भवन का प्रबन्धक नरसिंह देव उपस्थित हो गया। ऐसा ग्राज प्रथम बार नहीं हुग्रा था। ग्रपितु नरसिंह देव ने यह नियम बना लिया था कि ज्यों ही पण्डितजी महाराज यज्ञ-शाला से बाहर निकलें उसी समय उनसे परामर्श कर लिया जाय। दिन के समय यदि ग्रावश्यक कार्य होता तो वह ग्रा जाता ग्रन्यथा यह कार्य वह प्रातःकाल ही कर लिया करता था।

शिवकुमार उसको बाहर खड़ा देखकर बोला, "देवजी! ग्रपने भोजन की व्यवस्था के विषय में तो मैं पहले ही ग्रापको बता चुका हूँ। परन्तु ग्राज से भविष्य में जो कोई भी बाहरी व्यक्ति मुझसे मिलने के लिए ग्राये उसको मेरा नहीं ग्रपितु राज्य का ग्रतिथि मानकर उसी प्रकार उसका ग्रतिथि सत्कार होना चाहिए।"

शिवकुमार जबसे यहाँ ग्राया था, प्रबन्धक को उसकी यह दूसरी ग्राज्ञा थी।

पहली ग्राज्ञा तो उसने पहले दिन जब शिवकुमार उसमें निवास के लिए ग्राया था उस दिन देते हुए कहा था, "हमारे वस्त्र नित्य धुला करेंगे। प्रातःकाल हम ग्रल्पाहार के समय फल खाया करेंगे ग्रौर मध्याह्न को साधारण ग्रामीण भोजन करेंगे। मध्याह्नोत्तर शीतल पेय चाहिए, उसके साथ साधारण मिष्ठान्न की व्यवस्था हो। रात्रि को उसी प्रकार साधारण ग्रामीण भोजन ग्रौर तदुपरान्त दुग्ध।

"हमारे बिस्तर-बिछौने की किसी को चिन्ता करने की ग्रावश्यकता नहीं। हाँ, भवन की स्वच्छता का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए।

"हमारे प्रातःकाल यज्ञ के लिए ग्राधा पाव सामग्री, घी तथा यज्ञ की ग्रन्य सामग्री सूर्योदय से दो मुहूर्त पूर्व ही यज्ञशाला में रखी मिलनी चाहिए।"

इस ग्राज्ञा के उपरान्त ग्राज शिवकुमार ने यह दूसरी ग्राज्ञा दी थी। वह भी इस कारण कि महाराज ने इसका बार-बार ग्रौर विशेष उल्लेख किया था कि ग्रतिथियों का ग्रादर-सत्कार होना चाहिए।

नरसिंह देव पुराना प्रबन्धक था ग्रौर वह राजसी व्यवहार को जानता था। वह संकेत मात्र से ही सब कुछ समझ गया। उसको विस्मय था तो केवल इस बात का कि पण्डितजी ने ग्रभ्यागतों के लिए राजसी व्यवस्था की बात की है किन्तु स्वयं ग्रपना भोजन उन्होंने नितान्त ग्रामीण ही रखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज-पुरोहित निवास की परिधि में ही स्थित विशाल कृषि क्षेत्र में बहुत-कुछ उपजाया जाता था। अन्न, फल, साग-भाजी, शहद, दुग्ध, घृत आदि यह सब वहाँ उपलब्ध था। बाजार से लाने के लिए कुछ अधिक नहीं था। जो भी लाया जाएगा उसका मूल्य कौन देगा, यह नरसिंह देव जानता था।

हस्तिनापुर के आयुक्त द्वारा प्रदत्त पचास स्वर्ण में से चन्द्रमुखी के पास अभी सात स्वर्ण और कुछ रजत शेष थे। इस कारण उसको अभी इसकी चिन्ता नहीं थी। तदपि शिवकुमार इस दिशा में कुछ विचार करने लगा था कि जिससे उसको कुछ आर्थिक आय भी होने लगे।

उस स्थिति में एक बहुत ही सरल कार्य किया जा सकता था। अधिकांश ब्राह्मणकुमार उन दिनों वह कार्य किया करते थे। वह कार्य था विद्यार्थियों की पाठ्य पुस्तकें सुलेख में लिखकर बाजार में पुस्तक विक्रेता को देना। शिवकुमार भी कुछ ऐसा ही कार्य अपने लिए विचार करता था।

: २ :

उसी दिन की बात है। शिवकुमार तथा उसकी पत्नी और पुत्र अल्पाहार के लिए बैठे ही थे कि तभी महामात्य अपनी पत्नी और पुत्रवधू के साथ आ उपस्थित हुए।

शिवकुमार बोला, "पिताजी ! आज तो आप अल्पाहार के समय पर आए हैं अतः यहीं अल्पाहार ग्रहण करने की कृपा कीजिए।"

गंगादेवी बोली, "मैं तो अपने पुत्र बृहस्पति के साथ अल्पाहार लूंगी।"

चन्द्रमुखी ने उसी समय तीन अन्य चौकियाँ भोजनालय में बिछा दीं। शिवकुमार ने सेवक द्वारा नरसिंह देव के पास सूचना भिजवा दी कि घर पर तीन अतिथि पधारे हैं।

सब लोग यथास्थान बैठ गये। बृहस्पति को गंगादेवी ने अपने पास बैठा लिया था। वह उसने पूछने लगी, "मुझे पहचानते हो ?"

"हाँ, आप मेरी बड़ी माँ हैं।"

सबको यह सुनकर प्रसन्नता हुई।

इससे उत्साहित होकर बृहस्पति ने कहा, "आज मुझे एक अन्य बात स्मरण हो आई है ?"

"क्या ?" गंगादेवी ने पूछा।

"इस मकान में एक पण्डितजी रहा करते थे। आज प्रातः जब महाराज आए तो उनका नाम स्मरण आ गया।"

महामात्य ने विस्मय प्रकट करते हुए पूछा, "क्या नाम था उनका ?"

"उनका नाम गुरु चक्रपाणि था। यहाँ वे एक पाठशाला भी चलाते थे। मैं भी उनकी पाठशाला का विद्यार्थी था।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ग्रोह !" महामात्य के मुख से सहसा निकल गया।

वृहस्पति की ग्राँखें मुँदी हुई थीं। वह बता रहा था, "महाराज गुरुजी के पास भी उसी प्रकार ग्राकर बैठ जाया करते थे, जिस प्रकार ग्राज वे पिताजी के पास ग्राकर बैठे थे। यही कारण है कि मुझे उनकी स्मृति हो ग्राई।"

"तुम क्या पढ़ते थे ?"

"मुझे यहाँ मेरी माताजी ने भरती कराया था। मुझे स्मरण है कि मेरी माताजी मेरी बांह पकड़कर यहाँ लाई थीं ग्रौर गुरुजी के पास छोड़ गई थीं।

"मैं पन्द्रह वर्ष तक गुरुजी से पढ़ता रहा था किन्तु इस ग्रवधि में माताजी कभी मुझसे मिलने के लिए नहीं ग्राईं।

"वह पण्डितजी भी, जो उस दिन स्वर्ण का कुछ दे गये थे, इसी पाठशाला में पढ़ते थे। उनको पाठ स्मरण नहीं होता था तो गुरुजी मुझसे उनका कान खींचने के लिए कहा करते थे।"

"कौन थे वे ?"

"मैंने उस दिन उनसे कहा था कि मैं उनके गुरुजी को जानता हूँ। यह सुनकर वे हँस दिए थे ग्रौर कहने लगे कि गुरुजी का देहान्त हुए दस वर्ष हो गये हैं।

"मुझे पाठशाला में पढ़ाकर महाराज के सम्मुख उपस्थित किया गया था। मेरी नियुक्ति वहाँ सबको महाभारत पढ़कर सुनाने पर हुई थी। मेरा कार्य था प्रतिदिन प्रातःकाल महाराज के प्रासाद में जाना ग्रौर उनको महाभारत सुनाना। उसकी व्याख्या करना ग्रौर समय-समय पर महाराज की शंकाग्रों का समाधान भी करना।"

महामात्य ने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या था ?"

"रमण।"

"ग्रोह !" इससे ग्रधिक महामात्य के मुख से ग्रौर कुछ नहीं निकला। वह उसका मुख देखते रहे।

वृहस्पति की ग्राँखें मुँदी हुई थीं। वह कह रहा था, "तब एक दिन मुझे बहुत गर्मी लगी ग्रौर मैं ग्रचेत हो गया। फिर ग्रन्धकार···" इतना कहकर वृहस्पति ने ग्राँखें खोलीं ग्रौर फिर हँस पड़ा।

महामात्य तो वृहस्पति का कथन सुन चकित हो उसका मुख देख रहा था ग्रौर वृहस्पति हँसता हुग्रा ग्रपनी माँ से पूछ रहा था, "माँ ! तुम मुझे कहाँ से लाई हो ?"

गंगादेवी ने ग्रपने पति से कहा, "ग्राप तो पिछले छत्तीस वर्ष से महामात्य पद पर प्रतिष्ठित हैं। ग्राप किसी रमण को जानते हैं ?"

महामात्य को सब स्मरण हो ग्राया था। वह बोला, "मैं ही एक दिन पण्डित चक्रपाणि की पाठशाला में ग्राया था। मैंने उनसे किसी योग्य विद्वान् के विषय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पूछा था, जोकि नित्य प्रातःकाल महाराज को महाभारत सुनाया करे। उस समय पण्डितजी ने रमण नाम के एक सुन्दर युवक को भेज दिया था। वह युवक वास्तव में ही योग्य था और जहाँ तक मुझे स्मरण है वह तब भी समाधि लगा लेता था।

"एक दिन सहसा उसे तीव्र ज्वर आया और फिर चेचक निकल आई। वह तीव्र ज्वर से अचेत हो गया था और चेचक से ही उसकी मृत्यु हुई थी।"

"यह कब की बात है ?" गंगादेवी ने पूछा।

"इसे पाँच वर्ष से कुछ अधिक हो गये हैं। मैं तब भी विचार कर रहा था कि यदि रमण का विवाह हो जाय तो मैं उसको राज-पुरोहित पद पर नियुक्त करने का यत्न करूँ।"

सब लोग विस्मय में वृहस्पति का मुख देख रहे थे।

अपनी बात कहने के उपरान्त वृहस्पति ने अपनी आँखें खोल ली थीं और वह सबको अपनी ओर देखते पा स्वयं विस्मय कर रहा था।

उनको ऐसी स्थिति में देख वृहस्पति ने गंगादेवी से पूछा, "बड़ी माँ, क्या हुआ है ?"

"वही जो उस दिन हुआ था, जब तुमने मेरी गोद में बैठे हुए अमरूदों की कहानी सुनाई थी।"

"तो आपको मेरी इस कहानी पर विश्वास नहीं हुआ है ?"

अब हरिषेण ने कहा, "तुम बताओ, उस अन्धकार के बाद फिर क्या हुआ था ?"

"मुझे कुछ स्मरण नहीं आ रहा है। मुझे यही स्मरण आ रहा है कि एक दिन मटकी में से मिठाई निकालकर खाने पर मेरी माँ मेरे कान मरोड़ रही थी। एक लड्डू तो मेरे हाथ में था और एक मेरे मुख में। माँ ने जोर से कान मरोड़ा तो मैं रो पड़ा और मुख का लड्डू जमीन पर गिर गया।"

वह सुन सबको हँसी आ गई।

चन्द्रमुखी बोली, "यह आज से सात-आठ मास पूर्व की बात है।

"जब यह रोने लगा तो मेरे मन में आया कि मैं व्यर्थ ही इसको पीट रही हूँ। मैंने वे लड्डू तो इसके तथा इसके पिता के लिए ही बनाये थे। यह सोचकर मैंने इसका कान छोड़ दिया और इससे इतना ही कहा, 'मुझसे माँगकर क्यों नहीं खाये ?'

"यह बोला, 'आप बड़ी माँ के घर गई हुई थीं और मेरा मन लड्डू खाने को कर रहा था'।"

सभी के मुख गम्भीर थे। इन्हीं विचारों में सब अल्पाहार कर रहे थे। एंकाएक महामात्य का ध्यान शिवकुमार और उसकी पत्नी के सम्मुख रखे पत्तलों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चला गया। उसके स्वयं के, उसकी पत्नी तथा पुत्रवधू के सम्मुख तो चाँदी के थाल और कटोरों में अल्पाहार की सामग्री लगी थी, उसमें मिष्ठान्न और दूध आदि था। किन्तु शिवकुमार तथा उसकी पत्नी के सम्मुख पत्तल पर दो-दो केले रखे थे। एक-एक आम, कुछ खरबूजे की फाँकें रखी थीं।

हरिषेण ने पूछा, "पण्डितजी महाराज! हमें यह कृत्रिम भोजन क्यों करा रहे हो, जो स्वयं कर रहे हो वह हमें क्यों नहीं कराया?"

"आज प्रातःकाल महाराज आये थे। वे मेरे द्वारा नरसिंह देव को आज्ञा दे गये हैं कि मुझसे मिलने आने वालों का ठीक उसी प्रकार आदर-सत्कार किया जाना चाहिए जैसेकि महाराज के अतिथियों का होता है।

"इस कारण प्रतीत होता है कि प्रबन्धक ने महाराज की आज्ञा का पालन किया है।"

"और आपके लिए क्या महाराज ने फलों की व्यवस्था की हुई है?"

"यह मेरी अपनी व्यवस्था है। अपने विषय में मैं स्वयं को किसी के अधीन नहीं मानता।"

"किन्तु आप किस विषय में किसी के अधीन हो?"

"घर और बच्चों के विषय में मैं अपनी पत्नी के अधीन हूँ।"

सबको हँसी आ गई। गंगादेवी ने हँसते हुए कहा, "यदि चन्द्रमुखी चाहे तो आपको घर से बाहर भी कर सकती है?"

"हाँ, यह इसका अधिकार-क्षेत्र तो है। यदि चाहे तो कर सकती है। तदपि आज तक ऐसी परिस्थिति आई नहीं है।"

गंगादेवी ने बात को बदल दिया और वृहस्पति से पूछने लगी, "वृहस्पति! तुम्हें मिष्ठान्न रुचिकर है अथवा कि कदली फल?"

वृहस्पति के सम्मुख भी कदली फल रखा हुआ था, जिसे छीलकर वह खा रहा था।

इस प्रश्न पर वृहस्पति ने गंगादेवी के पास थाल में रखे मिष्ठान्न आदि तथा दूध से भरे कटोरे की ओर लालसा-भरी दृष्टि से देखा।

पण्डित हरिषेण इसका अभिप्राय समझ गया, "कोई है?" उन्होंने जोर से आवाज दी।

पण्डित हरिषेण की आवाज सुनकर बारह-तेरह वर्ष का एक सेवक उपस्थित हो गया। उसके आने पर पण्डितजी ने कहा, "प्रबन्धक से कहो कि एक छोटी थाली वृहस्पति के लिये भी मिठाई आदि भिजवा दे।"

शिवकुमार बोला, "इस लड़के का नाम मोहन है। यह जाति का अहीर है। मेरे यहाँ आने से पूर्व से ही यहाँ के माली के अधीन कार्य करता था। मैंने इसको घर के कार्य में लगा लिया है। माली को कह दिया है कि यदि उसे सहायक की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता है तो वह किसी अन्य को ढूंढ़ ले।

"मोहन यहाँ मेरा पहला शिष्य है। मैं इसे देवनागरी पढ़ाने लगा हूँ।"

रोहिणी ने पूछा, "आप वृहस्पति को नहीं पढ़ाते ?"

"नहीं, यह चन्द्रमुखी का पुत्र भी है और शिष्य भी।"

भोजनोपरान्त सब जब बैठकघर में आकर बैठ गये तो महामात्य बोले, "पण्डित शिवकुमार ! मैं तुमसे मिलने के लिए आने वाला था। मैंने जब यहाँ आने की इच्छा व्यक्त की तो श्रीमती गंगादेवी ने भी मेरे साथ आने की इच्छा व्यक्त कर दी। तब रोहिणी बोली कि वह भी अपनी सास के साथ चलेगी। उसका परिणाम यह हुआ कि आज प्रातः अल्पाहार के समय पुरोहितजी के यहाँ एक की अपेक्षा तीन अतिथि पधार गये।"

"दो दिन तक तो मैं इस नये स्थान पर इसकी देख-रेख और प्रबन्ध के विषय में और फिर इस स्थान पर अपना कार्यक्रम स्थिर करने में लीन था। आज मैं सब से पहले इस निवास-स्थान के लिए महाराज का धन्यवाद करने जाने वाला था। परन्तु मैं प्रातःकाल यज्ञशाला से निकला भी नहीं था कि महाराज स्वयं ही पधार गये।

"उसके बाद मेरा विचार था कि में महामात्य के भवन जाऊँगा। उसके लिए भी आपने स्वयं कृपा कर दी है।

"आपके दर्शन करने के उपरान्त मेरा विचार पण्डित विभूतिचरण के पास अभी जाने का था। परन्तु मेरे पास उनकी ओर से सूचना आ गई है कि वे दिन में किसी समय मुझसे मिलने के लिए आने वाले हैं।

"इसके अतिरिक्त एक अन्य व्यक्ति से भी मिलने का मेरा विचार था। उनके पास कदाचित् सायंकाल तक जाऊँगा।"

"कौन है वह व्यक्ति ?"

"वह है सेठ घनश्याम बाटक। उन्होंने मेरे निवास के लिए तथा पाठशाला के लिए एक भवन देने का वचन दिया था। मैंने उनसे कहा था कि इस विषय में मैं उनसे फिर कभी मिलूंगा। इसलिये उनके पास जाना आवश्यक है।"

"किन्तु अब उसके पास जाने की क्या आवश्यकता है ?"

"मेरा विचार अभी भी यहाँ उपवेदों की शिक्षा के लिए पाठशाला चलाने का है। इसमें मैं सेठ की सहायता चाहता हूँ। इस भवन के विशाल प्रांगण में वहाँ वट-वृक्ष है। वहाँ पर बैठकर मैं वह पाठशाला चलाने का विचार कर रहा हूँ।"

"आप पाठशाला आरम्भ कीजिये। उसमें पहला शिष्य मैं दूंगा।" महामात्य ने अपनी पत्नी गंगादेवी की ओर देखते हुए कहा।

शिवकुमार ने पूछा, "कौन है वह ?"

"गंगादेवी का एक पुत्र है। उसकी आयु चौदह-पन्द्रह वर्ष की है। इस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह हरिद्वार के याज्ञवल्क्य आश्रम में पढ़ रहा है। मैं उसे वहाँ से वापस बुलाकर उसे दर्शनशास्त्र पढ़ाने का विचार कर रहा हूँ।

"उसे वापस लाने के लिये मैंने एक अश्वारोही दूत भेजा हुआ है और मैं समझता हूँ कि बीस-बाईस दिन में वह उपस्थित हो जायेगा।"

सहसा चन्द्रमुखी ने कहा, "बहिन रोहिणी ने अपने होने वाले बालक के पिता को छिपाकर रखा हुआ है। न जाने वह सौभाग्यशाली दिन कब आयेगा जब वह प्रकट कर हमको दर्शन करायेगी ?"

रोहिणी की अपेक्षा इसका उत्तर महामात्य ने दिया। वे बोले, "रोहिणी का पति सरकारी अधिकारी है। उसका पद है धर्म तथा दण्ड-व्यवस्था। वह प्रातः-काल सूर्योदय से चार घड़ी पूर्व उठकर चला जाता है। राजधानी की धर्म-व्यवस्था का ध्यान रखना उसका सबसे बड़ा उत्तरदायित्व है। मध्याह्नोत्तर वह भोजन के लिये घर आता है, यही कारण है कि आज तक आपकी उसके साथ भेंट नहीं हो पायी है। भोजनोपरान्त केवल दो घड़ी के लिये ही वह सायंकाल अपने कार्यालय जाया करता है। उस समय वह अत्यावश्यक अथवा त्वरित करने वाले कार्य को देखता है।

"नगर में धर्म-व्यवस्था भंग करने वाले न दिन देखते हैं और न रात ही। इस कारण उसको अपने कार्य से बहुत कम अवकाश मिलता है।"

"तब तो उनको महापुरुष ही मानना चाहिए।" शिवकुमार ने कहा। फिर बोला, "उनके दर्शन तो उनके द्वार पर ही जाकर किये जा सकते हैं। किसी दिन सायंकाल हम लोग भृगु महाराज से मिलने के लिए आयेंगे।"

महामात्य ने उठते हुए कहा, "अब हमें चलना चाहिए। मेरा कार्यालय जाने का समय हो गया है।"

महामात्य का रथ भवन के बाहर ही खड़ा था। महामात्य का परिवार उसमें आरूढ़ हुआ और अपने निवास की ओर चल दिया।

शिवकुमार यह भली-भाँति समझता था कि पुरोहित यजमान के पास याचना करने के लिए नहीं जाया करता है। उसको भली-भाँति विदित था कि उसके श्वसुर को आयुक्त के सेवक बुलाने के लिए आया करते थे। तदपि वह यह अनुभव करता था कि समय-समय पर महाराज से मिलते रहने का संयोग बनाना ही चाहिए। वह चाहता था कि किसी प्रकार महाराज तक पहुँचने का मार्ग बनाना ही चाहिए। प्रातःकाल जब महाराज आये तो उस समय पूछने का अवकाश नहीं था। क्योंकि वे जल्दी में आये थे और उसी प्रकार जल्दी में चले भी गये थे।

अल्पाहार के उपरान्त मध्याह्न के भोजन तक का समय शिवकुमार ने अपने स्वाध्याय के लिए नियत किया हुआ था। उसका विचार यह भी था कि वह नित्य प्रातः के यज्ञ के बाद चार घड़ी लेखन-कार्य भी करे। उसका लेख सुन्दर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और स्पष्ट था। इसलिये वह सोचता था कि उसको इस कार्य से अच्छे पैसे मिल सकते हैं।

तदनुसार जब महामात्य का परिवार गया तो शिवकुमार अपने अध्ययन-कक्ष में अध्ययन के लिये चला गया। उसका अनुभव था कि महाभारत का एक पारायण एक वर्ष में पूर्ण हुआ करता था।

भोजनोपरान्त दो घड़ी-भर विश्राम कर वह बैठक में आया तो पण्डित विभूतिचरण को वहाँ बैठे प्रतीक्षा करते देख नमस्कार कर पूछने लगा, "पण्डित जी महाराज ! कब से विराजमान हैं ?"

"आधी घड़ी पूर्व आया था। सेवक ने बताया कि इस समय आप विश्राम कर रहे हैं और चतुर्थ प्रहर आरम्भ होते ही आप बैठक में पधारेंगे।"

"मेरा विचार है कि मैं अपना पूर्ण दिर-भर का कार्यक्रम लिखकर बाहर द्वार पर लगा देना चाहता हूँ जिससे आगन्तुको को सुविधा रहे और वे व्यर्थ में अपने समय का अपव्यय करने से वच जायें।"

विभूतिचरण को इसमें कहने के लिये कुछ था ही नहीं, इसलिये उसने अपने आने का कारण बताते हुए कहा, "मैं समझता हूँ कि अश्वमेध सम्बन्धी समिति की बैठक अब शीघ्र बुला लेनी चाहिए। मैं इसी सम्बन्ध में आपसे पूछने के लिये आया था।"

"मेरे विचार से तो कल ही यहाँ पर इस समिति की बैठक आरम्भ हो सकती है।"

"बैठक क्या यहाँ हुआ करेगी ?"

"हाँ। क्यों इसमें कुछ हानि है ? महाराज को अश्वमेध के लिए प्रेरित किया जा रहा है। इसलिये मैं यह उचित समझता हूँ कि तत्सम्बन्धी बैठक महाराज के पुरोहित के निवास पर ही हो ?"

"कौन-सा समय आप इसके लिए उपयुक्त समझते हैं ?"

"मेरी सदा से यह धारणा रही है कि कोई भी कार्य क्यों न हो जबतक उसको प्रारम्भ न किया जाय, वह समाप्त नहीं हो सकता। इसलिये यदि हमें कार्य करना ही है तो निरन्तर प्रतिदिन उस समिति की तबतक बैठक करते रहना चाहिए जबतक कि इस योजना का पूर्ण विवरण तैयार न हो जाय।

"बैठक किस समय आरम्भ हो, इसका निर्धारण आप अन्य सब सदस्यों की सुविधा को ध्यान में रखकर स्वयं कर लीजिये।"

"मैं समझता हूँ कि दिन का चतुर्थ प्रहर इस कार्य के लिये उपयुक्त है। अतः कल से नित्य चतुर्थ प्रहर उक्त समिति की बैठक आपके निवास-स्थान पर हुआ करेगी।" पण्डित विभूतिचरण ने अपना निश्चय बता दिया।

"सब सदस्यों को इस विषय में सूचित कर दीजिये।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जी हाँ, इसके संयोजक के नाते मैं इसकी सूचना सब सदस्यों को दे दूँगा।"

शिवकुमार समझ गया था कि हस्तिनापुर के आयुक्त के पुरोहित की अपेक्षा महाराज के पुरोहित का कार्य सर्वथा भिन्न प्रकार का होता है। राज-पुरोहित के पद पर नियुक्त होने के प्रथम दिन से ही वह यह अनुभव करने लगा था कि मानो वह किसी बहुत बड़े संस्थान का अधिपति है। जबकि हस्तिनापुर के पुरोहित को उसने जीवन में कदाचित् ही इतना व्यस्त पाया हो।

विभूतिचरण गया ही था कि तभी महाराज का प्रतिहारी पण्डित शिवकुमार के लिए महाराज की ओर से एक पत्र लेकर उपस्थित हो गया।

पत्र में लिखा था, "कल पूर्णिमा है। पूर्णिमा को सूर्योदय के एक घड़ी पश्चात् राज्य भवन में यज्ञ का विधान चला आ रहा है। अब तक कोई भी राज्य-पुरोहित के पद पर प्रतिष्ठित न होने के कारण समय-समय पर यथोचित उपलब्ध व्यक्ति कों इस कार्य के लिये आमन्त्रित कर लिया जाता था। अब राज-परिवार के स्थायी पुरोहित महोदय ही इस सुअवसर पर राज्य-परिवार के पुरोहित का कार्य सुसम्पन्न करते हुए हमें कृतार्थ करेंगे।

"राज-परिवार की यह प्रबल आकांक्षा है कि राज-पुरोहित महोदय सपत्नीक पधारकर इस पूर्णिमा के यज्ञ में अध्वर्यु का कार्य सम्पन्न कर कृतार्थ करें।"

तदनुसार दूसरे दिन प्रातः यथासमय राजपुरोहित पण्डित शिवकुमार अपनी पत्नी सहित राजभवन की यज्ञशाला में उपस्थित हो गये।

अपने पूर्ण परिवार सहित महाराज उनसे पूर्व ही वहाँ पर उपस्थित थे। महाराज के साथ उनकी द्वितीय पत्नी और उनका पुत्र विक्रम चन्द्रगुप्त के अतिरिक्त महाराज के भाई राजा कच्छ की पत्नी, उनकी दोनों कन्यायें और एक पुत्र भी उनके साथ उपस्थित थे।

पण्डित शिवकुमार ने विधिवत् यज्ञ कराया और तदुपरान्त अपना उपदेश आरम्भ करते हुए उसने कहा, "न्याय दर्शन में बुद्धि की तुलना एक प्रज्वलित दीपक की लौ से निकलने वाली किरणों से की गई है। सांख्य दर्शन में बुद्धि और मन को महत् का अंश बताया है। मूल प्रकृति सत्व, रजस् और तमस् की साम्यावस्था ही है। परमात्मा के तेज से यह साम्यावस्था भंग हो जाती है और तब प्रकृति परमाणु ऐसे प्रज्वलित हो उठते हैं जैसे अरणि से अग्नि निकलने पर दीपक जल उठता है और फिर उसमें से दीपक की लौ की भाँति किरणें निकलने लगती हैं। यह अवस्था महत् कहाती है।

"यही जब मनुष्य के मस्तिष्क में स्थित हो जाती है तो जो किरणें इस महत् के अंश में से निकलती हैं वह मन में संचित ज्ञान को प्रकाशित करती हैं और जीवात्मा उस ज्ञान का प्रयोग करता है।

"परन्तु महत् के परमाणुओं के संयोग तीन प्रकार के होते हैं। एक तो वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो सत्वगुण प्रधान होते हैं। दूसरे रजस् गुण प्रधान होते हैं और तीसरे तमस् गुण प्रधान होते हैं। अतः जो प्रकाश महत् के परमाणुओं में से निकलता है वह तीन प्रकार का होता है : सत्व गुण युक्त, रजस् गुण युक्त और तमस् गुण युक्त।

"इसी से बुद्धि भी तीन प्रकार की होती है। वह है सात्विकी, राजसी, और तामसी। यह विभाजन महत् परमाणुओं से निकलने वाली तीन प्रकार की किरणों के कारण ही है।

"सात्विकी बुद्धि धर्माधर्म में तथा कर्तव्याकर्तव्य और बन्ध एवं मोक्ष में भेद जानती है।

"राजसी बुद्धि तो कर्म करना जानती है। वह धर्माधर्म के झगड़े में नहीं पड़ती। तामसी बुद्धि को श्वेत काला और काला श्वेत दिखाई देता है। यहाँ तक कि वह धर्म को तो अधर्म समझने लगती है और अधर्म को धर्म।

"अतः भगवान् कृष्ण ने बार-बार कहा है कि बुद्धि को सात्विकी बनाना चाहिए।

"इसीलिये स्थितप्रज्ञ की महिमा का उन्होंने वर्णन किया है। जो व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार का त्याग कर विचार करता है, वह सात्विकी बुद्धि का फल प्राप्त कर लेता है।

"उसकी बुद्धि एक स्थिर ज्वाला की भाँति ज्ञान को प्रकाशित कर जीवात्मा द्वारा उसका सदुपयोग कराती है।"

पण्डित शिवकुमार का यह उपदेश सुनकर महाराज समुद्रगुप्त यह भली-भाँति समझ गये कि उनका पुरोहित कोरा कर्मकाण्डी पण्डित नहीं अपितु सुविज्ञ दार्शनिक भी है। इससे शिवकुमार के प्रति उनके मन में मान बढ़ गया।

यज्ञ तथा उपदेश में चार घड़ी समय व्यतीत हो गया। तबतक अल्पाहार का समय हो गया था। सभी यज्ञकर्ता यज्ञशाला से उठकर अल्पाहार के लिए चल दिये।

समस्त राज-परिवार जब अल्पाहार करने के लिए बैठा तो महाराज ने कहा, "पण्डितजी! आप अपने बच्चों को नहीं लाये?"

"महाराज! आपका निमन्त्रण सपत्नीक था, सपरिवार नहीं। परिवार तो पति-पत्नी से बड़ा भी हो सकता है। और हमारा परिवार उस दृष्टि से बड़ा ही है।"

"हम तो आपके बड़े सुपुत्र से मिलने की इच्छा करते थे। कल महामात्य ने हमें बताया कि वह अपने पूर्वजन्म की कथा बताता है।

"कल महामात्य के सम्मुख जो अपने पूर्वजन्म की एक घटना का वर्णन उसने किया है, वह महामात्य ने हमें बताया था। वह वर्णन पूर्णतया सत्य है।

"उन्होंने हमें बताया है कि उसने स्वयं को पूर्व जन्म का रमण बताया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रमण बहुत सुन्दर और विद्वान् युवक था। मैंने उसे नित्य महाभारत की कथा कहने के लिए नियुक्त किया था। दो वर्ष तक बड़ी ही कुशलता से उसने यह कार्य किया था। योग-क्रियाओं का अभ्यास भी वह किया करता था। उसे चेचक की छूत लग गयी और उससे पीड़ित होकर वह मृत्यु को प्राप्त हुआ था।"

यद्यपि अल्पाहार के लिए बहुत ही स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ जैसे खीर, पूरी आदि रखे हुए थे किन्तु सभी उपस्थित व्यक्ति उसकी अपेक्षा बृहस्पति की बातों में अधिक रस ले रहे थे।

महारानी ने उत्सुकता व्यक्त करते हुए पूछा, "बालक की आयु क्या है ?"

"वह अभी केवल चार वर्ष का ही है। तदपि देववाणी की दूसरी पुस्तक पढ़ रहा है। जिस पाठ को वह एक बार पढ़ लेता है उसको वह तुरन्त कण्ठस्थ हो जाता है।"

"पण्डितजी ! एक दिन अवश्य उसे यहाँ लाइये। वह निश्चित ही कोई पूर्व जन्म का पुण्यात्मा है, हम उसके दर्शन करेंगे।"

"तब आगामी पूर्णिमा को मेरे समस्त परिवार को इस यज्ञ के लिए आमन्त्रित करिये।"

इसके बाद शिवकुमार बोला, "कल महाराज जब मेरी यज्ञशाला में पधारे थे तो बृहस्पति बड़े ध्यान से आपको देख रहा था। और आपके चले जाने के उपरान्त कह रहा था कि आप महाराज समुद्रगुप्त हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि वह आपको पूर्णतया जानता है।"

सहसा महाराज ने वार्त्तालाप का विषय ही बदल दिया। उन्होंने कहा, "अब अश्वमेध यज्ञ होगा। पण्डितों के दोनों पक्ष आपके सुझाव पर सहमत हो गये हैं। जैसाकि आपने कहा था कि यज्ञ तो होना चाहिए, उसका नाम भी अश्वमेध यज्ञ ही होगा किन्तु उसका विधि-विधान आज के समाज के प्रचलन तथा रीति-रिवाज के विधि-विधान के अनुसार किया जाय।

"महामात्य भी कहते थे कि अश्वमेध यज्ञ द्वारा देश में एक साम्राज्य होना न तो आवश्यक है न ही सम्भव। परन्तु आपके विद्वत्परिषद् में दिये गये भाषण ने सबकी बुद्धि में यह अंकित कर दिया है कि यज्ञ तो राज्य में संस्कृति के पोषण के लिए होता है। यह आज तथा कल, इस प्रकार सभी युगों में हितकर है। रही बात यज्ञ के विधि-विधान की, वह नितान्त गौण है। उसमें यथोचित परिवर्तन किये जा सकते हैं। आपने कुछ अश्वमेध यज्ञों के उदाहरण से बताया है कि उनके विधि-विधान में अन्तर रहा है।

"अतः मैं भी समझ गया हूँ और यज्ञ का विरोध करने वाले पण्डित भी समझ गये हैं कि यज्ञ से देश और राष्ट्र को लाभ होने वाला है। इसलिये यज्ञ तो अब होना ही चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इसमें प्रथम समस्या तो यह है कि मैं अपने परिवार के उस अंश को भी निमन्त्रण दूं अथवा न दूं जोकि चिरकाल से उज्जयिनी में रह रहा है।"

शिवकुमार ने सुझाव दिया, "महाराज! जो लोग यह कहते हैं कि परिवार के उस अंश को जो उज्जयिनी में रहता है, निमन्त्रण नहीं देना चाहिए, उसके लिये वे क्या युक्ति प्रस्तुत करते हैं ?"

"उनकी युक्ति तो बड़ी सरल है। वे कहते हैं कि परिवार का जो अंश परिवार के दुःख-सुख में सम्मिलित नहीं, उनको इस प्रकार के महान् कार्य में सम्मिलित करना उचित नहीं।

"आज से पाँच वर्ष पूर्व जब हम सौराष्ट्र में शकों से युद्ध करने जा रहे थे तो हमने अपने बड़े पुत्र राम को उस युद्ध में भाग लेने के लिये कहा था। उस समय उसकी आयु कम नहीं, सोलह वर्ष की थी।

"यह विक्रम चन्द्रगुप्त उस समय हमारे साथ था। उस समय हम चाहते थे कि राम भी हमारे साथ युद्ध में भाग लेकर कीर्ति अर्जित करे। तब उसकी माता का पत्र प्राप्त हुआ कि राज्य की सेना के सभी सेनापति क्या समाप्त हो गये हैं जो महाराज को उसके पुत्र की आवश्यकता आन पड़ी है ?

"इस पत्र से हमारे मन्त्रिमण्डल में रोष फैल गया था। यहाँ तक कि हमारे महामात्य भी अब यही कहते हैं कि वे माता-पुत्र इस योग्य नहीं कि उनको यहाँ आमन्त्रित किया जाय।"

शिवकुमार बोला, "परन्तु महाराज! यह युद्धभूमि नहीं, यज्ञ भूमि है। इसलिये इस निमन्त्रण की उस निमन्त्रण से तुलना करना युक्तियुक्त नहीं है।

"ऐसा प्रतीत होता है कि किसी अभिप्राय विशेष से महारानीजी अपने पुत्र राम से अत्यधिक स्नेह रखती हैं। यही कारण है कि उन्होंने अपने पुत्र को नर-रक्त से अपने हाथ रँगने के लिए नहीं भेजा होगा।

"परन्तु महाराज! यहाँ का निमन्त्रण तो युद्ध करने के लिए नहीं अपितु शान्ति स्थापना के लिये है।

"इसलिए मेरी सम्मति तो यही है कि यज्ञ जैसे कार्य में परिवार के सब सदस्यों को आना चाहिए।"

महाराज बोले, "महामात्य का कहना है कि हमारी प्रथम पत्नी हमारी अर्द्धांगिनी बनकर यज्ञ में सम्मिलित होना चाहेगी। इस प्रकार एक विपरीत विचार वाला आसन पर आसीन हो जायेगा।"

शिवकुमार का कहना था, "महाराज! यह तो आवश्यक नहीं कि जो रानी आपके साथ यज्ञ पर बैठेगी उसका पुत्र ही युवराज पद का अधिकारी होगा।

"युवराज तो वह ही बनेगा, जिसे प्रजा और राज्य के विद्वज्जन उचित समझेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ग्राज देश में एक शूरवीर, योद्धा नरेश की नितान्त ग्रावश्यकता है। भारत भूमि पर ग्रभी विधर्मियों के शासन का ग्रन्त नहीं हुग्रा है।

"विधर्मी से मेरा ग्रभिप्राय उन लोगों से है जो प्रजा के धर्म से विपरीत ग्राचरण करते हैं। वे शासन में भी इस बात का विचार करते हैं कि विधर्मियों को वरीयता न दी जाय। धर्म ग्रौर जाति से भिन्न ग्रपने संगठन के बल से प्रजा को पद-दलित कर रहे हैं।

"ऐसी स्थिति में भारत का सम्राट् तो कोई शूरवीर, युद्धकला में दक्ष ग्रौर शासन में सिद्धहस्त होगा।

"ऐसी ग्रवस्था में महाराज के साथ यज्ञ में बैठने से किसी को युवराज की माता बनने का ग्रधिकार किस प्रकार प्राप्त हो जाता है ?"

"परन्तु पण्डितजी ! क्या ऐसा नहीं हो सकता कि महाराज का एक पुत्र तो सेनापति हो ग्रौर दूसरा शासक हो।" विक्रम ने सन्देह व्यक्त किया।

"ऐसा भी हो सकता है। परन्तु ऐसा तब ही हो सकता है जब किसी में शासक बनने का गुण ग्रौर योग्यता होगी। ग्रापको विदित होना चाहिए कि शासन ग्रौर प्रजा में सनातन ग्रनुबन्ध चला ग्राया है। जो शासक उस ग्रनुबन्ध का पालन नहीं करेगा उसे शासन से च्युत करने का ग्रधिकार प्रजा को है।"

"क्या है वह ग्रनुबन्ध ?"

"महाभारत में एक उपाख्यान है।

"प्राचीन काल में एक राजा हुए थे। उनका नाम था वेन। वह इतना कामाभिभूत हो गया था कि नितान्त चरित्रहीन हो गया। इस प्रकार वह प्रजा को कष्ट देने लगा। तब ऋषियों ने एकमत होकर उसके नाश का उपाय सोचा ग्रौर फिर मन्त्रपूत कुशाग्रों द्वारा उसको मरवा डाला। मन्त्रपूत कुशा से ग्रभिप्राय है ऋषियों द्वारा सुशिक्षित ग्रौर प्रशिक्षित सामान्य प्रजा, जिसे वेन साधारण घास-फूस-सा समझकर उसपर ग्रत्याचार करता था। उसके द्वारा ऋषियों ने उसको मरवाया था।

"वेन को मारने के उपरान्त राजा की खोज ग्रारम्भ हुई। ग्रनेक प्रत्याशी थे इसके लिए। तब पृथु नाम के एक व्यक्ति को इसके लिए उपयुक्त समझा गया। उसमें शासक बनने के सारे गुण देखकर उसको शासक बना दिया गया।

"पृथु को शासक बनाने से पूर्व उससे शपथपूर्वक वचन लिया गया कि वह प्रजा में किसी प्रकार भेद किये बिना उस पर धर्म का शासन करेगा। वह सदा विद्वज्जनों का समादर करेगा ग्रौर उनके परामर्शानुसार राज्य का शासन करेगा।

"उससे एक शर्त यह भी कराई गई कि विद्वानों से वह किसी प्रकार का राज-कर नहीं लेगा।

"जब पृथु ने यह सब स्वीकार किया ग्रौर उसने शपथ ग्रहण की तब उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्याभिषेक किया गया था।"

राजकुमार ने पूछा, "तो क्या आप समझते हैं कि आज इस कलियुग में भी ऐसे ऋषिगण विद्यमान हैं जोकि वैसा ही चमत्कार करने में कुशल हैं जैसाकि वेन राजा के समय में वे कर पाये थे?"

शिवकुमार ने समझाया, "राजकुमार! उन्होंने किसी प्रकार का चमत्कार नहीं किया था। चमत्कार तो घर-घर में पुरोहित का कार्य करने वाले विद्वानों ने किया था। अपने नित्य प्रति के उपदेशों से उन्होंने अपने यजमानों को इस बात के लिए प्रेरणा दी थी कि जिसके कारण उन्होंने वेन के अत्याचार और कुशासन को सहन करना स्वीकार नहीं किया। विद्वान् व्यक्ति तो राजा और राज्य से भी बलवान होता है।"

फिर पण्डित शिवकुमार ने महाराज को समझाते हुए कहा, "महाराज! पत्नी तो विवाह के समय भी पति के साथ यज्ञ में बैठती है। परन्तु यह तो इस बात का प्रमाण नहीं है कि उसका पुत्र निश्चित ही पिता के समान राज्यशासन के लिए सद्गुण और सत्कर्म सम्पन्न होगा।

"मनुस्मृति तथा वेद में भी यह कहा है कि वही पुत्र अपने पिता का उत्तराधिकारी हो सकता है जो पिता के सद्कर्मों को चालू रखने में समर्थ हो।"

"पण्डितजी! हमारे महामात्य पण्डित हरिषेण विद्याभूषण हैं, तदपि हम देखते हैं कि उनका कथन आपके कथन के सर्वथा विपरीत है। इसका क्या कारण है?"

"महाराज! जहाँ तक मैं समझता हूँ कि वे कदाचित् वैसा नहीं कहते होंगे जैसा कि आप समझ रहे हैं। राज्य के महामात्य होने से सम्भव है उनको कुछ इस प्रकार की सूचना हो कि जिसके आधार पर वे इस परिणाम पर पहुँचे हों कि महाराज के ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त को वे राज्य-पद के सर्वथा अयोग्य मानने लगे हों। महामात्य होने के नाते वे राज्य की न्यायपीठ के भी मन्त्री हैं और उन्होंने यह निर्णय कर लिया होगा कि रामगुप्त योग्य शासक बनने के कदापि योग्य नहीं है। यह तभी सम्भव है कि जब उनके पास इसका सुदृढ़ प्रमाण हो कि रामगुप्त आपके द्वारा प्रचलित श्रेष्ठ कर्मों का प्रचलन नहीं रख पायेगा।

"तदपि मेरी तो यही सम्मति है कि रामगुप्त की माता के आपके साथ यज्ञ में दीक्षित हो जाने से ही उन्हें युवराज की माता घोषित नहीं समझा जा सकता है।

"रामगुप्त के युवराज पद पर आसीन होने के लिए उसकी माता की योग्यता किसी प्रकार सहायक नहीं हो सकती। इसके लिए तो पुत्र की योग्यता ही देखी और परखी जायेगी।"

महाराज ने इस विवाद को समाप्त करते हुए कहा, "हमारी दृष्टि में आपकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात उचित प्रतीत होती है। इसलिए हम इस विषय पर आपके साथ मिलकर पण्डित हरिषेण से विचार-विमर्श करना चाहते हैं।"

"मैं महामात्य को श्रेष्ठ विद्वान् और योग्य प्रबन्धक मानता हूँ। तदपि मेरा यह मत है जिसे मैं युक्ति और प्रमाण सहित उनके सम्मुख प्रकट करने के लिए उद्यत हूँ।"

"हमें यह सुनकर प्रसन्नता हुई है कि यज्ञ की तैयारी से पूर्व हम इस विषय पर निर्णय कर लेना चाहते हैं।"

इस प्रकार उस दिन यह विवाद यहाँ पर समाप्त हो गया।

पुरोहितजी महाराज को उस दिन दक्षिणा में दस स्वर्ण प्राप्त हुए। घर लौटते हुए पण्डित शिवकुमार अपने मन में विचार कर रहा था कि क्या यह धन उसका अपना है? इसे किसी प्रकार वेतन का कोई रूप तो नहीं समझा जा सकता?

पण्डित शिवकुमार की दृष्टि में यह धनराशि उस कार्य के लिए, जो उसने प्रातःकाल करवाया था, अधिक अनुभव हो रही थी।

: ३ :

शिवकुमार इससे पूर्व सायंकाल के समय सेठ घनश्याम बाटक से मिलने के लिए गया। उसने सेठ को बताया कि महाराज ने उसको राज-पुरोहित के पद पर नियुक्त कर दिया है और उसके आवास के लिए बहुत विशाल भवन और उद्यान आदि का प्रबन्ध हो गया है।

यह सुनकर सेठ ने कहा, "पण्डितजी! आपको पाटलिपुत्र में स्थिर होते देख हमें अत्यधिक प्रसन्नता हुई है।

"तदपि जब कभी भी आप महाराज के अतिरिक्त किसी सत्ताविहीन धनिक की सहायता की आवश्यकता अनुभव करें, तदर्थ आपके लिए यह द्वार सदा खुला मिलेगा। अपनी सामर्थ्यानुसार मैं आपकी सेवा के लिए तत्पर हूं।"

शिवकुमार को यह आश्वासन सन्तोषजनक लगा और वह प्रसन्नचित् घर लौट आया।

उस दिन मध्याह्नोत्तर चतुर्थ प्रहर प्रारम्भ होते ही 'यज्ञ कर्म-काण्ड समिति' की प्रथम बैठक राज-पुरोहित के निवास-स्थान पर आयोजित थी।

उस समिति में राज्य की विद्वत्परिषद् की ओर से परिषद् के अध्यक्ष पण्डित विभूतिचरण, राजधानी के संस्कृत विद्यालय के प्रधानाचार्य पण्डित चतुरानन मिश्र, पण्डित चन्द्रमणि वशिष्ठ, न्यायमूर्ति पण्डित विद्याचरण तथा युवक ब्राह्मण कवि कामिनीकान्त मयूर, ये पाँच सदस्य नियुक्त थे। दो सदस्य राज्य के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित थे। वे थे महामात्य पण्डित हरिषेण और राज-पुरोहित पण्डित शिवकुमार न्यायभूषण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सात सदस्यों की उप-समिति की बैठक में प्रथम यह निश्चय हुआ कि विद्वत्परिषद् का अध्यक्ष ही इस समिति का भी अध्यक्ष हो।

इसके उपरान्त महामात्य ने समस्या उपस्थित की कि महाराज के साथ यज्ञ पर किस पत्नी को बैठाया जाना चाहिए।

पण्डित शिवकुमार ने कहा, "यह समिति तो यज्ञ के कर्मकाण्ड एवं विधि-विधान का निर्णय करने के लिए नियुक्त की गई है। यज्ञ-संचालन का प्रबन्ध इस समिति का विषय नहीं है।"

पण्डित हरिषेण ने कहा, "यज्ञ-संचालन क्या यज्ञ का अंग नहीं ?"

"है। परन्तु वह तो विचाराधीन नहीं है। यज्ञ की अन्य बातें भी इस समिति के विचार-क्षेत्र में नहीं आतीं।

"उदाहरण के रूप में यह इस समिति के विचार का विषय नहीं है कि उस यज्ञ में किस-किस देश के राजा को अथवा किस-किस श्रेष्ठ नागरिक को विशेष निमन्त्रण भेजा जाय अथवा किस-किस को सामान्य रूप से आमन्त्रित किया जाय। इसी प्रकार किसी को इस यज्ञ में सम्मिलित होने से वंचित भी किया जाना चाहिए अथवा कि नहीं, यह तथा इसी प्रकार के अन्य सभी विषय जो यज्ञ सम्बन्धी तो हो सकते हैं किन्तु वे इस समिति की कार्य-परिधि में नहीं आ सकते।"

"तो इस बात का निर्णय कौन करेगा ?"

"यह महाराज का अपना निजी विषय है कि यज्ञ में वे अपनी अर्द्धांगिनी के रूप में अपनी पहली पत्नी को बैठाना चाहते हैं अथवा कि दूसरी को। इतना तो निश्चित है कि दोनों को समान सम्मान नहीं मिल सकता। उसका कारण यह है कि एक पत्नी के रहते हुए स्मृति ग्रन्थ दूसरे विवाह की स्वीकृति नहीं देते। तदपि राजा यह करते हैं और प्रजा भी इसे सहन कर लेती है। परन्तु यज्ञ की दृष्टि से यह अवैधानिक है।

"मैं पुनः कहना चाहता हूँ कि यह सब होते हुए भी, यह विषय हमारी इस उप-समिति की विचार-परिधि में नहीं आता। हमारी समिति का गठन यज्ञ के कर्मकाण्ड के विषय पर हुआ है। कर्मकाण्ड में यह उल्लिखित नहीं है।

"जहाँ तक यज्ञ में उपस्थित होने वाले व्यक्तियों का सम्बन्ध है, हम सिद्धान्त का ही निश्चय कर सकते हैं, किसी व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं दे सकते।

"उदाहरणार्थ हम यह निश्चय तो कर सकते हैं कि जो व्यक्ति अपराधी घोषित किया गया हो उसे यज्ञ में सम्मान नहीं दिया जाना चाहिए। परन्तु इसके लिए हम किसी देवदत्त अथवा सोमदत्त का नामोल्लेख नहीं कर सकते। इसका निर्णय राज्याधिकारी ही करेंगे।"

महामात्य ने शिवकुमार की युक्ति को स्वीकार करते हुए कहा, "ठीक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बात का निश्चय राज्य ही करेगा कि रामगुप्त की माता अथवा स्वयं रामगुप्त यज्ञ में बैठने के अधिकारी हैं अथवा नहीं।"

इस प्रकार यह समस्या समिति के विचार से टल गई।

शिवकुमार ने निर्देश दिया कि इस निर्णय को लिख लिया जाय।

यद्यपि महामात्य नहीं चाहते थे कि यह बात लिखित रूप में रखी जाय किन्तु इसको अस्वीकार करने के लिए उनके पास कोई युक्ति अथवा तर्क नहीं था, अतः वे मौन ही रहे।

समिति के सम्मुख जो दूसरा प्रश्न आया वह था अश्व छोड़ने का। इस विषय पर विचार किया जाने लगा कि यज्ञ की समाप्ति से कितने समय पूर्व अश्व छोड़ा जाए।

अश्व को किस दिशा में भेजा जाय। जैसे पूर्व दिशा में केवल एक ही राज्य है और उसकी राजधानी पाटलिपुत्र है। तब अश्व पाटलिपुत्र में ही जा सकेगा।

भारत में कुछ ऐसे सीमावर्ती देश भी हैं जो स्वतन्त्र तो नहीं हैं किन्तु उनका अस्तित्व तो है। उन सबके प्रतिनिधि भी पाटलिपुत्र में रहते हैं। उन राज्यों में अश्व भेजा जाय अथवा कि दूत भेजने से ही कार्य-सिद्धि हो सकती है। उन्हें आदेश दिया जाय अथवा कि निमन्त्रण। दूत भेजना आदेश समझा जाता है और अश्व भेजने का अभिप्राय निमन्त्रण देना होता है। इस सब पर यदि विचार किया जाय तो यही उचित प्रतीत होता है कि भारत की वर्तमान स्थिति में अश्व भेजना निरर्थक होगा।

यह सुनकर सब विस्मय करने लगे।

पण्डित चतुरानन मिश्र ने कहा, "तब तो इसे अश्वमेध यज्ञ नहीं अपितु दूत-यज्ञ कहना होगा?"

शिवकुमार ने स्पष्ट किया, "नहीं महाराज! इस यज्ञ में अश्व का अर्थ घोड़ा नहीं है। और इस यज्ञ का नाम अश्वमेध भी इस कारण नहीं कि इसमें अश्व भेजा जाता है। यह तो संकल्प मात्र है। वास्तव में अश्व का अर्थ है वह जो कार्य को द्रुत गति से सम्पन्न करे।

"देखिये सृष्टि-रचना में उषा काल को अश्व कहा जाता है। उसे अश्व इस कारण कहा है कि उस समय रचना-कार्य में ऐसी शक्तियों का आविर्भाव हो जाता है जो सृष्टि के रचना-क्रम को द्रुत गति से ले चलती हैं।

"इसी प्रकार जिससे यज्ञ-कार्य द्रुत गति से चले वह अश्व है। हम इस पूर्ण यज्ञ-कार्य में एक अध्वर्यु नियुक्त करेंगे। वह इस यज्ञ का अश्व होगा।"

"ठीक है, उसको संकेत के रूप में अश्व प्रकट करने के लिए यज्ञ में एक अश्व तो होना ही चाहिए।"

"उदाहरण के रूप में यजुर्वेद का एक मन्त्र इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शर्मास्यवधूत रक्षो वधूता अरातयो ।। —यजु० १-१४

और इसका सांकेतिक क्रिया एक ऊखल में मूसल से यव कूटे जाते हैं अर्थात् जैसे यवों को ऊखल में डाल मूसल से पीटा जाता है, वैसे ही रक्ष (दुष्ट) लोगों को मैं पीस डालूं। इस मन्त्र का यही आशय है।" पण्डित चतुरानन मिश्र ने बात की पुष्टि की।

उन्होंने आगे कहा, "तदपि ऊखल और मूसल यज्ञ में रखे जाते हैं।

"अतः मेरा विचार है कि अश्व के चाहे जो भी अर्थ हों परन्तु संकेत के रूप में यज्ञ में अश्व तो होना ही चाहिए।

"चाहे तो इस देश के समीपवर्त्ती राज्यों में अश्व जाय चाहे उनके राजधानी में स्थित राजदूतों के द्वार पर अश्व जाय, उसे जाना तो चाहिए। और वहाँ से यज्ञ के लिए हवि एकत्रित करके लानी ही चाहिए।"

शिवकुमार ने कहा, "क्योंकि अश्व निमन्त्रण अर्थात् प्रेरणा का स्वरूप होता है, इस कारण इसे निमन्त्रण की यात्रा नहीं कहा जा सकता।

"यहाँ तो इसे आज्ञा माना जायेगा और आज्ञा अनिश्चित नहीं होनी चाहिए। इस कारण इन राज्यों के दूत यह जानना चाहेंगे कि वे इस यज्ञ में कितनी हवि दें। वे साम्राज्य का अंग हैं, उससे पृथक् नहीं।

"इसलिए मेरा तो यही सुझाव है कि अश्व का पूजन तो किया जाय किन्तु उसे यात्रा पर न भेजा जाय। अध्वर्यु को ही अश्व मान लिया जाय। यज्ञारम्भ में वेदमन्त्र द्वारा अध्वर्यु का पूजन तो करना ही है।"

यह सुनकर न्यायमूर्ति विद्याचरण ने कहा, "यदि संकेत के रूप में यज्ञ में एक अश्व खड़ा कर दिया जाय और ऊखल तथा मूसल की भाँति उसका भी पूजन कर दिया जाय तो क्या हानि है?"

इसपर मत विभाजन हुआ।

विद्वत्परिषद् के चारों सदस्यों ने तो अश्व के संकेत रूप में पूजन और प्रयोग के पक्ष में मत दिया और वह बहुमत मानकर स्वीकार कर लिया गया। महामात्य इस विषय पर तटस्थ रहे।

इसके वाद एक के वाद एक विषयों पर विचार-विनिमय होता गया और उनका निर्णय भी होता रहा।

शिवकुमार को अनुभव हुआ कि विद्वत्परिषद् में जो लोग यज्ञ का विरोध करते थे, अब जब यज्ञ के पक्ष में मत देने लगे तो उनको यज्ञ का कर्मकाण्ड अर्थात् बाहरी रूप ही वास्तविक यज्ञ-कर्म प्रतीत होने लगा है और इसीलिए वे उसका समर्थन कर रहे हैं।

उस दिन वह रात को अपने आगार में लेटा-लेटा विचार कर रहा था कि क्या कारण है कि वे लोग भी जो यज्ञ को व्यर्थ का आडम्बर मानते थे, जब यज्ञ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की व्याख्या पर विचार करने लगे तो बाहरी रंग-ढंग को ही यज्ञ मान रहे हैं और उसके बिना यज्ञ को वे यज्ञ ही नहीं मानते।

जब धन की बात आई तो शिवकुमार ने कहा, "इस समय देश की सम्पूर्ण सम्पत्ति या तो मगध साम्राज्य के पास एकत्रित है या फिर व्यापारी वर्ग के पास है। देश के ब्राह्मणों को भी यह धन मिलता है। परन्तु मैं चाहता हूँ कि यह देश की संस्कृति के उत्थान के लिए यज्ञ-रूप में व्यय हो।"

समिति के सभी सदस्यों ने इसका समर्थन किया।

यह स्वीकार किया गया कि राज्य की सारी धनीमानी प्रजा से यज्ञ में हवि देने का आह्वान किया जाय।

महाराज अपना सारा कोष यज्ञ में हवि के रूप में प्रदान करेंगे। महाराज के कोष से अभिप्राय है, उनका निजी कोष और उनके परिवार के सदस्यों का निजी कोष।

जहाँ तक राजकोष का सम्बन्ध है महाराज को अपने एक वर्ष के व्यय के लिए रखकर शेष सब यज्ञ में हवि के रूप में दे देना चाहिए।

यज्ञ में प्राप्त हवि के वितरण के विषय पर भी विचार हुआ। यह निश्चय हुआ कि राज्य में एक दान-महासमिति का गठन किया जाय। हवि में प्राप्त सारा धन उस समिति के प्रबन्ध में सौंप दिया जाय। वह समिति उस धन से देश-भर में पुस्तकालय, संग्रहालय, विद्यालय, महाविद्यालय आदि चलाये। यह सब कार्य पूर्व काल में ब्राह्मण वर्ग किया करता था, किन्तु अब यह इस महासमिति को सौंप दिया जाय। ब्राह्मण वर्ग का अन्य कार्य भी इसी समिति को सौंप दिया जाना चाहिए।

किसी ने प्रश्न कर दिया कि अभी भी यह कार्य ब्राह्मण वर्ग को ही क्यों न सौंपा जाय, उसे महासमिति को देने से क्या लाभ?

शिवकुमार ने इसका उत्तर देते हुए कहा, "पूर्ण समाज में अनीश्वरवाद और शून्यवाद का प्रचार हो जाने से बड़े-बड़े विद्वानों के मन में भी सन्देह उत्पन्न होने लगा है कि ईश्वर अथवा परमात्मा तथा स्वयं में भी कोई नित्य तत्त्व जीवात्मा है भी अथवा कि नहीं? व्यास के पुत्र शुक थे। उनका मत था कि सब एक ब्रह्म ही है। यह भी अनीश्वरवाद का ही एक अन्य रूप है। सब कुछ एक ब्रह्म ही मानने से ब्रह्म के भी सांख्य की प्रकृति के समान दो रूप मानने पड़ेंगे।

"प्रकृति का एक साम्यावस्था का रूप है। यह रूप उस समय का है जब यह शान्त रहती है। दूसरा रूप है असाम्यावस्था का, जिसमें जगत् में पूर्ण हलचल दिखाई देती है। प्रकृति के स्थान पर ब्रह्म को मान लेने से वही बात आ जायेगी।

"सांख्य इस प्रकृति के अतिरिक्त 'जीवानाम' अर्थात् जीवात्माओं को भी मानता है। और शुक जी महाराज तो केवल एक ब्रह्म को ही स्वीकार करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् दो रूप वाला ब्रह्म ही मानते हैं।

"वह दोनों चारवाकीय प्रकृतिवादियों और जैन मतावलम्बियों में एक पुद्गल का तत्त्व ही मानते हैं। इससे कोई अन्तर नहीं रह जायेगा।

"इस भ्रम के कारण हम जाति की सांस्कृतिक शिक्षा व्यक्तियों के हाथ में नहीं दे सकते। इसका परिणाम तो देश में उनके मत-मतान्तरों का प्रचार हो जायेगा।"

पण्डित शिवकुमार के इस विद्वत्तापूर्ण वक्तव्य से सभी प्रभावित से दिखने लगे और सबने यह स्वीकार किया कि दान-महासमिति बनाई जाय। परन्तु परोक्ष में यह अनुभव किया जाने लगा कि विद्वत्परिषद् के पाँचों सदस्य जो इस यज्ञ की हवि से मालामाल होने का स्वप्न सँजोये हुए थे, उनको अपना वह स्वप्न भंग होता दिखाई दिया।

इस मनःस्थिति में इस समिति में जो विद्वत्परिषद् के सदस्य थे वे पण्डित चतुरानन मिश्र के घर पर पृथक्रूपेण एकत्रित हुए।

उप-समिति का कार्य समाप्त होते-होते एक मास वीत गया।

पुनः पूर्णिमा आ गई। महाराज की ओर से राज-पुरोहित को निमन्त्रण भेज दिया गया।

पूर्णिमा के दिन यज्ञ के उपरान्त जब अल्पाहार कर रहे थे तो शिवकुमार को राजकुमार चन्द्रगुप्त से हुए वार्त्तालाप से यह अनुभव होने लगा कि इस बीच उक्त उप-समिति के सदस्य चन्द्रगुप्त से भेंट करते रहे हैं।

बात चन्द्रगुप्त ने ही आरम्भ की थी। उसने पूछा, "पण्डितजी! यज्ञ कर्म-काण्ड निर्धारण उप-समिति का कार्य कैसा चल रहा है?"

"उप-समिति का कार्य लगभग पूर्ण हो चुका है। यज्ञ महोत्सव का पूर्ण विवरण हमने तैयार कर दिया है। उस विवरण को शीघ्र ही महामात्य महाराज के सम्मुख प्रस्तुत करने वाले हैं।"

"सुना है समिति में तीव्र मतभेद है?"

"प्रत्यक्ष रूप में तो ऐसी कोई बात दिखाई नहीं दी है। हमारे अधिकांश निर्णय तो सर्वसम्मति से ही हुए हैं। किन्हीं एक-दो विषयों में मत-भिन्नता रही है। उसमें परस्पर समझौता कर हमने निर्णय कर लिये हैं और उनको लिपिवद्ध कर दिया गया है।"

"परन्तु जहाँ तक मुझे ज्ञात है, विद्वत्परिषद् के अधिकांश सदस्य उक्त उप-समिति के निर्णय से सहमत नहीं हैं।"

"आप यदि कह रहे हैं तो यह सम्भव हो सकता है। किन्तु जहाँ तक मुझे स्मरण है, समिति की बैठकों में कभी किसी सदस्य ने अपने असन्तोष को व्यक्त तो किया नहीं। यदि आपको विदित हो कि किस किस विषय पर उन लोगों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असन्तोष है तो मैं यत्न करके उस विषय को पुनः विचारार्थ प्रस्तुत कर दूंगा।"

"नहीं, वे लोग ऐसा नहीं चाहते। उनका तो कहना है कि आपकी प्रबल वाक् शक्ति और प्रचण्ड युक्तियों के सम्मुख वे असहाय से हो जाते हैं।

"अतः जब आपकी समिति के निर्णयों का पूर्ण विवरण महाराज के सम्मुख आयेगा तब वह उसपर अपनी स्वीकृति प्रदान करते हुए उनपर विचार कर लेंगे।"

"मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं। किसी अन्य को भी कदाचित् नहीं होनी चाहिए। उप-समिति तो यज्ञ के यजमान अर्थात् महाराज को सम्मति देने के लिए गठित की गयी थी, उनको आज्ञा देने के लिए नहीं। वह आज्ञा दे भी नहीं सकती। महाराज उसके परिपेक्ष्य में अपनी स्वतन्त्र सम्मति बनाने के लिए स्वतन्त्र हैं।

"महाराज यज्ञ कर रहे हैं और उस यज्ञ में क्या-क्या करणीय है, इस विषय में जानने की इच्छा व्यक्त की है। समिति अपनी सम्मति दे देगी। उसको स्वीकार अथवा अस्वीकार करना महाराज का अधिकार है।"

महाराज ने अब बातों में हस्तक्षेप करते हुए कहा, "कुमार! पण्डितजी ठीक ही तो कह रहे हैं। जब समिति के निर्णयों का विवरण हमारे पास आयेगा तब हम उसपर विचार कर लेंगे।"

राजकुमार बोला, "परन्तु महाराज! पिछली बार पण्डितजी ने एक कथा सुनाई थी। उसमें उन्होंने बताया था कि ऋषियों ने जनता को भड़काकर महाराज वेन को मरवा डाला था। ऋषियों से उनका अभिप्राय विद्वान् लोगों से था।"

"तो फिर?"

राजकुमार मौन रहा। महाराज ने ही फिर कहा, "हम विद्वानों के कथन का विरोध तो कर नहीं रहे हैं। यह चिन्ता का विषय तो तब ही होगा जब हम उनके कथन का विरोध करेंगे।"

राजकुमार बात को समझ नहीं पाया। इसलिए वह मौन ही रहा। परन्तु शिवकुमार से यह बात छिपी नहीं रह सकी। वह समझ गया कि किसी विषय पर समिति के कुछ सदस्य यद्यपि उसके तर्क का खण्डन नहीं कर पाये तदपि वे उसके मत से सहमत नहीं थे। इसलिए उनको उस विषय का मूक समर्थन करना पड़ा है। इतना ही नहीं अपितु वे अपने मन की बात राजकुमार अथवा महाराज से या फिर दोनों से कह भी गये हैं।

यद्यपि इसे वह उचित नहीं मानता था। यह लक्षण भी शुभ नहीं था तदपि वह उस समय मौन ही रहा।

राजकुमार ने विषय को बदलकर कहा, "माताजी! पण्डितजी तो आज भी अपने सुपुत्र को नहीं लाये?"

राजमाता ने वही प्रश्न पण्डितजी से किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डितजी बोले, "महारानीजी! यज्ञ में तो उन बच्चों की आवश्यकता होती नहीं। आप लोगों ने उनको साधारण निमन्त्रण दिया नहीं। सम्भवतया उनका आना कुछ विघ्नकारी भी हो।"

महारानी ने महाराज की ओर देखा तो महाराज समुद्रगुप्त बोले, "मैंने जान-बूझकर बच्चों को यज्ञ के समय आमन्त्रित नहीं किया। मैं उसके लिए कोई अन्य उपयुक्त समय ढूंढ़ रहा हूँ।"

इस प्रकार यह विषय भी समाप्त हुआ और उसके साथ ही अल्पाहार भी समाप्त हो चुका था।

महाराज ने पण्डितजी को दस स्वर्ण दक्षिणा देते हुए कहा, "पण्डितजी! मैं कल से आपकी यज्ञशाला में नित्य आया करूँगा। मुझे आपसे महाभारत सुनने की लालसा जागृत हो उठी है।"

"महाराज! यदि आज्ञा करें तो मैं ही आ जाया करूँ।"

"नहीं, यहाँ नहीं। मैं वहीं आपकी यज्ञशाला में सूर्योदय के एक घड़ी उपरान्त उपस्थित हुआ करूँगा।"

"हाँ, यह ठीक है। मैं तबतक देवयज्ञ से निवृत्त हो जाऊँगा। तदुपरान्त महाभारत का अध्ययन आरम्भ कर देंगे।"

"हम नहीं चाहते कि आप अपने सुपुत्र को यहाँ लेकर आयें।"

"ऐसा ही होगा।" शिवकुमार ने सहमति व्यक्त की। किन्तु शिवकुमार ने महाराज की इच्छा का कारण जानना नहीं चाहा।

आज शिवकुमार चित्त में चंचलता अनुभव कर रहा था। चन्द्रमुखी उसके साथ ही थी। उसने पति को नित्य की अपेक्षा अति गम्भीर देखा तो पूछने लगी, "क्या बात है, आज आपके मुख पर चिन्ता की रेखायें उभर उठी हैं?"

"नहीं, चिन्ता तो नहीं है। हाँ, कुछ विलक्षण अवश्य लग रहा है। मुझे कुछ ऐसा अनुभव हो रहा है कि कर्मकाण्ड उप-समिति का कोई सदस्य यहाँ आकर कान भरता रहा है।

"मुझे खेद तो इस बात का है कि राजसी छत्रछाया में आकर ब्राह्मण का निर्मल मन भी कलुषित हो जाता है। मेरी तो परमात्मा से यही प्रार्थना है कि वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला करे। बस, मैं यही विचार कर रहा था।

"बात यह है कि सारे देश का धन राजधानी में आकर एकत्रित हो जाया करता है। धन के समान मन को विकृत करने वाला अन्य कोई पदार्थ नहीं है। अर्थ से सब कामनायें पूरी हो जाती हैं। अधिकांश पुरुष अर्थ के ही दास होते हैं।"

पुरोहित का मकान राज-प्रासाद से कुछ अधिक दूर नहीं था। वह लगभग सटा हुआ ही था। पुरोहितजी और उनकी पत्नी अल्पाहार से उठे कि दो बात करते ही अपने घर पर पहुँच गये। जबतक वे राज-प्रासाद के भीतर थे तबतक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रमुखी अपने मन की बात नहीं कह पाई थी। राज-प्रासाद से निकल सुभट्टों और प्रतिहारों की परिधि से पार होते ही अपने पति के मुख पर छाई गम्भीरता का कारण उसने पूछ लिया।

पण्डित शिवकुमार ने जबतक उसका उत्तर दिया, वे अपने मकान पर पहुँच गये। भवन के बाहर महामात्य का रथ खड़ा था। दोनों ने अनुमान लगा लिया कि महामात्य पधारे हैं।

पुरुष होने के नाते पण्डित शिवकुमार के पग लम्बे हो गये। चन्द्रमुखी पीछे रह गयी। शिवकुमार ने देखा कि बैठकघर में पण्डितजी और उनकी पत्नी गंगादेवी बैठे हैं और बृहस्पति से वार्त्तालाप हो रहा है।

: ४ :

शिवकुमार को आया देख महामात्य ने प्रश्न किया, "पुरोहितजी ! कहाँ से आ रहे हैं ?"

"आज पूर्णिमा है। राज-प्रासाद में पूर्णिमा के दिन पौर्णमासीय यज्ञ हुआ करता है। पिछले मास से मैं ही यह यज्ञ कराया करता हूँ।"

"दक्षिणा मिलती है अथवा नहीं ?"

"जी हाँ, मिलती है। दस स्वर्ण।"

"पहले राजधानी के भिन्न-भिन्न ब्राह्मण यह यज्ञ कराने जाया करते थे। उनको प्रत्येक बार बीस स्वर्ण मिला करता था। उनकी मासिक आय छिन जाने से वे सब आपसे ईर्ष्या करने लगे हैं।"

"कृपया बताइये, इसमें मैं क्या कर सकता हूँ ?"

"आप यह कर सकते हैं कि उनमें से कभी किसी को अपने घर पर अनुष्ठान के निमित्त बुलाकर दक्षिणा दे दिया करो।"

"मैं इसपर विचार करूँगा। किन्तु जो इस दक्षिणा पर अपना अधिकार मानने लगे हैं, उनको मैं ब्राह्मण का पद नहीं दे सकता। तब किसी अनुष्ठान पर बुलाकर उनका पूजन करूँ, यह मेरे लिए सम्भव होगा अथवा नहीं, यह विचारणीय है।"

"शिव ! यह नीति है। राजधानी में रहते हुए यह सब करना पड़ेगा।"

"आपकी इस शिक्षा के लिए अतीव कृतज्ञ हूँ। तदपि मैं इसपर पुनरेण विचार करूँगा। अभी-अभी राज-प्रासाद से आते हुए मैं यही विचार कर रहा था कि पाटलिपुत्र से पलायन कर लिया जाय।

"हमारे गाँव में तो यह रीति है कि चन्द्र के भाई को सन्देह हुआ कि उसकी बहिन सतीत्व का निर्वाह नहीं कर रही है। ज्योंही उसके मन में यह शंका उत्पन्न हुई उसने अपने घर वालों को कुछ नहीं कहा और सीधा अपनी बहिन के पास आकर कहने लगा, 'बहिन ! यदि रुष्ट न हो तो मैं एक बात पूछूँ ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

" 'भैया ! मैं तुमसे किस प्रकार रुष्ट हो सकती हूँ ? भाई से क्या बहिन कभी रुष्ट हो सकती है ?'

"भाई ने अपना सन्देह व्यक्त करते हुए पूछा, 'महेश्वर से तुम्हारा क्या सम्बन्ध है ?'

" 'बचपन के साथी का-सा सम्बन्ध है ।'

" 'युवती का युवा साथी से जैसा सम्बन्ध नहीं है ?'

" 'वह क्या होता है ?' बहिन ने विस्मय प्रकट किया ।

" 'गाँव वाले इस विषय की चर्चा करने लगे हैं ।'

" 'वह मिथ्या है । महेश्वर यदि तुमसे कुछ कहता है तो बताओ ।'

" 'मैं अभी उससे मिलकर आया हूँ ।'

" 'तो उसने क्या कहा है ?'

" 'वह तुम्हें अपनी बहिन कहता है ।'

" 'वह तो ठीक ही कहता है, किन्तु भैया ! तुम क्या कहते हो ?'

" 'मैं भी यही कहता हूँ कि यदि तुम्हारा कथन सत्य है तो फिर चिन्ता मत करो । मैं गाँव वालों से निपट लूंगा ।'

"गुरुदेव ! हम तो इस प्रकार गाँव में रहने के अभ्यस्त हैं । मैं वहीं लौट जाऊँगा । यहाँ रहने वाले मूर्खों से बचने के लिए मुझे यहाँ से चला ही जाना चाहिए ।"

"यह तो भीरुता होगी ।"

"परन्तु महाराज ! उनसे भयभीत होकर उनको रिश्वत-रूप दक्षिणा देना तो उससे भी बढ़कर भीरुता होगी ।"

यह उत्तर सुनकर हरिषेण मौन हो गया ।

शिवकुमार ने प्रबन्धक को कहा, "महामात्य के लिए कुछ मिष्ठान्न लाओ ।"

हरिषेण और उसकी पत्नी हँस पड़े । गंगादेवी बोलीं, "मैं अपने पोते के घर पर आयी हूँ । और मेरे पोते ने आपसे पहले ही हमारा सत्कार कर दिया है ।"

नरसिंहदेव ने भी आकर यही कहा कि पण्डितजी मिष्ठान्न और दुग्धपान कर चुके हैं ।

चन्द्रमुखी ने पूछा, "आज आप रोहिणी बहिन को नहीं लायीं ?"

"आज भृगु का अवकाश है, वह घर पर ही है । इसलिए रोहिणी नहीं आयी ।"

"तब तो आप दोनों को ही ले आतीं ?"

"रोहिणी कहती थी कि आपसे पूछा हुआ नहीं है । कभी घर में कोई शुभ कार्य करो और पूर्ण परिवार को बुलाओ तो वे आयेंगे ।"

इसपर हरिषेण बोले, "मेरा छोटा पुत्र सर्वभाष हरिद्वार से आ गया है । कल प्रातःकाल से वह आपके पास विद्या ग्रहण करने के लिए आने वाला है ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उसे सूर्योदय से दो घड़ी उपरान्त भेज़ दीजियेगा।"

"कल हमारा पूर्ण परिवार ही उस समय यहाँ आयेगा।" गंगादेवी बोलीं।

"मुझे इससे बहुत प्रसन्नता होगी।"

गंगादेवी ने ही कहा, "परन्तु शिव ! क्या तुम उसके गुरु बनने के योग्य हो ?"

"माताजी ! गुरु तो परब्रह्म परमेश्वर ही है।"

"हम आज पण्डितजी को यह सूचना देने के लिए ही आये थे।"

"मैं इससे बहुत प्रसन्न हूँ।"

इसके उपरान्त दोनों पति-पत्नी चले गये।

चन्द्रमुखी ने अनुभव किया कि उसके पति के मुख की गम्भीरता और भी गहन होती जा रही है। वह बोली, "देव ! विचित्र विडम्बना है। एक ओर तो द्वेष के लक्षण प्रतीत हो रहे हैं और दूसरी ओर स्नेह, श्रद्धा और सम्मान का व्यवहार भी दिखाई देने लगा है।"

"प्रिये ! यह नगर है। गाँव की अपेक्षा नगर में अनेक प्रकार के आकर्षण कार्य करते हैं। उन आकर्षणों के अधीन व्यक्तियों की रुचियाँ भी भिन्न-भिन्न प्रकार की हो रही हैं।"

"और आप उनसे भयभीत हो गाँव को लौट चलने का विचार कर रहे हैं ?"

"वह तो महामात्य के प्रस्ताव का उत्तर था। वे मेरी बात को समझ गये थे, इसी कारण उन्होंने उस बात को फिर आगे नहीं बढ़ाया और बात को बदल दिया था।

"देवि ! सुनो। मैं सदा अपना बिस्तर बाँधे तत्पर रहता हूँ। मेरा कहने का अभिप्राय है कि इस स्थान से मेरा किंचित् भी मोह नहीं है। मैं यहाँ के हर्ष, शोक, सुख, दुःख में समान स्थिति में हूँ। मैं यहाँ सब द्वन्द्वों से रहित होकर रह रहा हूँ। यदि जाना पड़ा तो इस प्रकार अस्पृश्य-सा निकल जाऊँगा जिस प्रकार जल में से कमल का पत्ता निकल आता है।"

उस दिन कर्मकाण्ड समिति की बैठक फिर हुई। उस दिन अश्वमेध यज्ञ के विधि-विधान को अन्तिम रूप दिया गया। अन्तिम रूप तैयार होने पर वह विद्वत्-परिषद् के अध्यक्ष को सौंप दिया गया और उनसे कह दिया गया कि वे इसको महाराज की स्वीकृति के लिए भेज दें।

समिति के मुख्य-मुख्य निर्णय इस प्रकार थे—

१. यज्ञ में अश्व भ्रमण की आवश्यकता नहीं। सांकेतिक रूप में अश्व को यज्ञशाला में खड़ा रखा जायेगा।

२. महाराज की ओर से प्रजा के लिए एक आह्वान जारी किया जायेगा।

३. यह आह्वान सीमावर्त्ती राजाओं के साथ-साथ राज्य के धनी-मानी लोगों के पास भी भेजा जाना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. एक दान महासमिति का गठन किया जाय। यज्ञ समाप्त होने पर अवशिष्ट धन का लोक-कल्याण के लिए व्यय का प्रबन्ध उक्त समिति करेगी।

५. लोक-कल्याण के उन कार्यों को वरीयता दी जाय जिनका सम्बन्ध ब्राह्मण वर्ग से हो। ब्राह्मण वर्ग से इस सम्बन्ध में आवश्यक सहयोग प्राप्त किया जाय। उसके प्रतिकार में भेंटस्वरूप उनको उचित धन दिया जाना चाहिए।

६. इस समिति का यह प्रयास होना चाहिए कि देश में विद्वत्ता और वेद-मत को प्रोत्साहन मिले।

७. तीन दिन और तीन रात यज्ञ निरन्तर चलता रहे। केवल दिन-रात का चतुर्थ भाग ही विश्राम के लिए नियत किया जाय।

८. तीसरे दिन यज्ञ में एक स्तूप की स्थापना की जाय। उस स्तूप पर महाराज के जीवन के विशेष कृत्यों का उल्लेख हो। महाराज अशोक के स्तूप के समकक्ष इस स्तूप को स्थापित कर दिया जाय।

९. महाराज इस यज्ञ में अपना सर्वस्व समर्पित करें। राज्य के एक वर्ष के व्यय के लिए उपयुक्त राशि छोड़कर शेष राजकोष भी इस यज्ञ में हवि के रूप में दिया जाय।

१०. इस धन से ही इस यज्ञ का संचालन प्रबन्ध हो। जो धन अवशिष्ट हो उसे दान महासमिति को सौंप दिया जाय।

यह भी निश्चय हुआ कि ये निर्णय महाराज की स्वीकृति के लिए भेजे जायें और उनसे स्वीकृति मिलने पर इनकी बारह प्रतियाँ बनाकर एक प्रति तो राज्य के स्मृति कोष में जमा करा दी जाय। एक प्रति महाराज को पाटलिपुत्र में दी जाय और एक अन्य प्रति महाराज की बड़ी रानी के पास उज्जयिनी भेजी जाय। चौथी प्रति राज्य के धनी व्यक्तियों में संचारित की जाय जिससे वे इसकी और प्रतियाँ बनवाकर देश के समस्त धनी-मानी व्यक्तियों को हवि प्रदान करने के लिए आह्वान पर विचार आमन्त्रित कर सकें। पाँचवीं प्रति राज्य की विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष को भेजी जाये। सात प्रतियाँ समिति के सातों सदस्यों को दी जायें।

यज्ञ के निमन्त्रण-पत्र में समस्त देश के ब्राह्मण समुदाय को विशेषतया और जनसाधारण को सामान्यतया सम्मिलित होने का आह्वान किया जाय।

उस दिन बैठक में उपस्थित समिति के सदस्यों को ब्रह्मभोज दिया गया। और फिर महाराज की ओर से दक्षिणा-स्वरूप एक-एक सौ स्वर्ण प्रदान किया गया।

समिति के सदस्य इस आयोजन से अतीव सन्तुष्ट हो पण्डित शिवकुमार के प्रयास एवं प्रस्ताव पर बधाई दे विदा हुए।

शिवकुमार का विचार था कि समिति के इन निर्णयों पर महाराज अपना सामान्य-सा परिवर्तन प्रस्तुत कर इनको लगभग इसी रूप में स्वीकार कर लेंगे, और फिर तदनुसार कार्य आरम्भ करवा देंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगले दिन प्रातःकाल यज्ञ आरम्भ होने से पूर्व ही महामात्य का पूर्ण परिवार, जिसमें महामात्य की वृद्धा माता तथा अन्यान्य परिजन थे, उपस्थित हो गये। उनकी संख्या पन्द्रह के लगभग थी।

महामात्य का छोटा पुत्र सर्वभाष चौदह वर्ष की आयु का था। वह सुन्दर होने के साथ-साथ प्रारम्भिक भाषा का पण्डित भी था। उसने पाणिनी की अष्टाध्यायी समाप्त कर अन्य प्राचीन साहित्य भी कुछ पढ़ लिया था।

आज देव यज्ञ के उपरान्त सर्वभाष को पण्डित शिवकुमार का शिष्य बनाकर उनकी देख-रेख में सौंपने का आयोजन था।

महामात्य-परिवार के आते ही पण्डित शिवकुमार ने यज्ञ आरम्भ कर दिया। इसमें एक घड़ी समय बीत गया। तदनन्तर सर्वभाष का यज्ञोपवीत बदला गया। शिवकुमार ने उसको नवीन यज्ञोपवीत धारण करवाया और इस प्रकार वह शिव कुमार का शिष्य घोषित कर दिया गया।

महामात्य अपने साथ मिष्ठान्न लाये थे। यह विधि सम्पन्न होने पर उन्होंने उपस्थित जनों में वह मिठाई बाँट दी। शिवकुमार को समुचित दक्षिणा दी गयी।

शिवकुमार सबके सम्मुख आज सर्वभाष को प्रथम पाठ पढ़ाने वाला ही था कि तभी महाराज आ उपस्थित हुए। उनके साथ उनकी छोटी रानी भी थीं। वे पूर्व निश्चयानुसार महाभारत सुनने के लिए आये थे।

शिवकुमार ने उठकर महाराज और उनकी रानी का स्वागत किया और उन्हें अपने समीप बैठाकर उस आयोजन का उपलक्ष्य बता दिया।

महाराज ने पूछा, "तो क्या महामात्य ने अपने पुत्र को याज्ञवल्क्य के आश्रम से वापस बुला लिया है?"

महामात्य ने उत्तर देते हुए कहा, "हाँ महाराज! सर्वभाष ने लिखा था कि वहाँ धर्म-व्यवस्था और कर्मकाण्ड की ही विशेष शिक्षा दी जाती है। उसमें इसकी रुचि नहीं थी। अतः मैंने इसको वापस बुलाकर पण्डित शिवकुमारजी के विद्यालय में प्रविष्ट करा दिया है। यह यहाँ वेद के उपांगों की शिक्षा ग्रहण करेगा। पण्डितजी स्वयं न्यायभूषण हैं। मैं यह समझता हूँ कि दर्शन और उपनिषदादि ग्रन्थों का इनका गहन अध्ययन है। मैं यह भी समझता हूँ कि वहाँ की अपेक्षा सर्वभाष की शिक्षा यहाँ अच्छी हो जायेगी।"

इतने में पण्डित शिवकुमार ने कहा, "तो महाराज! आज मैं सर्वभाष की शिक्षा का आरम्भ आपके सम्मुख ही करता हूँ। कल से तो इसकी शिक्षा का समय आधा प्रहर दिन व्यतीत होने के उपरान्त का निश्चय किया गया है। किन्तु आरम्भ अभी सबके सम्मुख होगा।"

शिक्षा आरम्भ करते हुए शिवकुमार ने कहा, "प्रिय सर्वभाष! सुनो। वेद के छः उपांग हैं। उपांग अंग से भिन्न होते हैं। अंग जहाँ शरीर का एक भाग ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहलाता है वहाँ उपांग उससे सर्वथा पृथक् होता है । वह शरीर का सहायक मात्र होता है ।

"अत: वेदांग तो वेद का भाग ही है । वह वेद में ही है । वेदमन्त्रों से ही उसका स्वरूप बना है । परन्तु उपांग का स्वरूप वेदमन्त्रों से न बनकर पृथक् बना है ।

"जैसाकि मैंने बताया है कि उपांगों की संख्या छ: है । इनको दर्शनशास्त्र भी कहते हैं । वह इस कारण कि ये वेदार्थ का दर्शन कराते हैं । इनका वर्णन छः मुख्य ग्रन्थों द्वारा किया गया है । पहला दर्शनशास्त्र है ब्रह्मसूत्र । इसे महर्षि व्यास ने वेदान्त दर्शन भी कहा है । दूसरा दर्शनशास्त्र है सांख्य । सांख्य की रचना महर्षि कपिल ने की है । तीसरा ग्रन्थ है वैशेषिक इसके रचयिता महर्षि कण्व हैं । चतुर्थ है उत्तर मीमांसा । अर्थात् वेद के भाव का अन्तिम दर्शन । दो अन्य हैं योग दर्शन और न्याय दर्शन । इन दोनों के द्वारा वेदार्थ समझने की योग्यता उत्पन्न करने में सहायता प्राप्त होती है ।

"वे दोनों ग्रन्थ वेद के किसी विषय विशेष से सम्बन्धित नहीं हैं । ये वेद को समझने की सामर्थ्य उत्पन्न करने के लिए सहायक होते हैं । एक के द्वारा तो मनुष्य की बुद्धि निर्मल होती है और दूसरे के द्वारा बुद्धि को व्यवहार में लाने का उपाय बताया गया है ।

"ये छहों ग्रन्थ सूत्रवत् हैं । अर्थात् बात को सूक्ष्म रूप से न्यूनातिन्यून शब्दों में अभिव्यक्त करना ।

"मैं तुम्हारी शिक्षा ब्रह्मसूत्र से ही आरम्भ करूँगा । यही क्रम है, इसके द्वारा ज्ञान वृद्धि की जा सकती है । चारों शास्त्रों को पढ़ाते हुए ही मैं न्यायशास्त्र का अध्ययन भी कराता जाऊँगा । इसके साथ ही जितनी योग की क्रियायें मैं जानता हूँ वह भी मैं तुम्हें सिखाऊँगा ।"

इस प्रारम्भिक विवेचन के उपरान्त पण्डित शिवकुमार ने विषय का समारम्भ किया ।

उसने कहा, "ब्रह्मसूत्र का प्रथम सूत्र है : 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' ।

"इसका अभिप्राय है—अथ (अत:) ब्रह्म जिज्ञासा इस कारण अब हम ब्रह्म जिज्ञासा का समाधान करते हैं ।

"ब्रह्म के अर्थ क्या हैं ? यही जानने का विषय है । इसको बताने के लिए ही ब्रह्मसूत्र की रचना हुई है । जो बात वेदादि शास्त्रों में कही गई है उसे ब्रह्म-सूत्रों में युक्ति और प्रमाण से सिद्ध किया गया है ।

"वेदादि शास्त्रों में क्या कहा गया है ? एक उपनिषद् में कहा है—

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता ।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ।। श्वे० १-९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इसका अभिप्राय यह है कि तीन पदार्थ ब्रह्म कहाते हैं। एक सर्वज्ञ, दूसरा अज्ञ अर्थात् अल्पज्ञान वाला और तीसरा जो अल्पज्ञान वाले की भोग्य सामग्री प्रस्तुत करता है। शास्त्र का कहना है कि परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति तीन प्रकार का ब्रह्म है।

इसी उपनिषद् में एक अन्य स्थान पर कहा है—

उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाऽक्षरं च।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः॥

—श्वे० १-७

"अभिप्राय यह कि ऊपर जो बताया गया है वह परम ब्रह्म है जिसमें तीन अक्षर प्रतिष्ठित हैं और फिर जिसमें योनिमुक्त ब्रह्मलीन जन्म-मरण से मुक्त जीव विचरते हैं, वह यह ब्रह्माण्ड है, यह परम ब्रह्म है।

"अर्थात् तीन अक्षर तो ब्रह्म हैं और जिसमें तीनों विद्यमान हैं वह परम ब्रह्म है। ब्रह्मसूत्र ब्रह्म के निरूपण के लिए निर्मित ग्रन्थ है।

"मैं तुम्हें पहले इसी ग्रन्थ को पढ़ाऊँगा। ब्रह्म को जानने की तुम्हारी जिज्ञासा को यह ग्रन्थ पूर्ण करेगा।

"आज मैंने तुम्हें ब्रह्मसूत्र के विषय का संकेत दिया है। आज तुमने ब्रह्म विद्या को जानने की दीक्षा ली है। इसे हमने आरम्भ कर दिया है।"

इस प्रकार शिवकुमार ने सर्वभाष को आज का पाठ पढ़ाया।

सर्वभाष ने पूछा, "तो गुरुजी, ब्रह्म तीन हैं?"

"हाँ, उपनिषद् में यही कहा गया है। दर्शनशास्त्र में इसे युक्ति से समझने का यत्न करेंगे।"

"जब शास्त्र में उल्लिखित है तो फिर युक्ति से समझने अथवा सिद्ध करने की आवश्यकता ही क्या रह जाती है?"

"शास्त्र को सभी लोग तो प्रमाण नहीं मानते। जैन और बौद्धमतावलम्बी इसे प्रमाण नहीं मानते। जैन बौद्धेतर लोग भी हैं जो शास्त्रों को प्रमाण नहीं मानते। उन्हें महर्षि व्यास ने वेद-वाद-रताः कहकर स्मरण किया है। वेद का अर्थ है ज्ञान। वह ज्ञान जो ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त होता। केवल इस ज्ञान को ही मानने वाले भी परमात्मा को स्वीकार नहीं करते। उन्हें चारवाकीय कहते हैं।

"ये तथा इसी प्रकार के लोग वेद शास्त्र को प्रमाण नहीं मानते। उन्हीं लोगों को समझाने के लिए इन उपांगों अर्थात् दर्शन शास्त्रों की रचना की गयी है।

"यह शास्त्र, जिसका प्रथम सूत्र मैंने आज तुमको पढ़ाया है वह ब्रह्म के विषय में ही है। ज्यों-ज्यों तुम इसको पढ़ते जाओगे, बिना शास्त्र को प्रमाण माने ब्रह्म को न केवल सिद्ध ही किया जाएगा वरन् उसके स्वरूप को भी बिना शास्त्र की सहायता के निश्चय किया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इसी कारण इस ग्रन्थ को ब्रह्मसूत्र भी माना जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि इसमें ब्रह्म के विषय में सूत्र रूप में कहा गया है।"

इसके बाद महामात्य ने अपने पुत्र से कहा, "अब अपने गुरुजी के चरण स्पर्श करो और घर चलने की आज्ञा माँगो। हाँ, यह जान लो कि कल किस समय आना है।"

शिवकुमार ने समय तो पहले ही बता दिया था। उसे पुनः बता दिया। तब महामात्य का परिवार वहाँ से उठकर अपने निवास के लिए चला गया।

महाराज और महारानी वहीं बैठे रहे। शिवकुमार महामात्य को विदा कर लौटा तो महाराज से बोला, "महाराज! आज तो अब महाभारत की कथा होना सम्भव नहीं, बहुत विलम्ब हो गया है। हम इस व्यवधान के लिए क्षमा-याचना करते हैं। महामात्य पहले ही आ गये थे, अतः उनका कार्य आरम्भ कर दिया गया था, इसीसे आपके आगमन का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो पाया।"

"इसमें किसी प्रकार के संकोच की बात नहीं है और न किसी प्रकार की हानि ही हुई है। महाभारत की अपेक्षा आज तो बहुत ही उच्च कोटि का वार्त्तालाप सुनने को मिला है।"

दत्तदेवी पूछ बैठी, "तो आप भी मानते हैं ब्रह्म तीन प्रकार का है?"

"यहाँ ब्रह्म का अर्थ परमात्मा से नहीं है। वहाँ स्पष्ट कहा है कि एक ब्रह्म अज्ञ अर्थात अज्ञानी है। वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान नहीं है। उसके गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह प्रकृति का भोग करता है और फिर जन्म-मरण के चक्कर में फँसा हुआ है।

"इस मरण से उसका विनाश नहीं होता और न ही जन्म का अर्थ है कि उसका नव-निर्माण होता है। प्रकृति का निर्मित शरीर बदलता है।" इस प्रकार पण्डित शिवकुमार ने महारानी का समाधान किया।

"मैं तो आपके पुत्र बृहस्पति को देखने के लिए आयी थी।" महारानी ने अपनी बात बताते हुए कहा।

"वह अभी आपके समीप ही तो बैठा था। उसको देखने से ऐसा कुछ आभास नहीं होता कि वह कोई विलक्षण प्राणी है, यह तो केवल उसकी पूर्वस्मृति है जो विलक्षण है।

"उस दिन उसने स्वयं को पूर्व जन्म का रमण बताया था। महामात्य किसी रमण से परिचित थे। इसलिए वह उससे प्रश्न पूछने लगे। अन्त में उनका निर्णय यह था कि बृहस्पति पूर्व जन्म में वही रमण था जो महाराज को महाभारत की कथा सुनाया करता था।"

महाराज समुद्रगुप्त बोले, "हम उसकी स्मृति के कुछ रहस्यों को जानते हैं। यह योग क्रियाओं का अभ्यास करता था और इस प्रकार कई-कई दिन तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाधिस्थ रहता था।

"वह इस नगर की एक निर्धन बस्ती में रहता था, लगता है चेचक की छूत उसको वहीं से लगी थी।"

"अब तो वह महामात्य की श्रीमती जी के साथ उनके घर चला गया है।"

"गंगादेवी क्या उससे हेल-मेल बढ़ाना चाहती हैं ?"

"उनका हेल-मेल पहले से ही है। पहले दिन मैं सपरिवार महामात्यजी के घर गया था तो वृहस्पति ने गंगादेवीजी को पहचान लिया था। वह उनका दो जन्म पूर्व का परिचित था। उस जन्म में वह गंगादेवीजी का सहपाठी था।

"एक दिन उसने अपनी स्मृति से गंगादेवीजी को अपने गुरु आश्रम की एक घटना सुनायी। गंगादेवीजी का कहना था कि वह अक्षरशः सत्य है।"

"इसका अभिप्राय यह हुआ कि उसको तो अपने पिछले दो जन्मों की बात का स्मरण है ?"

"इस बात से तो यही प्रतीत होता है।"

"हम विस्मय करते हैं कि यह किस प्रकार हो सकता है !"

"ब्रह्मलीन जीवात्माओं में जीवात्मा के संस्कार और स्मृति में कोई अन्तर नहीं रह जाता। सामान्य जन में तो संस्कार स्मृति से उत्पन्न एक अवस्था होती है। उदाहरण के रूप में नित्य हवन-यज्ञादि का यह संस्कार पड़ता है और यज्ञ करने वाला परोपकार कर्म को स्वभाव से करने लगता है।

"सामान्य रूप में जीवात्मा बुद्धि के प्रकाश से कार्य करता है। परन्तु जो कर्म वह स्वभाव से अर्थात् संस्कारों से करता है उसे वह बिना बुद्धि द्वारा विचार किये ही करने लगता है।

"स्मृति मन का गुण है। स्मृति मन पर अंकित रहती है। जबतक उसपर बुद्धि का प्रकाश नहीं पड़ता, जीवात्मा उसके अनुरूप कार्य नहीं करता।

"देखिये महाराज ! मैं उदाहरण देकर समझाता हूँ। हमारे सम्मुख एक पात्र में खटाई, मिर्च, नमक इत्यादि से भावित पदार्थ रखे हैं और दूसरे पात्र में दुग्ध रखा हुआ है। जीवात्मा इसमें से किसको ग्रहण करेगा, यह उसके मन पर अंकित संस्कार तथा बुद्धि के योग से विचार के आधार पर निर्भर करेगा। मन तो प्रत्येक जन्म में नया मिलता है। इस कारण पूर्व की स्मृतियाँ नहीं होतीं। केवल इस जन्म की स्मृतियाँ ही रहती हैं।

"यदि मनुष्य ने इस जन्म में खट्टे पदार्थ और दूध का स्वाद चखा है तो उन स्वादों की स्मृति से वह अपनी बुद्धि से चयन करेगा।

"संस्कारों से जीवात्मा का स्वभाव बनता है। नित्य हवन आदि करने वाले के संस्कार उसके जीवात्मा का स्वभाव हो जाते हैं और वह स्वभाववश परोपकार करने लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु योगाभ्यास से बुद्धि मन की स्मृतियों को जीवात्मा पर अंकित करने लगती है। तब जीवात्मा के संस्कार स्मृति रूप हो जाते हैं। यह योगाभ्यास का चमत्कार है।

"ऐसा प्रतीत होता है कि वृहस्पति में जीवात्मा कई जन्म की स्मृति को लिये हुए है।

"जैसे हम इस जन्म की स्मृति को हरा-भरा कर लेते है वैसे ही जन्म-जन्मान्तर की स्मृतियाँ इन्हीं कारणों से अथवा किन्हीं अन्य करणों से हरी-भरी होने लगती हैं।

"जब आप इस यज्ञशाला में प्रथम दिन आये थे तो वृहस्पति के मन में आपको देख रमण की स्मृति उभर आयी थी। वह उस जन्म में योगाभ्यास से अंकित थी। उसने महामात्य को सुनाया तो इतनी बातें बता दीं कि महामात्य को भी रमण का जीवन स्मरण हो आया। महामात्य को अपने इस जन्म की ही स्मृति थी। परन्तु वृहस्पति के मन पर रमण के जीवनकाल में अंकित स्मृतियाँ थीं।

"संस्कार जीवात्मा के स्वभाव का निर्माण करते हैं और स्मृति तो कर्म का चित्र होता है।"

शिवकुमार द्वारा स्मृति और संस्कार में वर्णित अन्तर इतना स्पष्ट था कि दत्तदेवी को पूछना पड़ गया, "स्मृति और संस्कार का यह अन्तर आपने किस शास्त्र के आधार पर वर्णन किया है?"

"वैसे तो यह सांख्यदर्शन का विषय है परन्तु न्यायदर्शन में भी उल्लेख मिलता है।"

महाराज और महारानी दोनों ही शिवकुमार की विद्वत्ता से चकित हो विस्मय से उसका मुख देखते रहे।

: ५ :

एक दिन महामात्य आये और पण्डित शिवकुमार से कहने लगे, "महाराज ने यज्ञ का निर्णय कर लिया है।"

"वह किस प्रकार?"

"उन्होंने कर्म-काण्ड उप-समिति द्वारा सुझाये गये प्रस्तावों में कुछ संशोधन किये हैं।" महामात्य ने एक पत्रक पढ़ते हुए बताया—

१. यज्ञ में वड़ी महारानी चन्द्रावती उनके साथ बैठेंगी और विक्रम चन्द्रगुप्त की माता को द्वितीय पंक्ति में स्थान मिलेगा।

२. यज्ञ में अश्व छोड़ा जायेगा। वह राज्य-भर में यात्रा करेगा और जो कोई भी जमींदार अथवा साहूकार यज्ञ में हवि देना चाहेगा वह देगा। राज्य का भाण्डारी अश्व के साथ भ्रमण करेगा और वह प्रदत्त हवि की प्राप्ति लिखकर देगा। जो धनिक श्रेष्ठ दस सहस्र रजत अथवा इससे अधिक देगा उसको नाम-दानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने का प्रमाण-पत्र दिया जायेगा।

३. महाराज पूर्ण रूप से अपनी सम्पत्ति को यज्ञ में देंगे। राज्य की सम्पत्ति को वे हवि के रूप में नहीं देंगे।

४. यह यज्ञ एक मास तक चलेगा। जो लोग यज्ञ में भाग लेने अथवा उसको देखने के लिए आयेंगे उनके भोजन आदि का प्रबन्ध एकत्रित हवि में से किया जायेगा।

५. जो भी ब्राह्मण इस यज्ञ में सम्मिलित होंगे उनको दक्षिणा दी जायेगी।

६. दान-दक्षिणा के उपरान्त यदि उस हवि में से कुछ बच जायेगा जो उसके आधार पर दान महासमिति का निर्माण किया जायेगा।

७. हवि एकत्रित करने के लिए भेजे जाने वाले अश्व की यज्ञ के अन्तिम दिन बलि दी जायेगी। क्योंकि ऐसा समझा जाता है कि इस बलि से महाराज और महाराज के परिजनों में युद्ध करने का सामर्थ्य बढ़ेगा।

यह आशा की जा रही है कि इस यज्ञ से गुप्त परिवार की कीर्ति इतनी बढ़ जायेगी कि युद्ध के बिना ही म्लेच्छ लोग भारतभूमि से पलायन कर जायेंगे।

८. पूर्णिमा के दिन यज्ञ की पूर्णाहुति होगी।

९. यज्ञ करने के लिए याज्ञवल्क्य आश्रम से कर्म-काण्डी ब्राह्मण बुलाये जायेंगे। राज-परिवार के पुरोहित हरिद्वार से आने वाले होत्रियों की अतिथि-सेवा करेंगे।

१०. हरिद्वार से आने वाले एक सौ एक होत्री राज-पुरोहित के भवन में अतिथि रूप में निवास करेंगे।

विगत पूर्णमासी को राज-भवन में जो यज्ञ हुआ था उस समय होने वाले वार्त्तालाप से शिवकुमार जान गया था कि उप-समिति के कुछ सदस्य महाराज के पास पहुँचकर उनके कान भरते रहे हैं। आज उसे यह ज्ञान हो गया कि महाराज ने उससे पूछे बिना ही यह सब निर्णय किया है। इससे उसे कुछ परेशानी का अनुभव होने लगा।

अपने मन के भावों को व्यक्त न करते हुए उसने मुस्कराते हुए महामात्य से कहा, "यह जो कुछ भी हुआ है, उसका ज्ञान मुझे नहीं है। किन्तु पुरोहित और यजमान का सम्बन्ध सेवक और स्वामी का नहीं होता। इस कारण यदि एक को दूसरे की बात का ज्ञान न हो तो इसमें किसी प्रकार विस्मय करने की बात नहीं है।"

ऐसा कहकर उसने ऐसा आभास दिया कि उसने यह सूचना सहज भाव से सुनकर ग्रहण कर ली है।

महामात्य बोले, "मैंने तो निश्चय कर लिया है कि यज्ञ सम्पन्न होते ही मैं यह पद छोड़कर अपने उज्जयिनी निवास पर चला जाऊँगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवकुमार के लिए यह विषय अवश्य चिन्ता का था। उसने अपने विषय में पूछा, "मुझे आप क्या आज्ञा देते हैं ?"

"तुम पुरोहित नियुक्त किये गये हो। यह मेरे कहने अथवा करने से नहीं अपितु तुम्हारे अपने गुणों के कारण तुमको यह पद मिला है। इस सम्बन्ध में आज्ञा देना तो दूर की बात है, मैं तुम्हें सम्मति भी देने में असमर्थ हूँ।

"सबसे बड़ी बात तो यह है कि तुम महाराज अथवा राज्य के कर्मचारी नहीं हो। तुम स्वेच्छा से कार्य करने वाले विद्वान् ब्राह्मण हो। अतः तुम कभी भी बिना किसी को सूचना दिये अथवा इच्छा होने पर सूचना देकर भी यहाँ से जा सकते हो। मैं राज्य का सेवक हूँ। इस कारण मैं तो राज्य की सेवा का परित्याग करके ही जा सकता हूँ।

"यज्ञ को आरम्भ होने, फिर उसको पूर्ण होने में अभी दो वर्ष का समय है तबतक मैं साठ वर्ष की वयस् का हो जाऊँगा। मेरी यह वयस् संन्यास लेने की भी होगी। इससे भी मैं समझता हूँ कि अब मुझे अपने जीवन का काँटा बदल लेना चाहिए।"

"आपके यहाँ से चले जाने पर मैं अकेलापन अनुभव करूँगा। तब मुझे स्वयं भी अपने भविष्य के विषय में विचार करना पड़ जायेगा।"

जो कुछ महामात्य ने अश्वमेध यज्ञ के सम्बन्ध में महाराज के निर्णय के विषय में बताया था, आगामी पूर्णमासी के यज्ञ के अवसर पर अल्पाहार के समय महाराज ने शिवकुमार को दोहरा दिया।

शिवकुमार पहले से ही इस विषय में जानता था, इस कारण अपने मुख पर किसी प्रकार के भाव व्यक्त किये बिना वह महाराज की बात को सुनता रहा। जब महाराज ने सब कुछ शिवकुमार को बता दिया तो अन्त में उन्होंने पूछा, "आप इस विषय में क्या कहते हैं ?"

"मेरे कहने के लिए तो इसमें कुछ है ही नहीं। आप यज्ञ के यजमान हैं। यज्ञ में जिस व्यक्ति की मुख्य सम्मति अपेक्षित होती है वह यजमान होता है और आपने अपना निर्णय दे दिया है।"

"महारानी दत्तदेवी भी इससे सहमत हैं।"

"महारानी की यह उदारता सराहनीय है।"

महाराज ने ही कहा, "आपको हम एक बात और बता देना चाहते हैं। वह यह कि महामात्य हरिषेण ने हमारे इस परिवर्तन को पसन्द नहीं किया है। वह इस कार्यक्रम से तटस्थ है। हाँ, उनका पुत्र भृगु इस दिशा में बहुत सहायक हो रहा है। हमने भृगु को यज्ञ का ब्रह्मा नियुक्त करने का विचार किया है।

"आप इस विषय में कैसा अनुभव करते हैं ?" महाराज ने शिवकुमार की सम्मति पूछी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं इसे उचित ही मानता हूँ। वह कर्मकाण्ड का विद्वान् है। गृह्यसूत्रों का ज्ञाता है। अतः वह आपके यज्ञ कर्म में बहुत सहायक सिद्ध होगा।"

"तो ठीक दिशा में कार्य हो रहा है न ?"

"यह कह पाना तो कठिन है। तदपि आप इसमें कर क्या सकते हैं ? आखिर राजधानी और बाहर के ब्राह्मणों के दृष्टिकोण का भी तो विचार करना ही चाहिए थां।

"समिति के निर्णयों को रूप देने में हमारा ही मुख्य हाथ था। हमने उन निर्णयों को ठीक समझकर ही उनका वैसा रूप निर्धारण किया था। अतः उनमें परिवर्तन मेरे लिये विचारणीय होंगे।"

"परन्तु महाराज ! देश के ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने के लिए जो कुछ करना पड़ा है, वह अनुचित नहीं कहा जा सकता।"

"किसी भी राजा के लिए राजनीति लक्ष्य होती है। यदि कोई ब्राह्मण राजनीति का उल्लेख करना चाहे तो वह उसका विषय नहीं है। इसलिए दोनों के दृष्टिकोण में अन्तर भी हो सकता है।"

"परन्तु ब्राह्मण समुदाय तो यह कहता है कि मोक्ष मार्ग भी विधि-विधान के अधिकाधिक पालन करने से प्राप्त होता है।"

शिवकुमार ने इसका खण्डन नहीं किया। वह मौन ही रहा।

महाराज पुनः बोले, "अब तो राज्य की ओर से यज्ञ के कार्यक्रम की घोषणा भी होने वाली है। सम्भवतया आज ही समस्त प्रजा को हमारे निर्णय का ज्ञान हो जायेगा।

"आपने महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का जो सजीव चित्र प्रस्तुत किया था उससे प्रेरित होकर ही हम इस कार्य में प्रवृत्त हुए हैं। हम उसी यश और कीर्ति की प्राप्ति की इच्छा करने लगे हैं।

"उस यज्ञ में जो कार्य विदुरजी ने सम्पन्न किया था हम वह स्थान आपको देना चाहते हैं। हमारे मन की यह अभिलाषा है कि समस्त भारतवर्ष में एक भी ब्राह्मण परिवार ऐसा नहीं रह जाना चाहिए जिसे कि इस यज्ञ से सन्तोष न हो।"

"इस शुभ कार्य के लिए परमात्मा आपका कल्याण करेंगे।"

किसी प्रकार का हर्ष अथवा विषाद व्यक्त किये बिना शिवकुमार ने महाराज की सूचना सुनी।

अल्पाहार समाप्त होने पर पुरोहित और पुरोहिताइन को दक्षिणा देकर विदा कर दिया गया।

उनके चले जाने के उपरान्त महाराज महारानी के आगार में चले गये। राजकुमार विक्रम चन्द्रगुप्त को भी वहाँ बुलवा लिया गया। तब वहाँ पर शिवकुमार के व्यवहार पर विचार होने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज ने विक्रम से पूछा, "राजकुमार ! क्या समझे हो ?"

"किस विषय में महाराज ?"

"हमारे निर्णयों को सुनकर पण्डित शिवकुमार की तटस्थता के विषय में।"

"मैं तो यही समझा हूँ कि कर्मकाण्ड में उनकी किसी प्रकार की रुचि नहीं है। इस कारण संसार के अन्य अनेक साधारण कार्यों की भाँति उनको यह यज्ञ भी एक साधारण-सी घटना ही लगी है।

"एक दिन मैंने उनको अपनी साहित्य गोष्ठी में आमन्त्रित किया था। उस पूर्णकाल में वे सन्तुष्ट तथा प्रसन्न प्रतीत होते हुए भी मौन ही बैठे रहे थे। और जब हमने साहित्य के विषय में उनके विचार जानने की इच्छा व्यक्त की तो वे कहने लगे, 'यहाँ तो कोयलों की संगति में स्वयं को मैं एक कागा जैसा ही अनुभव कर रहा हूँ।'

" 'तदपि कौवे का भी अपना मत तो होता ही है। मैं अपनी तुच्छ बुद्धि के आधार पर कह सकता हूँ कि साहित्य वक्ता तथा श्रोता के हित के लिए होना चाहिए। वक्ता तथा श्रोता का हित वक्ता की प्रिय और मधुर ध्वनि से ही होगा, मैं ऐसा नहीं मानता। कर्ण तो केवल इन्द्रिय हैं। ग्राहक तो मन होता है। मन को भी प्रकाशित करने वाली बुद्धि होती है। उन प्रकाशित अनुभवों को देखने वाला जीवात्मा होता है। इसलिए प्रिय शब्द और मधुर ध्वनि की ओट में जीवात्मा का हित अवश्य निहित होना चाहिए। जीवात्मा का हित किस बात में है, यह विचारणीय है।

" 'इन्द्रियों के विषय हैं रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द। ये जीवात्मा के विषय नहीं हैं। जीवात्मा की माँग तो मधुर वाणी से कुछ अधिक ही होती है।

" 'जीवात्मा अज्ञ अथवा अल्पज्ञ समझा जाता है। अतः यह भी विचारणीय है कि इस गोष्ठी से जीवात्मा की अल्पज्ञता कितनी छूटी है। जितनी अल्पज्ञता इस गोष्ठी के कारण छूटी है, वही इस गोष्ठी का सार है, शेष तो सब दन्त कटाकिट ही है।'

"पुरोहितजी का अन्त में यह कहना था, 'मैंने आपके सम्मुख एक माप रखा है। इस शास्त्रीय माप पर अपने कार्य का मूल्यांकन तो आप लोग स्वयं ही करेंगे।'

"पुरोहितजी के इस कथन पर हम सब उनका मुख देखते रह गये। हमारी गोष्ठी के अध्यक्ष पण्डित विशाखदत्त ने बाद में कहा था कि इसने हम सब के मुख पर कसकर तमाचा मारा है और फिर उसी हाथ से हमारी गाल को सहला भी दिया है।"

महाराज बोले, "तुम इसे अपनी गोष्ठी का सदस्य क्यों नहीं बना लेते ?"

"मैंने गुरुजी से इस सम्बन्ध में कहा था, किन्तु उनका कहना था कि पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो चपत खा चुके हैं, उसकी पीड़ा समाप्त हो जाय। तब फिर दूसरी चपत खाने की तैयारी करेंगे।"

"इस कथन में तुम्हारे गुरुजी ने कोई टीका-टिप्पणी की थी ?"

"उन्होंने यही कहा था कि यदि पण्डित शिवकुमार को इस गोष्ठी का सदस्य बना लिया गया तो उनको इसकी अध्यक्षता छोड़नी पड़ जायेगी। तब हमारे एक सदस्य ने इसका कारण जानना चाहा तो उन्होंने कह दिया कि वह मेरी अपेक्षा अधिक विद्वान् और वाणी पर अधिकार वाला है।"

"उसने यह तीक्ष्ण वक्तव्य किस बात पर दिया था ?"

यह प्रश्न सुनकर राजकुमार को वह कथा स्मरण हो आयी जो उस दिन कालिदास ने कही थी। उससे राजकुमार को लज्जा अनुभव होने लगी और परिणामस्वरूप उसका मुख लाल हो गया।

महाराज और महारानी उसके मुख से कुछ सुनने के लिए लालायित थे। किन्तु जब राजकुमार की झुकी हुई गर्दन और उसके मुख पर लालिमा देखी तो महारानी ने पूछा, "क्या बात है विक्रम ! तुम बता क्यों नहीं रहे हो ?"

"माँ ! वह एक कविता थी, जिसको मैं यहाँ पर दोहरा नहीं सकता।"

"किसने पढ़ी थी वह कविता ?"

"हमारी गोष्ठी में कुछ समय से एक नवयुवक कवि सम्मिलित हुआ है। उसे मैंने अपने निवास के पिछवाड़े में रहने के लिए स्थान दिया है।"

"क्या आयु है उसकी ?"

"सोलह-सत्रह वर्ष का होगा। एक दिन वह राजपथ पर खड़ा हुआ चलते-फिरते लोगों को अपना गीत सुना रहा था। तभी पण्डित विशाखदत्तजी की दृष्टि उसपर पड़ गयी। वे उसकी कविता सुनकर उसपर मुग्ध हो गये। उनके मुख से निकल गया, 'धन्य हो।'

"उनका यह कहना सुन वह किशोर बोला, 'तो दो ताम्र दीजिए।'

" 'किसलिए ?' पण्डितजी ने पूछा।

" 'मेरा गाना आपको पसन्द आया इसलिए।'

" 'मैंने तुम्हारा स्वर और स्वर-विन्यास पसन्द नहीं किया। मैंने इसके बोल सराहे हैं। जिसने उस कविता की रचना की है वह दो ताम्र नहीं दो रजत का भागीदार है।'

" 'श्रीमान्, उसका रचयिता भी मैं ही हूँ।' उसका कहना था।

" 'परन्तु इसका प्रमाण ?'

" 'वह मैं देने को प्रस्तुत हूँ।'

" 'किस प्रकार ?'

" 'आप कोई भी विषय दीजिये, मैं अभी उसपर कविता कर देता हूँ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

" 'अपनी वर्तमान अवस्था पर ही एक कविता की रचना कर दो।'

"यह सुनकर उसने तुरन्त अपनी अवस्था पर कविता गाकर सुना दी।

"महाराज ! वह कविता तो मुझे भी भली लगी थी। उसे एक-दो बार गोष्ठी में भी सुनवाया गया है। इसलिए वह मुझे स्मरण हो गयी है।"

राजमाता बोल उठी, "तो सुनाओ वह कविता।"

राजकुमार ने सुनाया —

शिशिर की पतझर में
नीम का एक शुष्क पात,
भाग्य की आँधी से उड़
आ पहुँचा गंगा के घाट।
इसकी शीतल फुहार में
भीग गया वह भाग्यहीन,
न पा सका जीवन नया
वह गुप्त मातृ-पितृ विहीन।
राजपथ पर पथिक पद
धूरि से था मलिन हुआ,
लुढ़कता-भटकता हुआ है
दो ताम्र की ले लालसा।
नगर वधुएँ डोलती हैं
रत्न जड़ित डोलनों में,
स्वर्ण करते हैं न्यौछावर
लज्जाहीन विमोहनों में।
शिशिर की पतझर में
नीम का एक शुष्क पात,
भाग्य की आँधी से उड़
आ पहुँचा गंगा के घाट।

"कविता सुन गुरुजी ने उसको दो रजत देते हुए पूछा, 'मेरी सेवा में चलोगे ?'

" 'क्या कार्य करना होगा ?' उसने पूछा। गुरुजी ने कहा, 'मनमानी कविता।"

" 'ठीक है चलूंगा।'

" 'ठीक है।' गुरुजी ने कहा और उसे घर ले आये। एक दिन उसको लेकर वे गोष्ठी में आये तो हमने उसको सदस्य स्वीकार कर लिया।

"उस दिन उसने पुरोहितजी के सम्मुख शिव-पार्वती के प्रणय प्रसंग की एक कविता कही थी; उसी पर पुरोहितजी ने वह वक्तव्य दिया था।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह तो उन्होंने ठीक ही किया है। जो बात तुम अपनी माता के सम्मुख व्यक्त नहीं कर सकते, उसे सुनते ही क्यों हो ?"

"परन्तु माताजी ! उसका प्रच्छन्न अर्थ भी तो हो सकता है ?"

"इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि पुरोहितजी की बात अर्थहीन थी ?"

राजकुमार समझ गया कि माँ इस बात पर रुष्ट है। उसने अपनी ग्रीवा झुका ली और मौन रहा।

महाराज ने बात बदलकर कहा, "हमने तुम्हें इस समय यहाँ पर इस कारण बुलाया है कि हम तुम्हें बताना चाहते हैं कि हम यज्ञ में राम और उसकी माता को आमन्त्रित कर रहे हैं।"

दत्तदेवी ने इस पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की, क्योंकि अल्पाहार के समय ही वह इस विषय में सुन चुकी थी। किसी प्रकार का हर्ष अथवा विषाद व्यक्त किये बिना उन्होंने तो कह दिया, "ऐसा तो होना ही चाहिए। मैं तो पिछले सोलह वर्ष से यह नहीं समझ पा रही हूँ कि वे दोनों माँ-पुत्र आपसे दूर क्यों रहते हैं ?"

"इसका कारण तो हमारा तुमसे विवाह करना है। उसने तुम्हारे विषय में कुछ कहा था। मैंने उस पर अप्रसन्नता प्रकट की तो वह स्वयं अप्रसन्न होकर यहाँ से चली गयी। हमारा पारिवारिक प्रासाद वहीं है। मेरे पितामह महाराज गुप्त ने वहाँ भवन बनवाया था।"

"तब तो उनका रूठना युक्तियुक्त ही था। एक सुन्दर रूपवती पत्नी के होते हुए आपने एक साधारण रूपवती से विवाह ही क्यों किया था ?"

"इसका मुख्य कारण उसका रुग्ण रहना था। राम के जन्म के समय वह बहुत दीर्घकाल तक रुग्ण रही थी। इसके अतिरिक्त तुम्हारे पूर्व जन्म के कर्मफल तुमको इस प्रासाद में धकेलकर ले आये। तुम जो स्वयं को सामान्य रूपवती समझती हो वास्तव में उस समय तो तुम हमें अद्वितीय सुन्दरी ही दिखायी दी थीं।

"यह वास्तविकता थी अथवा कि भ्रम, कुछ कहा नहीं जा सकता। तदपि तुम्हारे भाग्यफल प्रबल थे, यह तो कहा ही जा सकता है।

"स्मरण है न हमने तुम्हें कहाँ और किस समय पसन्द किया था ?

"मैं आखेट के लिए अश्व पर जा रहा था। सोनभद्रा नदी की तराई में एक ग्राम के बाहर कुएँ पर कुछ कुमारियाँ जल भर रही थीं। तुम भी उनमें थीं। उन सबमें तुम्हे देखकर उस समय जो हमारे मन में विचार आया वह यह था कि तुम इस नीरस और अस्त-व्यस्त वातावरण में एक अद्वितीय सुन्दरी हो। जल से परिपूर्ण कलश तुम्हारी क्षीण कटि पर आसीन था। तब ऐसा लगता था कि कहीं कलश के भार से तुम्हारी कटि तिनके की भाँति टूट न जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हमारे मुख से सहसा निकल गया, 'अरे, तुम्हें इतना वड़ा कलश उठाने के लिए किसने दिया है ?'

"तुमने सहज भाव से उत्तर दिया था, 'मेरी माँ ने।'

" 'वहुत निर्दयी है।' और तुम्हारा पीछा करते हुए हम तुम्हारे घर तक पहुँच गये। तुम्हारी माँ विधवा थी।

"हमने जब तुम्हारी माँ से तुम्हारा हांथ माँगा तो उन्होंने हमारा नाम-धाम पूछा। हमने अपना परिचय दिया तो उन्होंने प्रश्न किया, 'श्रीमान् ! विवाह करेंगे ?'

"हाँ भगवती।

"बस उसी समय तुम्हारी माँ ने विवाह का प्रबन्ध कर दिया और तुम्हें लाल वस्त्रों में लपेटकर हमारे साथ कर दिया गया।

"यह सब भाग्य का ही तो खेल था।

"चन्द्रावती छः मास से रुग्ण पड़ी थी। तुम्हें देखकर ईर्ष्या से जल उठी। उसी रोष में उसने पाटिलपुत्र छोड़ा और उज्जयिनी जाकर रहने लगी।"

"आप उन्हें बुला लीजिये। मैं उन्हें मना लूंगी।"

"और कुमार ! तुम ?"

"पिताजी ! मैं तो सेनाध्यक्ष का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहा हूँ। मुझे राज्य-कार्य में किसी प्रकार की रुचि नहीं है। मुझे कुछ आकर्षण भी दिखायी नहीं देता। अपनी वीणा और साहित्य चर्चा में मुझे जीवन का सार दिखायी दिया है। हाँ, जब कभी राज्य की इच्छा हुई तो मैं समर में जाकर जीवन में सरसता लाने का विचार करता हूँ।"

महाराज बोले, "हम अब स्वयं को वृद्ध अनुभव करने लगे हैं। यदि कोई हमारे इस पैतृक कार्य को सम्हालने वाला हो तो हम भी संन्यास लेना चाहते हैं।

"तुम अभी सम्राट् बनने की आयु के हो नहीं। राम इस समय इक्कीस वर्ष का है। यदि वह तुम्हारे गुरुजी के पास कुछ वर्ष तक रहा तो हम उसके हाथ में राज-पाट छोड़कर निश्चिन्त हो संन्यास ले लेंगे।"

"महाराज ! ठीक है। राम भैया को बुला लीजिये। मैं सदैव उसकी सहा-यता के लिए तत्पर हूँ।"

"यह तो ठीक है। परन्तु हमारे महामात्य हरिषेण राम को इस विशाल राज्य के योग्य नहीं मानते। हमने जब इसका कारण पूछा तो यही कहकर टाल दिया कि सब वातें सबको बतायी नहीं जातीं। उनका कहना था कि उनके ज्ञान का निष्कर्ष यही है कि वह इस विशाल राज्य का भार वहन करने में समर्थ नहीं है।"

यह सुनकर विक्रम बोला, "पिताजी ! आप भैया को यहाँ बुला लीजिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुजी उसको सब प्रकार से योग्य बना लेंगे।"

इस प्रकार यह पारिवारिक गोष्ठी समाप्त हो गयी।

: ६ :

महाराज के साथ उनकी द्वितीय पत्नी दत्तदेवी भी पण्डित शिवकुमार के पास महाभारत की कथा सुनने के लिए आया करती थीं।

नियमानुसार जब अगले दिन वे लोग यज्ञशाला में पहुँचे तो सबकुछ पूर्ववत् चलता देख महाराज और महारानी को प्रसन्नता हुई। उनको अपने पुरोहित के मन के सन्तुलन पर सन्तोष भी हुआ।

वास्तव में महाराज स्वयं अपने मन में यह अनुभव कर रहे थे कि उन्होंने अपने पुरोहित के सुझावों को न मानकर कुछ अनुचित कार्य किया है। राजधानी के ब्राह्मणों के आयोग के मिलने पर उनकी युक्तियाँ सुनकर वह सन्तुष्ट नहीं हुए थे। परन्तु जब विभूतिचरण ने एक धमकी दी तो उन्होंने ब्राह्मणों की सारी बातें स्वीकार कर लीं।

विभूतिचरण ने कहा था, "महाराज! आप अनपढ़, सरलचित्त प्रजा को तो किसी प्रकार समझा लेंगे परन्तु स्वार्थरत विद्वानों को समझा पाना आपके सामर्थ्य की बात नहीं है। यह कहावत है कि सोये हुए को तो जगाया जा सकता है किन्तु जो जगा हुआ हो और सोने का बहाना किये हुए हो उसको जगाना नितान्त कठिन है।

"यदि देश-भर के विद्वानों को यह विदित हो गया कि उनको मिलने वाला धन एक समिति के अधीन कर दिया गया है तो वे आपको बौद्ध, नास्तिक, दुराचारी और भगवान् जाने क्या-क्या लाँछन लगाकर कुख्यात कर देंगे। उसका परिणाम क्या हो सकता है आप स्वयं ही अनुमान लगा लीजिये।"

मात्र इस धमकी ने ही समुद्रगुप्त को ब्राह्मण समाज के अनुकूल कर दिया था।

तदपि शिवकुमार की युक्तियुक्त बात को न मानने से उनको मन-ही-मन ग्लानि हो रही थी।

उस दिन यज्ञ समाप्त हुआ और फिर महाभारत की कथा हुई। तदनन्तर पुरोहितजी के घर से महाराज और महारानी को प्रसाद के रूप में दूध और मिष्ठान्न मिला।

जाते-जाते महारानी ने पूछा, "पण्डितजी! महामात्य के घर के लोगों से कब भेंट हुई थी?"

"कल ही तो हुई थी।"

"सर्वभाष तो नित्य अध्ययन के लिए आ रहा होगा?"

"जी हाँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उसे क्या पढ़ा रहे हैं ?"

"अभी तो वेदान्त दर्शन ही चल रहा है। मेरी व्याख्या और फिर उसकी शंकाएँ और उन शंकाओं का समाधान यह सब होता है। उसे सर्वभाष लिख लेता है। इस प्रकार समझिये कि वेदान्त दर्शन पर एक भाष्य ग्रन्थ का निर्माण भी साथ-साथ ही हो रहा है।"

दत्तदेवी का इस प्रकार महामात्य से भेंट की बात पूछने का प्रयोजन किसी प्रकार सर्वभाष के अध्ययन के विषय में जानकारी प्राप्त करने का नहीं था। वह तो यह जानना चाहती थी कि उसके विषय में महामात्य ने कभी कुछ कहा है अथवा नहीं।

अब जब पुरोहितजी ने उस विषय में कुछ न कह सर्वभाष की शिक्षा की बात की तो महारानी ने सीधे ही पूछ लिया, "महामात्य अथवा उनकी पत्नी मेरे विषय में कुछ कहते थे ?"

"महामात्य आपके अथवा राज्य के विषय में किसी प्रकार की बात मेरे साथ नहीं करते। जहाँ तक मुझे ज्ञात है, इस सम्बन्ध में वे अपने परिवार के सदस्यों से भी बात नहीं करते।"

महाराज और महारानी दोनों को ही यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ।

महाराज पूछने लगे, "आप स्वयं भी राज्य के विषय में किसी से कोई बात करते हैं अथवा कि नहीं ?"

"मेरा स्वभाव है कि बिना पूछे मैं कभी भी और किसी भी विषय पर कोई बात किसी से करता ही नहीं। पूछने पर भी उतनी ही बात करता हूँ जिससे मेरे अधिकार की सीमा का उल्लंघन न हो।"

"राज्य में आपका क्या अधिकार है ?"

"मेरा अधिकार केवल इतना ही है कि महाराज जब किसी विषय पर मेरी सम्मति जानना चाहें तो उनको मैं अपनी सम्मति दे दूँ। आपके इहलौकिक और पारलौकिक हित को ध्यान में रखकर मैं अपना दृष्टिकोण निर्धारित करता हूँ।"

महाराज और महारानी, जो जाने के लिए उठ गये थे, पुनः रुक गये। वे पुनः अपने-अपने आसनों पर बैठ गये।

बैठते हुए महाराज ने कहा, "हम समझते हैं कि हम आपसे ही राय क्यों न कर लें! पुरोहितजी, हमारे और महामात्यजी के मध्य एक बहुत बड़ा मतभेद उत्पन्न हो गया है।"

महाराज की बात सुनकर शिवकुमार समझ तो गया कि महाराज किस बात की ओर संकेत कर रहे हैं। परन्तु वह इस विषय में अपनी किसी प्रकार की जानकारी की बात करना उचित नहीं समझता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज बोले, "महामात्य चाहते हैं कि महारानी चन्द्रावती और उनके पुत्र रामगुप्त को पहले तो यज्ञ के अवसर पर आमन्त्रित ही न किया जाय और यदि किया जाना आवश्यक हो तो फिर उनको पुनः उज्जयिनी जाकर पृथक् निवास की अनुमति अथवा स्वीकृति न दी जाय। उन्हें अपने वहाँ के सब संगी-साथियों को छोड़कर यहाँ पाटलिपुत्र में आकर रहना चाहिए।

"हमारा कहना था कि यज्ञ के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

"महामात्यजी का कहना है कि महारानी चन्द्रावती का हमारे साथ यज्ञ में बैठने का अभिप्राय यह होगा कि उनका पुत्र रामगुप्त युवराज पद का अधिकारी है।

"आप बताइये, आप इस सम्बन्ध में क्या समझते हैं ?"

"महाराज ! यह प्रश्न प्रवर समिति के समक्ष भी उपस्थित हुआ था। मैंने उस समय अपना यही मत दिया था कि यह महाराज का अपना पारिवारिक विषय है, उसमें हमारा हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है।

"जहाँ तक महारानीजी के आपके साथ यजमान बनकर यज्ञ में बैठने का प्रश्न है उसका राज्य के उत्तराधिकार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

"यह ठीक है कि कुछ रूढ़िवादी प्रजाजन अथवा राज्याधिकारी इसे युवराज पद की ओर अग्रसर होना समझें। परन्तु मेरा मत यह है कि युवराज तो युवराज ही है, राजा को भी राज्यच्युत किया जा सकता है। किसी का राजा बनना अथवा राज्य से च्युत होना इस बात पर निर्भर नहीं करता कि वह राजा का बड़ा पुत्र है अथवा कि छोटा। मेरा तो यहाँ तक कहना है कि इसका सम्बन्ध राज-परिवार के सदस्य होने से भी नहीं है। योग्य व्यक्ति ही शासक हो सकता है अन्यथा ईश्वरीय शक्तियाँ उसे शासन-च्युत कर देंगी।

"उन ईश्वरीय शक्तियों में देश के विद्वान् भी महान् शक्ति हैं। जन-साधारण विद्वानों के हाथ में होता है। प्रजा कभी-कभी विद्वानों के हाथ की कठपुतली भी बन जाया करती है। परन्तु यह चिरकाल तक नहीं रह सकता। आदिकाल से ही यह देखा जा रहा है कि दुष्ट असुर कुछ काल के लिए भले ही सत्ता-सम्पन्न हो जायें किन्तु शीघ्र ही कोई-न-कोई ऐसा महापुरुष उत्पन्न हो जाता है जो उन धूर्तों को पराजित कर पुनः देवताओं का राज्य स्थापित कर देता है।"

महारानी ने पुनः इस बात को राम और उसकी माता की ओर घुमाते हुए कहा, "राम उज्जयिनी में रहता हुआ भी राज्याधिकारी बना दिया जाय तो यह देश के हित में होगा अथवा कि नहीं ?"

"इससे तो देश का अनर्थ हो जायेगा। मैं राजकुमार रामगुप्त के संगी-साथियों को नहीं जानता। मैं तो इस विचार से कहता हूँ कि प्रत्येक पिता जीवन में कुछ अनुभव प्राप्त करता है और वह अपनी सम्पत्ति की भाँति उन अनुभवों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को भी अपने उत्तराधिकारी को देता है। इसी प्रकार संसार उन्नति करता है।

"इस प्रकार परम्परानुसार वंशानुगत ज्ञान-दान यदि किसी कारण से अवरुद्ध हो जाय तो संसार, देश अथवा परिवार ह्रासोन्मुख होने लगता है। मनुष्य का जीवन-भर का अर्जित अनुभव उसकी सम्पत्ति के समान होता है और उस सम्पत्ति को वह अपने उत्तराधिकारी को दे दे तो परिवार उन्नति करता है और यह न दे तो वह ह्रास की ओर बढ़ता चला जाता है।"

महाराज ने कहा, "तो आप भी यही उचित समझते हैं कि राम को हमारे पास आकर रहना चाहिए ?"

"यदि उसे राज्य का उत्तराधिकारी बनाया जा रहा है और वह चाहता है कि राज्य निरन्तर उन्नति करे, तब उसका आपके साथ आकर रहना नितान्त आवश्यक है।"

इससे दत्तदेवी का समाधान हो गया। उसने कहा, "अब हमें चलना चाहिए।"

महाराज और महारानी तो चले गये। शिवकुमार बहुत देर तक उसी स्थान पर बैठा हुआ यह विचार करता रहा कि उसकी इस सम्मति के विषय में महाराज क्या विचार करेंगे। उसे इस बात का तो सन्तोष था कि उसने महाराज को जो सम्मति दी थी, वह अपने शुद्ध हृदय से उचित समझकर दी थी। इसमें उसका अपना हिताहित कुछ भी नहीं था।

यह विचार आते ही वह अपने आसन से उठा और अल्पाहार के लिए भोजनालय में चला गया।

जिस दिन राज्य के सब प्रमुख नगरों में अश्वमेध यज्ञ के कार्यक्रम की घोषणा हुई तो पण्डित चतुरानन मिश्र को, जो पहले यज्ञ का विरोध कर रहा था और यज्ञ सम्बन्धी महासमिति में पण्डित शिवकुमार द्वारा प्रस्तुत संशोधनों का समर्थन कर रहा था, इससे विस्मय हुआ।

पाटलिपुत्र में तो यह घोषणा राज-प्रासाद, नगर आयुक्त का कार्यालय तथा न्यायालय आदि प्रमुख स्थानों पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखवाकर लगाई गयी थी। इसके साथ ही जब डुगडुगी द्वारा भी तीन दिन तक निरन्तर नगर में यह घोषणा होती रही तो इसकी ध्वनि पण्डित चतुरानन मिश्र के कानों में भी पड़ी। कार्यक्रम को सुनकर वह आश्चर्यचकित रह गया। उसके मन में सर्वप्रथम यही प्रतिक्रिया हुई कि वह इस विषय में महामात्य के पास जाकर कुछ जानने का यत्न करे।

इस घोषणा के दो दिन उपरान्त वह प्रातःकाल के अल्पाहार के समय महामात्य के निवास-स्थान पर जा पहुँचा। महामात्य ने पण्डितजी को अल्पाहार का निमन्त्रण दिया। अल्पाहार के समय पण्डित मिश्र ने पूछा, "भगवन् !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ की घोषणा तो महासमिति के निर्णय के विपरीत हुई है ?"

"मिश्रजी ! जब मैं अपने घर पर परिवार के साथ होता हूँ तो राज्य की बात नहीं करता।"

"तो किस समय किया करते हैं ?"

"या तो अपने राजकीय कार्यालय में या फिर पूर्व निश्चित कार्यक्रमानुसार अपने घर के पृथक् कक्ष में।"

चतुरानन मिश्र के प्रश्न पर महामात्य ने जो प्रतिक्रिया व्यक्त की थी उससे उनके परिजनों को यह आभास मिल गया था कि इसमें कुछ तो ऐसी बात अवश्य है कि जो महामात्य को अरुचिकर है। क्योंकि इससे पूर्व परिवार वाले यह आभास भी पा चुके थे कि महामात्य यज्ञ की बात को राज्य की बात नहीं मानते थे और इस विषय पर वे खुलकर परिवार में भी चर्चा करते रहे थे।

आज उस यज्ञ को राज्य की बात स्वीकार करने पर सब विस्मय करने लगे।

भृगु ने पूछा, "पिताजी ! यज्ञ कब से राज्य का विषय हुआ है ?"

"जब से राज्य ने उस सम्बन्ध में निर्मित उप-समिति के निर्णय को अमान्य कर स्वयं अपना निर्णय लागू किया है।"

"क्या यह पहले नहीं था ?"

"पहले तो राजा के नाम से यज्ञ सम्बन्धी बात घोषित नहीं हुई थी। अब यह राजाज्ञा के अधीन घोषित की गयी है। अतः अब यह राजकीय कार्य हो गया है। यही कारण है कि अब मैं इस विषय पर घर पर बैठकर चर्चा नहीं करना चाहता।"

विस्मय तो चतुरानन को भी हुआ था। उसने भी पूछा, "इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि कल को हमारी विद्वत्सभा की बात भी राजकीय बात हो सकती है ?"

"मैं तो समझता हूँ कि वह भी अब तक हो चुकी है।"

"तो उसपर भी आप यहाँ चर्चा नहीं करेंगे ?"

"वह तो मैंने तब से बन्द कर दी थी जब विद्वत्सभा द्वारा निर्मित महासमिति के निर्णय विद्वत्सभा में उपस्थित न कर सीधे महाराज के विचारार्थ अथवा स्वीकृत्यार्थ भेज दिये गये थे।"

"परन्तु भगवन् ! उनके पास ले जाने वाले तो आप ही थे ?"

"विद्वत्सभा द्वारा गठित इस समिति में मैं तो राज्य के प्रतिनिधि के रूप में ही था। समिति के अध्यक्ष विद्वत्परिषद् के भी अध्यक्ष थे। समिति के निर्णय समिति के अध्यक्ष ने मुझे समिति में ही देने चाहे थे, किन्तु मैंने लिये नहीं। तब वह मुझे घर पर देने के लिए आये। तब मैंने उनको राजकीय कार्यालय में लाने के लिए कह दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अध्यक्ष महोदय जब उन निर्णयों को लेकर मेरे कार्यालय में आये तो उस समय मैंने पूछा कि इन निर्णयों को विद्वत्परिषद् में प्रस्तुत किया था ?

"तब अध्यक्षजी ने कह दिया कि उसकी आवश्यकता नहीं है। उनका कहना था कि यह राजकीय कार्य है अतः इसका प्रबन्ध भी राज्याधीन ही है।"

यह सुनकर चतुरानन मिश्र को मौन होना पड़ा। वह चुपचाप अल्पाहार करता रहा। वह शेष बात पूछने के लिए महामात्य के कार्यालय भी नहीं गया।

आगामी गुरुवार को जब विद्वत्परिषद् की बैठक आरम्भ होने लगी तो सर्व-प्रथम चतुरानन मिश्र ने परिषद् के अध्यक्ष पण्डित विभूतिचरण से कहा, "मैं आज किसी साहित्यिक चर्चा से पूर्व परिषद् के प्रबन्ध के सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत करना चाहता हूँ।"

"वह साहित्यिक चर्चा के उपरान्त भी रखे जा सकते हैं ?"

"मैं उस बात को साहित्य चर्चा से अधिक उपयोगी समझता हूँ।"

"परन्तु आज तो ब्राह्मण ग्रन्थों पर पुरोहितजी का व्याख्यान है।"

"तो मैं आज के ब्राह्मणों के विषय में चर्चा करना चाहता हूँ जोकि ग्रन्थों की चर्चा से अधिक महत्त्व की है।"

"मैं पुरोहितजी को व्याख्यान देने से रोक नहीं सकता।"

"यदि मैं पुरोहितजी को इस विषय पर सहमत कर लूं तब तो आपको कोई आपत्ति नहीं होगी ?"

"परन्तु मिश्रजी! ऐसी कौन-सी बात है जो आप इतने बड़े विद्वान् के व्याख्यान को स्थगित करवाना चाह रहे हैं ?"

"मैं पुरोहितजी के व्याख्यान को स्थगित तो नहीं करवा रहा हूँ। वह आज नहीं तो अगले गुरुवार को हो जायेगा। किन्तु जो चर्चा मैं करना चाह रहा हूँ उसे आगामी गुरुवार तक के लिए स्थगित नहीं किया जा सकता। यह नहीं रुक सकती।"

"मैं तो पुरोहितजी को विशेष आग्रह से इसके लिए आमन्त्रित कर चुका हूँ, आप चाहें तो उनसे आग्रह कर सकते हैं।"

"ठीक है, मैं उनसे ही आग्रह करूँगा।"

उस समय तक सारे सदस्य आये नहीं थे। अभी सदस्यों का आगमन चल ही रहा था। जब महामात्य पधारे तो सभा में हलचल आरम्भ हुई। द्वार के बाहर टंगे विज्ञापन को सबने पढ़ लिया था। उसमें लिखा था कि आज न्याय-भूषण पण्डित शिवकुमार ब्राह्मण ग्रन्थों पर चर्चा करेंगे। तदनन्तर प्रश्नोत्तर होंगे।

इस विज्ञप्ति को पढ़कर सब सदस्य उत्सुकता से पुरोहितजी के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरोहितजी आये तो चतुरानन मिश्र द्वार पर ही उनको मिल गया और वह उनको अपनी बात समझाने लगा।

शिवकुमार ने जब मिश्रजी की बात सुनी तो कहा, "पण्डितजी! यदि आप कहते हैं तो मैं अपना व्याख्यान स्थगित कर देता हूँ। विषय गम्भीर है, अतः इस पर चर्चा होनी चाहिए। मेरी आपके प्रति सहानुभूति है तदपि मैं इस विषय पर अपनी कोई सम्मति नहीं दूँगा।"

चतुरानन ने बताया, "महामात्यजी भी आ गये हैं।"

"अपनी बात वे स्वयं ही बतायेंगे। मैं तो महाराज का पुरोहित हूँ। मैं और महाराज एक ही रथ के दो चक्र हैं। इस कारण हम एक-दूसरे पर टिप्पणी नहीं कर सकते।"

"परन्तु आप परिषद् के सदस्य भी तो हैं?"

"हाँ, सदस्य के नाते जब मत देने का अवसर आयेगा तब प्रस्ताव की रूप-रेखा देखकर उसके पक्ष अथवा विपक्ष में मत देने की बात सोचूंगा।"

इस प्रकार दोनों परिषद् के भवन में आ गये।

दोनों को इस प्रकार एक साथ आते देख विभूतिचरण समझ गया कि शिवकुमार ने चतुरानन का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। परन्तु इसमें वह कुछ कर नहीं सकता था। शिवकुमार ज्यों ही सभा-भवन में आया विभूतिचरण ने सरस्वती वन्दना आरम्भ करवा दी। उसके उपरान्त बिना किसी को कुछ कहने का अवसर दिये उसने शिवकुमार को मंच पर पधारने का निमन्त्रण दे दिया।

शिवकुमार मंच पर चला गया। उसके पहुँचते ही चतुरानन मिश्र खड़ा हो गया। उसने कहा, "पूर्व इसके कि विद्वान् वक्ता अपना प्रवचन आरम्भ करें, मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।"

चतुरानन की बात सुनकर विभूतिचरण ने शिवकुमार के कान में कहा कि वह अपना प्रवचन आरम्भ कर दे।

जब इस प्रकार खेंचातानी होने लगी तो उपस्थित सदस्यों में कानाफूसी होने लगी। वे इसका कारण जानने के लिए उत्सुक हो गये।

ऐसी स्थिति में शिवकुमार ने स्थिति को अपने हाथ में लेते हुए कहा, "सभ्यगण! मिश्रजी ने मुझसे एक समस्या का उल्लेख किया है। वह समस्या इस सभा के किसी अनियमित कार्य से सम्बन्धित है।

"मुझे आपकी सभा के नियमों का ज्ञान नहीं है, इस कारण मैं तबतक अपना व्याख्यान आरम्भ नहीं करूंगा जबतक आप लोग यह निश्चय नहीं करेंगे कि यह वैधानिक विषय इस समय उपस्थित किया जा सकता है अथवा कि नहीं।

"अतः मेरा मिश्रजी से निवेदन है कि वे अध्यक्षजी की अनुमति से अपना पक्ष प्रस्तुत करें। तदनन्तर सभासद् जो निर्णय करेंगे मुझे वह मान्य होगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभूतिचरण ने तुरन्त कह दिया, "अध्यक्ष के नाते मैं घोषित करता हूँ कि इस समय सभा का पूर्व निर्धारित कार्यक्रम ही प्रारम्भ किया जाय।"

उत्तर में शिवकुमार ने कहा, "अध्यक्ष महोदय से मेरा निवेदन है कि जिस नाते से वे मिश्रजी को अपना पक्ष प्रस्तुत करने से रोक रहे हैं, मिश्रजी उनके उसी अधिकार को चुनौती दे रहे हैं।

"वे आपको अध्यक्ष पद से हटाने की बात कर रहे हैं।"

ऐसी स्थिति में महामात्य ने बीच में हस्तक्षेप करते हुए कहा, "मैं समझता हूँ कि पहले मिश्रजी को अपनी बात कहने का अवसर दिया जाना चाहिए। तदनन्तर सभा विचार करेगी कि उनकी बात पर इस समय विचार करना आवश्यक है अथवा कि उसको आगामी बैठक के लिए स्थगित किया जा सकता है।"

विवश विभूतिचरण को स्वीकार करना पड़ा।

चतुरानन मिश्र उठे और बोले, "कुछ समय पूर्व विद्वत्परिषद् ने एक उप-समिति का गठन किया था। उसको अश्वमेध यज्ञ के कर्मकाण्ड के विषय पर विचार-विमर्श करने का अधिकार दिया गया था। इस समिति में राज्य के भी दो प्रतिनिधि सम्मिलित किये गये थे।

"परिषद् ने निश्चय किया था कि राज्य के दो प्रतिनिधियों की तुलना में परिषद् के पाँच सदस्य होंगे। मैं और मेरे कुछ साथी उस उप-समिति के निर्णयों पर इस सभा में विचार करना चाहते हैं। उन निर्णयों को इस सभा में प्रस्तुत नहीं किया गया और उन निर्णयों को सीधा राज्य को दे दिया गया है।

"इस अनियमितता का उत्तरदायित्व परिषद् के अध्यक्ष महोदय पर है। एतदर्थ में उनके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत करता हूँ।"

चतुरानन मिश्र अपना प्रस्ताव प्रस्तुत कर बैठे तो उसके समर्थन में एक के बाद एक इस प्रकार अनेक सदस्य उठकर अपनी बात कहने लगे।

इस वातावरण में महामात्य ने एक सुझाव दिया। उन्होंने कहा, "इस सभा में सदस्यों के अतिरिक्त भी कुछ अन्य लोग उपस्थित हैं। इसलिए परिषद् के अध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव इस सभा के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत नहीं हो सकता। अतः केवल उस प्रस्ताव पर ही विचार करने के लिए मात्र सदस्यों की बैठक बुलाई जाय और उसमें इस विषय पर विचार किया जाय।"

महामात्य की बात सुनकर विभूतिचरण की जान में जान आयी। उन्होंने घोषणा कर दी कि रविवार के दिन इस विषय पर विचार करने के लिए मात्र सदस्यों की सभा बुलाई जा रही है।"

इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो गया। उस दिन पण्डित शिवकुमार ने अपने विषय की केवल प्रस्तावना ही प्रस्तुत की। उसने कहा, "ब्राह्मण ग्रन्थ तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रेता युग के हैं। इनमें से कुछ द्वापर के भी हैं। इस कारण मुझे इन ग्रन्थों के सर्वथा प्रामाणिक होने पर सन्देह है। इसलिए मेरा कथन है कि इन ग्रन्थों में जहाँ कहीं भी वेदों के विपरीत कुछ उल्लेख है, उसे स्वीकार न किया जाय। उसे प्रमाण न माना जाय।

"इसके अतिरिक्त यज्ञ की जो रूपरेखा इन ग्रन्थों में वर्णित है, वह भी किसी वेद के आधार पर नहीं है। इसलिए उसे भी प्रामाणिक मानना उपयुक्त नहीं होगा। वेद में यज्ञ के अर्थ ही भिन्न हैं।"

इस प्रस्ताव की विशद व्याख्या के उपरान्त उसका व्याख्यान समाप्त हुआ।

: ७ :

पूर्व निश्चयानुसार रविवार के दिन चतुरानन मिश्र के प्रस्ताव पर विचार करने के लिए विद्वत्परिषद् की बैठक हुई। उस बैठक में महामात्य और शिवकुमार दोनों ही उपस्थित नहीं हुए। इस पर भी उस बैठक में सदस्यों की उपस्थिति पर्याप्त थी। चतुरानन मिश्र ने आज पुनः अपने पक्ष के समर्थन में वक्तृता दी तो परिषद् में से अनेक सदस्य उनकी बात से सहमत हो गये।

कामिनी कान्त मयूर नामक एक सदस्य ने तो ब्राह्मण समाज की ही घोर निन्दा कर डाली और कहा कि विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष ने परिषद् के भीतर और बाहर के ब्राह्मणों को महाराज के सम्मुख ले जाकर समिति द्वारा विचारित यज्ञ के विधि-विधान का विरोध कराया है।

इस पर बहुत चर्चा हुई और अन्त में यह निर्णय लिया गया कि परिषद् के अध्यक्ष स्वतः अपने पद से त्याग-पत्र दे दें। यदि वे इसे स्वीकार नहीं करते तो फिर उनके विरुद्ध की जाने वाली कार्यवाही पर विचार करने के लिए आगामी साप्ताहिक गोष्ठी में इस विषय को प्रस्तुत किया जाय।

उसका परिणाम यह हुआ कि विभूतिचरण ने परिषद् की अध्यक्षता से त्याग-पत्र देने का विचार कर लिया।

जिस दिन विद्वत्परिषद् की बैठक में विभूतिचरण का त्याग-पत्र उपस्थित किया जाना था उससे एक दिन पूर्व महाराज जब पण्डित शिवकुमार की यज्ञशाला में महाभारत की कथा सुनने के लिए आये तो कथा समाप्त होने के उपरान्त उन्होंने पुरोहितजी से कहा, "पण्डितजी ! आपने सुना है कि विद्वत्परिषद् में क्या हुआ है ?"

"जी नहीं। मैं पिछले रविवार को परिषद् की बैठक में उपस्थित नहीं था।"

"क्यों, आप गये क्यों नहीं ? सुना है वहाँ हमारे महामात्य के तथा आपके विषय में अनेक रुचिकर बातें कही गई हैं।"

"मेरे पास पण्डित विभूतिचरण आये थे। उन्होंने कहा था कि मैं अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्यान के अवशिष्ट अंश को कल पूर्ण करूँ।

"तब मैंने उनसे कहा था कि उस दिन की सभा में वह तो अध्यक्ष पद पर होंगे नहीं। इसलिए वह किस अधिकार से मुझे आमन्त्रित कर रहे हैं?

"वह बोले कि अभी तक तो वह ही अध्यक्ष हैं और उसी नाते मुझे आमन्त्रित कर रहे हैं। उनके त्याग-पत्र के उपरान्त जो कोई भी अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित होगा वह भी उनके ही पक्ष का, अर्थात् उन्हें निर्दोष मानने वाला ही होगा। इस कारण आज जो कुछ भी निर्णय वह कर रहे हैं उसको कालान्तर में भी मान्यता मिलेगी ही।

"विभूतिचरणजी के इस वक्तव्य पर मुझे विस्मय हुआ और मैंने निश्चय किया कि मैं कल की सभा में नहीं जाऊँगा।"

"नहीं पण्डितजी! आप जाइये, अपना भाषण जारी रखिये। हमें विदित हुआ है कि आपके सम्मान में किसी सदस्य के मन में कोई कमी नहीं आई है।"

"मेरा मन नहीं करता कि पदलोलुपता के इस झंझट में अपना समय नष्ट किया जाय। इसलिए मैंने पहले ही सर्वभाष को कल उस समय बुलाया है। मैं कल उसको दर्शनशास्त्र का अध्ययन कराऊँगा।"

"मैं तो समझता हूँ कि आपको वहाँ जाना चाहिए और परिषद् के कार्य में सक्रिय भाग लेना चाहिए। इसमें राज-परिवार का भी हित है।"

एक प्रकार से यह महाराज की ओर से पुरोहित को आदेश था। भले ही वह आग्रह के रूप में था। इससे यह स्पष्ट हुआ कि महाराज इस गोष्ठी में रुचि ले रहे हैं।

शिवकुमार अनिश्चित मन महाराज का मुख देखता रहा। तब महारानी ने कहा, "यज्ञ से पूर्व विद्वत्परिषद् में पड़ने वाली फूट को हम रोकना चाहते हैं। और हम समझने हैं कि राज-पुरोहित को राज-परिवार के हित के इस कार्य में सहायक होना चाहिए।"

महाराज ने आसन से उठते हुए कहा, "हम समझते हैं कि आपको कल परिषद् में जाना चाहिए और विद्वत्समाज को संगठित रखने में अपने प्रभाव का प्रयोग भी करना चाहिए।

"अन्यथा हमें भय है कि विद्वत्परिषद् विघटित हो जायेगी। सम्भवतया एक और परिषद् का निर्माण हो जाय। तब जो शोभा एक परिषद् रहने में है वह नहीं रह पायेगी।"

"मैं इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करूँगा।"

महाराज और महारानी के जाने पर शिवकुमार ने अपना रथ निकलवाया। उसमें अपनी पत्नी तथा पुत्रों को बैठाकर वह अल्पाहार से पूर्व ही महामात्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर पर पहुँच गया।

चन्द्रमुखी बच्चों को लेकर भीतर चली गई तथा शिवकुमार महामात्य के पास उनकी बैठक में जा पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसने अभी कुछ समय पूर्व महाराज के साथ हुए वार्त्तालाप का विवरण सुना दिया। फिर पूछने लगा, "ऐसी स्थिति में मुझे क्या करना चाहिए ?"

"मुझसे क्यों पूछ रहे हो ?"

"वह इस कारण कि उस दिन आपने चतुरानन मिश्र से कहा था कि यज्ञ का विषय राज्य का विषय हो गया है और उस यज्ञ के विषय पर ही विद्वत्परिषद् में फूट पड़ गई है।"

"देखो शिव ! यज्ञ का विषय राजकीय विषय हो गया है। इस विषय को राजनीति का अंग भी विभूतिचरण और उसके साथियों ने बनाया है। परन्तु विद्वत्परिषद् राजकीय सभा नहीं बन पाई। हम यत्न करना चाहते हैं कि यह परिषद् यज्ञ से तटस्थ रहे।"

"परन्तु महाराज का पुरोहित होने से मैं तो यज्ञ से तटस्थ नहीं रह सकता।"

"आप भी तटस्थ रह सकते हैं।"

"किस प्रकार ?"

"यज्ञ के प्रबन्ध कार्यों से यदि आप तटस्थ रहें तो आपकी तटस्थता बनी रहेगी।"

"यदि महाराज ने मुझे किसी प्रकार का कार्य सौंप दिया तो ?"

"तो उस कार्य को करते हुए भी आप तटस्थ रह सकते हैं। मैं इस विषय में यत्न कर रहा हूँ कि यज्ञ के लिए काशी, हरिद्वार, मदुराई, नालन्दा आदि स्थानों से यज्ञ के विभिन्न कार्यों के लिए होता बुलाये जायें।"

"तो आपका विचार है कि यज्ञ का कार्य करते हुए भी मैं यज्ञ से तटस्थ रह पाऊँगा ?"

"क्यों नहीं। यज्ञ में भाग न लेना और उसमें सक्रिय भाग लेना, दोनों ही पृथक् कार्य हैं।"

शिवकुमार ने बात बदलकर वृहस्पति की ओर मोड़ दी।

महामात्य कहने लगे, "मैं समझता हूँ कि आपके इस बालक में और कालिन्दी की माँ में पुन: स्नेह उत्पन्न होता जा रहा है।

"मैंने उसे एक सुझाव दिया है।"

"क्या ?"

"यही कि यदि एक-दो वर्ष के भीतर वह अपना विद्यमान शरीर छोड़ दे और शरीर छोड़ते समय वृहस्पति का ही चिन्तन करती रहे तो उसका जीवात्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामना से प्रेरित किसी ऐसे स्थान पर जन्म लेगा जहाँ पुनः वृहस्पति को वर सकेगी।

"अपने नये जन्म में वह वृहस्पति से पाँच-छः वर्ष छोटी होगी, इस प्रकार उसके वरण में उसकी आयु सहायक होगी।"

शिवकुमार देख रहा था कि महामात्य ने इस बात का शान्तचित्त से वर्णन किया था। यह देखकर उसको आश्चर्य हो रहा था।

महामात्य ने ही आगे कहा, "परन्तु गंगा इसको स्वीकार नहीं कर रही है। वह कहती है कि यदि उसके कर्मफल में यह जीवन इस बालक से बँधा है तो वह कर्मफल यह सब स्वयं ही कर देगा। अतः इस विषय पर चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।

"अन्यथा, वह वृहस्पति से वर्तमान सम्बन्ध से सन्तुष्ट है। उसका कहना है कि विवाह तो केवल शरीर का और वह भी केवल शरीर के यौवन काल का सम्बन्ध है परन्तु माँ और पुत्र का सम्बन्ध तो जीवात्मा का परस्पर सम्बन्ध है। इसे वह अधिक हितकर मानती है।"

"माताजी के सम्मुख यह प्रस्ताव रखकर आपने उनके चित्त को दुःखी नहीं किया क्या?"

"प्रत्यक्ष में तो वह किसी भी प्रकार से दुःखी नहीं दीखती थी। वृहस्पति के विषय पर वह बुद्धियोग से विचार करती है। उससे उसका मानसिक सम्बन्ध नहीं है।

"मन इन्द्रियों के समीप का द्रव्य होने से विवाह की प्रेरणा दे सकता है। परन्तु बुद्धियोग से अपनाया गया व्यवहार वासना से पृथक् रहता है।"

शिवकुमार इस मीमांसा को समझता था। इसलिए मन और बुद्धि का व्यवहार में गंगा को भेद करते हुए देखकर उसको उसके प्रति अधिक श्रद्धा हो गई थी।

शिवकुमार ने कहा, "वृहस्पति से भी इस विषय पर मेरी एक दिन बात हुई थी। वह जीवन की इस रहस्यमयी मीमांसा का वर्णन नहीं कर सका। किन्तु उसने कहा कि जब दादी माँ मुझे अपना पुत्र कहती हैं तो मेरे भीतर एक विशेष प्रकार की सुख की तरंग उठती है।

"यह तो वह बता नहीं पाया कि वह सुख कहाँ होता है। मैंने उसे पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के विषयों का वर्णन कर पूछा कि क्या उसको वे देखने में सुन्दर प्रतीत होती हैं?

"उसने कहा, नहीं।

"फिर मैंने पूछा उसको उनकी वाणी में अधिक मिठास मिलती है?

"उसने इसे भी अस्वीकार किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार मैंने एक-एक कर पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के विषयों का वर्णन कर पूछा तो वह बहुत देर तक आँख बन्द कर विचार करता रहा फिर बोला कि इनमें से कुछ भी नहीं। वह कुछ इससे विलक्षण अनुभव करता है।"

महामात्य ने विषय बदलकर पूछा, "बृहस्पति आजकल कौन-सी पुस्तक पढ़ रहा है?"

"अगले मास वह पाँचवें वर्ष में प्रविष्ट होगा। अब वह अष्टाध्यायी के सूत्र स्मरण करने लगा है।

"मुझे तो ऐसा लगता है कि वह पूर्वजन्म से ही यह सब कुछ सीखा हुआ है। केवल बीच में किसी अन्य कार्य में लीन होने के कारण पूर्वजन्म का पढ़ा-लिखा विस्मरण कर चुका था। अब उसको अवसर मिला है तो उस जन्म की विद्या उसको स्मरण हो रही है।"

"यह बालक बड़ा चमत्कारिक विद्वान् होगा।"

"हाँ, हो सकता है। यदि उसके साथ फिर उसी प्रकार की कोई दुर्घटना न हुई जैसी कि रमण के जीवन में हुई थी।"

"बड़ी सावधानी से इसके स्वास्थ्य का ध्यान रखा जाना चाहिए।"

इस प्रकार वार्त्तालाप समाप्त कर उन लोगों ने अल्पाहार किया और फिर शिव कुमार अपने परिवार को लेकर वापस आ गया।

शिवकुमार ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था कि अगले दिन जब वह विद्वत्परिषद् की बैठक में जायेगा तो वहाँ के झगड़े से तटस्थ रह अपना व्याख्यान देकर चला आयेगा।

किन्तु अगले दिन प्रातःकाल ही पण्डित विभूतिचरण शिवकुमार के निवास-स्थान पर पहुँच गया। शिवकुमार ने उसके आगमन से यह अनुमान लगाया कि कदाचित् कोई नयी परिस्थिति आ गयी है उसके लिए पण्डित विभूतिचरण को आना पड़ा है। उसने पूछा, "कहिये कैसे पधारे?"

"विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष के नाते मैं आपको परिषद् का सदस्य बनाकर ले गया था और आज मैं अपनी अध्यक्षता के अन्तिम दिन भी आपको अपने साथ ले जाना चाहता हूँ।"

"इसके लिए तो आप मुझे पहले ही प्रेरित कर गये थे। तदनुसार ही मैं अपनी तैयारी कर रहा था।"

"मैं समझता हूँ कि यदि मैं आपको अपने साथ ले गया तो उससे मेरे मान में वृद्धि होगी।"

शिवकुमार इस पहेली को समझ नहीं पाया। इस कारण वह चुप रहा। समय पर शिवकुमार ने अपना रथ निकलवाया और उसमें विभूतिचरण को साथ बैठा कर सभा भवन की ओर चल दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा भवन सदस्यों से खचाखच भर गया था। शिवकुमार समझ गया कि नये अध्यक्ष के निर्वाचन में पर्याप्त संघर्ष की सम्भावना है। यही कारण है कि दोनों पक्ष के सदस्य अपने-अपने सहायकों को लेकर उपस्थित हुए हैं।

शिवकुमार के पहुँचने पर सबमें हर्ष की तरंग प्रवाहित होने लगी।

महामात्य पण्डित हरिषेण पहले ही विराजमान थे और सबसे आगे अपने आसन पर आसीन थे। विभूतिचरण पण्डित शिवकुमार को लेकर मंच पर चला गया।

विभूतिचरण ठीक समय पर पहुँचा था, अतः मंच पर आसीन होते ही उसने कवि मयूर को सरस्वती वन्दना के लिए निवेदन किया।

सरस्वती वन्दना के उपरान्त विभूतिचरण ने कहा, "सभ्यगण! रविवासरीय विद्वत्परिषद् की सभा में हुए निश्चय के अनुसार मैं अपना त्याग-पत्र लिखकर ले आया हूँ।"

यह कहकर उसने अपने उत्तरीय के नीचे से एक छोटा-सा पत्रक निकाला और उसे पढ़ दिया।

उसमें लिखा था—

"विगत पाँच वर्ष से मैं पाटलिपुत्र की विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष पद पर रहा हूँ। विगत रविवार की सभा में परिषद् ने सर्वसम्मति से यह निश्चय किया था कि अश्वमेध सम्बन्धी उप-समिति के निर्णय को मैंने परिषद् में उपस्थित किये बिना राज्याधिकारी को देने की भूल की है। मैं इसे भूल नहीं मानता। इस कारण परिषद् ने निश्चय किया था कि मैं अध्यक्ष-पद से त्याग-पत्र दे दूँ।

"तदनुसार मैं आज इस सभा में अपने पद से पृथक् होने की स्वीकृति की याचना करता हूँ।"

अधिकांश सदस्य यद्यपि इस त्याग-पत्र की भाषा से असन्तुष्ट थे तदपि बात को शान्तिपूर्वक समाप्त होती जान सदस्यों ने विभूतिचरण के इस त्याग-पत्र का स्वागत किया।

त्याग-पत्र स्वीकार होते ही कवि मयूर ने उठकर कहा, "मैं इस सभा में विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष पद के लिए पण्डित शिवकुमार के नाम का प्रस्ताव करता हूँ।"

इस प्रस्ताव का करतल ध्वनि से स्वागत किया गया।

पण्डित चतुरानन मिश्र ने तुरन्त उठकर इस प्रस्ताव का समर्थन कर दिया।

शिवकुमार के अतिरिक्त किसी अन्य सदस्य का नाम इस पद के लिए नहीं आया। तब शिवकुमार ने उठकर कह दिया कि उसको वह पद स्वीकार नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवकुमार ने कहा, "मेरा अपना कार्य इतना और इस प्रकार का है कि उसके रहते हुए मैं इस परिषद् के प्रति न्याय नहीं कर पाऊँगा। अतः मैं परिषद् से क्षमा चाहता हूँ। इस उत्तरदायित्त्वपूर्ण पद का निर्वाह करने में मैं स्वयं को सर्वथा असमर्थ और अयोग्य पाता हूँ।"

शिवकुमार का कथन पूर्ण भी नहीं हुआ था कि महामात्य ने उठकर कहा, "मैं पण्डित शिवकुमार से आग्रहपूर्वक निवेदन करता हूँ कि वह इस पद को स्वीकार कर परिषद् की गरिमा को बढ़ावें। उनके द्वारा कार्य का सुचारु रूप से संचालन हो सके तदर्थ हम आज ही इस सभा में एक उपाध्यक्ष का भी निर्वाचन करते हैं, जो अध्यक्ष को समय-समय पर सहायता देते रहेंगे।"

पण्डित विभूतिचरण ने भी पण्डित शिवकुमार से आग्रह किया कि वह इस पद को स्वीकार कर सदस्यों पर कृपा करें। अन्य कोई विकल्प न देख शिवकुमार मौन रहा।

महामात्य पुनः उठे और उन्होंने समीप रखी पुष्पमाला से शिवकुमार का अभिनन्दन किया। इस प्रकार शिवकुमार के अध्यक्ष बनने की पुष्टि हो गई।

तब उस दिन के भाषण पर ही विवाद उठ पड़ा। विषय था ब्राह्मण समाज की धारणा है कि यज्ञों का विधि-विधान वैदिक है।

शिवकुमार का मत था कि त्रेता युग में जब वेदों का पुनरुत्थान हुआ तो वेदों का स्मरण रखने के लिए ये कर्मकाण्ड अस्वीकार किये गये। तब प्रत्येक कार्य के साथ किसी वेदमन्त्र के उच्चारण का विधान किया गया।

पण्डित शिवकुमार ने अनेक उदाहरण दिये। उसने बताया कि हवन यज्ञ में अग्नि प्रदीप्त करते समय यजुर्वेद के मन्त्र 'उद्बुध्यस्वाग्ने' के उच्चारण का अर्थ यह है कि परमात्मा ने सृष्टि-रचना के समय इसे प्रज्वलित किया जिससे सृष्टि के विभिन्न पदार्थ बने।

हवन यज्ञ में भी यजमान अग्नि प्रज्वलित करते समय यह मन्त्र बोलता है तो मन्त्र का अर्थ हवन यज्ञ में न होते हुए भी सृष्टि-रचना के शुभ कार्यों का आरम्भ स्मरण किया गया है।

इस पर बहुत ही गरमागरम विवाद हुआ। समय अधिक होने पर अन्त में पण्डित शिवकुमार ने सुझाव दिया कि इस विषय पर अगली बैठक में विचार विनिमय जारी रखा जाय।

सभा विसर्जित हुई। शिवकुमार अपने रथ पर बैठ अपने घर चला गया। उसके पीछे महामात्य भी अपने रथ पर बैठकर उसके घर जा पहुँचे।

अपने पीछे ही महामात्य को आया जान रथ से उतरकर उनका स्वागत करते हुए शिवकुमार ने उनके उस समय पधारने का कारण पूछा।

महामात्य बोले, "भीतर तो चलो, कारण भी बताऊँगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतर जाकर देखा तो वहाँ गंगादेवी, रोहिणी, भृगु, सर्वभाष तथा कालिन्दी आदि सभी विराजमान थे।

यह देख शिवकुमार जहाँ एक ओर प्रसन्न हुआ वहाँ दूसरी ओर उसको विस्मय भी हुआ। उसे इस स्थिति में देख गंगादेवी ने कहा, "कालिन्दी के पिताजी ने हमें बताया था कि आज आपको पाटलिपुत्र की विद्वत्परिषद् का अध्यक्ष निर्वाचित किया जायेगा। पाटलिपुत्र की शीर्षस्थ विद्वन्मण्डली की संस्था के अध्यक्ष निर्वाचित होने पर हम आपको बधाई देने के लिए एकत्रित हुए हैं।"

"इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि पिताजी को पहले ही विदित था कि आज परिषद् में यह अनर्थ होने वाला है?"

हरिषेण हँस पड़ा। उसने कहा, "विद्वत्परिषद् में पड़ने वाली फूट से बचने के लिए हमें यही मार्ग सूझा कि आपको इस पद पर प्रतिष्ठित किया जाय।"

"हमसे आपका क्या अभिप्राय है? क्या इसमें महाराज भी सम्मिलित हैं?"

"हैं तो सही परन्तु ऐसे ही जैसे प्रजा के अन्य सर्वहितकारी कार्यों में हुआ करते हैं।

"शिव! यह तो तुम जानते हो कि परमात्मा मनुष्य के शुभ कार्यों में किस प्रकार सहायक होता है। वह कभी किसी छोटे-से-छोटे व्यक्ति को भी आज्ञा नहीं देता। केवल उसके हृदय में बैठा हुआ उसको प्रेरणा ही देता है। श्रेष्ठ व्यक्ति उस प्रेरणा से प्रेरित हो शुभ कार्य में संलग्न हो जाता है। और निर्बुद्धि तथा दूषित बुद्धि वाले व्यक्ति उस प्रेरणा की अवहेलना करते हैं।

"यही आज प्रातःकाल महाराज ने तुम्हारे साथ किया था, और तुम्हारी श्रेष्ठ बुद्धि ने तुम्हारी सहायता की तो तुमने उसे स्वीकार कर लिया।"

महामात्य ने बात बदल दी। उन्होंने वृहस्पति की ओर मुख कर उससे पूछा, "वृहस्पति! आज तुम्हारी दादी माँ ने तुम्हें क्या पाठ पढ़ाया है?"

वृहस्पति इस प्रश्न को समझ नहीं पाया। वह महामात्य का मुख देखता रहा। सहसा उसके भीतर मानो विद्युत् प्रकाश हुआ हो इस प्रकार प्रकाश हुआ, उसके जीवात्मा को कुछ दिखाई देने लगा। वृहस्पति ने आँखें मूंद लीं और वह उसका अभिप्राय समझने का यत्न करने लगा।

वह जो कुछ भी समझ पाया उसका वर्णन करते हुए उसने कहा, "मुझे दादी माँ के पीछे एक अन्य महिला खड़ी दिखाई दी है। मानो वह बादलों के पीछे खड़ी हो इस प्रकार धुंधली दिखाई दे रही है। दोनों में न तो समानता है और न असमानता ही।"

इसका अर्थ सबने यही समझा कि वह गंगा के पिछले जन्म के विषय में कुछ कह रहा है। वृहस्पति गंगा के घुटने के पास अभी भी आँखें मूंदे बैठा था। लगता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Central Library
167884
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

था मानो किसी प्रकार का चिन्तन कर रहा हो।

उसने कहा, "वह रम्भा है। मैं उसे पहचान गया हूँ। वह मेरे गुरु चक्राक मुनि की कन्या है। परन्तु वह मेरी ओर देखती-देखती दादी माँ में ही विलीन हो रही है।"

"और तुम कहाँ हो?"

"मैं उस समय गुरुजी के आश्रम में दो मास से उपवास कर रहा था।"

पण्डित हरिषेण ने पूछा, "किस उद्देश्य से उपवास कर रहे थे?"

"रम्भा से विवाह की इच्छा करता हुआ। गुरुजी को यह स्वीकार नहीं था। मैंने अनशन कर दिया था। चालीस दिन तक निराहार रहने के कारण मेरा शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया। रम्भा यह सहन नहीं कर सकी और उसने अपना शरीर त्याग दिया।"

गंगादेवी ने देखा कि पाँच वर्ष का बालक जो अष्टाध्यायी के सूत्र स्मरण कर सकता है वह अपने पिछले तीसरे जन्म की बात बता रहा है।

गंगा का एक हाथ वृहस्पति की गाल पर था। वृहस्पति ने वह हटाया और फिर गंगा की ओर देखकर पूछने लगा, "तो दादी माँ! तुम रम्भा भी हो क्या?"

"नहीं, मैं तो गंगादेवी हूँ, जो किसी समय कमलिनी थी।" गंगा ने स्पष्ट उत्तर दिया।

"नहीं दादी माँ! तुम किसी समय रम्भा भी थीं।"

"हो सकता है।"

"हाँ, मैं जानता हूँ।" इतना कहता हुआ वृहस्पति हँस पड़ा। उसने कहा, "पिताजी! बाबाजी को जलपान नहीं करायेंगे?"

इसका अभिप्राय यही था कि उसका ध्यान अब आत्मा सम्बन्धी दृश्य के पीछे बाह्य दृश्य को देखने लगा है।

"तुम रम्भा से विवाह करना चाहते थे?" गंगादेवी ने पूछा।

वृहस्पति यह सुन दादी माँ का मुख देखता रहा।

महामात्य ने पूछा, "तुम जानते हो विवाह क्या होता है?"

वृहस्पति ने अपनी सहायता के लिए अपनी माँ से पूछा, "माताजी! विवाह क्या होता है?"

"जिस प्रकार मेरा और तुम्हारे पिताजी का विवाह हुआ है।"

"वही तो पूछ रहा हूँ कि कैसे हुआ है?"

शिवकुमार ने बात बदलने के लिए कहा, "वृहस्पति! जाकर नरसिंहदेव से कहो कि अल्पाहार भिजवा दे।"

यह सुन वृहस्पति उठकर चला गया। तब शिवकुमार ने कहा, "मैं समझता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ कि अभी इससे विवाह की बात नहीं करनी चाहिए।"

गंगादेवी ने कहा, "यह सब कुछ समय से पूर्व ही जान जायेगा। इसका जीवात्मा इसकी बुद्धि पर आधिपत्य जमा रहा है।"

अल्पाहार कर सब अपने-अपने घर चल दिये।

: ८ :

नियमानुसार अगले दिन भी महाराज समुद्रगुप्त यज्ञ के समय पधारे। यज्ञ हुआ और फिर महाभारत की कथा हुई। उसके पूर्ण होने पर महाराज यज्ञ की बात आरम्भ करते हुए बोले, "पण्डित भृगुदत्त ने आगामी वसन्त पंचमी के दिन यज्ञ का अश्व छोड़ने का मुहूर्त निर्धारित किया है।

"उस दिन यज्ञ का पूर्वांश सम्पन्न होगा। राजधानी के श्रेष्ठ जनों को आमन्त्रित कर उस दिन उनसे यज्ञ के समय ही हवि देने का निवेदन किया जायेगा।

"पण्डित विभूतिचरणजी का विचार है कि उस दिन के लिए भेजी जाने वाली निमन्त्रण-पत्रिका पुरोहितजी की ओर से भेजी जानी चाहिए।

"राजप्रासाद के पार्श्व में स्थित विशाल भूमि को यज्ञभूमि स्थल निर्धारित किया गया है। वहाँ पर यज्ञ और पधारने वाले अभ्यागतों के विधिवत् स्वागत का प्रवन्ध महामात्य करेंगे। पुरोहित के नाते आप अपनी ओर से भेजी जाने वाली निमन्त्रण-पत्रिका तैयार कर महामात्यजी के पास भेज दीजिये। वे उस निमन्त्रण-पत्र की दस सहस्र प्रतियाँ तैयार कराकर राजधानी के प्रतिष्ठित जनों को भेज देंगे।

"इस प्रकार आपके श्रीकरों से यज्ञ का श्रीगणेश होगा। यज्ञ का समापन भी आपके ही करकमलों द्वारा होगा। परन्तु यह बताना समय से पूर्व होगा कि बीच में यज्ञ का कार्य करने के लिए अन्य लोगों को कहा जा रहा है। उससे आप सारे समय दर्शक के रूप में रहेंगे।"

शिवकुमार यह सुनकर विचार करने लगा कि यज्ञ कर्मकाण्ड प्रवर समिति ने भी कुछ इसी प्रकार विचार किया था।

प्रवर समिति का निश्चय था कि यज्ञ पर देश भर के धनी-सेठ्ठियों, भूमि-पतियों तथा अन्य प्रमुख-प्रमुख नागरिकों को निमन्त्रण भेजा जाय और यज्ञ में स्वेच्छा से हवि देने का उनसे आग्रह किया जाय।

इस कारण उससे इस यज्ञ-कार्य में सहयोग के लिए न कहना किसी प्रकार भी उसकी रुचि के विपरीत नहीं था।

उसे अश्व का पूजन तथा उसे छोड़ते समय उसके सकुशल लौटने के लिए परमात्मा की स्तुति की योजना आदि कुछ भी करने के लिए भी नहीं कहा गया। इस कारण उसने पूछा, "यह निमन्त्रण-पत्रिका कबतक महामात्य के पास पहुँच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानी चाहिए ?"

"पत्रिका तो शीघ्रातिशीघ्र पहुँच जानी चाहिए क्योंकि पीछे उसकी दस सहस्र प्रतियाँ करने में भी तो समय लगेगा।

"तदनन्तर अश्व छोड़ने से पूर्व देशभर के लोगों के पास भेजने के लिए एक लाख प्रतियाँ तैयार करानी होंगी।"

उन दिनों आश्विन मास चल रहा था। शिवकुमार ने कहा, "मुझे यह कार्य करने में प्रसन्नता होगी। पूर्णिमा के दिन राज-प्रासाद में यज्ञ के समय मैं निमन्त्रण-पत्रिका लिखकर ले आऊँगा और आपको दे दूंगा।"

"ठीक है, पूर्णिमा मैं केवल चार दिन ही तो हैं।"

अल्पाहार तैयार था केवल नरसिंहदेव आज्ञा की प्रतीक्षा में था। वृहस्पति द्वारा सूचना मिलने पर तुरन्त अल्पाहार की व्यवस्था हो गयी।

महाराज और महारानी गये तो शिवकुमार उसी समय निमन्त्रण-पत्रिका लिखने बैठ गया। उसने बीस पंक्तियों की एक निमन्त्रण-पत्रिका तैयार कर ली। उसमें उसने यज्ञ करने का निश्चय और फिर उस यज्ञ में समस्त प्रजा के सहयोग का निवेदन किया। प्रजा से यज्ञ में सम्मिलित होने का आग्रह भी किया गया।

अन्त में एक पंक्ति में उसने यह भी कहा कि प्राचीन काल में तो प्रायः सर्व-सम्पत्ति नरेशों के अधिकार में होती थी। अब नरेश तो रहे नहीं। वह सम्पत्ति अब श्रेष्ठियों का चरण चुम्बन कर रही है। अतः यज्ञ का पूर्ण भार व्यापारियों और उद्योगपतियों के दान-दक्षिणा पर ही होगा।

उनसे उसमें पूर्ण उत्साह से भाग लेने के लिए निवेदन किया गया था।

शिवकुमार ने उस निमन्त्रण-पत्रिका की तीन प्रतियाँ सुन्दर सुलेख में तैयार कर लीं। उन्हें लेकर वह मासिक यज्ञ में सम्मिलित होने गया।

राज-प्रासाद के इस पारिवारिक यज्ञ में आज कुछ विस्तार कर लिया गया था। आज के यज्ञ में शिवकुमार के पूर्ण परिवार के अतिरिक्त महामात्य का पूर्ण परिवार और पण्डित विभूतिचरण का पूर्ण परिवार भी सम्मिलित था।

यज्ञ तथा प्रसाद वितरण के उपरान्त शिवकुमार ने अपने थैले में से एक निमन्त्रण-पत्रिका निकालकर महाराज के समक्ष रख दी और एक स्वयं अपने हाथ में लेकर उसको पढ़कर सुनाने लगा। पत्रिका सुनकर महामात्य बोल पड़े, "सुन्दर, अति सुन्दर।"

महामात्य ने महाराज से पूछा, "महाराज ! यदि आज्ञा हो तो आज से ही एक सौ सुलेख लेखकों को इसकी प्रतियाँ तैयार करने के कार्य पर नियुक्त कर दूं।"

"हाँ, राजधानी के श्रेष्ठियों को भेजने के लिए दस सहस्र प्रतियाँ तो तीन-चार दिन में तैयार हो ही जानी चाहिए। राज्य के विभिन्न भागों में भेजने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए भी सवा लाख प्रतियाँ तैयार करवा लीजिए।

"जो मित्र राज्य हैं उनको भी एक-एक प्रति भेजने की व्यवस्था होनी चाहिए। उनके द्वार पर अश्व पहुँचे उससे पूर्व ही यह पत्रिका पहुँच जानी चाहिए। डुग्गी पिटवाकर जन साधारण को सूचित करने का भी आयोजन होना चाहिए।

"यज्ञ आरम्भ होने के दिन तक राजधानी में तो पाँच बार डुगडुगी पिटवा-कर इसकी घोषणा करवा देनी चाहिए। प्रत्येक नगर तथा गाँव में भी पत्रिका भिजवायी जाय और डुगडुगी भी पिटवायी जाय। उसके उपरान्त वहाँ अश्व भेजा जाय।"

यज्ञ समाप्त हुआ। निमन्त्रण-पत्र पढ़ा गया और उसकी एक प्रति लेकर महा-मात्य वहाँ से उसी समय उठे और चले गये।

वे अपने कार्यालय में गये और एक अधिकारी को बुलाकर आज्ञा दी कि एक-सा सुलेख लिखने वालों को बुलवाकर निमन्त्रण-पत्रिका की प्रतियाँ तैयार करवायी जायें।

महाराज ने उस दिन दक्षिणा में दस स्वर्ण के स्थान पर बीस स्वर्ण दिये।

शिवकुमार ने पूछा, "महाराज! यह किस उपलक्ष्य में?"

"अब समाज में आपका पद ऊँचा हो गया है। पहले आप समुद्रगुप्त के पारि-वारिक पुरोहित ही थे। अब आप पाटलिपुत्र की विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष भी हैं। इसलिए बड़े जनों की भेंट भी अधिक ही होती है।"

शिवकुमार महाराज को नमस्कार कर घर चलने के लिए उठा तो उसकी पत्नी ने कहा, "महारानीजी मुझे बच्चों सहित आज सायंकाल तक यहीं रह जाने का निमन्त्रण दे रही हैं।"

"आपको उनका निमन्त्रण स्वीकार है?"

"मैं अस्वीकार कैसे करती?"

"ठीक है। मैं सायंकाल रथ भेज दूंगा।"

"इसकी आवश्यकता नहीं। महारानीजी इसका प्रबन्ध करवा देंगी।"

"बहुत अच्छा।"

यह तो शिवकुमार को बाद में विदित हुआ कि महामात्य की पत्नी गंगा और उनकी पुत्री कालिन्दी को भी वहीं रुकने का निमन्त्रण दिया गया था।

शिवकुमार वृहस्पति के विषय में चिन्तित रहने लगा था। वह सोचता था कि कहीं पूर्व जन्म के विवाह की लालसा को स्मरण कर वह समय से पूर्व ही विवाह की लालसा न करने लग जाय। अतः वह चाहता था कि गंगा और वृहस्पति में कम-से-कम भेंट हो। परन्तु परिस्थितियाँ उनके मन की भावनाओं के विपरीत कार्य कर रही थीं।

छोटी महारानी का प्रासाद एक अन्य स्थान पर बन रहा था जहाँ गंगादेवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वृहस्पति में परस्पर भेंट हो जाय। इससे उसको चिन्ता होने लगी। उसी चिन्ता में वह अपने घर पहुँच गया।

आज के महाराज के व्यवहार से उसको इस बात का सन्तोष था कि महाराज समुद्रगुप्त विद्वत्ता का सम्मान करता है।

जब से वह पाटलिपुत्र में आया था उसके अगले दिन ही समुद्रगुप्त से उसकी भेंट होने पर उसे पता चला था कि महाराज विद्वानों की संगति के लिए लालायित रहते हैं। दूर-दूर से उन्होंने, ब्राह्मणों को बुलाकर राजधानी में किसी-न-किसी लोकहितकारी कार्य पर नियुक्त किया हुआ है।

शिवकुमार उस दिन घर पहुँचा तो उसने देखा कि उसका शिष्य सर्वभाष उसकी प्रतीक्षा में बैठा है।

सर्वभाष को बैठक घर में बैठा देख शिवकुमार ने उससे पूछा, "सर्वभाष ! क्या बात है, आज समय से पूर्व किस प्रकार आ गये ?"

"गुरुजी ! अभी तो मैं राजकुमार का सन्देश लेकर उपस्थित हुआ हूँ। मुझसे कहा गया है कि मैं आपसे निवेदन करूँ कि आज आप उनकी साहित्यिक गोष्ठी में पधारिये और फिर उनको निर्देश दीजिये कि वे किस प्रकार उस गोष्ठीं को अधिकाधिक उपकारी बना सकें।"

"किन्तु तुम्हारा राजकुमार अथवा उनकी साहित्यिक गोष्ठी से क्या सम्बन्ध है ?"

"राजकुमार से मेरा बाल्यकाल का परिचय है। कल मैं महारानीजी से मिलने के लिए गया था। वे मुझे पुत्रवत् मानकर स्नेह करती हैं। वहीं राजकुमार से भेंट हो गयी। उन्होंने पूछा कि मैं आपके पास किस समय पढ़ने के लिए जाया करता हूँ। मैंने समय बताया तो उन्होंने कह दिया कि मैं आपको लेकर उनकी साहित्यिक गोष्ठी में पहुँच जाऊँ। उसके साथ ही उन्होंने आपको बुलाने का अपना उद्देश्य भी बता दिया।"

"इस प्रकार के निमन्त्रण पर जाना मेरा स्वभाव नहीं है।"

"क्यों गुरुजी ?"

"यह अभी तुम्हारे समझने की बात नहीं है। किन्तु तुम इतना समझ लो कि तुम राजकुमार के प्रतिहारी नहीं हो। न ही साहित्यिक गोष्ठी के प्रतिहारी हो। तुंमसे प्रतिहारी का कार्य कराकर राजकुमार ने अनुचित कार्य किया है।"

यह सुनकर सर्वभाष चुप हो गया।

शिवकुमार ने कहा, "अब तुम जब आ ही गये हो तो आज का अध्ययन-कार्य कर लिया जाय। अन्यथा पुनः आने-जाने में व्यर्थ समय नष्ट होगा।"

"परन्तु मैं अपने पिछले दिन का लिखा पाठ तो लाया ही नहीं ?"

"कोई हानि नहीं। कल दोनों दिन का लिखा पाठ एक साथ ही सुन लूंगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवकुमार ने आगे पढ़ायी चालू कर दी। उसको सूत्र तो कण्ठस्थ ही था। उसने आरम्भ किया—

"**गुहां प्रविष्टवात्मानो हि तद्दर्शनात्**। यह ब्रह्मसूत्र प्रथम अध्याय के द्वितीय भाग का ग्यारहवाँ सूत्र है।

"इसमें कहा गया है—हृदय स्थान में दो आत्म-तत्त्व देखे जाने से।

"देखे जाने से क्या ? इससे यह अभिप्राय है कि कुछ ऐसे पदार्थ हैं कि जिनमें एक की अपेक्षा दो आत्म-तत्त्व देखे जाते हैं। इस कारण वे पदार्थ अर्थात् प्राणी जगत् के अन्य पदार्थों से श्रेष्ठ हैं।

"एक आत्म-तत्त्व के विषय में बता चुके हैं। उसके विषय में चर्चा इस प्रकार आरम्भ हुई थी कि सूत्रकार ने कहा था जो सदा सब स्थान पर प्रसिद्ध है उसको देखने से ज्ञान प्राप्त होगा। तब मैंने समझाया था कि सब स्थान पर प्रसिद्ध क्या है। सूत्रकार का उससे अभिप्राय था यह 'जगत्'। सब लोग, वे चाहे कहीं भी रहते हों, इस जगत् को देखते हैं। इस कारण जो सर्वत्र प्रसिद्ध है वह जगत् है।

"इस जगत् के उपदेश से ज्ञान प्राप्त होता है। उपदेश का अभिप्राय है उसकी जानकारी प्राप्त करना।"

सर्वभाष ने पूछा, "क्या इस जगत से अन्य अधिक कुछ प्रसिद्ध नहीं है ? उस दिन पण्डित विभूतिचरण कह रहे थे कि ऋचाओं में प्रसिद्ध परमात्मा को माना जाता है ?"

"सुनो, इस पुस्तक का नाम है ब्रह्मसूत्र। इसका यही अभिप्राय लिया जाना चाहिए कि इसमें ब्रह्म का वर्णन किया गया है। जिसके वर्णन के लिए यह ग्रन्थ लिखा गया है उसको ही इस ग्रन्थ में सर्वत्र प्रसिद्ध मान लिया जाता तो फिर ग्रन्थ लिखने की आवश्यकता ही क्या रह जाती ?

"एक और भी बात है। वह यह कि शुक्राचार्य के अनुयायी तो परमात्मा को ही नहीं मानते। तब यहाँ पर उसका 'सर्वत्र प्रसिद्ध परमात्मा' यह अर्थ नहीं हो सकेगा।

"इस कारण मैं तुमको समझाता हूँ। ब्रह्म को प्रसिद्ध करने के लिए तो यह पुस्तक लिखी गयी है। इस कारण यहाँ पर 'प्रसिद्ध' से अभिप्राय किसी अन्य से है जो परमात्मा को मानते हैं अथवा जो परमात्मा को नहीं भी मानते, सब-के-सब इस जगत् को देखते हैं। और फिर उसके विषय में जानने का भी यत्न करते हैं।

"एक अन्य आचार्य हुए हैं, शुकदेव जी। यह माना जाता है कि वे इस जगत् को मिथ्या बताते थे।

"आचार्य शुक ने मिथ्या का लक्षण किया है : जो न हो और प्रत्यक्ष न हो।"

इस प्रकार गुरु-शिष्य में प्रश्नोत्तर हो रहे थे कि शिवकुमार के सेवक ने भीतर आकर सूचना दी, "पण्डितजी ! अनेक जनों को साथ लिये हुए राजकुमार आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मिलने के लिए आये हैं।"

राजकुमार के आने की बात सुनकर शिवकुमार ने एक क्षण आँख मूंदकर विचार किया और फिर सेवक से बोला, "उनको सादर बाहर बैठक में बैठाओ। उनको जलपान कराओ और कहो कि इस समय मैं एक आवश्यक कार्य में लीन हूँ। उससे अवकाश पाते ही शीघ्र मैं उनसे मिलने आ जाऊँगा।"

सेवक के जाने पर सर्वभाष बोला, "राजकुमार उसी कारण आये होंगे जो मैंने निवेदन किया था।"

"तुमने अपना सन्देश मुझे दे दिया था। इसलिए तुम तो दोषमुक्त हो। मैं अपने विषय में उनको कह दूंगा।

सेवक के कहने पर भी राजकुमार अपने साथियों सहित वहाँ आने से रुका नहीं जहाँ शिवकुमार अपने शिष्य को पढ़ा रहे थे।

उनको सहसा आया देख शिवकुमार के मुख से निकल गया, "ओह! तो आप बलपूर्वक यहाँ चले ही आये हैं?"

"इसकी सूचना तो हमने सर्वभाष के द्वारा पहले ही भेज दी थी।"

"सर्वभाष ने तो यह बताया था कि यह मुझको लेकर आपकी साहित्यिक गोष्ठी में पहुँच जाय।"

"हाँ, किन्तु आप पहुँचे नहीं?"

इसके उपरान्त बातों का सूत्र गोष्ठी के अध्यक्ष विशाखदत्त ने अपने हाथ में लिया। उसने कहा, "चुम्बक और लोहे के टुकड़े में आकर्षण होने पर जो दोनों में से हलका होता है वह भारी की ओर खिच जाया करता है। यही बात हमारे साथ हुई है।

"यद्यपि हम समझते थे कि आकर्षण शक्ति हममें है, परन्तु भार में आप अधिक सिद्ध हुए, इस कारण हमको खिचकर आपकी ओर आना पड़ा है।"

"तो यह बात है? लोहे के ढेले की ओर गतिशील चुम्बक खिच आया है।" शिवकुमार ने मुस्कराने का नाटक किया।

कवि कालिदास बोला, "मात्र ढेला नहीं भगवन्! उससे कहीं अधिक भारयुक्त।"

"मैं तो बहुत ही हलका हूँ और कवित्व तो मुझ में है भी नहीं।"

"कवित्व के सामर्थ्य की तुलना नहीं हो रही है इस समय। और न ही शरीर के भारीपन की। आपका पाण्डित्य ही आपका गुरुत्व है।" पुनः विशाखदत्त ने बातों का सूत्र अपने हाथ में लेते हुए स्पष्ट किया।

"जब गोष्ठी में राजकुमार ने घोषणा की कि आपको गोष्ठी में आमन्त्रित करने के लिए सर्वभाष द्वारा निमन्त्रण भेजा गया है तो मैंने तभी बता दिया था कि आपके पधारने की किंचित् भी सम्भावना नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्यों, राजकुमार का प्रश्न था।

"मैंने राजकुमार को समझाया कि आप में हमारी अपेक्षा विद्वत्ता का गुरुत्व अधिक है। तब यह कवि महोदय बोल पड़े कि यह समस्या तो बड़ी सरल है। जो हलका है वह भारी की ओर खिंच जाय। इसी आधार पर हम यहाँ आये हैं।"

"अब आपने यहाँ आने का कष्ट किया है तो आपके इस कष्ट का निवारण भी करना ही चाहिए।"

तभी राज-पुरोहित का प्रबन्धक अपने सेवक के साथ इन आगन्तुकों के लिए जलपान आदि की सामग्री लेकर आता दिखाई दिया।

"लीजिये। वह आ ही गये हैं।" शिवकुमार ने उसे देख कह दिया।

कक्ष में पहुँचकर नरसिंहदेव ने मिष्ठान्न का थाल सबके मध्य में रखवा दिया। सेवक के द्वारा सबके सम्मुख कटोरे रखवा दिये और फिर उससे कहा कि वह उन कटोरों में दूध भर दे।

तब तक आगन्तुकों ने लड्डू उठाकर मुख में डालने आरम्भ कर दिये थे।

: ६ :

मिष्ठान्न और दूध का उपयोग करते हुए राजकुमार ने कहा, "पुरोहितजी! मैंने सर्वभाष द्वारा आपके पास निवेदन करवाया था कि आप हमारी साहित्यिक गोष्ठी में पधारें।

"उस गोष्ठी में हम छः सदस्य हैं। हमारी इच्छा थी कि उसकी संख्या सात कर दी जाय। इस नये स्थान पर सर्वसम्मति से आपके नाम का प्रस्ताव हुआ। उसी निश्चय के आधार हर मैंने सर्वभाष द्वारा आपको वहाँ पधारने का निमन्त्रण भेजा था।

"हमने काफी समय तक आपके पधारने की प्रतीक्षा की। किन्तु जब आप नहीं पधारे तो हमने सोचा कि आपको आपके घर पर जाकर मिला जाय। इस निश्चय से हम यहाँ चले आये हैं।"

"राजकुमार! यहाँ आने का आप लोगों का धन्यवाद। आप पधारे इसलिए मैं जो आपका स्वागत-सत्कार कर सकता था, वह करने का यत्न किया है। आप सबके पधारने पर मुझे प्रसन्नता भी हुई है, इसके लिए मैं आप लोगों का आभारी हूँ।

"रही आपके तथाकथित निमन्त्रण की बात, वह तो जैसे आपने किसी बालक द्वारा सन्देश भेजकर मेरी अवहेलना की हो।

"यह बालक न तो आपका सदस्य ही है, न यह आपका अथवा आपकी गोष्ठी भवन का कोई प्रतिहारी है। साथ ही सन्देश मौखिक होने से भी विश्वास-योग्य नहीं माना जा सकता था। अतः मैंने आना उचित नहीं समझा।

"मैं तो अभी भी यही समझता हूँ कि आपका ऐसा कोई भी कार्य नहीं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसे करने की मेरी योग्यता हो।

"आपकी गोष्ठी का कार्यक्रम बनाने की योग्यता मुझमें नहीं है।"

"परन्तु हम आपको इसके योग्य समझते हैं। तभी तो आपको विद्वत्परिषद् का अध्यक्ष बनाया गया है।"

"नहीं राजकुमार! अध्यक्ष का कार्य परिषद् का कार्यक्रम बनाना नहीं है। यह कार्य मन्त्री का है। अध्यक्ष सभा का संचालन करता है, उसको नियमित और वैधानिक रीति से चलाने का उत्तरदायित्व अध्यक्ष का है।"

सर्वप्रथम विशाखदत्त को यह आभास हुआ कि कुछ अनियमित हुआ है। उसने एक प्रकार से अपनी भूल स्वीकार करते हुए कहा, "वास्तव में किसी सम्मानित सदस्य के द्वारा आपको लिखित निमन्त्रण-पत्र भेजा जाना चाहिए था किन्तु मुझसे यह भूल हो गयी है, यह मेरा कर्तव्य था। उसका कारण यह था कि गोष्ठी में हम सब लोग समानता का व्यवहार करते हैं। यद्यपि राजकुमार मेरा शिष्य है किन्तु गोष्ठी के अवसर पर हम परस्पर समानता का ही व्यवहार करते हैं। वहाँ पर गुरु-शिष्य की बात नहीं करते।

"हमारी भूल यह हुई कि जब हमने निश्चय कर लिया कि आपको गोष्ठी का सदस्य बना लिया है तो हम यह भी समझ बैठे कि आप भी हमारी समानता की नीति के पोषक बन गये हैं तथा तदनुसार ही आपका व्यवहार होगा।

"यह तो मैं अब यहाँ आकर समझा हूँ, और कदाचित् राजकुमार भी समझ गये होंगे कि आप स्वयं को अभी हमारी गोष्ठी का सदस्य नहीं मानते। क्योंकि आपको तो हमारी इच्छा का ज्ञान ही अभी हुआ है और आपने अभी तक हमारी उस इच्छा को स्वीकार करने का संकेत भी नहीं दिया है।

"मैं अपनी इस भूल का सुधार करता हूँ और विधिवत् आपसे निवेदन करता हूँ कि आप हमारी इस गोष्ठी की सदस्यता स्वीकार कर लीजिये।"

"मुझे सदस्य बनने में भले ही किसी प्रकार की आपत्ति न हो, किन्तु साहित्य के विषय में मेरे जो विचार हैं वह आपको जान लेना आवश्यक है। जैसा कि मैंने आपकी पिछली गोष्ठी में भी बताया था कि मेरी दृष्टि में साहित्य केवल मनोरंजन की ही वस्तु नहीं है। मनोरंजन तो साहित्य का मात्र बाहरी रूप है। वास्तव में जो हित वाला होता है वही साहित्य है। अर्थात् जिसके द्वारा साहित्यकार और श्रोता दोनों का ही हित हो।

"साहित्य द्वारा हित साधना केवल एक ही प्रकार हो सकती है और वह है ज्ञान में वृद्धि।

"उस गोष्ठी में कवि मयूर ने जो कविता पढ़ी थी उसका ज्ञानवर्द्धन से लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं था। मैं समझता हूँ कि उसमें कोई भी तो ऐसी बात नहीं कि जिससे ज्ञान में वृद्धि की सम्भावना ही समझी जाती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वह तो ऐसा लगता था कि सागर तट पर बैठा कोई व्यक्ति व्यर्थ में वहाँ पड़े कंकरों की गणना कर रहा हो। यद्यपि उसके सम्मुख ज्ञान का सागर उत्ताल तरंगें मार रहा था।

"परन्तु कवि का यह वर्णन कि शिवजी महाराज द्वारा अपनी पत्नी को पहनायी गयी पुष्पमाला पार्वती के स्तनों की घुंडियों पर इस प्रकार अटक गयी जैसे दो पर्वत शिखरों को इन्द्रधनुष ने स्पर्श किया हो।

"इसमें कोई सन्देह नहीं, कहने का ढंग सुन्दर होने के साथ-साथ मनोरंजक भी था किन्तु ज्ञान के नाम पर उसमें केवल इतना ही था कि पार्वती के स्तन पुष्ट और उभरे हुए थे। इसी को मैंने कंकर गणना कहा है।"

शिवकुमार का समाधान करने की दृष्टि से विशाखदत्त ने कहा, "पण्डित जी, उस कविता में तो शोभा केवल उपमा की ही थी। भाषा सौन्दर्य भी था। हाँ, भाव सौन्दर्य का उसमें अभाव था।

"उस दिन फिर आपकी टीका-टिप्पणी पर हम लोगों में परस्पर बहुत विचार-विनिमय हुआ था। तब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि किसी भी युवा कवि को उसके अलंकारों के वर्णन से वर्जित न करते हुए भी हमें किसी ऐसे विद्वान् की वाणी सुनने का सुअवसर प्राप्त हो सके जो भाषा लालित्य के साथ-साथ भाव पूर्णता भी ला सके।

"यही कारण है कि हमने आपको अपनी गोष्ठी का सदस्य बनाने का निश्चय किया और सभी ने इसको सहर्ष स्वीकार भी कर लिया।

"कृपया हमारा निवेदन स्वीकार कर हमें अनुग्रहीत कीजिये।"

"आचार्य वर! मेरे स्वीकार न करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। परन्तु मुझ सरीखे व्यस्त व्यक्ति के लिए गोष्ठी में सदा उपस्थित रहने की अनिवार्यता लागू नहीं होगी। एक ओर जहाँ मैं महाराज की पारिवारिक समस्याओं से सम्बन्धित हूँ वहाँ दूसरी ओर इस बालक की शिक्षा का भार भी मैंने अपने ऊपर ले लिया है।

"मेरे छः मास के निमन्त्रण के उपरान्त कल एक अन्य शिष्य भी आया था। आगामी शुक्ल त्रयोदशी से उसने भी आना स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार मेरा शिष्य परिवार वृद्धि करने लगा है।

"पहले ही मैं पाटलिपुत्र में तीन प्राणियों की शिक्षा-दीक्षा का भार अपने ऊपर ले चुका हूँ।

"इस कारण आपकी गोष्ठी की सदस्यता स्वीकार करने से पूर्व मैं उसमें उपस्थिति की छूट का अभिलाषी हूँ।"

राजकुमार ने पूछा, "परन्तु जब कभी कोई विशेष निमन्त्रण होगा उस दिन तो आप आयेंगे न?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"राजकुमार ! यह तो आपने विचार और कार्य की बात की है। उसके विषय में इस समय कहना कठिन है। हाँ, इतना मैं स्वीकार करता हूँ कि अब मेरे जीवन-कार्यों में एक कार्य आपकी गोष्ठी भी हो गयी है। परन्तु गोष्ठी के दिन मुझे किस कार्य को वीरयता देनी है, यह उस दिन के कार्य के महत्त्व को देखकर निर्णय किया जायेगा। उसके विषय में इस समय कुछ कहना उचित नहीं।"

आचार्य विशाखदत्त ने कहा, "यह सब तो ठीक है। परन्तु आज तो हम आप से कुछ सुनने की अभिलाषा से आये हैं।"

शिवकुमार कुछ क्षण तक विचार करता रहा। फिर उसने कहना आरम्भ किया—

"महाभारत की कथाओं में नागयज्ञ की कथा बहुत ही शिक्षाप्रद है। मैं प्रथम संक्षेप में उस यज्ञ का वर्णन करूँगा और फिर उसपर अपनी विवेचना आप को बताऊँगा।

"महाराज परीक्षित के विषय में महर्षि वेदव्यास ने कहा है—

"न हि तेन मृगो विद्धो जीवन् गच्छति वै वने।
पूर्वरूपं तु तत्तूर्णं सोऽगात् स्वर्गं गतिर्प्रति।।[1]

"वास्तव में घायल मृग का महाराज से बचकर वन में विलुप्त हो जाना उनके लिए मृत्यु का रूप ही हो गया।

"कर्मफल बहुत ही विचित्र प्रकार से प्राप्त होते हैं। इसी कारण इनको दृश्य कहा है। घायल मृग को पाने की इच्छा से भाग-दौड़ करते हुए राजा परीक्षित थका हुआ और प्यासा था। वह शमीक मुनि के आश्रम में जा पहुँचा।

"मुनिजी अपनी समाधि में लीन थे। परीक्षित ने समझा कि मुनि उसको देखकर जान-बूझकर आँखें मूँदकर बैठ गये हैं। महाराज परीक्षित ने मुनि को पुकारा और पीने के लिए जल माँगा।

"ऋषि तो समाधि लीन थे। उनको महाराज की बात सुनायी नहीं दी इसलिए उन्होंने अपनी आँख भी नहीं खोली। परीक्षित को इससे क्रोध आ गया। उसने फिर गर्जकर कहा, 'ओ ढोंगी ! देखता नहीं, मैं इस देश का राजा हूँ। प्यास से व्याकुल हो रहा हूँ। मुझे जल दो।'

"इससे भी जब ऋषि की समाधि भंग नहीं हुई तो परीक्षित ने देखा कि उसके समीप ही मृत सर्प का शरीर पड़ा है। उसने अपने वाण से मृत सर्प को उठाया और ऋषि के गले में डाल, ऋषि का उपहास करता हुआ वहाँ से चल दिया।

---

१. महाभारत आदि० ४०-१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परीक्षित के विषय में कथाकार का कथन है—

स्वधर्म निरतं भूपं समाक्षिप्तोऽप्यधर्षयत् ।।[1]

"सदैव अपने धर्म में निरत रहने के कारण मुनि को जब उस अनाचार के विषय में ज्ञात हुआ तो उन्होंने राजा पर किसी प्रकार का रोष व्यक्त नहीं किया।

"किन्तु शमीक ऋषी के पुत्र शृंगी को इसमें अपने पिता का अपमान दिखायी दिया। उसे क्रोध हो आया। उसने पता लगाया कि उसके पिता के गले में किसने मृत सर्प को डाला है। जब उसको विदित हुआ कि यह दुष्कृत्य करने वाला अन्य कोई नहीं अपितु महाराज परीक्षित हैं तो उसने उसे शाप देते हुए कहा, 'जा तेरी मृत्यु सर्प दंश से ही हो।'

"महर्षि को नागों का गुरु माना जाता है। नागों के राजा तक्षक को जब महर्षि के अपमान की बात विदित हुई तो उन्होंने परीक्षित की हत्या करने का संकल्प कर लिया।

"अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए जब तक्षक वेश बदलकर हस्तिनापुर की ओर जा रहा था तो मार्ग में उसको एक ब्राह्मण मिल गया। दोनों में परस्पर कुशल क्षेम के बाद वार्त्तालाप भी हुआ। तब तक्षक को पता चला कि यह व्यक्ति चिकित्सक है। उधर ब्राह्मण को भी विदित हो गया कि तक्षक अपने गुरु के अपमान का प्रतिकार लेने के लिए परीक्षित को विष देकर मारने के लिए जा रहा है।

"ब्राह्मण ने निश्चय किया कि वह नागविष से महाराज परीक्षित की रक्षा करेगा। वह नाग अथवा सर्प विष की चिकित्सा जानता था।

"तक्षक को जब विदित हुआ कि ब्राह्मण हस्तिनापुर जा रहा है तो उसने उसके हस्तिनापुर जाने का कारण पूछ लिया।

"ब्राह्मण बोला, 'सुना है कि नागराज तक्षक महाराज परीक्षित की विष से हत्या करने के लिए जा रहा है। इसलिए मैं महाराज को सर्प विष से बचाने के लिए हस्तिनापुर जा रहा हूँ'।

" 'आप उनको बचा पायेंगे ?'

" 'हाँ, क्यों नहीं ?'

" 'किन्तु आप यह कष्ट क्यों कर रहे हैं ?'

" 'कुछ धन प्राप्त करने की लालसा से।'

"तक्षक को मार्ग मिल गया। उसने कहा, 'ब्राह्मण देवता ! उससे अधिक धन तो मैं आपको बिना वहाँ गये ही दे सकता हूँ।'

---

१. म० भा० आदि०-४०-२३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

" 'भला आप क्यों देंगे ?'

" 'इसीलिये कि आप इस दुष्ट राजा की रक्षा करने न जाकर अपने घर को सीधे लौट जायें।'

"ब्राह्मण विचार करने लगा कि विना किसी प्रकार परिश्रम किये और हस्तिनापुर की यात्रा के विना भी जब धन मिल रहा है तो क्यों न उसको लिया जाय। यह विचार कर उसने तक्षक से धन लिया और वह वापस हो गया।

"तक्षक अब निष्कण्टक होकर हस्तिनापुर पहुँचा। किसी प्रकार किसी फल-फूल में उसने विष को छिपाया और उसको महाराज के शरीर में डाल दिया।

"उस विष से महाराज की तुरन्त मृत्यु हो गयी। तक्षक को इससे अतीव प्रसन्नता हुई। वह अपनी राजधानी लौट आया।

"महर्षि व्यास ने इस कथा में यह स्पष्ट किया है कि उस समय महाराज परीक्षित यह नहीं समझ पाया था कि शमीक ऋषि समाधिस्थ होने से हिल-डुल अथवा बोल-चाल नहीं रहे हैं, वे जान-बूझकर उसकी अवहेलना नहीं कर रहे हैं।

"यों तो भारत नरेशों की बुद्धि पर तब ही परदा पड़ गया था जब उसी परीक्षित के पितामह युधिष्ठिर जुआ खेलते हुए यह भी भूल गये थे कि राज्य को दाँव पर लगाकर वे धर्म की हानि कर रहे हैं।

"धर्मराज कहलाने वाला युधिष्ठिर धर्म को भूलकर द्यूतक्रीड़ा में रत रहा।

"कालान्तर में उसी धर्मराज का पौत्र शमीक ऋषि के गले में मृत सर्प की माला डालते हुए यह भूल गया था कि वह किसी विद्वान् ब्राह्मण का अकारण ही अपमान कर रहा है।

"राजाओं में यह पतन प्रारम्भ होने से पूर्व ब्राह्मणों का पतन आरम्भ हो गया था। दुर्योधन की सभा में द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्य सदृश विद्वान् थे, किन्तु वे दुर्योधन को यह नहीं समझा सके कि उसका व्यवहार अधर्मयुक्त है। इतना ही नहीं, समय आने पर वे उस अधर्मी दुर्योधन के पक्ष में युद्ध करने के लिए भी चल पड़े।

"मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि भारत का पतन उस समय से ही आरम्भ हो गया था, जब ब्राह्मण समुदाय ने बुद्धिविहीन कार्य करने आरम्भ कर दिये थे। ब्राह्मण में बुद्धि का लोप हुआ तो फिर राजाओं की बुद्धि कुण्ठित होने लगी। उससे सर्वनाश आरम्भ हो गया।

"पतन की यह प्रक्रिया समाप्त नहीं हुई। महानन्द के काल में यह बढ़ गयी। और आज तो यह समस्त समाज में व्याप्त है।

"महाराज ने यज्ञ करने का निश्चय किया। किन्तु वर्तमान काल में अश्वमेघ यज्ञ उसी रूप में करना सम्भव नहीं जिस रूप में वह सहस्रों वर्ष पूर्व किया जाता था। कुछ विद्वानों ने यत्न करके यज्ञ को वर्तमान परिस्थिति में किस प्रकार किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय, इसका निर्णय कर दिया तो राजधानी के ब्राह्मण उसी प्रकार चल पड़े जिस प्रकार नाग-विष से बचाने के लिए वह ब्राह्मण हस्तिनापुर को चल पड़ा था। वह जिस प्रकार धन के लोभ में अपना कर्तव्य भूल गया था, वही स्थिति आज के ब्राह्मणों की है।

"प्रवर समिति का प्रस्ताव था कि जिस प्रकार पूर्ण देश में एक साम्राज्य स्थापित हो गया है वैसे ही हवि वितरण के लिए भी केन्द्रीय संस्था का निर्माण हो। समिति का यह विचार था कि उस केन्द्रीय संस्था द्वारा भारतीय अर्थात् वैदिक संस्कृति को, जो सुदीर्घ काल से क्षत-विक्षत अवस्था में पहुँच गयी है, उसे पुनर्जागृत करने के लिए विद्वानों का एक मण्डल स्थापित किया जाय। ब्राह्मण वर्ग को इससे सन्देह हो गया कि कदाचित् यह कार्य उनके द्वारा सम्पन्न नहीं कराया जायेगा और तब वे हवि के भाग से वंचित रह जायेंगे।

"इस हानि के भय से वह प्रवर समिति की योजना को विफल करने के लिए कटिबद्ध हो गये और उनको इसमें सफलता मिल भी गयी।

"जैसाकि मैं कह रहा था कि वह विघटन की प्रक्रिया जो गुरु द्रोणाचार्य आदि आचार्यों के काल से आरम्भ हुई थी, जिसे परीक्षित के समय में काश्यप जैसे चिकित्सकों ने जारी रखा था, वर्तमान काल में भी वह किसी-न-किसी रूप में अनर्थ करने के लिए पनप रही है।

"भारत के ज्ञान-विज्ञान का मार्तण्ड अब अस्ताचल की ओर चला जा रहा है।"

पण्डित शिवकुमार का कथन समाप्त होते ही राजकुमार विक्रम ने पूछ लिया, "भगवन्! ब्राह्मण वर्ग के इस दोष को दूर करने का भी कोई उपाय है अथवा नहीं?"

"महाभारत काल से पूर्व द्वापर युग में ब्राह्मण देवताओं ने राजाओं की वैतनिक सेवा स्वीकार की तो उसका दुष्परिणाम प्रकट हुआ द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा के रूप में। वर्तमान काल में भी मैं ब्राह्मण समुदाय के पतन के लिए राजकीय सेवा को ही दोषी मानता हूँ।"

"वैतनिक सेवा से आपका क्या अभिप्राय है?"

"वही सेवा जो किसी प्रतिहारी से प्रारम्भ कर राज्य के महामात्य तक करते हैं। वे सब जो वेतन भोगी हैं वे वैतनिक सेवक हैं।

"इस प्रकार की सेवा में दो बातें अनिवार्य हो जाती हैं।

"एक तो यह कि किसी निर्धारित अवधि के लिए सेवक का स्वामी की सेवा में उपस्थित रहना आवश्यक है, चाहे कोई कार्य हो अथवा न हो। यह समय भिन्न-भिन्न प्रकार की सेवाओं के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यय किया जाता है। उदाहरणार्थ प्रतिहारी को आठ घण्टे के लिए अपने स्थान पर उपस्थित रहना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। भले ही उसके करने के लिए कुछ कार्य हो अथवा न हो।

"दूसरी बात यह है कि सेवक को स्वामी की आज्ञा माननी ही पड़ती है चाहे वह उसे पसन्द हो अथवा न हो। कभी-कभी तो ऐसा कार्य करने के लिए कह दिया जाता है जोकि सेवक के नियत कार्यों की परिधि से बाहर का होता है और जिसे करने वाला अनुचित भी समझता है।

"ये दो बातें स्वामी और सेवक के मध्य अनिवार्य रूप से होती ही हैं।"

कालिदास कवि ने पूछा, "पुरोहित का कार्य इस प्रकार की सेवा के अन्तर्गत नहीं आता क्या ?"

"मेरी दृष्टि में तो नहीं। यही कारण है कि मैं स्वयं को न तो राज्य का और न ही राजा का सेवक मानता हूँ।"

"राजकुमार से मेरा निवेदन है कि कभी इस तथ्य की परीक्षा करके देखें।" कालिदास ने कहा।

राजकुमार ने रहस्योद्घाटन करते हुए कहा, "मैंने इस बात की परीक्षा करनी चाही थी किन्तु महाराज ने इसकी स्वीकृति नहीं दी।"

शिवकुमार को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, "आपने किस विषय में और किस प्रकार परीक्षा करनी चाही थी ?"

"महाराज ने वह बताने की स्वीकृति नहीं दी है। महाराज ने मुझे बताया कि पुरोहित नियुक्त होने से पूर्व ही आपने पुरोहित और यजमान के सम्बन्धों की चर्चा की थी। उसी अवसर पर स्वामी और सेवक के सम्बन्धों की चर्चा भी शुरू हुई थी। मैं जो कुछ कह रहा था वह स्वामी और सेवक के मध्य की-सी बात थी। महाराज ने कहा था कि यदि आपने अस्वीकार कर दिया तो फिर उन्हें आपको पुरोहित पद से मुक्त करना पड़ जायेगा। उसका परिणाम यह होगा कि आप स्वयं ही पाटलिपुत्र छोड़ देंगे।

"मैंने महाराज से कहा कि पुरोहितजी को जो सुख-सुविधा इस समय हमारी ओर से उपलब्ध है वह उनको अन्यत्र कहाँ मिलेगी ? तब महाराज ने कहा था कि मैं आज भी यह स्पष्ट देख रहा हूँ कि इतनी सुख-सुविधा के होने पर भी अपना जीवन ठीक उसी प्रकार चला रहे हैं जिस प्रकार वे अपने ग्राम में चलाते रहे होंगे।

"मैं स्वयं आज प्रथम वार ही पण्डितजी के निवास-स्थान पर आया हूँ। इस बैठक को सब प्रकार से सज्जित देखकर भी मैं देख रहा हूँ कि पण्डितजी ने स्वयं साधारण वस्त्र धारण किये हुए हैं और वे बैठे भी कुश के आसन पर ही हैं। हमारे जलपान के लिए मिष्ठान्न और दूध आया किन्तु उस समय पण्डितजी ने स्वयं यह कुछ भी नहीं लिया।

"मुझे महाराज ने बताया कि एक दिन हमारी माताजी पण्डितजी के शयनागार की ओर भी गयी थीं। वहाँ जब उन्होंने लकड़ी के तख्तों पर चटाई बिछी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखीं तो उनको आश्चर्य हुआ। उन्होंने इसका कारण जब पुरोहितजी की पत्नी से पूछा तो उन्होंने बता दिया कि उसके लिए जो गद्दे और पलंग आदि थे वे उनकी सामर्थ्य से बाहर थे अतः वे उनके अभ्यस्त होना नहीं चाहते हैं। शेष जो कुछ यहाँ है उसे वे राजकीय अतिथियों के लिए मानते हैं और स्वयं को वे राजकीय अतिथि नहीं मानते। वे स्वयं को पुरोहित मानते हैं, पुरोहित की कोई निर्धारित आय तो होती नहीं।"

गोष्ठी के सदस्यों ने जब यह सब सुना तो उनको आश्चर्य हुआ। पण्डित शिवकुमार की इस निस्पृहता पर उनको विस्मय हो रहा था। पण्डित शिवकुमार इस सबमें मौन था, मानो राजकुमार ने उनकी नहीं किसी अन्य की चर्चा की हो।

विशाखदत्त ने चर्चा का विषय बदलते हुए कहा, "पुरोहितजी ! आप आज से हमारी गोष्ठी के सदस्य हैं। मैं राजकुमार का गुरु तो हूँ, उन्होंने मुझसे यज्ञोपवीत धारण किया है किन्तु अनुभव तो मैं भी वैसा ही करता हूँ जैसाकि आपने अभी वर्णन किया है। तदपि इस साहित्य गोष्ठी में हम समान रूपेण सब सदस्य ही हैं, न कोई राजकुमार, न कोई गुरु। इससे मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि पुरोहितजी भी अपने पद की गरिमा को त्यागकर हमारी समान रूप वाली सदस्यता को स्वीकार करेंगे।"

"मैंने तो पहले ही कह दिया है कि यदि इस गोष्ठी में उपस्थिति की अनिवार्यता नहीं है तो मुझे सदस्य बनने में कोई आपत्ति नहीं है। मैं बहुत व्यस्त व्यक्ति हूँ। आवश्यक कार्यों को छोड़कर आपकी गोष्ठी में केवल मनोरंजनार्थ आ पाना मेरे लिए सम्भव नहीं होगा। यह मेरे धर्म के विपरीत है।"

"हमें स्वीकार है।" विशाखदत्त ने कह दिया।

इस प्रकार उस दिन की गोष्ठी समाप्त हुई।

सब लोग दो रथों में बैठकर आये थे, उन्हीं रथों में बैठकर वापस राजप्रासाद की ओर चल दिये।

राजप्रासाद में पहुँचकर अपने-अपने निवास-स्थान को जाने से पूर्व एक बार फिर वे लोग बैठे तो कालिदास बोला, "मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मैं पूर्वापेक्षा ऊँचाई में दो अँगुल छोटा हो गया हूँ।"

"यह तो हम सब ही अनुभव कर रहे हैं। पण्डितजी ने जो कथा सुनायी है और फिर उन्होंने अपना विवेचन प्रस्तुत किया है उसके आधार पर उन्होंने हमको कतर दिया है।" विशाखदत्त का कथन था।

राजकुमार ने कहा, "मैं समझता हूँ कि अब आज की सभा समाप्त की जाय और इस विषय पर आगामी गोष्ठी में विचार करने के लिए आप लोग तैयार होकर आइये।

"इस बीच मैं एक बार पुनः पुरोहितजी से मिलने के लिए जाऊँगा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको पुनः गोष्ठी में सम्मिलित होने का आग्रह कर आऊँगा।"

"मुझे भी साथ ले चलिएगा। राजप्रासाद में मिलने वाले दुग्ध की अपेक्षा वहाँ का दुग्ध अधिक स्वादिष्ट था। एक बार पुनः पान करने का अवसर मिल जायेगा।"

यह सुन सब हँस पड़े।

: १० :

महामात्य ने यज्ञ सम्बन्धी कार्य अन्य अधिकारियों को सौंपा हुआ था। अश्व के साथ पुरोहित के रूप में एक साधारण ब्राह्मण को भेजा हुआ था। अश्व की रक्षार्थ सौ अश्वारोहियों के साथ एक नायक को भेजा गया था।

अश्व के किसी नगर अथवा गाँव में पहुँचने से पूर्व राज्य-कर्मचारी वहाँ सूचना देने के लिए जाते थे। वे उनको यह भी बताते थे कि अपने उस नगर अथवा गाँव की जनसंख्या अथवा उपज के आधार पर हवि के लिए कितना देना होगा। ये कर्मचारी राज्य द्वारा प्रसारित विज्ञप्ति को बाँटते थे। सभी नागरिकों को यज्ञ में सम्मिलित होने का निमन्त्रण भी वे देते थे।

नगर तथा गाँव के लोग अश्व के पहुँचने से पूर्व ही अपने क्षेत्र से एकत्रित हवि को लेकर नगर अथवा बस्ती के बाहर चले जाते और वहाँ उसे दे देते। यदि राज्य-कर्मचारियों को निवास अथवा भोजन की आवश्यकता होती तो वे उसका भी प्रबन्ध कर देते। नगर अथवा ग्रामवासियों का सर्वत्र यही यत्न रहा कि सैनिक नगर अथवा गाँव के भीतर प्रविष्ट न होने पायें।

अश्व के साथ एक कोषाध्यक्ष भी था। हवि का धन कोषाध्यक्ष के पास दिया जाता था और गणक उसकी पावती दे देता था। नगर तथा ग्रामवासियों के इस प्रकार के व्यवहार का भी एक कारण था। नागरिक जानते थे कि यदि सैनिक ग्राम अथवा नगर के भीतर प्रविष्ट हुए तो वहाँ की सुन्दर वस्तुओं तथा युवा रमणियों को देखकर उनका विचलित होना स्वाभाविक था।

इस प्रकार हवि एकत्रित करने का आयोजन चल रहा था।

गाँव वालों को कर देने का अभ्यास था और वे इसको इसी प्रकार उसका ही एक अंग मानकर वैसा व्यवहार करते थे। प्रतिवर्ष राज्य-कर्मचारी कर प्राप्त करने के लिए जाया करते थे। गाँव वाले उनको गाँव के बाहर ही ठहराते और वहीं उनके आदर-सत्कार का प्रबन्ध करते।

सम्पन्न नागरिक तो समय से पूर्व ही कर राशि एकत्रित कर जनपद कार्यालय में जमा करा देते थे। इससे यह लाभ होता था कि राज्य सैनिकों को उस ओर जाने का अवसर ही नहीं मिलता था। परन्तु हवि की बात दूसरी थी। क्योंकि हवि तो अश्व के पहुँचने पर ही दी जाती थी।

किसी दुर्घटना वश कभी यदि लोग समय पर कर न पहुँचा सके और उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय देने में असमर्थता की याचिका भी समय पर न भेज सके तो राज्य-कर्मचारी आते और फिर बलपूर्वक कर प्राप्त करके ले जाया करते थे। इस प्रकार धन प्राप्त करने के लिए सैनिकों ने वल प्रयोग प्रारम्भ किया तो फिर ये सैनिक अपनी प्रकृति वश लूटमार मचा देते थे। यहाँ तक कि वे महिलाओं की लज्जाहरण का दुष्कृत्य भी करने में पीछे नहीं रहते थे।

इस कारण हवि प्रदान के अवसर पर नागरिक बहुत ही सतर्कता का प्रयोग कर रहे थे। तदपि इतना विशाल देश और कोटि-कोटि जन, कहीं-कहीं किसी प्रकार की दुर्घटना हो ही जाती थी। उसकी सूचना महामात्य एवं पुरोहितजी के कानों में पड़ती रहती थी।

दुर्घटना सैनिकों के कारण होती थी। वे सैनिक न तो महामात्य के अधीन थे और न पुरोहित के ही। सेना तथा सैनिकों के व्यवहार के अपने नियमोपनियम निर्धारित थे।

महात्मात्य अथवा पुरोहित के पास जो शिकायतें आती थीं वे उनको सेनापति तक पहुँचा देते थे। सेनापति उनको सैनिक दृष्टि से देखता था और उनको वह अपराध ही नहीं मानता था। इस प्रकार वह उन आरोपों को अपनी रद्दी की टोकरी में फेंक देता था।

विगत एक वर्ष में एक सहस्र से अधिक इस प्रकार के आरोप-पत्र सेनापति के कार्यालय में पहुँच चुके थे किन्तु न उनपर किसी प्रकार की कोई कार्यवाही हुई और न ही भावी दुर्घटनाओं को रोका ही जा सका।

अश्व को राज्य में भ्रमण करते हुए एक वर्ष बीत गया था। यह अनुमान लगाया गया था कि सारे राज्य की यात्रा पूर्ण करने के लिए अभी एक वर्ष का समय और लगेगा। सैनिकों के दुर्व्यवहार के विपरीत आने वाली याचिकाओं की संख्या दिनानुदिन बढ़ती जा रही थी।

महामात्य की धारण थी कि यज्ञ का कार्य उसके अधीन नहीं है। सेनापति और पुरोहित इसके व्यवस्थापक हैं। शिवकुमार समझता था कि यह कार्य देश में शान्ति व्यवस्था का है अतः राज्य के कार्याध्यक्षों को ही इसको निपटाना चाहिए। परन्तु जब दोषारोपणों की संख्या निरन्तर बढ़ती गयी तो पण्डित शिव-कुमार ने न्यायमूर्ति प्रभाकर से इसका उल्लेख किया।

न्यायमूर्ति ने जब यह सुना तो उसने कहा, "मेरे पास तो किसी प्रकार का कोई आरोप-पत्र है ही नहीं। उसके अभाव में किसी प्रकार का कार्य करना मेरे लिए सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त सैनिकों पर न्याय व्यवस्था देना भी मेरी परिधि के बाहर है।"

इस स्थिति से तो शिवकुमार का मन चंचल हो उठा। किन्तु महाराज से स्वयं इस विषय में कहने का न तो वह स्वयं को अधिकारी मानता था और न वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसे अपना कर्तव्य ही समझता था। इसका तो यही अभिप्राय होता कि वह राज-कार्य में हस्तक्षेप कर रहा है जोकि पुरोहित का कार्य नहीं है।

पाटलिपुत्र से अश्व को गये एक वर्ष से कुछ ही अधिक समय हुआ था उस समय स्थाणेश्वर के निकटस्थ ग्राम राजरंग के तीन ब्राह्मण तीन सौ कोस की यात्रा करके राजधानी आये। पाटलिपुत्र में पहुँचकर वे महामात्य का पता पूछने लगे।

पता मिलने पर वे उसके घर पर जा पहुँचे। संयोग की बात कि उस समय महामात्य घर पर नहीं थे। वे राजकार्य से राजप्रासाद में गये हुए थे। यहाँ तक कि परिवार के सदस्य भी घर पर उपस्थित नहीं थे। वे राजपुरोहित के घर गये हुए थे।

महामात्य के द्वार पर खड़े प्रतिहारी ने आगन्तुकों का नाम-धाम पूछा। तदनन्तर उनको अतिथि गृह में ठहराया और उनके जलपान की व्यवस्था करवा दी। किन्तु तभी एक ब्राह्मण बोला, "हम किसी राज्याधिकारी के घर का अन्न ग्रहण नहीं करते। हमारे पास अपनी खाद्य सामग्री है, उससे अपना पेट भर लेंगे।"

प्रतिहारी बोला, "भगवन्! महामात्य स्वयं कुलीन ब्राह्मण हैं। आप क्यों उनका अन्न ग्रहण नहीं करते?"

"यह कारण बताने के लिए ही तो हम इतनी लम्बी यात्रा करके आये हैं।"

प्रतिहारी बोला, "तब तो ठीक है। महामात्य राजप्रासाद गये हुए हैं और उन के घर के लोग भी अपने किसी सम्बन्धी से मिलने के लिए गये हुए हैं। महामात्य सायंकाल तक आ जायेंगे। आप तब तक विश्राम कीजिये।"

सायंकाल यथासमय महामात्य लौटे। उन्होंने आगन्तुकों को अपनी बैठक में बुलाकर पूछा, "भगवन्! कहिये किस निमित्त पधारे हैं?"

उन तीनों में से जो युवा था वह बोला, "श्रीमन्! मेरा नाम विश्वामित्र है। मैं सारस्वत ब्राह्मण हूँ और स्थाणेश्वर के निकट राजरंग ग्राम का निवासी हूँ। स्थाणेश्वर के आयुक्त ने मेरे निर्वाह के लिए पन्द्रह बीघा भूमि दी हुई है। भूमि सरस्वती नदी के तट पर है, उसमें नदी के जल से ही सिंचाई होती है। वर्षा ऋतु में जब नदी में बाढ़ आती है तो सारी भूमि जलमग्न हो जाया करती है। उसके उपरान्त उसमें अच्छी उपज होती है। जिस वर्ष वर्षा कम होने से नदी में बाढ़ नहीं आती उस वर्ष उपज कम होती है। हमारे गाँव की अधिकांश भूमि की यही स्थिति है।

"इस वर्ष पहाड़ों में वर्षा नहीं हुई। उसके परिणामस्वरूप पूर्ण गाँव की उपज बहुत ही कम हुई है। मेरे अपने पास ही वर्ष-भर के भोजन के लिए पर्याप्त अन्न नहीं है। परिणामस्वरूप मैं हवि नहीं दे पाया। तदपि ग्रामवासियों से जितना हो सकता था उन्होंने एकत्रित किया और हवि के रूप में दिया। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राशि दो सहस्र रजत से कुछ कम थी।

"अश्व के पहुँचने पर गाँव का प्रधान वह धन लेकर गणक के पास गया तो उसने अपनी बही देखकर कह दिया कि इस ग्राम के खाते में कम-से-कम पाँच सहस्र हैं। दो सहस्र रजत बहुत कम हैं।

"ग्रामवासियों ने अपनी असमर्थता व्यक्त की तो राज्य के सैनिक घर-घर में घुसकर खोजबीन करने लगे। नकद तो जो कुछ हमारे पास था वह पहले ही दिया जा चुका था। सैनिकों को केवल महिलाओं के आभूषण ही दिखायी दिये। उन्होंने उन आभूषणों को बलपूर्वक उतरवा लिया। मेरे घर को भी देखा और खोजा गया। पिछले मास ही मेरा विवाह हुआ था। मेरी पत्नी अपने आभूषण पहने हुए थी। उसको जब आभूषण उतारने के लिए कहा गया तो उसने अस्वीकार कर दिया। मैंने भी पत्नी की सहायता की और सैनिकों को बलपूर्वक उसके गहने उतारने से रोका।

"सैनिकों ने मानवता को परे रख मेरे हाथ-पाँव बाँधकर मुझे एक कोने में पटक दिया। मेरी पत्नी को बलात् उन्होंने पकड़ा और न केवल उसके सारे आभूषण उतार लिये अपितु मेरे सम्मुख ही उन्होंने उसके साथ एक-एक करके बलात्कार भी किया। इस प्रकार दस सैनिकों ने उसके साथ बलात्कार किया। परिणाम-स्वरूप उसने वहीं पर दम तोड़ दिया। यहाँ तक कि जब वह पीड़ा से अचेत हो गयी थी तब भी वे पशु अपने दुष्कृत्य से रुके नहीं। मैं समझता हूँ कि अन्तिम सैनिक ने तो कदाचित् मेरी पत्नी के शव के साथ ही दुष्कर्म किया है।

"इस प्रकार के अत्याचार और क्रूरता का व्यवहार मेरे सम्मुख ही जब हुआ तो महाराज! मैंने प्रण किया कि आपके सम्मुख याचिका प्रस्तुत कर दूँ और तदनन्तर स्वयं गंगाप्रवाह ग्रहण कर लूँ। अपने ग्राम वापस जाकर मुख दिखा पाना मेरे लिए सम्भव नहीं। मैं अपनी पत्नी के सतीत्व की रक्षा करने में असमर्थ रहा। पूर्ण राज्य में आपकी प्रशंसा होती है अतः मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप अपनी प्रजा के न्याय के लिए यत्न कीजिये।"

युवक की कथा सुनकर स्वयं हरिषेण की आँखों से अश्रुधार बह चली। युवक के साथी अन्य ब्राह्मण भी सजल नेत्र हो इस कहानी को सुन रहे थे।

युवक की बात पूर्ण होने पर महामात्य ने दूसरे प्रौढ़ व्यक्ति से पूछा, "भगवन्! आप क्या कहना चाहते हैं?"

"मैं उस ग्राम का प्रधान हूँ। ग्राम में लगभग दो सौ परिवार रहते हैं जिनमें डेढ़ सौ ब्राह्मण परिवार हैं। शेष निम्न जातियों के हैं। उन सैनिकों ने गाँव को लूटने के उपरान्त सब राशि तो हवि के रूप में जमा करा दी है। परन्तु एक तो वह स्वेच्छा से दिया हुआ नहीं है और दूसरे आभूषण आदि की हमारे पास कोई गणना नहीं है। अतः कहा नहीं जा सकता कि उन्होंने सब-कुछ जमा करा दिया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा कुछ आभूषण नहीं भी जमा कराये। उन आभूषणों का मूल्य भी उन्होंने स्वत: निर्धारित कर उसकी पावती हमको दी है। हमें सन्देह है कि इसमें काफी गोलमाल हुआ है।

"यह युवक जब इधर आने लगा तो मैं इसके साथ इस कारण आया कि इसके व्यक्तिगत आरोप के साथ ग्राम का प्रधान होने के नाते मैं सामूहिक आरोप भी प्रस्तुत कर दूं। और यदि मैं इस युवक को गंगा-प्रवाह से रोक आत्महत्या के प्रयास से विमुख कर सकूं तो उसका पुण्य लाभ भी कर लूं।"

महामात्य ने पण्डित विश्वामित्र से कहा, "मेरे कार्यालय में बैठकर इस पूर्ण घटना का विस्तार से वर्णन लिख दीजिये और महाराज के नाम एक याचिका तैयार कर लीजिए। वह याचिका राजपुरोहित के माध्यम से महाराज के समक्ष जानी चाहिए।

"यज्ञ का पूर्ण कार्य राजकीय प्रवन्ध से पृथक् है। उसका सीधा सम्वन्ध महाराज से है। हाँ, पुरोहितजी उसपर अपनी सम्मति लिखकर महाराज के सम्मुख उपस्थित कर देंगे।

"जब यह याचिका महाराज के पास जायेगी तब उन्होंने यदि राज्य प्रवन्ध का हस्तक्षेप उचित समझा तो मुझे आज्ञा देंगे। तब मैं जाँच-पड़ताल करने के उपरान्त इस विषय को न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत करूँगा और उसके साथ ही हवि एकत्रित करने की विधि में उचित सुधार भी करवा दूंगा।"

तीनों ब्राह्मण महामात्य की बैठक में बैठकर तदनुसार याचिका तैयार करने लगे। रात्रि भोजन से पूर्व उन्होंने वह याचिका महामात्य को दिखायी।

महामात्य ने जब याचिका और उसके वृत्तान्त को पढ़ा तो वह समझ गये कि युवक सुपठित है। उसे उसकी भाषा-शैली से सन्तोष था। महामात्य ने उसके साथ अपनी टिप्पणी भी नत्थी कर दी। उसे उन ब्राह्मणों को वापस करते हुए महामात्य ने कहा, "प्रातःकाल सूर्योदय से एक घड़ी उपरान्त आप लोग पुरोहितजी के निवास-स्थान पर पहुँच जाइये। वहाँ आपको पुरोहितजी मिलेंगे। उस समय महाराज भी वहीं होंगे। मैं आशा करता हूँ इस सम्वन्ध में तुरन्त ही जाँच-पड़ताल आरम्भ हो जायेगी। जो दुर्घटना हो चुकी है, वह तो अब यथावत् नहीं हो सकती। हाँ, अपराधियों को दण्ड मिलेगा। भविष्य में इस प्रकार की घटनाओं की रोक-थाम की व्यवस्था भी हो जायेगी।"

प्रौढ़ावस्था का जो ब्राह्मण था उसका नाम अश्विनीकुमार था। महामात्य की बात से वह सन्तुष्ट था और अनुभव करता था उन लोगों की इस लम्बी यात्रा का सुफल उनको मिलेगा।

महामात्य के कथनानुसार अगले दिन प्रातःकाल दोनों ब्राह्मण यथासमय पुरोहितजी के निवास-स्थान पर पहुँच गये। उन्होंने प्रतिहारी के माध्यम से अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याचिका और महामात्य का पत्र भीतर भिजवा दिया।

भीतर यज्ञशाला में पण्डित शिवकुमार के परिवार के अतिरिक्त महाराज और महारानी भी विराजमान थे।

यज्ञ की पूर्णाहुति डाली जा चुकी थी। उस समय प्रतिहारी ने आकर पण्डित विश्वामित्र की याचिका उसको दे दी। महाभारत की कथा अभी आरम्भ नहीं हुई थी। अतः उससे पूर्व पुरोहितजी ने वह पत्र पढ़ा। महामात्य हरिषेण ने लिखा था—

'आदरणीय पुरोहित जी,

पत्रवाहक पण्डित विश्वामित्र स्थाणेश्वर के निकट के एक ग्राम का निवासी है। संलग्न याचिका को यह मेरे पास लाये थे। यह सरलचित्त ग्रामवासी यह नहीं जानता कि राज्य में विभिन्न कार्यों के लिए विभिन्न विभागों की भरमार होती है। परस्पर विभागों में हस्तक्षेप करना भी उचित नहीं समझा जाता है।

भूल से यह पण्डित मेरे पास आ गया था। मैं इसे आपके पास भेज रहा हूँ क्योंकि महाराज के धर्मकार्यों के अध्यक्ष आप हैं। आप इस याचिका को पढ़िये। यह बहुत ही हृदय विदारक विवरण है।

मैं तो रात-दिन मगध राज्य के कल्याण का ही चिन्तन करता रहता हूँ। यदि इस याचिका में जो वर्णित है वह सत्य है तो मैं समझता हूँ कि यह राज्य के विनाश का बीजवपन हो गया है। मेरे लिए यह असह्य है।

मुझे पहले से ही आशंका थी। मैं समझता था कि अश्वमेध यज्ञ और साम्राज्यवाद दो परस्पर विरोधी विधायें हैं। ये साथ नहीं चल सकतीं।

काल की गति से साम्राज्य तो एक वस्तु है। इस कारण यह तो रहेगा ही। इसी कारण मैं यज्ञ के पक्ष में नहीं था। आप भी यज्ञ के विधि-विधान में परिवर्तन के पक्षपाती थे। परन्तु वैसा सम्भव नहीं हुआ। जो हुआ है उसका परिणाम उचित नहीं दिखाई दे रहा है।

अब तो प्राचीन विधि-विधान के साथ यज्ञ हो रहा है। आप इस याचिका को ध्यान से पढ़कर महाराज से इसमें उचित कार्यवाही करवाइये।

यह याचिका महाराज को दिखानी होगी। तदपि यह आपका अधिकार है। जैसा उचित समझें वैसा करिये।

आशीर्वाद सहित

हरिषेण'

महामात्य के पत्र के उपरान्त शिवकुमार ने याचिका और घटना का वृत्तान्त पढ़ा। पढ़ते-पढ़ते शिवकुमार के भी नेत्र तरल हो आये थे। वृत्तान्त बहुत ही मार्मिक था और लिखने वाले ने घटना को इस प्रकार सजीव चित्रित किया था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उसको पढ़ने वाला अपने मनोद्गारों को किसी प्रकार भी छिपा नहीं सकता था। महाराज और महारानी ने देखा कि उसके कपोलों से अश्रुकण लुढ़क रहे हैं।

पत्र और याचिका पढ़ने में आधी घड़ी समय लगा।

पण्डित शिवकुमार ने पत्र पढ़कर उसे वन्द किया और अपनी पुस्तक के भीतर रख दिया। तदनन्तर उसने महाभारत की कथा आरम्भ कर दी। आज की कथा का प्रसंग युधिष्ठिर का जुआ खेलना और उसमें अपना सर्वस्व हारना था। तदनन्तर दुःशासन का द्रौपदी को पकड़कर सभा में लाना और दुर्योधन का उसके चीर हरण की आज्ञा देना था।

पुरोहितजी ने कथा तो जैसी थी वैसी ही सुना दी परन्तु कथा के एक स्थान पर वह विवेचना करने लगा। उसने कहा, "जब द्रौपदी ने कहा—

धर्म्यां स्त्रियं सभां पूर्वे न नयन्तीति नः श्रुतम्।
स नष्टः कौरवेयेषु पूर्वो धर्मः सनातनः।।
कथं ही भार्या पाण्डूनां पार्षतस्य स्वसा सती।
वासुदेवस्य च सखी पार्थिवानां सभामियाम्।।
तामिमां धर्मराजस्य भार्यां सदृशवर्णजाम्।
ब्रूत दासीमदासीं वा तत् करिष्यामि कौरवाः।।
अयं मां सुदृढं क्षुद्रः कौरवाणा यशोहरः।
क्लिश्नाति नाहं तत् सोढुं चिरं शक्ष्यामि कौरवा।।
जितां वप्यजितां वापि मन्यध्वं मां यथा नृपाः।
तथा प्रत्युक्तमिच्छामि तत् करिष्यामि कौरवाः।।[1]

---

१. मैंने सुना है कि पूर्वकाल में लोग धर्मपरायण स्त्री को कभी सभा में नहीं लाते थे, किन्तु इन कौरवों के समाज में यह प्राचीन सनातन धर्म नष्ट हो गया है।

अन्यथा मैं पाण्डवों की पत्नी, धृष्टद्युम्न की सुशीला बहिन, और भगवान् श्रीकृष्ण वासुदेव की सखी होकर राजाओं की इस सभा में किसलिए लायी जा सकती थी? कौरवों में धर्मराज युधिष्ठिर की धर्मपत्नी तथा उनके समान वर्ण की कन्या हूँ। आप लोग बताइये कि मैं दासी हूँ अथवा कि अदासी? आप जैसा कहेंगे मैं वैसा समझूँगी।

कुरुवंशियों को आप क्या मानते हैं? मैं जीती गयी हूँ अथवा नहीं। मैं आपके मुख से इसका ठीक-ठीक उत्तर सुनना चाहती हूँ। फिर तदनुसार कार्य करूँगी।

जो स्वयं को हार चुका है वह किसी स्वतन्त्र व्यक्ति को कैसे हार सकता है?

—म० भा० सभा० ६-६६, १०, ११, १२, १३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतनी कथा सुनाकर शिवकुमार ने कहा, "महाराज ! कुछ लोग कहते हैं कि यह कथा किसी मानसिक अव्यवस्था का आलंकारिक चित्र है। उन लोगों का कहना है कि भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और फिर घर का पुरखा धृतराष्ट्र सब के सब ही अति भ्रष्ट किस प्रकार हो गये ?

"वहाँ सभा में चारों वर्ण के लोग उपस्थित थे, परन्तु उस भरी सभा में किसी को भी घर की बहू को सभा में निर्वसना करने की आज्ञा पर आपत्ति क्यों नहीं हुई ?

"ये लोग ऐसा भी कहते हैं कि उस काल की ऐसी ही प्रथा रही होगी तभी तो न तो किसी ने सभा में आपत्ति की और न ही लेखक को यह सब लिखते हुए अस्वाभाविक प्रसंग प्रतीत हुआ।

"यदि इसको प्रथा भी मान लें कि सवर्ण जाति की महिलायें दास बनायी जा सकती थीं, तब भी युक्ति और न्याय की बात का तो उत्तर होना ही चाहिए था। द्रौपदी ने पूछा था कि एक व्यक्ति जो अपने को पहले ही हार चुका है वह किसी स्वतन्त्र व्यक्ति को किस प्रकार दाँव पर लगा सकता है ?

"भीष्मजी ने इस चुनौती का उत्तर दिया। उन्होंने कहा, 'धर्मस्य परमा गतिः।' अर्थात् धर्म की गति अति सूक्ष्म है। इसे बड़े-बड़े ज्ञानी भी नहीं जान सकते।

बलवांश्च यथा धर्मं लोके पश्यति पूरुषः।
स धर्मो धर्मवेलायां भवत्यभिहतः परः ॥[1]

शिवकुमार ने कहा, "महाराज ! यह किसी विकृत बुद्धि वाले मनुष्य का कथन है। क्योंकि यह जो बलवान अपने मन से मनवाता है वह धर्म नहीं कहाता। उसे बलात्कार कहते हैं। धर्म तो बुद्धि से विचार किया हुआ कल्याण का मार्ग है। यह एक शाश्वत विधान है। यह बलवान और निर्बल की अपेक्षा नहीं करता।

"भीष्म पितामह ने भारत से, वास्तव में वैदिक संसार से, धर्म के नाश की भविष्यवाणी की थी।

"परन्तु बात यहीं समाप्त नहीं हुई। भीम, अर्जुन तथा अन्यान्य भाई उस समय भी दुर्योधन से अधिक बलवान थे। यदि बलवान का कहा ही धर्म था तो पाण्डवों को अपनी बात बलपूर्वक मनवा लेनी चाहिए थी।

"इस कारण मेरी विवेचना यह है कि परिवार का पितामह भीष्म वहाँ बैठा हुआ था, उसने ही जब अनुचित बात की तो फिर सर्वनाश तो अवश्यम्भावी था ही। हुआ भी। महर्षि व्यासजी ने इस पूर्ण कथा का यही निष्कर्ष निकाला है कि उस दिन ही उस परिवार का विशेषतया और भारत का सामान्यतया मार्तण्ड अस्ताचल

---

१. संसार में बलवान जिसको धर्म समझता है लोक में वही धर्म माना जाता है। धर्म बलवान व्यक्ति के बल से दबा होता है।—म०भा० सभा० ६९-१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ओर चल पड़ा था।

"मनु महाराज ने धर्म की व्याख्या इस प्रकार की है। उन्होंने कहा है कि सम्पूर्ण धर्म का स्रोत वेद है। स्मृति और शील के जो नियम कहे हैं वह भी धर्म कहाते हैं। वेद के ज्ञाताओं का कथन भी धर्म है। साधुओं का आचरण भी धर्म है और जिससे आत्मा को सन्तुष्टि हो वह भी धर्म है।

"स्मृतिकार ने इस प्रकार पाँच बातें कही हैं। सब धर्मों का स्रोत वेद होने से यह सर्वव्यापक सभी का मूल होने से इसके विपरीत अधर्म होगा। वेद परमात्मा का वचन होने से अयुक्तियुक्त नहीं हो सकता। इस कारण शेष चार धर्म के कहने वाले अयुक्तियुक्त बात को धर्म कहें तो उनका कहना अमान्य होगा। इसका अभिप्राय यह है कि शील के नियम, वेद के ज्ञाताओं का कथन, साधुजनों का आचरण और आत्मा की तुष्टि में यदि कोई अयुक्त बात हो तो वह धर्म नहीं हो सकती।

"इसके अतिरिक्त आत्मतुष्टि धर्म तभी हो सकती है जब वह किसी ऐसे कर्म के विषय में हो जिसका सम्बन्ध कर्ता के अपने साथ ही हो। यदि किसी ऐसे काम में आत्मतुष्टि को धर्म मानेंगे, जो अपने को तो सन्तोष देने वाली हो, परन्तु जिस पर उसका प्रयोग हो रहा हो उसको वह सन्तुष्ट करने वाली न हो तो वह इस विधान से धर्म नहीं हो सकता।

"महाराज यदि कोई बलवान किसी अबला पर अत्याचार करता है तब वह उसको तो सन्तोष देने वाला हो सकता है परन्तु जिस पर वह बलात्कार हुआ है उस स्त्री के सन्तोष का कारण न होने से धर्म नहीं माना जा सकता।

"यदि बलवान का किया ही धर्म मान लिया जाता तो वह द्यूतक्रीड़ा भवन रणभूमि में परिवर्तित हो जाता। परन्तु पाण्डवों ने उस व्यवस्था को अशुद्ध माना इस कारण वे चुपचाप बैठे रहे।

"मैं तो पूर्ण महाभारत की घटना को ही ऐसा मानता हूँ कि वह परिणाम था उस काल के भ्रष्ट ब्राह्मणों की भ्रष्ट मति का। उस सभा में द्रोणाचार्य और कृपाचार्य भी बैठे थे। वे भी इस अयुक्तियुक्त व्यवहार पर मौन थे।

"उस समय अन्धे बाबा को बात सूझ गयी प्रतीत होती है। वह समझ गया कि कहीं भूल हो रही है। उसने इस भूल को सुधारने का यत्न किया और सारे खेल को बच्चों का खेल कहकर युधिष्ठिरादि को उनका राज्य वापस दिलवाकर उनको विदा होने की आज्ञा दे दी।

"दुर्योधन भी समझ गया कि भूल कहाँ हुई है। वह भी समझ गया कि कोई राज्य को हार नहीं सकता अपितु उस राजा को राज्यच्युत किया जा सकता है। भाई और पत्नी को दाँव पर नहीं लगाया जा सकता परन्तु बड़ा भाई यदि राज्य से च्युत होकर वन को चला जाय तो छोटे भाई स्वतः ही राज्य से च्युत मान लिए जायेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इसलिए दुर्योधन ने इस बार युक्तियुक्त शर्त प्रस्तुत कर एक बाजी और खेलने की स्वीकृति माँग ली। यह शर्त थी कि जो भी हारेगा वह बारह वर्ष तक वनवास तथा उसके उपरान्त एक वर्ष अज्ञातवास करे। यदि उस अज्ञातवास का स्थान विदित हो जाय तो पुनः बारह वर्ष का वनवास भोगना होगा।

"धृतराष्ट्र अपने पुत्र की चाल को समझ गया। उसने अनुमान लगा लिया कि इस खेल में छल किया जा रहा है। भीष्मादि को इस खेल में किसी प्रकार का कोई अयुक्तियुक्त कार्य दिखाई नहीं दिया। युधिष्ठिर की मति भ्रष्ट हो चुकी। वह समझ नहीं पाया कि इस खेल में कहीं धोखा-धड़ी हो रही है। किसी हारते हुए जुआरी की भाँति उसकी मति मलिन हो गयी थी। उसका परिणाम यह हुआ कि वह शर्त हार गया, उसको वन में जाना पड़ा तथा उसके साथ ही उसके भाई और पत्नी भी वन को गये।

"पाण्डवों के गुरु थे द्रोणाचार्य और कृपाचार्य। वास्तव में उनकी शिक्षा में कहीं त्रुटि थी। इस त्रुटि का एक उदारहण इससे पूर्व एकलव्य की घटना के रूप में कहीं आपको बताया जा चुका है। अपने से श्रेष्ठ को मित्र बनाने की अपेक्षा शत्रु बनाना तो मन्दमति के ही लक्षण माने जायेंगे। इन दोनों आचार्यों ने सम्पूर्ण महाभारत में मूढ़ता का ही प्रदर्शन किया है।

ब्राह्मणों की मानसिक अवस्था हीन होने से ही शेष तीन वर्ण के लोग विनाश के मार्ग पर चल पड़ते हैं। समाज जब ह्रासमान होता है तो उसका प्रारम्भ ब्राह्मणों अर्थात् विद्वानों से ही होता है। उसकी प्रतिक्रिया क्षत्रियों पर होती है और फिर समस्त समाज अर्थात् चारों वर्ण विनाश की ओर चल पड़ते हैं।"

कथा समाप्त होने पर पण्डित शिवकुमार ने वह पुस्तक उठाई, जिसमें राजरंग ग्राम के ब्राह्मणों की याचिका आदि रखी थी और उसे बगल में दबा स्वयं उठकर महाराज और महारानी को हाथ जोड़कर विदा करने लगा।

तब महारानी ने पूछा, "पण्डितजी! इस पत्र में किसी अति दुःखद घटना का उल्लेख था क्या जिसे पढ़कर आपकी आँखों से अश्रुधारा बह चली थी? क्या वह हमारे जानने की नहीं है?"

"महारानी जी! है तो यह महाराज के जानने की ही परन्तु मैं चाहता हूँ कि यह उचित व्यक्ति के माध्यम से ही उन तक पहुँचे। भूल से यह मेरे पास आ गयी है। यदि उपयुक्त माध्यम से आज सायंकाल तक यह महाराज के पास नहीं पहुँची तो फिर मैं स्वयं ही लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा। परन्तु महाराज! उससे पूर्व में पुरोहित पद का त्याग कर दूँगा।"

शिवकुमार की बात सुनकर महाराज समुद्रगुप्त विस्मय करने लगे। वह कुछ क्षण तक तो शिवकुमार का मुख देखते रहे फिर सहसा महारानी से बोले, "अब चलो, समय से पूर्व कुछ भी प्राप्त करना उचित नहीं होता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ११ :

उसी दिन मध्याह्नोत्तर महामात्य हरिषेण महाराज से मिलने के लिए आया। औपचारिक अभिवादन आशीर्वादानन्तर महामात्य ने पण्डित विश्वामित्र की वह याचिका प्रस्तुत कर दी जिसे शिवकुमार ने उनकी उपस्थिति में अपनी यज्ञशाला में पढ़ा था।

महाराज ने उस याचिका को देखा तो वे पहचान गये। किन्तु उसके साथ वह पत्र नहीं था जो महामात्य ने राज-पुरोहित को भेजा था। उसे न देख महाराज ने कहा, "इसके साथ तो एक और पत्र भी था, वह कहाँ गया?"

"महाराज! वह एक नवयुवक की जो राजसी कार्य से अनभिज्ञ है, उचित डाँट के बाद वापस हो गया है। इस कारण वह पत्र और उसके उत्तर वाला पत्र मैंने निकाल लिया है।"

महाराज को हँसी आ गयी। बोले, "क्या हम जान सकते हैं कि पुरोहितजी ने डाँट में क्या लिखा था?"

"उन्होंने लिखा था श्रीमान् मेरे द्वारा भेजे गये दोनों पत्रों को देखना चाहते थे परन्तु मैंने नहीं दिखाये। क्योंकि मैं समझता था कि उनको भूल से मेरे पास भेजा गया था। मैं उस भूल सुधारने का अवसर देने के लिए दोनों पत्रों को आपके पास वापस भेज रहा हूँ। जो कुछ भी राजरंग ग्राम में हुआ है उसका यज्ञ से किंचित् भी सम्बन्ध नहीं है। उस दुर्घटना का सम्बन्ध राज्य की धर्म-व्यवस्था से है। अधर्म, वह फिर किसी सामान्य नागरिक ने किया अथवा कि किसी राजा ने, यह राज्य का कार्य है कि वह उसका निराकरण करे और अधर्माचरण करने वाले को दण्ड दे। यह पुरोहित का कार्य नहीं है।

"अतः महाराज मैं उन दोनों पत्रों को रद्द कर अपने घर पर ही छोड़ आया हूँ।"

महाराज मुस्करा रहे थे। उन्होंने कहा, "हमें इस राज-पुरोहित की श्रेष्ठ और सत्य बुद्धि पर विस्मय होता है। उसने आपका पत्र और यह याचिका पढ़ते-पढ़ते ही निश्चय कर लिया था कि पत्र हमको नहीं दिखाना चाहिए। इसलिए उसने पत्र को पढ़कर बन्द किया और सामने रखी पुस्तक के भीतर रख दिया तथा अपना नियमित कार्य करने लगा।

"अब हम समझ रहे हैं कि उस समय कथा की विवेचना करते हुए जो कुछ पुरोहितजी ने कहा था वह सब आपके पत्र पर ही अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहे थे। उनकी विवेचना का अन्तिम वाक्य था कि दोष का आरम्भ सदा ब्राह्मणों की ओर से ही होता है। ब्राह्मणों से चलता हुआ वह दोष क्षत्रियों में जाता है और फिर समस्त समाज में फैल जाता है। तब महा विनाश होता है।"

"महाराज! मुझे कुछ ऐसा अनुभव होने लगा है कि अब मुझे इस नवयुवक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के चरणों में बैठकर पुन: राजनीति के ज्ञान का नवीकरण करना चाहिए।"

"ग्राप उसे ग्रपने कार्य में सहयोगी बनाने का यत्न करिये। ग्राप हमारे पास भी तो ग्रपनी सम्मति लेकर ग्राते हैं ग्रौर पुरोहितजी हमारे एक ग्रंग हैं। इस कारण हम समझते हैं कि हमारे पास ग्राने से पूर्व ग्राप विशेष विषयों पर उनसे परामर्श कर लिया करें तो उत्तम होगा।"

महामात्य ने ग्रपने ग्राने का प्रयोजन वर्णन करते हुए कहा, "महाराज! यह याचिका प्रस्तुत करने वाला युवक कल सायंकाल मेरे पास ग्राया था। मैंने उसको निर्देश दिया कि वह घटना का पूर्ण विवरण लिखकर याचिका तैयार कर दे। उसने यह याचिका तैयार की ग्रौर फिर मेरे पास ग्राया तो मैंने उसको कहा कि यह यज्ञ का विषय है। इसका सीधा सम्बन्ध महाराज ग्रौर उनके पुरोहित से है।

"ग्रत: मैंने उसको पुरोहितजी से मिलने का परामर्श दिया ग्रौर मैंने उसको उस समय जान-बूझकर पुरोहितजी के पास भेजा था, जिस समय ग्राप भी वहाँ पर उपस्थित रहते हैं। परन्तु मैंने देखा कि ग्रल्पाहार के समय ही विश्वामित्र याचिका को वापस लेकर मेरे पास ग्रा गया। उसके साथ पुरोहितजी की ग्रपनी टिप्पणी भी थी। मैं उनकी टिप्पणी पढ़कर स्तब्ध रह गया। उन्होंने उसमें मेरी भर्त्सना की थी।

"पुरोहितजी का कहना है कि इस विशाल राज्य में कोई भी राजा ग्रथवा रंक, ग्रधर्माचरण करे तो क्या उसे रोकना राज्य का कार्य नहीं है? यदि राज्य का यह कार्य नहीं है तो फिर किसका है?

"इस कारण मैं इस समय ग्रापके पास ग्राया हूँ कि सैनिक तो मेरे ग्रधीन हैं नहीं। उनपर सैनिक न्यायालय ही न्याय-व्यवस्था लागू कर सकते हैं। इसी प्रकार, किन्तु इतनी हृदय विदारक नहीं, लक्ष-लक्ष घटनायें घटित हो चुकी हैं ग्रौर हो रही हैं, सबका विवरण मैं सेनाध्यक्ष के पास भेजता रहा हूँ। किन्तु उन्होंने कदाचित् कुछ भी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की है। न कुछ कार्यवाही ही की है। यदि कुछ किया होता तो सैनिकों के दुर्व्यवहार की सूचनाएँ ग्राना बन्द हो गयी होतीं। वह तो निरन्तर ग्रा रही हैं।"

महाराज समुद्रगुप्त ने याचिका पढ़नी ग्रारम्भ की। ग्राद्योपान्त पढ़ने के उपरान्त महाराज ने कहा, "मैं समझता हूँ कि पुरोहितजी ने सर्वथा सत्य ही कहा है। हवि को इस प्रकार एकत्रित करने की योजना उन ब्राह्मणों की ही थी जोकि इस हवि से निजी लाभ उठाने की ग्रभिलाषा लिये बैठे हैं।

"उनका कहना था कि यदि लोगों को स्वेच्छा से देने के लिए कहा गया तो यज्ञ पर व्यय होने के लायक भी हवि एकत्रित नहीं हो पायेगी।"

"हाँ महाराज! राज्य राज्यों से व्यवहार कर सकता है। दोनों ही बराबर के व्यक्ति होते हैं। परन्तु जहाँ राज्य ग्रौर प्रजा की बात होती है वहाँ एक की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राज्ञा होती है ग्रौर दूसरे को वह स्वीकार करनी पड़ती है।

"राज्य राज्यों से लेन-देन कर सकता है। किन्तु राज्य जब प्रजा से कुछ माँगता है तो वह किसी प्रकार की दान-दक्षिणा न होकर एक प्रकार का कर ही होता है। प्रजा वह देती भी है, किन्तु उसी प्रकार जिस प्रकार वह कर दिया करती है।"

महाराज ने कहा, "हम समझते हैं कि भूल यहीं हुई है। ग्राप पुरोहितजी से मिलकर हवि संग्रह के कार्य में संशोधन करने का यत्न कीजिये।

"जहाँ तक दोषी सैनिकों का प्रश्न है, हमारी ग्रोर से सेनापति को पत्र लिखिये कि उनको तुरन्त वापस बुला लिया जाय। उस पत्र में यह भी उल्लेख कर दीजिये कि उन सैनिकों के विरुद्ध ग्रनेक प्रकार की शिकायतें हैं जिनके परिपेक्ष्य में उनके विरुद्ध जाँच होना ग्रनिवार्य हो गया है।

"हम पुरोहितजी के इस कथन से ग्रक्षरशः सहमत हैं, ग्रधर्माचरण कोई भी करे, यह राज्य का कर्तव्य है कि वह उसका निराकरण करे।"

महाराज को इस सतर्कता से कार्य करते देख महामात्य प्रसन्न वदन महाराज से विदा माँगकर ग्रपने कार्यालय में गये ग्रौर वहाँ से उन्होंने महाराज की ग्रोर से सेनापति को एक पत्र लिखवाया।

पत्र पूर्ण होने पर उसपर महाराज के हस्ताक्षर करवाये गये ग्रौर फिर उसको सेनापति के पास भेज दिया गया।

इसके बाद महामात्य ग्रपने ग्रतिथि-गृह में निवास करने वाले स्थाणेश्वर के ब्राह्मणों को यह सूचना देने के लिए चले गये कि उनकी याचिका पर राज्य किस प्रकार से सतर्क हो गया है।

ग्रतिथि-गृह में पहुँचने पर महामात्य को विदित हुग्रा कि दोनों ग्रतिथि वहाँ नहीं हैं। प्रतिहारी ने बताया कि मध्याह्न भोजन के उपरान्त वे तीनों यहाँ विश्राम कर रहे थे। किन्तु जब वह मध्याह्नोत्तर देखने के लिए गया तो तीनों वहाँ उपस्थित नहीं थे। उसने सोचा कि नगर-भ्रमण के लिए गये होंगे। किन्तु ग्रभी तक भी वे लोग वापस नहीं लौटे।

महामात्य उसी समय ग्रपने रथ में बैठकर पुरोहितजी के निवास की ग्रोर चल दिये। महामात्य पुरोहित को महाराज की कार्यवाही की सूचना देना चाहते थे। पुरोहितजी के घर पहुँच महामात्य को यह देखकर बड़ा ग्राश्चर्य हुग्रा कि पण्डित शिवकुमार ग्रपनी यज्ञशाला में बैठकर उन ग्रागन्तुक ब्राह्मणों को उपदेश दे रहे हैं।

प्रतिहारी ने जब महामात्य को इस प्रकार की सूचना दी तो महामात्य स्वयं भी यज्ञशाला में पहुँच गये। चुपचाप उन्हीं ब्राह्मणों के पीछे बैठ रहे थे कि पण्डित शिवकुमार ने उनको देख लिया। शिवकुमार ग्रपने ग्रासन से उठा ग्रौर उसने महामात्य का हाथ पकड़कर ग्रपने ग्रासन के समीप बैठाया ग्रौर फिर ग्रपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपदेश जारी रखा।

पण्डित शिवकुमार कह रहा था "मानव जीवन अति दुर्लभ है। इसको समाप्त कर देने से स्वयं को ही हानि होती है। एक तो यह कि जिस विषय में आपने याचिका प्रस्तुत की है उसके साक्षी के लिए आपको बुलाया जायेगा। दूसरे, मानव जीवन को पा सकने के अवसर को खो देने का अर्थ यह होगा कि जैसे दैवी निधि को पाकर व्यर्थ नाली में बहा दिया हो।"

अन्त में जब विश्वामित्र ने यह वचन दिया कि राज्य की ओर से जाँच-पड़ताल समाप्त होने तक वह अपना जीवनान्त नहीं करेगा तो फिर पण्डित शिवकुमार ने कहा, "अब आपको महामात्यजी के घर पर जाने की आवश्यकता नहीं है। जब तक किसी प्रकार की कार्यवाही की सूचना नहीं आती आप दोनों यहाँ पर ही रहिये।"

पुरोहितजी की बात सुनकर महामात्य ने कहा, "मैं अभी-अभी महाराज से आप लोगों के विषय में ही बात करके आ रहा हूँ। महाराज ने सेनापति को आदेश दिया है कि उन सैनिकों को तुरन्त वापस बुला लिया जाय और पण्डित विश्वामित्र के आरोपों की तुरन्त जाँच आरम्भ कर दी जाय। दोषी सैनिकों को कठोर दण्ड देने की आज्ञा दे दी गई है।"

अश्विनीकुमार ने पूछा "भगवन्! यह जाँच-कार्य पाटलिपुत्र में होगा अथवा कि हमारे गाँव में ?"

"आपकी याचिका पर महाराज की टिप्पणी लिखवाकर मैंने उसे न्यायमूर्ति प्रभाकर के पास भिजवा दिया है। कदाचित् वह कल आप लोगों से मिलेगा। इसका अभिप्राय: तो यही हुआ कि जाँच का कार्य कल से ही आरम्भ हो जायेगा।

"यह तो न्यायाधीश के निश्चय करने की बात है कि वह साक्षियों को पाटलिपुत्र बुलवाता है अथवा कि स्वयं जाँच का कार्य आपके ग्राम में जाकर आरम्भ करता है।"

शिवकुमार ने कहा, "अब आप लोगों को महामात्यजी के निवास पर रहने की आवश्यकता नहीं है। आप यहाँ के अतिथिगृह में निवास कीजिये।"

तीनों ब्राह्मण वहाँ से उठकर अतिथिगृह में चले गये। उनके जाने पर महामात्य ने वह सारा वार्त्तालाप तथा कार्यवाही पण्डित शिवकुमार को सुना दी जो उन दोनों के मध्य हुई थी और फिर उसपर महाराज ने जो कार्यवाही की थी।

पण्डित शिवकुमार इससे प्रसन्न था।

पण्डित हरिषेण ने पूछा, "वर्तमान परिस्थिति में अब हवि किस विधि से एकत्रित की जाय ?"

"हवि एकत्रित करने का कार्य जिस समय सेना को सौंपा गया था मुझे उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय यह खटका हुआ था। मैं समझ रहा था कि इस प्रकार की असम्भावित घटनाओं की सूचनायें मिलती रहेंगी। तदपि मैंने महाराज के कार्य में दोष निकालना उचित नहीं समझा इसलिए मैं मौन रहा।

"अब मेरी यह सम्मति है कि हवि तो एकत्रित होनी ही चाहिए किन्तु इसके लिए न तो राज्य-कर्मचारी उपयुक्त हैं और न सैनिक ही। मेरी सम्मति में यह कार्य पाटलिपुत्र की विद्वत्परिषद् को सौंप दिया जाना चाहिए। इस कार्य के लिए विद्वत्परिषद् का एक आयोग गठित किया जाय जिसमें राज्य भर में विख्यात पाँच ब्राह्मण सदस्य हों। वह आयोग भ्रमण करता हुआ हवि एकत्रित करे।"

"परन्तु वे विख्यात ब्राह्मण जो उस आयोग के सदस्य बनाये जायेंगे इस प्रकार हवि एकत्रित करवाने के कार्य को अपना समझ बैठेंगे?"

"यह विषय विद्वत्परिषद् में रखा जाय। मैं समझता हूँ कि मैं उनको इस कार्य के लिए सहमत करने में सफल हो जाऊँगा।"

"तो विद्वत्परिषद् की विशेष बैठक बुला ली जाय। आप ही तो उसके अध्यक्ष हैं।"

"ठीक है, मैं बैठक बुलवा लेता हूँ। आप भी उसमें पधारियेगा। मैं आशा करता हूँ कि मैं पाँच विख्यात ब्राह्मणों को उसमें सम्मिलित करने में सफल हो जाऊँगा।"

महामात्य ने पूछा, "उन ब्राह्मणों का व्यय कौन वहन करेगा?"

"एक सौ एक सैनिकों का व्यय राज्य पहले से ही वहन कर तो रहा है। मेरी योजना तो यही है कि सैनिकों की संख्या बहुत कम कर दी जाय। पाँच-दस सैनिक हों, जिससे यह तो प्रकट हो कि यह यज्ञ का अश्व है, कोई साधारण भटका हुआ अश्व नहीं। इस प्रकार पाँच ब्राह्मणों का व्यय तो जो सैनिकों के कम करने से बचत होगी उससे कम ही होगा।"

सेनाध्यक्ष के पास जब यज्ञ के अश्व की रक्षा करने गये हुए सैनिकों को वापस बुलाने की आज्ञा पहुँची तो सेनाध्यक्ष स्वयं महाराज से भेंट करने के लिए आया। वर्तमान परिस्थिति में इसकी सम्भावना व्यक्त की जा रही थी।

सेनाध्यक्ष को सायंकाल के उपरान्त सूचना गयी थी। सेनाध्यक्ष पत्र पढ़कर तत्काल महाराज से मिलने के लिए पहुँचा। महाराज को जब इसकी सूचना दी गई तो उन्होंने भी तुरन्त उसको भेंट के लिए बुला लिया।

महाराज के सम्मुख उपस्थित होने पर महाराज का जयघोष कर सेनापति ने कहा, "मुझे महाराज के हस्ताक्षरों से युक्त एक पत्र अभी-अभी प्राप्त हुआ है। उस पत्र को पढ़कर मैंने अनुमान लगाया है कि महामात्य ने महाराज को सेना के विपरीत करने वाली कोई बात कही है जिससे महाराज को यह पत्र लिखना पड़ा है। मैं यह बताना चाहता हूँ कि मेरे ज्ञान के बिना मेरे विभाग में किसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कार्यवाही करना नियम विरुद्ध है।"

महाराज ने कहा, "जो सैनिक अश्व के साथ हवि एकत्रित करने के लिए गये हैं उनके विरुद्ध एक आरोप है। हमने न्यायमूर्ति को उसकी जाँच का आदेश दे दिया है। किन्तु जबतक उन सैनिकों को वापस नहीं बुलाया जाता तबतक जाँच सम्भव नहीं है।"

"इससे पूर्व भी महामात्य और पुरोहितजी ने मेरे पास अनेक आरोप भेजे थे। उनमें से कुछ के विषय में मैंने जाँच करवाई थी किन्तु वह सत्य सिद्ध नहीं हुए। मैं समझता हूँ कि यह आरोप भी उसी प्रकार का होगा। जैसा भी हो, किन्तु वह मेरे पास आना चाहिए था। यदि मेरी जाँच के विपरीत कुछ बात होती तो फिर उसे महाराज के पास भेजा जाना चाहिए था।" सेनापति ने रोष प्रकट करते हुए कहा।

महाराज बोले, "हम समझते हैं कि महामात्य को यहाँ बुला लिया जाय और उनके सम्मुख ही निश्चय कर लिया जाय कि क्या उचित है और क्या अनुचित। महामात्य के पास स्थाणेश्वर के समीप के गाँव राजरंग की एक याचिका आई है। उस याचिका में वर्णित घटना तो महाभयंकर और हृदयविदारक है। पीड़ित व्यक्ति स्वयं याचिका प्रस्तुत करने के लिए पाँच सौ कौस की यात्रा करके राजधानी में आया है।"

"महाराज! मेरा कहना तो यह है कि उस पर किसी प्रकार की आज्ञा करने से पूर्व मुझसे परामर्श कर लेना चाहिए था। सैनिकों के सम्बन्ध में सामान्य राज्य-कर्मचारियों को कार्यवाही करने की अनुमति देकर अनियमित कार्य किया गया है।"

"जब नियमोपनियमों की ही बात है तो जो पिछले बीस वर्ष से महामात्य इस राज्य की धर्म-व्यवस्था को देख रहे हैं मैं उनसे परामर्श करता रहा हूँ, इसलिए इस समय भी उनको बुलाना ही चाहिए।"

"महाराज! इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि महामात्य मुझ पर न्याय व्यवस्था लागू करने वाले मान लिये गये हैं?"

"तो जो आरोप आप महामात्य पर लगा रहे हैं उसका निर्णय हम एक पक्षीय ही कर दें? आपका यह कहना है कि महामात्य ने हमसे जो आज्ञा दिलवाई है वह अनियमित है। आपका अभिप्राय यह है कि हम महामात्य से यह ज्ञात न करें कि उन्होंने यह आज्ञा क्यों लिखवायी है? आप चाहते हैं कि महामात्य को आपके कथनानुसार दोषी मानकर बिना उनका स्पष्टीकरण सुने हम अपनी व्यवस्था दे दें?"

महाराज ने जब इस प्रकार बात की तो सेनापति को चुप रहना पड़ा। महाराज ने प्रतिहार को बुलवाया। उससे कह दिया कि वह किसी उचित व्यक्ति को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजकर महामात्य को तुरन्त मिलने के लिए कहे।

समय बिताने की दृष्टि से महाराज ने सेना के विषय में जानकारी लेनी आरम्भ कर दी। महामात्य को पहुँचने में दो घड़ी से अधिक समय लगा।

राजप्रासाद की ओर आते हुए महामात्य को प्रतिहार से विदित हो गया था कि महाराज के साथ सेनाध्यक्ष भी हैं। महामात्य सेनापति के आने का उद्देश्य समझ गये थे। वह यह भी जानते थे कि उनको किस विषय पर बात करने के लिए बुलाया गया है।

महामात्य ने महाराज के कक्ष में पहुँचकर महाराज और सेनापति को आशीर्वाद दिया और फिर अपने लिए नियत स्थान पर बैठ गये। महाराज ने कहा, "हमारे सेनाध्यक्ष श्री रणवीरसिंह कहते हैं कि मध्याह्नोत्तर हमारे हस्ताक्षरों से जो आज्ञा-पत्र भेजा गया है वह अनियमित है।"

"तो महाराज! आप उसे नियमित घोषित कर दीजिये। यही नियम है।"

"किसी अनियमित बात को किस प्रकार नियमित घोषित किया जा सकता है?"

"महाराज! वह अनियमित नहीं है। तदपि जब राज्य के इतने बड़े अधिकारी कहते हैं तो उनका मान रखने के लिए महाराज को इतना कष्ट तो करना ही चाहिए। किसी नियमित बात को नियमित घोषित करने में किसी प्रकार की हानि नहीं है।"

अब सेनापति ने बीच में बोलते हुए कहा, "आपने जो आज्ञा महाराज से दिलवायी है मैं उसे अनियमित समझता हूँ।"

"वह किस प्रकार?"

"उन सैनिकों को वापस बुलाने से पूर्व मेरे समक्ष उनपर दोषारोपण होना चाहिए था।"

महामात्य ने सतर्क होकर उत्तर दिया, "देखिये श्रीमन्! उन सैनिकों ने देश में प्रचलित धर्म के विरुद्ध कार्य किया है। देश के महामात्य के पास उसकी सूचना आई है और देश के महामात्य ने देश के धर्मानुसार उनको पकड़कर न्यायाधीश के समक्ष उपस्थित करने की आज्ञा दे दी है। आपको तो केवल यही कहा गया है कि आप उन सैनिकों को वापस बुलवा लीजिए, जिससे कि वे न्यायालय के समक्ष अपना पक्ष प्रस्तुत कर सकें।

"कृपया बताइये कि इसमें क्या अनियमित है?"

"वह आरोप मेरे पास आना चाहिए था। मैं विभागीय जाँच करता और यदि पीड़ित व्यक्ति उस जाँच से सन्तुष्ट न होता तो महाराज के सम्मुख याचिका प्रस्तुत कर सकता था।"

"विभागीय जाँच तो तभी होती है जब एक सैनिक ने किसी दूसरे सैनिक के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरुद्ध किसी प्रकार की कार्यवाही की हो। यहाँ एक सैनिक ने नागरिक के विरुद्ध अपराध किया है। वह नागरिक आपके अधीन नहीं है। इसलिए जब उसको किसी प्रकार का कष्ट हो तो वह क्यों न राज्याधिकारियों के पास जाय ? और जब वह आरोप प्रस्तुत करता है तो वह राज्याधिकारियों का कर्तव्य हो जाता है वे उसकी न्यायिक जाँच करायें।"

"किन्तु सैनिक के साथ यह नहीं हो सकता।"

"तो क्या सैनिक मार्ग पर जाने वाली किसी भी महिला का अपहरण कर उससे बलात्कार कर सकता है। और यदि वह इस प्रकार का अधर्माचरण करता है तो उसकी जाँच का अधिकार केवल सेनाध्यक्ष को ही है ? नागरिक ऐसा मानने के लिए तैयार नहीं। न धर्म ही इसकी स्वीकृति देता है।

"राज-परिवार का कोई भी घटक अपराध क्यों न करे उसकी जाँच तो न्यायाधीश ही कर सकता है। जहाँ जिन राज्यों में राज-परिवार अधर्माचरण करने के लिए स्वतन्त्र हैं, उन राज्यों में विप्लव होता है और राज्य विनष्ट हो जाते हैं।"

"महाराज ! महामात्य आपको धमकी दे रहे हैं ?"

"और सेनाध्यक्ष ! तुम विद्रोह कर रहे हो।" महाराज ने कहा।

महाराज के मस्तिष्क में अभी भी विश्वामित्र की याचिका में वर्णित घटना चक्र की भाँति घूम रही थी। महाराज ने ताली बजाई और तुरन्त राजप्रासाद की रक्षा के लिए तैनात सुभट्ट भीतर आ गये। सेनाध्यक्ष अभी महाराज के कथन और उनकी ताली का अभिप्राय समझ ही रहा था कि महाराज ने कहा, "रणवीर ! अपनी खड्ग-तलवार उतारकर यहाँ रख दो। तुम राज्य के बन्दी हो।"

रणवीरसिंह उठा और उसने खड्ग उतारकर महाराज के चरणों में रख दी।

महाराज ने सुभट्टों को आदेश दिया, "रणवीरसिंह को ले जाकर आगार संख्या बीस में बन्दी बना दिया जाय।"

सुभट्ट सेनाध्यक्ष की ओर बढ़े। सेनाध्यक्ष चुपचाप उनके साथ चल दिया।

जब सुभट्ट सेनाध्यक्ष को लेकर चले गये तो महाराज ने महामात्य से पूछा, "महामात्य अब ?"

"यह तो महाराज ! ठीक नहीं हुआ।"

"क्यों इसमें क्या दोष पाया है आपने ? हमारी आज्ञा सुनने से पूर्व ही इसने उस पर अपनी आपत्ति प्रस्तुत करनी आरम्भ कर दी थी। हम सेना को यह अधिकार नहीं दे सकते कि सैनिक नगरों और ग्रामों में जाकर महिलाओं का शील भंग करें।"

"परन्तु सेना का प्रबन्ध तुरन्त होना चाहिए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वह बताइये कि किस प्रकार होना चाहिए ?"

"तुरन्त नये सेनाध्यक्ष की नियुक्ति हो जानी चाहिए। मेरी दृष्टि में इस समय इस पद के लिए राजकुमार चन्द्रगुप्त विक्रम ही उपयुक्त व्यक्ति हैं।"

"वह स्वीकार नहीं करेगा। वह स्वयं को इस योग्य नहीं समझता।"

"महाराज ! उसके समझने से क्या होता है ? राज्य की प्रजा इसको पसन्द करती है।"

महाराज ने ताली बजायी। प्रतिहारी आया। महाराज ने कहा, "तुरन्त राजकुमार को बुलाकर लाओ।"

इस समय तक सारे राज-प्रासाद में सेनाध्यक्ष के बन्दी बनाये जाने की चर्चा फैल गई थी। जब तक प्रतिहारी राजकुमार को बुलाकर लाये महामात्य ने सुभट्टों के नायक के पास जाकर कहा, "हमारी आगामी सूचना तक न तो किसी व्यक्ति को प्रासाद से जाने दिया जाय और न किसी को भीतर ही आने दिया जाय।"

इस प्रकार जब तक राज-प्रासाद का प्रबन्ध हुआ तब तक सूचना पाकर राजकुमार भी आ गया।

राजकुमार को आते देख महामात्य भी आ गये। महाराज ने महामात्य को ही कहा, "पण्डितजी ! राजकुमार को हमारी आज्ञा बता दीजिये।"

"राजकुमार ! महाराज की आज्ञा है कि राजकुमार चन्द्रगुप्त विक्रम मगध राज्य की सेनाओं का तत्काल अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है।"

"वर्तमान सेनाध्यक्ष ?" राजकुमार ने पूछा।

"वह इस समय इसी प्रासाद के एक आगार में बन्दी है। उसके स्थान की पूर्ति होते ही उसपर लगाये आरोपों की जाँच आरम्भ हो जायेगी।"

"महाराज की आज्ञा शिरोधार्य है।" राजकुमार ने कहा।

उसी समय मसीपात्र, कागज और लेखनी मँगवायी गयी। महामात्य ने स्वयं अपने हाथ से महाराज की आज्ञा लिखी—"राजकुमार चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को मगध की सेनाओं का सेनाध्यक्ष नियुक्त किया जाता है।"

यह आज्ञा-पत्र लिखकर महाराज के हस्ताक्षरों के लिए उनके सम्मुख रख दिया गया। इस आज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर होते ही महामात्य ने उसे लपेटा और अपने पास रख लिया। फिर उन्होंने राज-प्रासाद के सुभट्टों को एकत्रित कर महाराज के सम्मुख ही आज्ञा दी, "आज इसी समय से महाराज कुमार चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को मगध की सेना का सेनाध्यक्ष नियुक्त किया गया है। यह सूचना सभी सुभट्टों को दे दी जाय।"

सुभट्टों के जाने पर राजकुमार ने कहा, "महाराज का आज्ञा-पत्र मुझे मिलना चाहिए ?"

"वह आपके पास यथाशीघ्र पहुँच जायेगा। अभी इसको कार्यालय में भेज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसकी प्रतिलिपियाँ तैयार कराकर राज्य के विभिन्न सैनिक शिवरों को भेजना होगा। उससे पूर्व अभी एक घड़ी के भीतर महाराजकुमार को राजकीय मुद्रा से विभूषित आज्ञा-पत्र प्राप्त हो जायेगा। इस समय तो महाराजकुमार को सर्वप्रथम अपनी पूज्य माताजी के पास जाकर उनको इस राजाज्ञा का ज्ञान कराना चाहिए और उनके चरणस्पर्श कर उनसे आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिए।"

"उनको ही दिखाने के लिए तो मैं यह लिखित आज्ञा-पत्र माँग रहा था।"

"आपके वहाँ पहुँचने के आधी घड़ी उपरान्त वह आज्ञा-पत्र आपके पास पहुँच जायेगा।"

महाराज कुमार विक्रम वहाँ से गया तो महामात्य ने महाराज से कहा, "महाराज ने सेनाध्यक्ष को बन्दी बनाये जाने की आज्ञा तो दे दी है किन्तु विना किसी प्रकार का आरोप-पत्र तैयार किये और वह उसको दिखाये बिना उसको बन्दी बनाये रखना अधर्मयुक्त होगा और अनुचित भी।"

महाराज बोले, "मैं भी एक बात पर विचार कर रहा हूँ।"

"वह क्या?"

"हम उसको कश्मीर में अपना स्थायी दूत बनाकर भेजना चाहते हैं। इसलिए आप रणवीरसिंह को कश्मीर में मगध का राजदूत बनाये जाने का एक आज्ञा-पत्र लिखकर तैयार कीजिये। उसपर मेरे हस्ताक्षर करवा स्वयं ही उसको दे आइये।"

लेखन सामग्री अभी वहीं पर विद्यमान थी। महामात्य ने आज्ञा-पत्र तैयार किया। उसमें लिखा गया : "श्री रणवीरसिंह की पिछले बीस वर्ष की सेवाओं के उपलक्ष्य में हम यह उचित समझते हैं कि उनको महावीर की उपाधि से विभूषित किया जाय और उसके साथ ही उनको कश्मीर में मगध के स्थायी राजदूत के पद पर नियुक्त कर दिया जाय। हमें आशा है कि श्री रणवीर को यह पद स्वीकार्य होगा और वे तुरन्त ही कश्मीर जाने की तैयारी करेंगे।"

इस आज्ञा-पत्र पर भी महाराज के हस्ताक्षर कराकर महामात्य अपने कार्यालय में चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सेनाध्यक्ष के नियुक्ति-पत्र पर राजकीय मुद्रा अंकित की तथा एतदर्थ नियुक्त लिपिक से उन्होंने उस पत्र की प्रतिलिपि तैयार करने के लिए कहा। कुल एक-सौ पाँच प्रतियाँ तैयार करनी थीं।

महामात्य ने सेनाध्यक्ष पद पर महाराजकुमार की नियुक्ति का पत्र उनके पास भिजवा दिया और वह स्वयं पदच्युत सेनाध्यक्ष श्री रणवीरसिंह से मिलने के लिए चल दिये।

रणवीरसिंह के साथ जो व्यवहार इस समय किया गया था, इसकी उसे तनिक भी सम्भावना नहीं थी। अतः जब उसको सुभट्टों ने उसके लिए नियत आगार में भेजकर उस आगार को बाहर से ताला लगा दिया तो एकान्त पाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसको इस स्थिति पर विचार करने का अवसर मिल गया।

रणवीर सोच रहा था यह क्या हुआ और क्यों हुआ। उसका मन कहता था कि वह राज्य से विद्रोह कर दे। तभी उसकी बुद्धि ने कहा कि यदि उसने ऐसा किया तो इससे तो यह स्वतः ही सिद्ध हो जायेगा कि वह विद्रोही हो गया था इस कारण महाराज ने उसको बन्दी बना लिया है। उसको राजद्रोह का अपराधी घोषित किया गया है। यह विचार आते ही उसने विद्रोह की बात को अपने मन से निकाल दिया। तब उसने विचार किया कि वह अपने विरुद्ध लगाये गये आरोपों की माँग करे और उनको लेकर न्यायालय में उपस्थित हो जाय।

इतना विचार आते ही उसने अपने मन में विचार करना आरम्भ किया कि आखिर उसने क्या अपराध किया है। वह एक बात समझ गया था कि महामात्य ने उसको विद्रोही नहीं कहा था। यह तो महाराज स्वयं थे जिन्होंने उसको विद्रोही कहा था। तब क्या उसने वास्तव में विद्रोह किया है?

सेनाध्यक्ष होने पर भी था तो वह सैनिक समुदाय का ही व्यक्ति। इस कारण वह समझ नहीं पाया कि उसके किस व्यवहार से विद्रोह व्यक्त हुआ था।

रणवीरसिंह इस प्रकार विचारमग्न था कि तभी सुभट्टों के नायक ने आकर उसके आगार का द्वारा खोला और वह भीतर आ गया। रणवीरसिंह आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगा।

नायक ने कहा, "मुझे महाराज की ओर से आज्ञा हुई कि आप जो पेय चाहें वह आपको भेंट किया जाय।"

"तो मुझे विषपान करना है?"

नायक विक्रम बहादुर इससे रुष्ट हुआ। उसने अभिमान की मुद्रा में कहा, "आप क्या मुझे हत्यारा बनाना चाहते हैं और क्या आप यह समझते हैं कि महाराज चाणक्य हैं?"

"तो मेरे वन्दी बनाये जाने के तुरन्त बाद पेय की क्यों आवश्यकता अनुभव की गयी है?"

"हाँ, महाराज ने इसका कारण भी बताया है। उनका कहना है कि शीघ्र ही महामात्य आपके पास किसी विषय पर आवश्यक परामर्श के लिए पधारने वाले हैं। आप उस समय स्थिर चित्त होकर विचार कर सकें इसलिए इस पेय का आयोजन किया जा रहा है।"

"इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि फाँसी पर लटकाने से पहले चित्त को ठण्डा करने का उपाय किया जा रहा है?"

"इस आशंका को ठीक भी मान लिया जाय तो भी फाँसी पर चढ़ने से पूर्व चित्त का शान्त होना आवश्यक है। यद्यपि मुझे ज्ञात नहीं कि महामात्य आपसे किस विषय पर परामर्श करने के लिए आ रहे हैं। मैं तो महाराज की आज्ञा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालन करने के लिए आया हूँ। बताइये आप क्या पियेंगे ?"

रणवीरसिंह समझ गया कि नायक से विवाद करने का कोई लाभ नहीं है। इसलिए उसने कहा, "जाओ कह दो, मैं मरने के लिये तैयार हूँ। मेरा चित्त शान्त है।"

नायक बाहर जाने के लिए घूमा ही था कि महामात्य आ गये। उन्होंने कहा, "कहिये विक्रमदेव ! क्या हो रहा है ?"

"महाराज की ओर से श्री रणवीरसिंह के लिए कोई सन्देश लाया था, उसका उचित उत्तर न पाकर निराश हो वापस जा रहा था कि तभी आपका आगमन हुआ है।"

"क्या मैं सुन सकता हूँ कि महाराज ने रणवीरसिंह के लिए क्या सन्देश भेजा है ?"

"कोई गुप्त अथवा रहस्य का सन्देश नहीं था। महाराज ने कहा था कि आप किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर इनसे बात करने के लिए पधारने वाले हैं। महाराज चाहते थे उस समय रणवीरसिंह शान्तचित्त होकर बात कर सकें इसके लिए उन्होंने कहा था कि जो मैं चाहूँ वह शीतल पेय इनको पिला दिया जाय।"

"बात तो मुझे भी शान्तचित्त से ही करनी चाहिए। इसीलिए आप दो कटोरे शीतल पेय ले आइये। मैं भी अपना चित्त शान्त कर लूंगा।" फिर उन्होंने रणवीर की ओर मुख करके पूछा, "कहिये कौन-सा पेय लेंगे आप ?"

"मीठे आम का रसयुक्त शीतल दुग्ध मिले तो शीतलता आ जायेगी।"

महामात्य ने नायक को कहा, "जाइये एक कलश में आम्ररसयुक्त सर्वथा शीतल दुग्ध ले आइये।"

विक्रम गया तो रणवीरसिंह ने पूछा, "सुनाइये, चित्त शीतल करने के उपरान्त बात करेंगे अथवा कि बात करने के उपरान्त चित्त शीतल करेंगे ?"

"शीतल पेय पीने के उपरान्त ही बात करेंगे। मैं भी तो तब से ही भाग-दौड़ में लगा हुआ हूँ। भोजन करने बैठा ही था कि महाराज ने बुला लिया।"

रणवीर विचार कर रहा था कि यदि उसकी पत्नी को यह समाचार मिलेगा कि उसके पति को बन्दी बना लिया गया है तो न जाने उस बेचारी पर क्या बीतेगी ?

विक्रमदेव को आम का दूध लाने में एक घड़ी समय लग गया। तबतक दोनों ही व्यक्ति अपने-अपने विचारों में लीन रहे। विक्रमदेव के साथ एक सेवक पेय सामग्री लेकर आया था। जब वे दोनों शीतल पेय रखकर आगार से बाहर हो गये तो रणवीर ने कहा, "लीजिये पण्डितजी ! शीतल पेय से चित्त शान्त कीजिये।"

"आप पहले लीजिये। जिससे आपको सन्देह न रह जाय कि जो कटोरा मैंने छोड़ दिया है वह विषयुक्त था। आप जो कटोरा चाहें एक उठा लीजिये।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रणवीर स्वयमेव अपने सन्देह पर लज्जित था। उसने एक कटोरा उठाया और उसमें दूध डालने लगा।

: १२ :

रणवीर धीरे-धीरे दूध पी रहा था। पीता हुआ वह विचार कर रहा था कि जो कुछ वह समझ रहा था बात उतनी गम्भीर नहीं दीखती।

महामात्य ने यथेच्छा आम्ररसयुक्त दूध पिया और कटोरा रख दिया। फिर वे रणवीर से बात करते हुए कहने लगे, "रणवीरसिंह जी! जब आपने महाराज को यह कहा कि मैं महाराज को धमकी दे रहा हूँ, वह सुनकर महाराज आपसे रुष्ट हो गये। मैंने उनको धमकी नहीं दी थी। मैंने तो उनको सिद्धान्तात्मक बात बतायी थी। महाराज उस सिद्धान्त की बात को जानते थे। महाराज आजकल नित्य ही महाभारत की कथा सुनने के लिए पुरोहितजी के घर पर जाया करते हैं। इस विषय पर महाभारत का ही प्रसंग लागू हो रहा था कि राजाओं के कारण ही राज्य विनष्ट हो जाते हैं। राजा का निजी आचरण कैसा भी क्यों न हो, प्रजा पर उसका प्रभाव होता ही है। परन्तु जब राजा प्रजा के साथ धर्मयुक्त व्यवहार न करे तो राज्य विनष्ट हो जाता है। प्रजा ही राजा और राज्य के विनाश का कारण बन जाती है।"

"मुझे यह शीतल पेय किस लिए पिलाया जा रहा है? मैं तो समझ रहा था कि मुझे विष देकर मेरी हत्या की जा रही है। परन्तु जब आपने भी उसी भाण्ड से दूध लेकर पिया है तो इससे मेरा सन्देह मिट गया है।

"अब बताइये आगे क्या आज्ञा है?"

"आगे की बात यह है कि महाराज आपकी पदोन्नति करना चाहते हैं। वे आपको कश्मीर में मगध का स्थायी राजदूत नियुक्त करना चाहते हैं।

"यदि आप स्वीकार करें तो इसी समय आपके कश्मीर प्रस्थान की आज्ञा दी जा सकती है।"

"यदि मुझे स्वीकार न हो तो?"

"तो अब आप सेनाध्यक्ष तो रहे नहीं। सामान्य नागरिक के रूप में जहाँ चाहें, पाटलिपुत्र में अथवा उसके बाहर, आप स्वतन्त्रतापूर्वक रह सकते हैं।"

"और सेनाध्यक्ष?"

"राजकुमार चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को सेनाध्यक्ष नियुक्त कर दिया गया है। यह आज्ञा राज्य-भर के सभी सैनिक शिविरों को दूत द्वारा भेजी जा चुकी है। राजकुमार इस समय पाटलिपुत्र के सैनिक शिविर में विराजमान हैं और सूचना मिली है कि उनकी नियुक्ति पर हर्षोल्लास व्यक्त करने के लिए शिविर में उत्सव मनाने की तैयारी हो रही है।"

रणवीरसिंह ने एक क्षण विचार किया और फिर बोला, "मैं समझता हूँ कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे इस नयी नियुक्ति को स्वीकार कर लेना चाहिए। तदपि मैं चाहूँगा कि मुझे अपनी पत्नी से राय करने के लिए एक दिन का समय दिया जाना चाहिए।"

"यह समय मिल जायेगा। परन्तु आप अब यह जान लीजिये कि आप सामान्य नागरिक हैं और उन सब प्रतिबन्धों से मुक्त हैं जो किसी सैनिक अधिकारी के लिए हुआ करते हैं।"

"तो मैं जा सकता हूँ ?"

"हाँ क्यों नहीं? महाराज को खेद है कि आपको दो-तीन घड़ी का यह मानसिक कष्ट भोगना पड़ा है।"

महामात्य के मुख से यह सुन रणवीर ने महामात्य का धन्यवाद किया और आगार से बाहर निकल गया।

महामात्य भी उसके साथ ही आगार से बाहर आये थे। उन्होंने द्वार पर खड़े प्रतिहारी से कहा, "रणवीरसिंह को राज-प्रासाद से बाहर जाने में किसी प्रकार की असुविधा न हो, इसका ध्यान रखना।"

इसे महामात्य का आदेश मानकर प्रतिहारी रणवीरसिंह के साथ-साथ चल दिया।

रणवीर राज-प्रासाद से बाहर निकला तो उसने देखा कि नगर में दापमाला प्रज्वलित की जा रही है।

रणवीर कुछ सोचता हुआ जा रहा था। वह सहसा एक दुकान के पास जाकर रुक गया। वह दुकानदार भी दीप जलाने में लगा हुआ था। रणवीर ने उससे पूछा, "भाई ! यह दीपमाला क्यों की जा रही है ?"

दुकानदार ने उसकी ओर देखा। उसके मुख पर विस्मय प्रकट हो रहा था। वह बोला, "देखने में तो आप भी कोई राज्याधिकारी जैसे ही दीखते हैं, क्या आपको पता नहीं, अभी कुछ देर पूर्व क्या घोषणा हुई थी ?"

"यदि मुझे विदित होता तो मैं आपको किस लिए कष्ट देता ?"

"अभी-अभी घोषणा हुई है कि राजकुमार विक्रमादित्य को मगध राज्य का सेनाध्यक्ष नियुक्त किया गया है। उसी उपलक्ष्य में यह दीपमालिका की जा रही है।"

"ओह, यह तो प्रसन्नता की बात है।"

इस प्रकार कहकर रणवीर लम्बे-लम्बे पग बढ़ाता हुआ अपने घर की ओर चल दिया।

रणवीर के घर पर शोक व्याप्त था। वहाँ अन्धेरा छाया हुआ था। जब रणवीर अपने द्वार के समीप पहुँचा तो द्वार पर खड़ा प्रतिहारी दौड़कर भीतर चला गया। वह रणवीर की पत्नी को रणवीर के आने का समाचार देने के लिए गया था।

रणवीर के आगमन से घर के सभी प्राणी तथा सेवक आदि प्रसन्न थे। किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब वे रणवीर के गम्भीर मुख की ओर देखते थे तो उनको शंका होने लगती थी।

रणवीर अपनी पत्नी के आगार के बाहर तक पहुँचा ही था कि उसकी पत्नी उससे मिलने के लिए बाहर आ रही थी। उसको सम्मुख खड़ा देख वह उससे सबके सम्मुख ही लिपट पड़ी। इस प्रकार उसने अपना आनन्द व्यक्त किया।

रणवीर ने उसको सहलाया और फिर बोला, "भीतर चलो।"

भीतर पहुँचकर रणवीर की पत्नी लक्ष्मी ने कहा, "यहाँ तो यह सूचना आयी थी कि आपको वन्दी बना लिया गया है और बन्दीगृह में आपकी हत्या कर दी गयी है। हम तो सब किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये थे।"

"यह तो तुम देख ही चुकी हो कि न मैं बन्दी हूँ और न मेरी हत्या ही की गयी है। मैं चाहता हूँ कि मेरे जीवित लौटने के उपलक्ष्य में अथवा राजकुमार के सेनाध्यक्ष बनाये जाने के उपलक्ष्य में तुम भी अपने घर को दीपमाला से सजाओ।"

"और आप?"

"आज तो मैं एक स्वतन्त्र नागरिक हूँ, कल के विषय में फिर शान्ति से विचार करेंगे।"

पत्नी ने इस कथन में कुछ रहस्य देखा। उसने अपने दास-दासियों को आदेश दिया कि वे भी अपने घर में दीपमाला की जगमग करें।

इस प्रकार पदच्युत सेनाध्यक्ष रणवीरसिंह के घर में भी सब सेवक दीपमाला के लिए भाग-दौड़ करने लगे।

रणवीर जब एकान्त में अपने परिजनों से मिला तो उसने अपने पदच्युत किये जाने का वृत्तान्त बता दिया।

रणवीर के पुत्र ने जब यह सुना कि महाराज ने उससे उसका खड्ग रखवा लिया तो वह बोला, "और आपने चुपचाप अपना खड्ग उतारकर रख दिया?"

"हाँ। यदि मैं चाहता तो उस समय महाराज की हत्या कर सकता था भले ही तत्क्षण मेरे टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते। किन्तु महाराज की हत्या का अर्थ था समस्त भारत में अव्यवस्था उत्पन्न कर देना। इससे अवसर पाकर शक तथा हूण पुनः देश पर आक्रमण कर सकते थे, मैं यह समझता था।"

रणवीर के पुत्र महावीर ने जब इस सम्भावना की बात सुनी तो वह मौन हो गया। रणवीर की पुत्री चन्द्रा ने पूछा, "परन्तु आपने उन सैनिकों का पक्ष ही क्यों लिया जिन्होंने नागरिकों पर अत्याचार किया था? यहाँ तो आज मध्याह्न से ही यह समाचार विख्यात हो रहा है कि अश्व के साथ जो सैनिक गये हैं उन्होंने स्थाणेश्वर के समीप के गाँव में महिलाओं के साथ बलात्कार किया है।"

"हाँ, यह बात तो मैंने भी सुनी थी और मैं सोच रहा था कि उन सैनिकों को कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए। परन्तु सेनाध्यक्ष के नाते मैं यह समझ रहा था यह अधिकार मेरे अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं है। मैं समझ रहा था कि मैं इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्त का प्रतिपादन करता हुआ सेना के मान को ऊँचा कर रहा हूँ।

"परन्तु महामात्य ने एक अन्य सिद्धान्त प्रस्तुत कर दिया है। वह यह कि नागरिकों पर अनाचार चाहे कोई करे, भले ही वह स्वयं महाराज ही क्यों न हों, इसका निर्णय न्यायाधीश ही कर सकता है।

"उनका कहना था कि न्यायाधीशों के माध्यम से ही राजा अन्य राज्यों का अंग बन सकता है अन्यथा विप्लव होकर राज्य विनष्ट भी हो जाते हैं।

"अब जब मैं सेनाध्यक्ष नहीं रहा हूँ, और इस बात पर विचार करता हूँ कि महामात्य का कथन ठीक है, मेरा उस प्रकार सोचना मेरी भूल थी।

"मुझे इसका दण्ड मिला है और मुझे सेनाध्यक्ष पद से पृथक् कर दिया गया है। दो घड़ी भर बन्दी निवास में रहने पर मैं समझ गया था कि मैं भूल कर रहा था। सैनिक और नागरिक में नागरिक का पद उच्च है। अब स्वयं एक नागरिक होने से मैं यह बात भली-भाँति समझ सकता हूँ।

"और जब मैंने महाराज की आज्ञा का चुपचाप पालन किया है तो मुझे उसका पुरस्कार भी मिला है। मुझे कश्मीर के राजदूत पद पर नियुक्त करने का प्रस्ताव है।"

"आपने यह पद स्वीकार कर लिया है ?" महावीर ने पूछा।

"अभी नहीं। परन्तु यह दीपमाला कर मैं उसकी मौन स्वीकृति दे रहा हूँ।"

"पिताजी ! आप उसे स्वीकार मत कीजिये।" पुत्र ने कहा।

"क्यों ?" पुत्री ने पूछा।

महावीर इसका उत्तर देने वाला ही था कि उसकी माता लक्ष्मी ने कह दिया, "मैं समझती हूँ कि सेनाध्यक्ष की अपेक्षा राजदूत का पद अधिक उपयुक्त है।"

"और पाटलिपुत्र की अपेक्षा श्रीनगर अधिक सुन्दर और स्वास्थ्यप्रद स्थान है।" चन्द्रा ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा।

इस प्रकार रणवीर के परिवार में यह बात निश्चित हो गयी। तदनुसार अगले दिन रणवीरसिंह महाराज के सम्मुख उपस्थित हुआ और उनको अपनी स्वीकृति बता आया।

इस घटना का एक परिणाम यह हुआ कि अश्व के साथ गये सभी सैनिक वापस बुला लिये गये। राज्य के कुछ प्रतिहारी और चोबदार ही अश्व के साथ रह गये थे। कोषाध्यक्ष और गणक तो अश्व के साथ पहले से ही थे, अब उनके साथ पाँच ब्राह्मणों की एक मण्डली सैनिकों के स्थान पर चलने लगी।

इस परिवर्तन से पहले तो हवि संग्रह में न्यूनता आने लगी। परन्तु ज्योंही इस परिवर्तन में कार्यरत भावना का ज्ञान नागरिकों को हुआ तो वे स्वेच्छा से और परस्पर प्रतिस्पर्द्धा करते हुए अधिकाधिक हवि देने लगे।

शिवकुमार की यह योजना पूर्ण रूप से सफल सिद्ध हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय परिच्छेद

महाभारत युद्ध से पूर्व ही यज्ञ प्रथा अपने वास्तविक प्रयोजन से बहुत दूर हट गयी थी।

'यज्ञ' शब्द और 'यज्ञमय कार्य' का उल्लेख तो वेद में भी है। परन्तु वेद में इसका अभिप्राय लोक-कल्याण अथवा सर्वहिताय कार्य से था।

श्रुति ग्रन्थों और ब्राह्मण ग्रन्थों में इन लोक-कल्याण के कार्यों को वेदमन्त्रों से सम्बद्ध करने का यत्न किया गया। कदाचित् इसका प्रयोजन इस लोक-कल्याण के कार्यों में परमात्मा का सहाय प्राप्त करना था। यह भी माना जाता है कि सर्व-हिताय कार्यों में वेदमन्त्र का उच्चारण करना उन मन्त्रों को स्मरण रखने के लिए भी था।

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया लोक-कल्याण की भावना गौण होती गयी और उसके कार्य के साथ बोले जाने वाले वेदमन्त्र, जिनको कि स्मरण रखने की आवश्यकता के आधार पर यज्ञ के समय बोला जाता था, वे मुख्य हो गये। कार्य ही जब गौण हो गया तो उसको संक्षिप्त करने का भी आयोजन हुआ। तब कर्म केवल देवयज्ञ और उससे सम्बन्धित कर्म ही रह गये। अग्नि, समिधा, घृत और इसमें होम किये जाने वाले द्रव्य ही यज्ञ कर्म रह गये। इस देवयज्ञ को सम्पन्न करने के लिए इसमें आवश्यक द्रव्यों का एकत्रित करना और उनका झाड़-फूंक कर साफ करना अथवा कूट-पीसकर तैयार करना मुख्य कार्य हो गया।

इसका परिणाम यह हुआ कि मन्त्रों का महत्त्व बढ़ गया। क्योंकि यज्ञ की सामग्री को महिमामय बनाने के लिए इसको प्रस्तुत करने के प्रत्येक कार्य के साथ मन्त्रोच्चारण आवश्यक हो गया।

जब यज्ञ की समिधा लाने के लिए बैलगाड़ी जाने लगी तो मन्त्रोच्चारण आवश्यक हो गया, जब यज्ञादि की आह्वनीय सामग्री कूटने के लिए मूसल और ऊखल लाने का समय आया तो उस समय भी वेदमन्त्रों का उच्चारण आवश्यक हो गया। इन सामान्य से पदार्थों के यज्ञ में प्रयुक्त होते समय महत्त्व देने के लिए इनके साथ वेदमन्त्रों का उच्चारण आवश्यक समझा जाने लगा।

तब यज्ञों का नया रूप हो गया। जब कर्म पर मन्त्रों को वरीयता मिली तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक कर्म के मन्त्र का निश्चय हो गया। उसके साथ ही कर्म का क्रम और उस क्रम में मन्त्रोच्चारण का निर्धारण कर लिया गया। ऊखल को छूने का मन्त्र, मूसल को पकड़ने का मन्त्र, धान कूटने का मन्त्र, अग्नि प्रज्वलित करने का मन्त्र और आहुति देने का मन्त्र इन सबका पृथक्-पृथक् निर्धारण कर लिया गया।

इस प्रकार यज्ञ केवल कर्म की एक प्रक्रिया बनकर रह गये। कर्म का उद्देश्य गौण हो गया।

इस समय एक अन्य विचार उठ पड़ा। वह था बलि देने का। अर्थात् यज्ञ में दी जाने वाली आहुति देवताओं को प्राप्त होती है और इस पृथिवी पर ब्राह्मण ही देवताओं के प्रतिनिधि हैं। देवताओं को दी जाने वाली आहुति देवताओं को तृप्त करने वाली होनी चाहिए।

इस प्रकार यज्ञ का उद्देश्य हो गया देवताओं की तुष्टि और देवता हो गये यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण।

अवसर पाकर ब्राह्मणों ने खीर, पूरी एवं अन्यान्य स्वादिष्ट व्यंजनों का विधान कर दिया। कालान्तर में उन्हीं ब्राह्मण देवताओं के लिए मांस, मदिरा और विषय-वासना की तृप्ति ही यज्ञ का लक्ष्य हो गया।

ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत की रचना से पूर्व ही यह प्रक्रिया प्रचलित हो गयी थी। यही कारण है कि महाभारत के रचयिता व्यासजी को महाभारत में वर्णित यज्ञों में मांस-मदिरा आदि की हवि देने को वर्जित लिखना पड़ा।

इतना होने पर भी जब फिसलनी ढलवान पर यज्ञ की प्रथा प्रचलित हो गयी तो यह फिर फिसलती ही चली गयी। महाभारत काल के डेढ़ सहस्र वर्ष के भीतर-ही-भीतर समस्त भारत में वाममार्ग का प्रचलन हो गया।

वाम के अर्थ हैं सुन्दर, सुखद, लुभायमान इत्यादि। इस प्रकार वाममार्ग का अर्थ हुआ सुन्दर, सुखद, कल्याणमय मार्ग।

जब मांस-मदिरा और रति कर्म यज्ञ के रूप में किये जाने लगे तो फिर मानव प्रकृति में इसके विपरीत प्रतिक्रिया भी उत्पन्न हुई।

वाममार्ग ने अपने कर्मों को यज्ञ का अंग और वेदमन्त्रों से युक्त किया तो वह प्रतिक्रिया यज्ञ और वेदों के विपरीत हो गयी।

यज्ञ में सेवा-कार्य के लिए शूद्र नियत थे और उनके संचालन के लिए धन लिया जाता था वैश्य समाज से। इस कारण ये दोनों ही समुदाय यज्ञों से आतुर थे। जब प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई तो इन दो समुदायों में वह फलीभूत होने लगी।

इस समय क्षत्रियों ने साम्राज्य की प्रथा का प्रचलन किया तो उसका संचालन करने के लिए शुक्राचार्य, जो गुरु वृहस्पति के शिष्य थे उसके अगुआ हो गये। विष्णुगुप्त कौटिल्य भारत के मैक्याविली सिद्ध हुए।

देश के दुर्भाग्य से चन्द्रगुप्त मौर्य के पौत्र देवांनांप्रिय अशोकवर्द्धन अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्राज्य स्थापित करने के लिए महान् क्रूर कर्म में प्रवृत्त हुए। उसके क्रूर कर्मों की शृंखला परिवार के राज्याधिकारियों की हत्याओं से प्रारम्भ हुई और कलिंग-विजय के समय महान् नृशंसता तक जब पहुँची जब तो देश में त्राहि-त्राहि मच गयी। पूर्ण देश का बुद्धिशील वर्ग अशोक के विरुद्ध खड़ा हो गया। परन्तु कौटिल्य का शिष्य नीतिमान सिद्ध हुआ। बुद्धिशील वर्ग की चिल्ल-पों को प्रभावहीन करने के लिए ब्राह्मण और वेदों के विरुद्ध हुए बौद्ध धर्मानुयायियों के कन्धे पर हाथ रखकर राज्य-कार्य चलाने लगा।

बौद्ध समुदाय में अधिकांशतः वैश्य और शूद्र समुदाय के लोग ही सम्मिलित हुए थे। अतः उसके आधार पर केवल डेढ़ सौ वर्ष के लगभग बौद्धानुयायियों का राज्य रहा।

वैश्य समाज तथा शूद्र समाज राज्य करना जानता नहीं था। कुछ काल तक तो अशोक की नीति से उत्पन्न आवेग के बल पर कार्य चलता रहा परन्तु वह आवेग भी उन सब आवेगों की भाँति जिनके पीछे निरन्तर बल का समावेश नहीं रहता, समाप्त हो गया और अशोक का राज्य जो सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक विस्तृत हो गया था, उसके उत्तराधिकारियों के काल में सिकुड़कर पाटलिपुत्र के आस-पास एक सौ मील की परिधि तक में ही रह गया था।

तब विदेशी आक्रमण आरम्भ हो गया और सीरियन बढ़ते-बढ़ते अयोध्या तक आ पहुँचे।

उसका परिणाम यह हुआ कि बौद्ध राज्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया भड़कने लगी। इस प्रतिक्रिया में अग्रणी थे शुंग परिवार के ब्राह्मण। वह प्रतिक्रिया सफल भी हो गयी। विदेशियों का मुख मोड़ दिया गया। किन्तु राज्य-कार्य ब्राह्मणों का कार्य नहीं था। ब्राह्मण तो मन्त्री पद के लिए उपयुक्त हैं। उस समय ब्राह्मणों को विदेशियों को देश से खदेड़कर राज्य का भार क्षत्रियों को सौंप देना चाहिये था।

विद्वान् पथ-प्रदर्शक हो सकते हैं। किन्तु वे स्वयं जन नेता नहीं बन सकते। उसका परिणाम यह हुआ कि गुप्तवंशीय क्षत्रिय जो कहीं दक्षिण की ओर जा छिपे थे पाटलिपुत्र में आकर राज्य पर अधिकार कर बैठे।

समुद्रगुप्त का काल गुप्तवंश की प्रभुता का काल था। इसके काल तक राज्य और समाज का कार्य, ब्राह्मणों की सम्मति से राजा लोग ही चलाते रहे थे।

जब तक ब्राह्मणों के मन में स्वार्थ नहीं आया तब तक राज्य उत्तरोत्तर उन्नति करता रहा यद्यपि ब्राह्मण भी तो स्वेच्छा से पथ-निर्माण करने वाले नहीं हो सकते थे। उनके पथ-प्रदर्शन में भी ईश्वरीय नियमों का तो उल्लंघन नहीं हो सकता था, वे ईश्वरीय नियम जिनका कि वेदों में वर्णन है।

बौद्ध शासनकाल में जातीय उत्थान तो हुआ, परन्तु उस काल में वेदों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पठन-पाठन बहुत कम रह गया था। और बौद्धकाल के उपरान्त वेदों का स्थान महाभारत आदि कथा ग्रन्थों ने ले लिया था। वेद समझने और समझाने में विद्वत्ता और परिश्रम की आवश्यकता होती थी। ब्राह्मणों में वह तितीक्षा नहीं रही थी जो वेद समझने के लिए आवश्यक थी। इस कारण कथा साहित्य की महिमा बढ़ गयी।

कथा साहित्य सदा मानव मन को प्रेरणा देने वाला रहा है। परन्तु कथा साहित्य के भाव को समझने-समझाने वालों के लिए वेद के ज्ञान की आवश्यकता थी। वह नहीं रही थी।

गुप्त सम्राटों के काल में कथा साहित्य का निर्माण प्रचुर मात्रा में हो गया। उसका परिणाम यह हुआ कि वैदिक परम्पराएँ सारहीन ढाँचा मात्र रह गयीं।

ऐसी मनःस्थिति और परिस्थिति के समय शिवकुमार को पाटलिपुत्र से निमन्त्रण आया था। पाटलिपुत्र पहुँचने पर उसे विदित हुआ कि महामात्य पण्डित हरिषेण तो अश्वमेध यज्ञ के पक्ष में नहीं हैं तब पण्डित शिवकुमार ने यज्ञ का तो समर्थन किया परन्तु इसके वास्तविक उद्देश्य को रखते हुए यज्ञ के विधि-विधान में उसने सुधार करने का यत्न किया। विधि-विधान में सुधार की दिशा यह थी— देश की बदलती हुई राजनीतिक परिस्थिति के अनुसार यज्ञ की विधि को बदलने का यत्न किया।

शिवकुमार ने ब्राह्मण वर्ग को समझाया था कि प्राचीन काल में जब अश्वमेध यज्ञ किया जाता था तब भारत देश में सहस्रों ही छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्य थे, और इस यज्ञ द्वारा उन राज्यों में वैदिक संस्कृति को जीवित रखना लक्ष्य होता था।

संस्कृति को जीवित रखने का यत्न देश के ब्राह्मणों द्वारा कराया जाता था। और देश भर के ब्राह्मणों का एक मत और एक व्यवहार कर राज्यों के लिए राज्यों से धन लेकर ब्राह्मणों को दिया जाता था। इससे ब्राह्मण स्थानीय राज्यों से स्वतन्त्र रहकर अपने पठन-पाठन में व्यस्त रहते थे।

साथ ही अश्वमेधादि यज्ञ के अवसर पर देश भर के विद्वान् लोग एक स्थान पर एकत्रित हो समाज की गतिविधियों में संशोधन आदि का विचार किया करते थे।

परन्तु एक विस्तृत साम्राज्य के स्थापित होने पर दो में से एक बात हो सकती थी या तो साम्राज्य भंग कर देश पुनः छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त हो सकता था अथवा यज्ञों के विधि-विधान में उपयुक्त परिवर्तन किया जाना चाहिए था।

शिवकुमार ने दूसरे उपाय को ठीक समझा और यज्ञ की घोषणा के साथ-साथ यज्ञ के कार्यक्रम का जब वृतान्त तैयार हुआ तो पाटलिपुत्र के ब्राह्मणों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ ऐसा आभास हुआ कि जिस आर्थिक लाभ के लिए वे यज्ञ करवाने के लिए यत्नशील थे, वह इससे होना सम्भव नहीं है। अतः शिवकुमार से परोक्ष में महाराज को डरा-धमकाकर हवि एकत्रित करने और उसको वितरित करने की जो शिव-कुमार की योजना थी उसमें परिवर्तन करवाने में वे सफल हो गये।

इसका प्रथम परिणाम यह हुआ कि हवि एकत्रित करना, प्राचीन प्रथानुसार राजा के अधीन कर दिया गया।

समुद्रगुप्त का साम्राज्य बड़ा विस्तृत था। इसलिए विभिन्न राज्यों से हवि एकत्रित न होकर सभी प्रजाजनों से हवि एकत्रित की जानी थी, राज्य-राज्य के सम्बन्ध में तो हवि एकत्रित होने पर प्रजा बीच में नहीं होती थी। किन्तु अब विभिन्न राज्य तो रहे नहीं थे इस कारण प्रजा से ही सम्राट् को हवि एकत्रित करनी पड़ी।

उसका परिणाम भयंकर हुआ। राज्य-कर्मचारी जब हवि एकत्रित करने लगे तो वे समझे कि कर लिया जा रहा है। इसलिए उनका व्यवहार विनम्र नहीं रहा। प्रजा ने भी यही समझा कि उनसे कर लिया जा रहा है। अतः कर देने से बचने के लिए प्रजा जो उपाय किया करती है हवि देने के लिए भी उन उपायों पर कार्य होने लगा। उसका परिणाम यह हुआ कि राज्य-कर्मचारी बल प्रयोग करने पर उतर आए।

जब राज्य-कर्मचारियों द्वारा किया जाने वाला बल प्रयोग और प्रजा द्वारा हवि न दिये जाने का समाचार राजधानी में पहुँचा तो शिवकुमार ने पुनः इस योजना में परिवर्तन करने का यत्न किया। उसके अनुसार हवि एकत्रित करने के लिए ब्राह्मणों को नियुक्त कर दिया गया।

सम्राट् समुद्रगुप्त यह अश्वमेध यज्ञ इसलिए कर रहा था कि उसके आधार पर वह वैदिक धर्म का संरक्षक और उसका पुनरुद्धार करने वाला विख्यात हो जाय। किन्तु देश भर के ब्राह्मणों को प्रसन्न किये बिना यह कार्य सम्भव नहीं था। इस कारण लाखों ब्राह्मणों और निर्धनों के एकत्रित हो जाने पर राज्य का अपना हित इस बात में हो गया कि सब एकत्रित जनों की उत्तम सेवा सुश्रूषा की जाय। अतएव उनके सत्कार का भी भरपूर प्रबन्ध किया गया।

सम्राट् समुद्रगुप्त की एक अन्य अभिलाषा भी थी। वह यह की महाराज अपनी प्रथम रानी जोकि पटरानी समझी जाती थी, को यज्ञ में अपने साथ बैठाना चाहता था।

महारानी चन्द्रावती को पाटलिपुत्र छोड़े लगभग बीस वर्ष हो गये थे। तब से लेकर आज तक अनेक बार महाराज आग्रह कर चुके थे कि वह पाटलिपुत्र में आकर रहे। किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। एक बार जब महाराज शकों के विरुद्ध सौराष्ट्र में युद्ध कर रहे थे उस समय चन्द्रावती के कुमार रामगुप्त को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निमन्त्रण गया था कि वह भी अपने छोटे भाई चन्द्रगुप्त के साथ युद्ध में सम्मिलित हो यश का भागी बने। तब महारानी चन्द्रावती ने उत्तर भिजवा दिया कि राज्य की सेना किस काम आयेगी।

इस घटना को भी अब पाँच वर्ष बीत गये थे।

अब जब यज्ञ का विचार उत्पन्न हुआ तो उसके साथ ही यह प्रश्न भी उठ खड़ा हुआ कि यज्ञ में महाराज के साथ पटरानी के स्थान पर कौन-सी रानी बैठे।

महामात्य हरिषेण रानी चन्द्रावती का विरोध कर रहे थे। परन्तु यही प्रश्न जब यज्ञ उप-समिति में उपस्थित हुआ तो पण्डित शिवकुमार ने यज्ञ में बड़ी रानी के ही बैठने के औचित्य को सिद्ध किया। उसकी युक्तियों के सम्मुख हरिषेण को चुप रहना पड़ गया।

महाराज को इससे प्रसन्नता हुई और उन्होंने महारानी को पत्र लिख दिया कि यहाँ के विद्वान् पुरोहितजी का कहना है कि शास्त्र में एक ही विवाह की स्वीकृति है। राजा और धनाढ्यों को दूसरा अथवा तीसरा विवाह तो रियायत से करने का होता है। धर्म-व्यवस्था उसके विरुद्ध है।

उन्होंने यह भी लिखा कि पण्डितों के अनुसार महाराज की पहली रानी ही वास्तव में विवाहिता मानी जायेगी और उसे ही उनके साथ यज्ञ में बैठने का अधिकार होगा, छोटी रानी को नहीं। इस कारण उसको चाहिए कि वह यज्ञ से पूर्व ही पाटलिपुत्र पहुँच जाय।

उन्होंने यह भी लिखा कि यदि धर्म-व्यवस्था के अनुसार वही उसकी रानी है तो उसी व्यवस्था के अनुसार उसका पुत्र ही राजकुमार होने से युवराज बनने का अधिकारी है।

ऐसा महाराज ने स्वयं ही समझ लिया था।

पत्र पाकर महारानी चन्द्रावती यह समझ गयी कि रामगुप्त को युवराज घोषित करवाने का इस यज्ञ से अन्य उचित अवसर आना असम्भव है, जैसाकि महाराज ने लिखा था कि वर्तमान राजपुरोहित के रहते यह कार्य सम्पन्न हो गया तो विशाल गुप्त साम्राज्य का उत्तराधिकारी राम बन ही जायेगा।

पत्र मिलने पर उसपर विचार करने के उपरान्त उसने राम को बुलवाया। राम प्रासाद के दूसरे कक्ष में रहता था।

राम को जिस समय माता का बुलावा आया वह अल्पाहार का समय था। किन्तु राम नहीं आया।

महारानी ने अपने पुत्र को बुलाने के लिए जो सेविका भेजी थी उसने आकर कहा, "महारानीजी ! राजकुमार के मित्र शेखर राजकुमार के शयनागार के बाहर बैठे हैं और उन्होंने कहा है कि राजकुमार अभी सो रहे हैं जब वे जगेंगे तब उनको महारानीजी का सन्देश दे दिया जायेगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी समय महारानी ने सुना राजप्रासाद की छत पर लगे घड़ियाल ने चार घड़ी दिन बीतने की सूचना दी है।

महारानी चन्द्रावती को यह सुखकर नहीं लगा कि इतना दिन बीत जाने पर भी उनका सुपुत्र सोया हुआ ही है। वे उठीं और राजकुमार के कक्ष की ओर चल पड़ीं। महारानी अपने पुत्र के कक्ष की ओर बहुत कम ही जाया करती थीं। जाते-जाते वे स्मरण कर रही थीं कि कदाचित् आज से पाँच वर्ष पूर्व वह राजकुमार के कक्ष में आयी थीं और उस समय भी कोई विशेष प्रयोजन था इसलिए ही उनको आना पड़ा था।

आज भी विशेष प्रयोजनवश ही वे उधर जा रही थीं। महाराज का पत्र अपने पुत्र को दिखाकर वे उसको यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित करना चाहती थीं।

राजकुमार के शयनकक्ष के बाहर वह जब पहुँचीं तो उन्होंने देखा कि शेखर उसके शयनकक्ष के बाहर बैठा है।

शेखर त्रिचुरापल्ली निवासी ब्राह्मण कुमार था। दो-तीन वर्ष पूर्व वह उज्जयिनी आया था। वह राजकुमार का चौपड़ का साथी था।

शेखर ने जब महारानीजी को उधर आते देखा तो वह घबराया। वह उठकर द्वार पर गया और उसे जोर-जोर से खटखटाने लगा।

"यह क्या कर रहे हो?" महारानी ने उससे पूछा।

"राजकुमार को सूचना दे रहा हूँ।"

"तुम ठहरो। मैं स्वयं उसको जगा लूंगी।"

तदपि शेखर द्वार से एक ओर को हट नहीं रहा था। महारानी ने जोर से कहा "हटो उधर से।"

"परन्तु…!" शेखर के मुख से पूरी बात निकल नहीं रही थी।

महारानी ने उसे वहाँ से धकेला तो वह दूर जा पड़ा। महारानी ने द्वार को भी धकेला और भीतर चली गईं। महारानी को भीतर जाती देख शेखर वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

जो सेविका महारानी ने पहले अपना सन्देश सुनाने के लिए भेजी थी वह इस समय भी उनके साथ थी। उसने शेखर को भागते हुए देख लिया। उसे भागते देख वह हँस पड़ी। किन्तु सेविका स्वयं भीतर नहीं गई। कदाचित् वह भी जानती थी कि भीतर जाकर महारानी को क्या देखना पड़ सकता है।

महारानी ने देखा कि राम नग्नावस्था में पलंग से नीचे मद्य के उन्माद से अचेत पड़ा है। उसके साथ चिपटी उसी अवस्था में एक युवती भी पड़ी हुई है।

महारानी ने उस युवती को ठोकर मारते हुए कहा, "ऐ! उठो।"

युवती ने करवट बदलते हुए कहा, "सो भी जाओ, अभी दिन नहीं निकला।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महारानी ने बाहर खड़ी अपनी सेविका को आवाज दी, "रामी !"

"जी महारानीजी ।" उसने बाहर से ही कहा ।

"जाओ, जमादार से उसकी छड़ी ले आओ । उसको भीतर नहीं आने देना ।"

रामी गयी और छड़ी लेकर तुरन्त ही लौट आयी । उसने भीतर घुसते हुए कक्ष का द्वार बन्द कर लिया । वह देख आयी थी महारानी को वहाँ आती देख सेवकों में सरसराहट हुई और सब उस ओर आने लगे हैं ।

चन्द्रावती ने रामी से छड़ी ली और उन नग्न युवती को पीटना आरम्भ कर दिया। पहली तीन-चार चोटों में तो वह केवल उठी और विस्मय करती हुई महारानी को देखती रही । चोट खाने से जब उसको होश आया तो उसने महारानी से छड़ी छीनने का यत्न किया । रामी सतर्क थी । उसने उस युवती को अपनी बाँहों में जकड़ लिया । महारानी ने उसपर प्रहार करना जारी रखा ।

स्वयं को विवश पा वह युवती चिल्लाई, "ओह ! यह क्या कर रही हैं आप ? मैं तो मर जाऊँगी, इसमें मेरा क्या दोष ?"

महारानी समझ गयीं कि उसका नशा उतर गया है । उसने रामी से कहा कि वह उसे छोड़ दे ।

रामी की पकड़ से मुक्त होते ही उस युवती ने अपने वस्त्र देखे । वे पलंग पर पड़े थे । उसने लपककर अपने कपड़े उठाये और उन्हें पहनती हुई बोली, "आप हैं कौन ?"

"दुराचारिणी ! भाग जा यहाँ से ।"

राजकुमार अभी भी अचेत पड़ा था । इस समय तक महारानी ने पलंग की चादर निकालकर उसके नग्न शरीर को ढक दिया था ।

फटकार सुनकर वह युवती जाने लगी तो महारानी ने पूछा, "ठहरो, कौन हो तुम ? क्या नाम है ?"

"यह सब बता देगा ।" उसने अचेत पड़े राजकुमार की ओर संकेत किया और कक्ष से बाहर निकल गयी ।

महारानी ने सेविका से कहा, "इसके सेवकों को बुलाकर उनसे कहो कि वे इसको स्नानागार में ले जायें और नहला-धुलाकर मेरे सम्मुख उपस्थित करें ।"

इतना कहकर महारानी कक्ष से बाहर निकल आयीं । बाहर निकलकर उन्होंने देखा कि वहाँ लगभग सभी सेवक एकत्रित हैं और उनमें मध्य खड़ी वही युवती शेखर के विषय में पूछ रही है । अब तक उस युवती को विदित हो गया था कि जिसने उसको पीटा है वह कौन है ।

जब महारानी बाहर निकल कर आयीं तो वह युवती उनकी ओर बढ़ी और बोली, "महारानीजी ! आपने मुझे पीटकर भारी अन्याय किया है ।"

"कौन हो तुम ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आप पृथक् में चलिये, मैं बता दूंगी। किन्तु इन सबके सम्मुख नहीं।"

महारानी ने एक क्षण विचार किया और फिर अपनी सेविका से कहा, "इसे मेरे पास ले आओ।" यह कहकर वह चली गयीं।

महारानीजी वहाँ से चलकर अपने भोजनालय में चली गयी थीं। सेविका उस युवती को लेकर वहीं पहुँच गयी।

महारानी ने उसे अपने सम्मुख बैठाया और फिर पूछने लगीं, "तुम्हारा तो मुख सूख रहा है। बोलो क्या पियोगी ?"

"महारानीजी ! आप शीतल जल पिलवा दीजिये।"

महारानी ने अपने लिए दूध और मिष्ठान्न पहले ही मँगवा रखा था। वह युवती जब जल पी चुकी तो महारानी ने उससे पूछा, "अल्पाहार करोगी ?"

"जी नहीं। अभी मुझे शौचादि जाना है।"

"क्या नाम है तुम्हारा ?"

"प्रचलित नाम तो राधा है। माँ का रखा हुआ नाम था सजनी। मैं उज्जयिनी की विख्यात वेश्या हूँ। राजकुमार के पास तो कभी-कभी ही बुलाया जाता है मुझे। एक रात यहाँ रहने का मुझे एक सौ स्वर्ण मिलता है। वह आज अभी तक नहीं मिल पाया है।"

"किसके साथ यहाँ आयी थी ?"

"राजकुमार का मित्र शेखर ही मुझे यहाँ लेकर आता है।"

"यदि फिर कभी तुम्हें यहाँ देखा गया तो मैं प्रासाद की छत पर ही तुम्हें फाँसी पर लटकवा दूंगी।"

"ठीक है, फिर कभी नहीं आऊँगी। किन्तु मुझे आज का प्राप्य सौ स्वर्ण और जो नाहक मेरी पिटाई हुई है उसका दस स्वर्ण अतिरिक्त का प्रबन्ध करवा दीजिये।"

"यह सब तुम शेखर मे माँगो।"

"तो आपने यहाँ मुझे किसलिए बुलाया है ? मैं तो समझी थी कि आप अपने पुत्र का ऋण उतारने लायी हैं।"

"अब तुम जा सकती हो।" महारानी ने उत्तेजित होकर कहा।

राधा उठी और बाहर चली गयी।

राजकुमार रामगुप्त तो मध्याह्न के भोजन के समय ही माँ के सम्मुख आ पाया था। उसे देख महारानी ने कहा, "राम ! तुम बहुत निर्लज्ज हो गये हो।"

"हाँ, आपने पहले सूचना भेज दी होती तो मैं उस अवस्था में आपको नहीं मिलता ?"

"अर्थात् चोर को पकड़ने से पूर्व उसको बता दिया जाय कि वह सावधान हो जाये ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं तो किसी प्रकार की चोरी नहीं कर रहा था।"

"तो क्या वह तुम्हारी पत्नी थी?"

"राजा-महाराजाओं की तो इस प्रकार की कितनी ही दासियाँ हुआ करती हैं।"

"मूर्ख! तू कहाँ का राजा-महाराजा है?"

"माँ! मैं मगध का राजकुमार हूँ, क्या तुम इसे अस्वीकार करती हो?"

"मेरे स्वीकार करने से क्या होता है? मैं स्वयं ही जब कुछ नहीं हूँ तो तुम को क्या मानूँ और क्या न मानूँ?"

"जहाँ तक मेरी सूचना है, जो कि सच है, वह पण्डित जिसने सम्राट् समुद्र-गुप्त के साथ तुम्हारा विवाह सम्पन्न कराया था, वह अभी भी जीवित है।"

"होगा। किन्तु तुम्हारे युवराज बनने से पहले ही वह मर जायेगा।"

"परन्तु माँ! महाराज की पटरानी का पुत्र यदि युवराज नहीं कहलायेगा तो फिर कौन कहलायेगा?"

"राम! तुम तो निपट मूर्ख हो। यदि कुछ पढ़े होते तो तुम्हें विदित होता कि पटरानी का पुत्र होने से ही कोई युवराज नहीं हो जाता। कभी इतिहास पढ़ा और सुना होता तो तुम जानते।

"स्मरण है, आज से पाँच वर्ष पूर्व जब महाराज ने तुम्हें शकों के विरुद्ध लड़ने के लिए युद्धभूमि में बुलाया था तो तुमने क्या कहा था?"

"क्या कहा था माँ? मुझे तो कुछ स्मरण नहीं।"

"तुमने कहा था कि उनको लिख दो 'जब सेनापति और अन्य सारे नायक मर जायेंगे तो मैं आ जाऊँगा।' मैंने यही लिखकर भेज दिया था।

"वह एक अवसर था जब तुमको युवराज माना जा सकता था। यदि युद्ध में न भी जाना चाहते तो एक अन्य अवसर इस समय आया हुआ है, इसमें तो मारने-मरने की भी बात नहीं है।"

"मैं सुन चुका हूँ। महाराज अश्वमेध यज्ञ करा रहे हैं। यज्ञ के अन्त में अश्व मारा जायेगा, उसका मांस पकाया जायेगा, वह मांस राजपरिवार खायेगा।" रामगुप्त बोला।

"तुमको यह सब किसने बताया है?" राजमाता को आश्चर्य हो रहा था।

"उस दिन शेखर कह रहा था।"

"वह तो महामूर्ख है और धूर्त भी। उसको अपनी सेवा से निकाल दो। उसने मिथ्या किस्से-कहानियाँ सुना-सुनाकर तुम्हारा मस्तिष्क विकृत कर दिया है।

"यज्ञ के बाद उस अश्व को मुक्त कर जंगल में छोड़ दिया जायेगा और वह स्वेच्छा से विचरण करेगा।" महारानी ने उसको समझाया।

"माँ! वह अश्व पके अथवा छोड़ा जाय, मैं उसका मांस खाऊँगा नहीं। वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे ग्रनुकूल नहीं है।"

"तुम्हें युवराज पद भी ग्रनुकूल है कि नहीं ?"

"युवराज तो मैं हूँ ही।"

"किन्तु उसे ब्राह्मणों द्वारा स्वीकृति दिलाने के लिए यज्ञ में तुम्हें महाराज के पीछे बैठना होगा। ग्रौर यह तभी सम्भव है जब मैं महाराज के वामपक्ष में बैठूं।

"ग्रौर ये दोनों बातें यहाँ उज्जयिनी में बैठे-बैठे सम्भव नहीं हैं। इसके लिए प्रयागराज होते हुए पाटलिपुत्र की यात्रा करना सर्वथा ग्रनिवार्य है।"

"ठीक है हम चलेंगे। किन्तु उसमें तो ग्रभी छः मास का समय है ?"

"मैंने कहा न यहाँ से प्रयागराज के मार्ग से पाटलिपुत्र पहुँचना है। हमें तीर्थ-स्थानों की यात्रा करते हुए वहाँ खूब दान-दक्षिणा, जिससे कि ब्राह्मण प्रसन्न हो जायें, करनी चाहिए। दान-दक्षिणा से प्रसन्न ब्राह्मण तुम्हारे पक्ष में हो जायेंगे। ब्राह्मणों की प्रसन्नता प्राप्त किये बिना कोई ग्राज इस देश में उन्नति नहीं कर सकता।"

"परन्तु माँ! इन खीर-पूरी खाने वालों को प्रसन्न करने में तो बहुत व्यय हो जायेगा ?"

"तुम्हारे मांस, मदिरा ग्रौर वेश्याग्रों से तो कम ही होगा।"

"फिर भी कितना होगा ?"

"तुम्हें इसकी चिन्ता करने की ग्रावश्यकता नहीं। मैं इसका प्रबन्ध कर दूंगी।"

"कब चलना होगा ?"

"ग्रागामी त्रयोदशी को हम प्रस्थान करेंगे। ग्रब तुम शेखर तथा उस जैसे सभी शोहदों को विदा करो ग्रौर जबतक युवराज पद पर तुम्हारा ग्रभिषेक नहीं हो जाता तबतक इन गन्दी नालियों में ग्रपना हाथ बिल्कुल नहीं डालना।"

: २ :

निर्धारित कार्यक्रम के ग्रनुसार यज्ञ के ग्रश्व को प्रयागराज में महर्षि भारद्वाज के ग्राश्रम में वापस जाना था। उस निर्धारित कार्यक्रम के ग्रनुसार उसी दिन महाराज समुद्रगुप्त के भी ग्रपने परिवार के साथ प्रयागराज पहुँचने की योजना थी। उस समय परिवार में महाराज, उनकी दोनों महारानियाँ ग्रौर उन दोनों के दो पुत्र, महाराज के छोटे भाई ग्रौर उनका समस्त परिवार इतने व्यक्तियों के पहुँचने की योजना बनायी गयी थी।

राज-परिवार की सेवा-सुश्रूषा के लिए एक सौ सेवक तथा उनकी सुरक्षा के लिए एक सहस्र सैनिक भी उनके साथ जाने वाले थे। सैनिकों के भी सेवकादि साथ होंगे। इस प्रकार पाँच सहस्त्र व्यक्तियों का दल प्रयागराज पहुँचने वाला था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तीर्थयात्रा दल का प्रबन्ध महामात्य हरिषेण पर छोड़ा गया।

शिवकुमार को उससे पूर्व ही यज्ञ के प्रबन्ध के लिए प्रयागराज पहुँचना था। शिवकुमार का विचार था कि वह अपने समस्त परिवार के साथ वहाँ जायेगा। उसके परिवार में वृहस्पति था जो अब सात वर्ष का हो गया था। सूर्य चार वर्ष का हो गया था और इस अवधि में उनकी एक बहिन भी उत्पन्न हो गयी थी, उसका नाम था कृष्णा। इस समय वह भी एक वर्ष की हो चुकी थी। उसकी पत्नी और वह स्वयं, इस प्रकार पाँच सदस्यों का उसका परिवार था जो वहाँ अस्थायी निवास बनाकर रहने वाला था।

शिवकुमार ने यज्ञ का प्रबन्धक बनना एक बार अस्वीकार कर दिया था। क्योंकि वह देख रहा था कि जो कुछ वह इस यज्ञ से सिद्ध करना चाहता था वह तो होने वाला था नहीं। उसकी दृष्टि में यह अब यज्ञ न रहकर उसके स्थान पर एक बहुत बड़ा नाटक-सा बन गया था। परन्तु महाराज ने इसके लिए उसको बहुत प्रेरणा की थी। अतः उसे स्वीकार करना पड़ा।

शिवकुमार जिस दिन प्रयागराज के लिए विदा होने वाला था उससे पूर्व महामात्य हरिषेण उससे मिलने के लिए आये। उसके साथ उनकी पत्नी गंगादेवी और पुत्रवधू रोहिणी भी थी। गंगा और रोहिणी तो चन्द्रमुखी के पास जाकर वृहस्पति ने बात करने लगीं। वृहस्पति ने व्याकरण पढ़ लिया था और अब वह साहित्य पढ़ रहा था।

गंगा ने पूछा, "वृहस्पति! आजकल क्या पढ़ते हो?"

"पिताजी की इच्छा है कि व्याकरण पढ़ने के उपरान्त अब मैं पहले सामान्य रूप में महाभारत का पाठ कर लूं, अतः आजकल वही कर रहा हूँ।"

"उसके बाद क्या करोगे?"

"जो पिताजी करवाना चाहेंगे। वे जानते हैं कि बहुत कुछ तो मैं पहले से ही जानता हूँ। तदपि उनका कहना है कि जानना तभी सार्थक है जब उसका घटना-क्रम भी जाना जाय। महाभारत आदि पुराणों में घटनाक्रम ठीक नहीं है। पिताजी के कथनानुसार यह इसलिए कि पुराणों के वर्णन की शैली ही कुछ इस प्रकार की है। उसमें दोष है।

"अधिकांश पुराण और महाभारत भी कथा के रूप में लिखे गये हैं। जिस प्रकार कथा के अवसर पर श्रोता जो पूछते हैं कथावाचक उनका उस प्रकार समाधान कर देते हैं इस प्रकार ये ग्रन्थ लिखे गये हैं। उसका परिणाम यह है कि इनमें इतिहास क्रम नहीं है।

"इस कारण पिताजी का कहना है कि पहले सब घटनाओं को मैं सामान्य रूप में पढ़ जाऊँ तब बाद में वे मुझे उसका ऐतिहासिक क्रम बतायेंगे।"

रोहिणी बोली, "वृहस्पति! तुम्हें तो बहुत कुछ तो वैसे ही स्मरण होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए ?"

"नहीं चाची जी ! मुझे स्मरण कुछ भी नहीं है। बहुत कुछ तो मुझे विदित भी नहीं है। किसी एक जन्म में कोई समस्त पृथिवी की बात किस प्रकार जान सकता है ? मुझे बहुत कुछ इतिहास से जानना है।"

गंगा बृहस्पति की युक्तियों को सुन रही थी। वह समझ रही थी कि बड़ा होने पर बृहस्पति वास्तव में गुरु बृहस्पति के समान विद्वान् बनेगा। वह सोचती थी कि कदाचित् यह द्वैपायन व्यास से भी उच्च स्तर का विद्वान् बनेगा।

सहसा बृहस्पति बोल पड़ा, "मुझे धुँधला-सा ज्ञान है कि गंगा के तट पर महर्षि व्यास अपने आश्रम में विश्राम कर रहे हैं।

"कल मैं महाभारत में व्यासजी के विषय में पढ़ रहा था। तब मुझे कुछ ऐसा लगने लगा कि उस समय की घटना मेरी स्मृति पर कुछ इस प्रकार उभर रही है जिस प्रकार प्रातःकाल के कोहरे में सामने कुछ अस्पष्ट-सा दिखायी देता है।"

गंगा ने पूछा, "बृहस्पति ! तुम प्राणायाम का अभ्यास करते हो अथवा नहीं ?"

"जी हाँ, करता हूँ।"

"सुना है तुम लोग यज्ञ देखने के लिए जा रहे हो ?"

"जी हाँ। पिताजी कह रहे थे। परन्तु मैं समझता हूँ कि वहाँ जाकर समय का अपव्यय ही होगा। परन्तु पिताजी कहते हैं कि संसार में व्यर्थ कुछ भी नहीं है। जगत् के सब पदार्थ परमात्मा के बनाये हुए हैं और परमात्मा व्यर्थ किसी वस्तु का निर्माण नहीं करता। अल्पज्ञ होने के कारण हम ही अनेक वस्तुओं का प्रयोग नहीं जानते। यदि यत्न किया जाय तो वे सब पदार्थ उपयोगी सिद्ध होंगे।"

"ठीक है, जब तुम यज्ञ से लौटोगे तो फिर मैं तुमसे पूछूँगी कि तुमने क्या देखा और क्या समझा है।"

"माताजी ! आज आप बहिन कालिन्दी को नहीं लायीं।"

"क्यों उससे कोई काम था ?"

"काम नहीं, केवल मिलना था।"

"वह अपने विद्यालय में है, अब तो वह अगले गुरुवार को ही घर आयेगी।"

"तबतक तो हम यहाँ से प्रस्थान कर जायेंगे।"

"यदि महामात्यजी ने हमें भी यज्ञ पर ले जाने का विचार कर लिया तो फिर हम भी प्रयागराज आयेंगे, तब फिर वहाँ तुमसे भेंट हो जायेगी। कालिन्दी भी उस समय हमारे साथ ही होगी।"

"तब ठीक है।"

उधर बाहर बैठक में बैठे शिवकुमार और हरिषेण परस्पर बात कर रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिषेण ने कहा, "मैं महाराज से अपने सेवामुक्त होने की स्वीकृति प्राप्त कर चुका हूँ।"

"सत्य !"

"हाँ, इसीलिए यज्ञ समाप्त होते ही मैं वहाँ से अपने पैतृक नगर उज्जयिनी को चला जाऊँगा।"

"ऐसा क्यों ?"

"क्योंकि मेरी एक अत्यावश्यक सम्मति की अवहेलना की जा रही है।"

"क्या ?"

"महाराज की बड़ी रानी चन्द्रावती यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए आ रही हैं। याज्ञवल्क्य आश्रम के मुख्याचार्य सान्त्वनाकुमार कल पाटलिपुत्र पहुँचे हैं और उनकी सम्मति है कि यज्ञ के अवसर पर महारानी चन्द्रावती को पटरानी घोषित करने के साथ-साथ राजकुमार रामगुप्त को युवराज घोषित कर दिया जाना चाहिए।

"महाराज इस सम्मति पर प्रसन्न हैं। यहाँ तक कि इस घोषणा के अवसर पर क्या-क्या करणीय है वे उसके प्रबन्ध के आदेश भी दे चुके हैं।"

"तदपि मैं समझता था इसका भी मुख्य प्रबन्धकर्ता तो राज-परिवार का पुरोहित ही होना चाहिए था किन्तु मुझे तो इसका अभी तक कोई ज्ञान नहीं है।"

"उसका कारण यह है कि यज्ञ के दिनों में आप पुरोहित नहीं रहे हैं। अब आपका स्थान आचार्य सान्त्वनाकुमार ने ले लिया है।"

"तो मुझे किसलिए यज्ञ में जाने को कहा जा रहा है ?"

"आचार्य सान्त्वनाकुमार के अधीन कार्य करने के लिए। यज्ञ के दिनों में मुख्य राजपुरोहित वे ही माने जायेंगे। आप उनके अधीनस्थ पुरोहित होंगे। यह इस कारण कि न केवल सान्त्वनाकुमार आपसे आयु में बड़े हैं अपितु इसलिए भी कि आप अनुभव और विद्वत्ता में उनसे कम माने जाते हैं।"

"अभी तक मुझे इस विषय में किसी प्रकार की सूचना नहीं मिली है।"

"मिल जायेगी। आप प्रयागराज के लिए कब प्रस्थान कर रहे हैं ?"

"कल पूर्णिमा का यज्ञ कराने महाराज के प्रासाद में जाऊँगा। उस समय ही मैं महाराज से जानने का यत्न करूँगा कि मुझे वहाँ कब तक चला जाना चाहिए।"

"मेरे साथ मेरा परिवार भी प्रयागराज जायेगा। परन्तु यज्ञ समाप्त होने से एक दिन पूर्व ही मैं अपने परिवार को उज्जयिनी के लिए रवाना कर दूंगा। यहाँ पर जो कुछ मेरा है मैं यहाँ से सीधे उज्जयिनी भिजवा रहा हूँ। प्रयागराज से फिर मेरा विचार यहाँ लौटकर आने का है ही नहीं।"

"अपना यह कार्यक्रम आपने महाराज को बता दिया है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ, परन्तु इतना है कि मैं अब पाटलिपुत्र लौटकर आना नहीं चाहता। इतना महाराज ने स्वीकार कर लिया है। शेष तो मैंने अभी किसी को भी नहीं बताया है।"

"आपके यहाँ से चले जाने पर मुझे जहाँ एक ओर प्रसन्नता होगी वहाँ दुःख भी उतना ही होगा। प्रसन्नता तो इस कारण कि अब आप किसी राजा की सेवा में नहीं रहेंगे और तब आप किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण की भाँति पठन-पाठन और ब्राह्मणोचित कार्य करते रहेंगे। दुःख इस बात का होगा कि मगध राज्य को अब आप सदृश सुयोग्य व्यक्ति का परामर्श उपलब्ध नहीं होगा।

"पण्डितजी! आपके व्यवहार को देखकर तो मेरा भी मन अब यहाँ से उपराम होने लगा है।"

"मैं तो यह समझने लगा हूँ कि मेरे जाने के बाद महाराज आपको मगध का महामात्य नियुक्त करेंगे।"

"यह आपने किस प्रकार जाना?"

"पिछले कई मास से मुझे बार-बार राज्य-कार्य में आपसे परामर्श करने के लिए कहा जाता रहा है। मैं भी आपकी सम्मति को राज्य के लिए बहुत ही उपकारी समझता रहा हूँ। महाराज भी आपकी सम्मति की भूरि-भूरि प्रशंसा करते रहे हैं।"

"परन्तु पिताजी! आप तो जानते ही हैं कि मैं किसी राज्य की सेवा स्वीकार करने वाला नहीं हूँ। वेतनधारी राज्य-कर्मचारी तो मैं कभी बनूंगा ही नहीं। मेरा मन तो यही कह रहा है कि मुझे महामात्य पद कभी स्वीकार नहीं करना चाहिए।"

"मैं समझता हूँ कि आपको यह स्वीकार कर लेना चाहिए। इसके लिए आप कुछ इस प्रकार की शर्त रख सकते हैं कि जिससे आपके कार्य के साथ जन-जन की सेवा जुड़ी हो। मैं समझता हूँ कि महाराज आपकी शर्त पर स्थिर नहीं रह पायेंगे, तब आपको पद-त्याग कर देना चाहिए।

"वेतन की बात गौण है। अब भी तो महाराज आपको किसी प्रकार का वेतन नहीं देते। तदपि आप पर राज्य के सवा सौ स्वर्ण प्रतिमास व्यय होते ही हैं।"

"मैं इस विषय पर विचार करूँगा।"

"अपने परिवार को भी यज्ञ पर ले जा रहे हो?"

"यदि मैं यज्ञ पर गया तो परिवार सहित ही जाऊँगा। अपने साथ मैं उतने ही वस्त्र आदि वस्तुयें लेकर जाऊँगा जितने कि मैं पाटलिपुत्र लेकर आया था। जिससे यदि मुझे प्रयागराज से ही जाना पड़ जाय तो पुनः यहाँ आने की आवश्यकता न हो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं तो कल प्रातःकाल ही यहाँ से जा रहा हूँ। मेरे मुख्य-मुख्य कर्मचारी भी मेरे साथ जा रहे हैं।"

"परन्तु यज्ञ तो अभी पन्द्रह दिन के उपरान्त आरम्भ होगा। और वेगगामी अश्वों के रथ से तो तीन-चार दिन में ही प्रयागराज पहुँचा जा सकता है।"

"मैं धीरे-धीरे जाना चाहता हूँ। भृगु यहीं रहेगा। सान्त्वनाकुमारजी के आ जाने से यज्ञ के लिए उसकी सेवाओं की भी आवश्यकता नहीं रह गयी है।"

"ठीक है, मैं तो अपने विषय में कल निश्चय करूँगा।

"मेरी पत्नी का विचार है कि यज्ञ से सीधे पाटलिपुत्र आने की अपेक्षा एक बार यदि गाँव हो आया जाय तो उत्तम होगा। वहाँ वह अपने माता-पिता से मिलने की इच्छा कर रही है।"

"उसकी इच्छा स्वाभाविक ही है।

"अच्छा, यह बताओ, कभी उज्जयिनी भी आओगे ?"

"आऊँगा तो अवश्य ही। किन्तु कब ? इसका निश्चय यज्ञ समाप्त होने पर और मंगला गाँव से वापस आने के उपरान्त ही होगा।"

अगले दिन ही पूर्णिमा थी। नियमानुसार पण्डित शिवकुमार यज्ञ कराने के लिए राजप्रासाद में जा पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसको आश्चर्य हुआ कि आज अध्वर्यु के स्थान पर एक श्वेत जटा-जूटधारी कोई पण्डित विराजमान है।

शिवकुमार उसके पीछे उससे नीचे स्थान पर जाकर बैठ गया। महाराज का परिवार अभी नहीं पहुँचा था।

सर्वप्रथम महाराज के भाई का परिवार आया। उसके बाद राजकुमार चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य आया, वह पीछे हटकर दीवार के समीप बैठ गया। शिवकुमार को यह विचित्र प्रतीत हुआ।

इसके बाद महारानी चन्द्रावती और राम आये। वे यजमान के स्थान पर बैठ गये। तदनन्तर परिवार के अन्य सदस्य आये और यथासमय वह आगार परिजनों से परिपूर्ण हो गया।

अन्त में महाराज आये। सब उठ खड़े हुए। केवल चन्द्रावती और वह वयोवृद्ध अध्वर्यु अपने स्थान पर बैठे ही रहे।

महाराज के बैठने पर सब लोग बैठ गये। महाराज की द्वितीय पत्नी आज उपस्थित नहीं थी। महाराज के आते ही यज्ञ आरम्भ हो गया। जटा-जूटधारी व्यक्ति पुरोहित के स्थान पर बैठा यज्ञ कराता रहा।

यज्ञ यथाविधि कराया गया। जिन विधियों को शिवकुमार अनावश्यक समझकर छोड़ दिया करता था आज नये अध्वर्यु ने वे सब भी करायीं। किन्तु शिवकुमार ने इसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञोपरान्त उपदेश भी उसी व्यक्ति ने दिया जिसने यज्ञ कराया था। तदुपरान्त सब लोग अल्पाहार के लिए भोजनालय में चले गये।

जब अल्पाहार परोसा जा रहा था तब महाराज ने नवागन्तुक का परिचय करा दिया। उन्होंने पहले शिवकुमार को ही कहा, "पण्डित शिवकुमारजी ! ये महर्षि याज्ञवल्क्य आश्रम के मुख्य अधिष्ठाता महाराज सान्त्वनाकुमार हैं। हमारे अश्वमेध यज्ञ के ये ही ब्रह्मा होंगे। इनके आश्रम के ही एक सौ ग्यारह ब्राह्मण यज्ञ करायेंगे।

"आज इन्होंने यहाँ पर पौर्णमासीय यज्ञ कराकर अपनी योग्यता का परिचय दे दिया है। हम इनसे बहुत प्रसन्न हैं।"

तदनन्तर महाराज ने पण्डित शिवकुमार का परिचय भी आचार्य सान्त्वनाकुमार को करा दिया। इस परिचय के साथ यह बात भी सविस्तार बता दी गयी कि महामात्य यद्यपि सम्भावित अश्वमेध यज्ञ के पक्ष में बिल्कुल भी नहीं थे किन्तु पण्डितजी के प्रयत्नों के फलस्वरूप यहाँ के ब्राह्मण समाज की बुद्धि में यह समा गया और तब इस यज्ञ की योजना सम्भव हो पाई।

यह भी बताया गया कि पण्डित शिवकुमार दर्शनशास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित होने के साथ-साथ वेद-शास्त्रों के भी ज्ञाता हैं।

शिवकुमार को इस परिचय में कुछ टीका-टिप्पणी की आवश्यकता नहीं थी।

इस परिचय के उपरान्त महाराज ने पण्डित शिवकुमार को कहा, "पण्डित शिवकुमारजी ! आचार्य महोदय का परिचय मैंने करा दिया है। आप कर्मकाण्ड के प्रकाण्ड विद्वान् हैं।

"एतदर्थ हमने यह निश्चय किया है कि यज्ञ आचार्यजी की देख-रेख में होगा। जहाँ-जहाँ इनको आपकी सहायता अथवा परामर्श की आवश्यकता हो आप उसकी पूर्ति कर दीजियेगा।"

शिवकुमार अभी भी केवल सुन ही रहा था क्योंकि महाराज के इस कथन अथवा सूचना पर भी उसे कुछ कहने के लिए नहीं था।

महाराज ने ही आगे फिर कहा, "महामात्य हरिषेण अब वानप्रस्थ में प्रवेश कर रहे हैं। वे चाहते हैं कि यज्ञोपरान्त उनको सेवामुक्त कर दिया जाय। हमारी यह प्रबल आकांक्षा है कि हमारा राजपुरोहित यज्ञोपरान्त हमारे राज्य के महामात्य पद को सुशोभित करे।

"महाराज ! मैंने तो पहले ही आपको कह दिया था कि मैं राज्य की सेवा में कभी नहीं रहना चाहूँगा।"

"इस पद का वेतन एक सहस्र स्वर्ण प्रतिमास है!"

"कुछ हो। मेरा दृढ़ निश्चय है कि मैं किसी भी राज्य का वेतनधारी सेवक नहीं बनूंगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सान्त्वनाकुमार को जिज्ञासा हुई। उसने पूछा, "क्यों ?"

"मेरी दृष्टि में किसी भी ब्राह्मण को सेवा-कार्य करना ही नहीं चाहिए। इससे वह शूद्र पद को प्राप्त हो जाता है।"

"तो महामात्य का पद किस वर्ण वाले के लिए है ?"

"क्षत्रिय वर्ण के लिए।"

"ब्राह्मण के लिए क्या उचित है ?"

"चारों वर्ण के कल्याण की कामना। ब्राह्मण जब अपनी सम्मति का शुल्क लेना चाहे तो वह शूद्र हो जाता है। वेतनधारी ऐसे ही समझे जाते हैं।"

सान्त्वनाकुमार मुग्ध देखता रह गया। एकाएक वह बोला, "महाराज ! हम आपको अपने आश्रम से महामात्य पद के लिए एक विद्वान् भेज देंगे।

"यदि आप चाहें तो यज्ञ सम्पन्न होने से पूर्व ही बुलवा सकते हैं।"

महाराज विचार कर रहे थे। उन्हें स्मरण हो आया कि जिस समय पण्डित शिवकुमार को राजपुरोहित के पद पर नियुक्त किया गया था तब भी उसने यही कहा था।

कुछ क्षण के विचारोपरान्त महाराज ने शिवकुमार को कहा, "ठीक है। आप हमारे अवैतनिक महामात्य होंगे। जैसे कि राज-पुरोहित थे।"

"महाराज ! तब आपने जिस प्रकार पुरोहित और यजमान के सम्बन्ध को समझा था उसी प्रकार महामात्य और महाराज के सम्बन्ध को भी समझना होगा।"

"ठीक है, वह भी समझा दीजिये। आचार्यजी के सम्मुख ही समझा दीजिये।"

"उस समय मैंने बताया था कि यजमान और पुरोहित का सम्बन्ध उस रथ-चक्रों के समान है जो परस्पर सम्बद्ध नहीं। यदि कभी एक चक्र बिगड़ जाय तो उसको निकालकर उसके स्थान पर अन्य चक्र लगा दिया जाता है।

"परन्तु राजा और मन्त्री का सम्बन्ध तो रथ के ऐसे चक्रों-सा होता है जो परस्पर सम्बन्ध होते हैं। उनको एक-दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। दोनों जब तक परस्पर सहयोग से कार्य नहीं करेंगे, रथ आगे नहीं बढ़ पायेगा। यदि उन दोनों के परस्पर सहयोग न होने पर रथ को चलाने का यत्न किया गया तो वह रथ टूटकर नष्ट हो जाता है।"

महाराज तो इसका अर्थ समझने का यत्न कर रहे थे। किन्तु सान्त्वनाकुमार के मुख से निकल गया, "जैसे पण्डित हरिषेण निकल गये हैं अथवा निकाल दिये गये हैं वैसे ही जब भी महामात्य से मतभेद होगा, महामात्य को निकाल दिया जायेगा।"

"आचार्यजी ! वह तो मैंने पूर्व स्थिति बताई थी कि यदि असम्बद्ध एक चक्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिगड़ जाय तो उसके स्थान पर दूसरा लगा दिया जाता है किन्तु सम्बद्ध चक्र में एक यदि बिगड़ जाय और फिर भी उसको साथ ले चलने का यत्न किया गया तो उसका परिणाम भयंकर हो सकता है।"

"परन्तु ऐसा होगा क्यों ?"

"यह इस कारण होगा कि दो में कोई एक अधर्मयुक्त कार्य करने लग जाता है। मन्त्री और राजा परस्पर धर्म से बँधे होते हैं। जब दोनों के सम्बन्धों में धर्म-युक्त व्यवहार न रहे तब यदि समय पर चक्र बदला न जाय तो रथ टूट जाता है। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि राज्य विनष्ट हो जाता है।"

आचार्य ने फिर वही कहा, "पर ऐसा होगा ही क्यों ?"

शिवकुमार ने भी उसी प्रकार कह दिया, "होगा तो अधर्मयुक्त व्यवहार से ही परन्तु प्रमाद अथवा भूल से यदि चक्र न बदला गया तो रथ टूट जायेगा। दोनों चक्र विभिन्न भागों पर चलने से स्वयं भी विनष्ट हो सकते हैं।"

महाराज ने आखिर कहा, "पण्डितजी ! आप हमको इतना मूर्ख समझते हैं कि हम समय पर अपना महामात्य भी नहीं बदल पायेंगे ?"

"महाराज ! केवल मूर्खतावश ही नहीं किसी अन्य कारण से भी तो ऐसा हो सकता है।"

"अर्थात् ?" महाराज का विचार था कि पण्डित शिवकुमार महाभारत के किसी आख्यान का उदाहरण प्रस्तुत कर देगा।

तब तक अल्पाहार परोसा जा चुका था। खाना आरम्भ हो गया। किन्तु शिवकुमार ने अपने सामने रखे थाल की ओर न देख कहना आरम्भ किया, "आपने पढ़ा होगा कि मौर्यवंश के अन्तिम शासक वृहद्रथ और उसके मन्त्री पुष्यमित्र में सामंजस्य जब नहीं रह पाया तो उसका परिणाम भयंकर हुआ।

"उस संघर्ष का इच्छित परिणाम यह भी हुआ था कि डिपैंड्रियल को पराजित कर उसका मुख भारत की बाहरी सीमाओं की ओर फेर दिया गया था। परन्तु स्थायी राज्य स्थापित नहीं हो पाया। उसका भयंकर परिणाम यह हुआ कि तीन सौ वर्ष तक देश में अराजकता रही।

"वर्तमान काल का उदाहरण इसके बिल्कुल विपरीत है। महाराज समुद्र-गुप्त और महामात्य पण्डित हरिषेण में मतभेद हुआ तो महामात्य ने बुद्धि से काम लिया और महामात्य पद से पृथक् होने का संकल्प कर लिया। अतः इसका परि-णाम वह नहीं होगा जो वृहद्रथ के समय हुआ था। परन्तु वृहद्रथ के दुर्भाग्य के अतिरिक्त देश और काल पर जो प्रभाव हुआ था वह तो अभी भी हो सकता है।

"पुष्यमित्र योग्य मन्त्री था, किन्तु योग्य शासक नहीं। उसे चाहिए था कि राज्य संचालन के लिए वह किसी योग्य व्यक्ति की खोज करता। यह स्वयं मन्त्री पद पर बना रहता तो आज भारत का इतिहास कुछ अन्य ही होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पाटलिपुत्र वालों ने यवनों को तो मार भगाया परन्तु अपने राज्य का विस्तार करने में असमर्थ रहे। पुष्यमित्र के जीवन के उपरान्त विघटन की प्रक्रिया चालू हो गयी।"

शिवकुमार को लगा कि उसने आवश्यकता से अधिक बता दिया है। यदि राजा स्वयं बुद्धिमान होगा तो और अधिक वह स्वयं ही समझ जायेगा। महाराज गम्भीर भाव से भोजन करते रहे। परन्तु आचार्य सान्त्वनाकुमार अपनी योग्यता को भासित किये बिना नहीं रह पाये। उन्होंने पूछा, "यह पुष्यमित्र कौन था और उसका इस वर्तमान से क्या सम्बन्ध है?"

शिवकुमार अपनी बात समाप्त कर अल्पाहार आरम्भ करने ही वाला था कि आचार्य श्री के मुख से उक्त प्रश्न निकल गया।

शिवकुमार ने हाथ में लिया ग्रास पुनः थाल में रखा और बोला, "वर्तमान का पुष्यमित्र की कथा से सम्बन्ध है। यदि आचार्यजी को समझना ही होगा तो मैं पृथक् में समझा दूंगा। यहाँ बन्धुजनों के सम्मुख यह चर्चा उचित नहीं। भगवन्! कल प्रातःकाल महाराज के साथ महाभारत की कथा सुनने पधारें तो मैं उस समय विस्तार से इस विषय पर प्रकाश डाल दूंगा।"

महाराज ने कहा, "पुरोहितजी ठीक कहते हैं। राजनीति की बातें सबके सम्मुख उचित नहीं। हमारे मन में भी कई संशय उत्पन्न हो गये हैं। हमारा विचार है कि हम कल पुरोहितजी से मिलकर उनका समाधान कराना चाहेंगे। यदि आचार्यजी के पास समय हो तो हमारा निवेदन है कि कल प्रातःकाल सूर्योदय के दो घड़ी उपरान्त वे पुरोहितजी के निवास-स्थान पर यज्ञशाला में पधारने का कष्ट करें। उस समय इस विषय पर विस्तार से वार्त्तालाप होगा।"

इस वार्त्तालाप में इतना समय व्यतीत हो गया था कि शिवकुमार अपने ग्राम जाने के विषय में महाराज से बात नहीं कर सका। वह समझ रहा था कि महामात्य हरिषेण के जाने के तुरन्त बाद ही उसको महामात्य पद पर आसीन करने का प्रस्ताव होगा। परन्तु वह प्रस्ताव तो पूर्णिमा के यज्ञ के समय ही उपस्थित कर दिया गया।

शिवकुमार ने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी। उसकी व्याख्या वह महारानी चन्द्रावती और उसके पुत्र रामगुप्त के सम्मुख करना उचित नहीं समझता था। आचार्य सान्त्वनाकुमार की अपेक्षा महाराज समुद्रगुप्त अधिक बुद्धिशील था, वह पण्डित शिवकुमार का अभिप्राय समझ गया।

अल्पाहार के उपरान्त पण्डित शिवकुमार जाने लगा तो महाराज ने सदा की भाँति दक्षिणा देनी चाही। शिवकुमार आशय समझ गया। उसने आचार्य सान्त्वनाकुमार की ओर संकेत कर दिया।

महाराज ने पूछा, "आपका अभिप्राय?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यही कि आज के अध्वर्यु आचार्यजी थे। इस दक्षिणा पर उन्हीं का अधिकार है।"

"यह यज्ञ का पारिश्रमिक नहीं, दक्षिणा है। किसी एक कर्म की दक्षिणा एक से अधिक ब्राह्मणों को भी दी जा सकती है।"

शिवकुमार ने दक्षिणा ले ली और आशीर्वाद देकर चला गया।

उसी सायंकाल चन्द्रावती और उसका पुत्र राम शिवकुमार से मिलने के लिए आये। जब शिवकुमार के सेवक ने उसको सूचना दी कि बड़ी महारानी मिलने के लिए आयी हैं तो वह उसका आशय समझ नहीं पाया। तदपि उसने सेवक से कहा, "उनको बैठाकर नरसिंहदेव से उनके उचित जलपान की व्यवस्था के लिए कह दो।"

शिवकुमार ने अपनी पत्नी को भी उससे मिलने के लिए चलने को कहा। इस प्रकार वे दोनों बैठकघर में जा पहुँचे। शिवकुमार ने कहा, "आपके आने की पूर्व सूचना न होने के कारण मैं तुरन्त नहीं आ पाया। मेरी पत्नी भी आपसे मिलना चाहती थी, इस कारण कुछ विलम्ब हो गया है, इसके लिए क्षमा कीजियेगा।"

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। आप लोग विराजिये।"

जब सब बैठ गये तो अपने पुत्र का परिचय कराते हुए महारानी ने कहा, "यह मेरा पुत्र युवराज राम है।"

राम चन्द्रमुखी के मुख पर देख रहा था। उसे इस प्रकार देख चन्द्रमुखी भूमि की ओर देखने लगी।

शिवकुमार ने कहा, "राजकुमार चिरंजीव रहें।"

महारानी बोली, "हमने आपकी बहुत प्रशंसा सुनी है। अतः आपके दर्शन करने की लालसा जागृत हो उठी।

"हमें बताया गया है कि यहाँ के महामात्य पण्डित हरिषेण हमारे प्रबल विरोधी हैं। ईश्वर की कृपा से वे तो अब स्वयं ही पद छोड़कर जा रहे हैं। अन्यथा राम के यहाँ आने पर तो उनको निकाला जाना आवश्यक ही था।"

"परन्तु महारानीजी! आपको किसी ने यह मिथ्या बात बतायी है कि महामात्य हरिषेण आपके विरोधी हैं। जहाँ तक मैं समझता हूँ कि इस पाटलिपुत्र में वे ही आपके परमहितैषी थे। यह दुर्योग ही है कि आपके आते ही वे महामात्य का पद छोड़कर जा रहे हैं।"

"मैं समझती हूँ कि आपको भीतरी बातों का ज्ञान नहीं है, इस कारण आप वह सब नहीं जानते जो मैं जानती हूँ।

"परन्तु वह सब अब विचारणीय नहीं रहा। हम तो अब आपसे परिचय बढ़ाने के लिए आये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महाराज के मुख से जब हमने यह सुना कि वे आपको पण्डित हरिषेण के स्थान पर महामात्य के पद पर नियुक्त करना चाह रहे हैं तो हमें बहुत प्रसन्नता हुई है।"

"परन्तु महारानीजी ! मैंने अभी महामात्य पद स्वीकार नहीं किया है, और सम्भावना यही है कि मैं महामात्य बनूँगा भी नहीं।"

रामगुप्त ने कहा, "महामात्य से ऊँचा पद तो फिर मगध सम्राट् का ही है ?"

"पर मैं महामात्य से ऊँचे पद की लालसा में महामात्य पद की अनिच्छा तो नहीं कर रहा हूँ।"

"तो किसलिए कर रहे हैं ?" पुनः महारानी ने ही पूछा।

"मेरी इच्छा तो अपने गाँव वापस जाकर छोटे-छोटे बच्चों की पाठशाला चलाने की है। यहाँ आने से पूर्व मैं वही करता था। उसमें मुझे अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती थी।"

राम मुस्कराकर बोला, "आप भी एक···"

महारानी ने उसकी बात बीच में ही काटकर कहा, "उसमें भला क्या आनन्द प्राप्त होता होगा ?"

"महारानी जी ! अनुभव का वर्णन शब्दों में नहीं होता। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि मानव उद्यान में बालक तो पुष्प के समान सुशोभित होते हैं। जिस प्रकार पुष्पित उद्यान में विचरने पर सुख और आनन्द की अनुभूति होती है उसी प्रकार बच्चों में विचरने पर भी होती है।"

"पण्डितजी ! ···" राम ने फिर कुछ कहना चाहा।

"देखो बेटा ! अपने गुणों का अधिकाधिक प्रयोग न करना।" महारानी ने उसे टोकते हुए पण्डितजी से कहा, "स्वयं को परमात्मा से मिली शक्ति के लिए अकृतज्ञता का ज्ञापन नहीं है क्या ?"

"जी हाँ, ऐसा तो है। परन्तु मानव समाज के पौधों को ज्ञान से सींचना मेरे गुणों का यह प्रयोग अधिक उपकारी होगा अथवा कि राजा-रईसों की चाटुकारी करना, यह विचारणीय हो गया है।

"मेरा मन तो प्रथम कार्य को ही उपयुक्त मानता है।"

"इसमें हमारा मतभेद है।"

"आपके मत पर पुनः विचार कर लूँगा। अभी तक तो मैंने यहीं तक विचार किया था जो मैंने प्रातःकाल अल्पाहार के समय राजप्रासाद में कहा था।"

राम ने पुनः पूछा, "पण्डितजी क्या कहा था आपने ?"

"आप महाराज से पूछ लीजिये। वह मेरी बात समझ गये थे। आपको ध्यान होगा आचार्यजी ने जब बात स्पष्ट करवानी चाही थी तो महाराज ने कहा था कि राजनीति की बात सबके सम्मुख नहीं होनी चाहिए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इसीलिए तो हम इस समय आये हैं ?" राम ने कहा।

"इसीलिए तो मैंने बताया कि है कि राजनीति में खेलने की अपेक्षा मेरा मन बच्चों में खेलना अधिक रसमय अनुभव करता है।"

इस समय नरसिंहदेव अल्पाहार की सामग्री लेकर उपस्थित हो गया।

"इसकी तो आवश्यकता नहीं थी।" महारानी ने कहा।

"तदपि स्वीकार कर हमें कृतकृत्य कीजिये।"

महारानी ने एक कदली फल लिया और उसे छीलने लगी।

रामगुप्त चन्द्रमुखी से पूछने लगा, "आप क्या उज्जयिनी की रहने वाली हैं ?"

"नहीं राजकुमार ! मैं हस्तिनापुर के निकट मंगला ग्राम की हूँ।"

"मुझे कुछ ऐसा लगा कि मैंने आपको वहाँ देखा है।"

"यह आपका भ्रम है। मैं कभी उज्जयिनी गयी ही नहीं।"

जब महारानी और उसका पुत्र चले गये तो शिवकुमार और उसकी पत्नी परस्पर विचार करने लगे कि ये माता-पुत्र किस उद्देश्य से आये होंगे।

शिवकुमार ने कहा, "जहाँ तक मैं अनुमान लगता हूँ वह यह है कि महाराज ने इनको कहा होगा कि मैं इनको पाटलिपुत्र अर्थात् अश्वमेध यज्ञ में बुलाने का पक्षपाती था। इस कारण ये मुझे प्रेरणा देने आये थे कि मैं महामात्य पद स्वीकार कर लूँ और फिर इनके विषय में अपनी धारणा को इनके अनुकूल ही रखूँ।

"कुछ सीमा तक तो मैंने इनका भ्रम दूर कर दिया है। अधिक तो मैं स्वयं अभी अनिश्चित मन हूँ कि मुझे महामात्य का पद स्वीकार करना चाहिए अथवा कि नहीं।"

वास्तव में ये माता-पुत्र आये भी महाराज के कहने पर ही थे। प्रातःकाल अल्पाहार के समय जब शिवकुमार ने यह स्पष्ट संकेत दे दिया था कि वह वैतनिक पद स्वीकार नहीं करेगा और अवैतनिक कार्य करने में भी वह लगभग वैसा ही स्वतन्त्र रहना चाहेगा जैसाकि वह वर्तमान अवस्था में है।

शिवकुमार ने यह भी संकेत कर दिया था कि पुरोहित और यजमान में मत-भेद होने से इतनी हानि नहीं हो सकती जितनी कि महामात्य और राजा में मत-भेद होने से हो सकती है।

यह तो अब लगभग निश्चित ही था कि महाराज और महामात्य पण्डित हरिषेण में प्रबल मतभेद है। यही कारण है कि हरिषेण ने राज्य को विनष्ट करने की अपेक्षा स्वयं राज्य रथ को छोड़कर उससे पृथक् हो जाना श्रेयस्कर समझा है।

महाराज ने चन्द्रावती और रामगुप्त को इसलिए भेजा था कि वे शिवकुमार से मिलकर उसके भावों की जानकारी प्राप्त करें।

महारानी और राम जब राज-भवन में पहुँचे तो महाराज से भेंट हो गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज ने पूछा, "पुराहितजी मिले थे ?"

महारानी कुछ कहती उससे पहले ही उनका पुत्र राम बोल उठा, "हाँ महाराज ! मिले थे।"

महाराज समझ रहे थे कि राम फिर कुछ बोलेगा। किन्तु वह कुछ नहीं बोला। तब महाराज ने पूछा, "फिर ?"

"मुझे तो आपका यह पुरोहित महामूर्ख समझ आया है।"

"ऐसे क्या लक्षण देखे हैं, तुमने उसमें ?"

"मैंने जब उससे कहा कि वह महामात्य नहीं बनना चाहता है तो क्या वह सम्राट् का पद पाने की आशा करता है ? क्योंकि महामात्य से बढ़कर फिर तो सम्राट् का ही पद है।

"तब वह कहने लगा, कि वह तो सम्राट् से भी बड़ा काम करना चाहता है। वह अपने गाँव जाकर छोटे बच्चों की पाठशाला चलाना चाहता है।"

समुद्रगुप्त शिवकुमार के इस विचार से परिचित था। वह महाराज को बता चुका था कि शासक का कार्य प्रबन्ध करना है। वह आचार्य के पद को राजा के पद से भी ऊँचा मानता है। इस कारण राम की बात सुनकर समुद्रगुप्त मुस्कराता ही रहा।

चन्द्रावती ने अपने पुत्र की बात का खण्डन तो नहीं किया केवल इतना ही कहा, "जो हो, आपका यह पुरोहित है विचित्र प्राणी। यहाँ जिस गौरव व प्रतिष्ठा से रहता है उसकी अपेक्षा वह पाठशाला के अध्यापक को वरीयता देता है। यदि उसे मूर्ख नहीं तो विकृत मति तो कहा ही जा सकता है।"

पुनः राम ने ही कहा, "मैंने उसकी पत्नी को बातों में खींचने का यत्न किया था। परन्तु वह तो महिला सुलभ मुस्कराहट भी नहीं दे पाती।"

यह सुनकर समुद्रगुप्त को हँसी आ गयी। वह बोला, "देखो राम ! हम नित्य प्रातःकाल पण्डितजीकी यज्ञशाला में कथा सुनने के लिए जाया करते हैं। उस समय उसकी पत्नी भी वहाँ पर होती है। वह इस कारण कि चन्द्रगुप्त विक्रम की माता भी मेरे साथ होती है। उन दोनों महिलाओं में परस्पर बहुत-सी बातों पर विचार-विनिमय हुआ करता है। मैं उस महिला को महान् विदुषी मानता हूँ।

"प्रातःकाल यज्ञ के समय वह प्रफुल्लित कमल के समान खिली हुई दिखायी देती है। यदि वह तुम्हारे सम्मुख मुस्करायी भी नहीं तो निश्चय है कि तुमने कुछ असभ्य व्यवहार का प्रदर्शन किया होगा।"

"तब तो पिताजी ! ऐसा लगता है कि उस स्त्री का आपके प्रति विशेष अनुग्रह है। यह बात भी ठीक है कि आपके साथ हँसने अथवा मुस्कराने में कोई भी महिला किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार कर रही है ऐसा नहीं समझा जा सकता क्योंकि अब आपकी आयु साठ वर्ष की हो चुकी है। किन्तु मुझ सदृश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविवाहित युवक के साथ वह नहीं मुस्करा पायी। उसका एक कारण भी हो सकता है कि उसका पति उसके साथ ही बैठा हुआ था।"

समुद्रगुप्त ने विषय को बदल दिया। उसने कहा, "कल हम स्वयं जाएँगे और स्वयं उसको महामात्य पद ग्रहण करने का आग्रह करेंगे।

"हमने तुमको आज पहले राजकीय कार्य पर भेजा था उसमें तुम असफल हो कर आये हो।"

महारानी चन्द्रावती ने अपने पुत्र के पक्ष में बोलते हुए कहा, "अभी तो यह बालक ही है। आपके संरक्षण में रहकर धीरे-धीरे सब-कुछ समझने लगेगा।"

महाराज ने अपने पुत्र से कहा, "तुम अभी बालक मात्र ही हो? हम तो समझते हैं कि तुम विक्रम से तीन वर्ष बड़े हो। वह तुमसे कहीं अधिक बुद्धिशील है।

"इसकी तुम्हें परीक्षा करके बताता हूँ। मैं विक्रम को भी उसी उद्देश्य से भेजता हूँ जिस उद्देश्य से तुम्हें भेजा था। फिर देखना क्या होता है।"

चन्द्रावती नहीं चाहती थी कि राम और विक्रम में परस्पर स्पर्द्धा हो। उसने महाराज को रोकते हुए कहा, "यह स्पर्द्धा व्यर्थ है। विक्रम को राज्य सभा में बैठते हुए दस वर्ष हो गये हैं और राम ने तो अभी कुछ देखा ही नहीं है।"

"तो इसमें तुम्हारा दोष है, राम का नहीं। किन्तु राज्य को तो योग्य युवराज चाहिए।"

यह सुन चन्द्रावती को भी क्रोध आ गया। वह बोली, "तो हम जायें?"

"कहाँ?" महाराज ने पूछा।

"उज्जयिनी।"

"परन्तु तुम तो यहाँ यज्ञ में बैठने के लिए आयी हो?"

"उसके साथ ही इसको युवराज बनवाने भी।"

"इसका यज्ञ से कोई सम्बन्ध नहीं है।" महाराज ने पण्डित शिवकुमार के तर्क को ही दुहरा दिया।

"तो यज्ञ का किस बात से सम्बन्ध है?"

"हम दोनों के परस्पर धर्म के सम्बन्धों से। हम दोनों का परस्पर विवाह हुआ था। हमारे विद्वान् पुरोहित कहते हैं कि स्मृति शास्त्र में केवल एक ही विवाह की स्वीकृति है। इस कारण पहला विवाह ही विवाह कहलाता है। दूसरे विवाह अनियमित विवाह माने जाते हैं। इस कारण उन विवाहों में विवाही गयी पत्नियों को पहली पत्नी के रहते यज्ञ में बैठने का अधिकार नहीं है?"

"तो क्या युवराज बनना पहले पुत्र का अधिकार नहीं?"

"नहीं। पुत्र से राज्य के पद आदि का किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। हमारे विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि राज्य से तो राजा का भी कोई सम्बन्ध नहीं है। राज्य से तो राजा के गुण, कर्म और स्वभाव का सम्बन्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"गुणहीन राजा इस प्रकार हटाये जाते है जिस प्रकार वृहद्रथ मौर्य को उनके मन्त्री पुष्यमित्र ने हटा दिया था।"

"कैसे हटा दिया था ?" राम ने अपनी माँ से पूछा।

"तो तुमने इतिहास भी नहीं पढ़ा है। बाईस वर्ष के हो गये हो, क्या करते रहे वहाँ ?"

राम को अपनी अनभिज्ञता पर लज्जा आ गयी और क्षणभर में वह लज्जा क्रोध में परिवर्तित हो गयी। उसका परिणाम यह हुआ कि वह क्रोध में ही वहाँ से उठकर चला गया।

चन्द्रावती ने कहा, "वह उज्जयिनी लौट जायेगा।"

"लौट जाय। किन्तु इससे जो किंचिन्मात्र भी उसको युवराज बनने का अवसर मिल रहा था वह उसको भी खो देगा।"

चन्द्रावती भी वहाँ से उठी और पुत्र के पीछे-पीछे इस प्रकार चली गयी मानो वह राम को उज्जयिनी जाने से रोकना चाहती है।

: ३ :

अगले दिन महाराज जब अपनी द्वितीय पत्नी के साथ पण्डित शिवकुमार के यहाँ महाभारत की कथा सुनने के लिए जाने लगे तो आचार्य सान्त्वनाकुमार भी उनके साथ जाने के लिए बाहर निकल आये।

आचार्य को साथ चलते देख दत्तदेवी खड़ी होकर महाराज की ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखने लगी।

"आचार्यजी भी शिवकुमारजी की कथा सुनने चल रहे हैं।" महाराज ने कहा।

"मैं यही तो पूछ रही हूँ कि क्या मैं भी साथ चलूँ ?"

"क्यों नहीं चलोगी ?"

"क्योंकि कल आपने पूर्णमासी के यज्ञ में तो सम्मिलित होने नहीं दिया था।"

"वह यज्ञ था। यज्ञ का मेरे जीवन कार्यों से सम्बन्ध नहीं। वह धर्म-कार्य कहा जाता है। किन्तु कथा सुनना तो ज्ञान कार्य है।"

"मैं इस विषय में पुरोहितजी से व्यवस्था लूँगी।"

"आचार्यजी उनकी अपेक्षा अधिक प्रामाणिक हैं।"

"पण्डितजी का तर्क और युक्ति इनकी प्रामाणिकता से अधिक समर्थ होगी।"

"हाँ, यह तो है।"

आचार्य सान्त्वनाकुमार ने साथ चलते हुए कहा, "परन्तु देवी ! जब एक व्यक्ति किसी बात को तर्क से सिद्ध कर देता है तो दूसरा व्यक्ति उसके तर्क को काटकर उसके विपरीत भी तो सिद्ध कर सकता है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह तर्कहीन मनुष्यों के विषय में हो सकता है। हम स्वयं को वैसा नहीं मानते।"

महाराज ने समाधान करते हुए कहा, "हम तो दोनों पक्षों की बात सुनकर तर्क से उसके सिद्ध होने पर ही उसे स्वीकार करना ठीक समझते हैं।

"आचार्यजी ! आप जो कह रहे हैं वह किसी अविद्वान् के सम्मुख भले ही कह दी जाय किन्तु कोई भी दर्शनशास्त्र का प्रकाण्ड पण्डित आपकी इस बात को स्वीकार नहीं करेगा। पण्डित शिवकुमारजी दर्शनाचार्य हैं।"

विवादास्पद बात यह थी कि पहले दिन जब पूर्णमासी के यज्ञ के सम्बन्ध में चर्चा चल रही थी तो उस समय आचार्यजी ने कह दिया था कि जब धर्मशास्त्र में एक ही विवाह का उल्लेख है तो फिर द्वितीय अथवा तृतीय पत्नियाँ इस प्रकार के धर्मकार्य में सम्मिलित नहीं हो सकतीं।

यही कारण था कि जब दत्तदेवी को यज्ञ पर बैठने से मना किया गया तो राजकुमार विक्रम को यह उचित प्रतीत नहीं हुआ और उसका परिणाम यह हुआ कि वह भी सम्मुख न बैठकर पीछे दीवार के पास बैठ गया था।

दत्तदेवी इस आचार्य को सन्मार्ग दिखाना चाहती थी। यही कारण था कि उसने पण्डित शिवकुमार से व्यवस्था माँगने की बात कही थी। उसे आशा थी कि शिवकुमार आचार्यजी की व्यवस्था को झुठला देगा।

शीघ्र ही महाराज, महारानी और आचार्यजी पुरोहितजी की यज्ञशाला में पहुँच गये।

इन तीनों को उस समय विस्मय हुआ जब द्वार पर महारानी चन्द्रावती और उसका पुत्र रामगुप्त उनसे पहले ही खड़े थे। उन्हें वहाँ देख दत्तदेवी मन-ही-मन विचार करने लगी कि आज पुरोहितजी के समक्ष घोर विवाद होने वाला है। तदपि उसको विश्वास था कि पण्डित शिवकुमार कोई न कोई युक्तियुक्त समाधान प्रस्तुत कर सबको सन्तुष्ट करने में सफल होंगे।

जिस समय राज-परिवार का यह दल यज्ञशाला में पहुँचा यज्ञ की पूर्णाहुति दी जा रही थी।

जब ये सब लोग बैठ गये तो शिवकुमार ने कहा, "मैं समझता हूँ कि आज यदि राजकुमार चन्द्रगुप्त को भी बुला लिया जाय तो उत्तम होगा।"

"क्या उत्तम होगा ?"

"आपके मन में उठने वाले संशयों का निवारण। मैंने कल देखा कि राजकुमार यज्ञशाला में बिल्कुल पीछे बैठे थे। इससे मुझे आभास हुआ कि राजकुमार किसी बात पर रूठे हैं।"

"तो क्या राजकुमार चन्द्रगुप्त आपसे मिले थे ?"

"नहीं, वे मिले तो नहीं। मैं समझता हूँ कि आप लोगों का इस प्रकार मिलकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकत्रित आना यह व्यक्त करता है कि आपके मन में आपकी पारिवारिक समस्या उभर रही है।"

"हाँ, यह बात तो है। कल इसी अभिप्राय से मैंने राम और उसकी माता को आपके पास भेजा था। परन्तु मुझे लगता है कि अपने यहाँ आने का प्रयोजन वे आपको समझा ही नहीं पाये।"

"तो राजकुमार चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को भी बुला लिया जाय।"

"ठीक है, अपना सेवक भेजकर बुलवा लीजिये।"

तदनुसार सेवक को भेज दिया गया।

इस अवधि में पण्डित शिवकुमार ने धर्म-अधर्म की चर्चा आरम्भ करते हुए कहा, "कर्म की गति अति गहन है और धर्म तो कर्म का एक रूप ही है।

"सब करणीय कर्म धर्म कहलाते हैं। उन धर्म-कर्मों की परस्पर तुलना की जा सकती है कि कौन-सा कर्म किस समय धर्म हो जाता है और किस समय अधर्म। प्रत्येक धर्मयुक्त कार्य विकर्म से तो श्रेष्ठ ही होता है।

"अकर्म कभी धर्म होता है और कभी अधर्म। इसका कोई स्थिर रूप नहीं है।

"अतः जब हम धर्म का वर्णन करेंगे तो अकर्म और विकर्म का कथन नहीं होना चाहिए।

"कर्म तीन प्रकार के हैं। अर्थात् नित्य कर्म, नैमित्तिक कर्म और निष्काम कर्म। इसी प्रकार धर्म भी तीन प्रकार के हैं। यह इसलिए कि विशेष रूप से कर्म ही धर्म होता है।

"तीन धर्म हैं नित्य, नैमित्तिक और निष्काम भाव से किया जाने वाला धर्म।

"महर्षि व्यासजी ने कहा है कि योगी के लिए नित्य कर्मों की कुछ भी महिमा नहीं है। मेरी भी यही मान्यता है कि नित्य धर्मों की उतनी ही महिमा है जितनी नित्य कर्मों की है।

"यथा नित्य स्नान नित्य कर्म है। यह नित्य धर्म भी है। इसे करने से भी उतना ही लाभ है जितना नित्य भोजन करने से। भोजन का लाभ शरीर की पालना है, यह धर्म है। इसी प्रकार नित्य स्नान शरीर का पालन कर्ता होने से धर्म है।

"पालन किया हुआ शरीर, चोरी, डाका, हत्या इत्यादि भी कर सकता है। और वह किसी रोगी की सेवा भी कर सकता है। अतः शरीर का पालन स्वतः कुछ भी नहीं है।

"जब मैं कहता हूँ कि नित्य कर्म महिमाहीन हैं तो मेरा उससे यही अभिप्राय होता है।

"यही बात नैमित्तिक कर्म की है। इसी प्रकार नैमित्तिक धर्म तो उस निमित्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुसार ही मूल्यवान है जिस निमित्त के लिए वह किया जाय।

"उदाहरण के रूप में गदायुद्ध में जब भीम ने गदायुद्ध के नियमों का उल्लंघन किया तो यह नैमित्तिक कार्य था। इसका मूल्य उस निमित्त से ही आँकना चाहिए जिस निमित्त यह किया गया था।

"गदायुद्ध का निमित्त था दुर्योधन को मारना। सामान्य नियमों से यह कार्य पूर्ण हो नहीं रहा था। इस कारण नियम भंग करना पड़ा। निमित्त था युद्ध, इस कारण नियम का उल्लंघन अधर्म नहीं।

"इसी प्रकार सात्यकी का शस्त्रास्त्रविहीन द्रोणाचार्य की हत्या नैमित्तिक कर्म था। निमित्त था युद्ध। निमित्त धर्म होने से सात्यकि का यह कर्म भी धर्म ही था।

"जो कर्म निष्काम भाव से किये जाते हैं, उनमें स्वार्थ का अंश नहीं होता है। यदि भीष्म पितामह की हत्या जो कि शिखण्डी के पीछे छिपकर की गयी थी किसी स्वार्थवश की जाती तो बात ही दूसरी होती। इसमें अर्जुन का अपना कोई स्वार्थ नहीं था। स्वार्थ था पाण्डव पक्ष की विजय। विजय होने पर अर्जुन तो राजा बनने वाला नहीं था। इस कारण वह उस हत्या के पाप-पुण्य से परे है। यह अर्जुन के लिए उतनी ही लाभकारी थी जितनी कि किसी भी पाण्डव के लिएहो सकती थी अथवा कि किसी भी पाण्डव देश के निवासी को हो सकती थी।

"यह कार्य यज्ञरूप था। लोककल्याण के लिए था। इस कारण अर्जुन को इसका पाप नहीं लगा।

"निष्काम भाव से किये गये कर्मों में भी बुद्धियुक्त कर्म की ही महिमा है। बुद्धि विहीन कर्म यदि निष्काम भाव से भी किया जाय तो वह भी कर्मफल के अनुसार पाप-पुण्य हो जायेगा।

"उदाहरण के रूप में मान लीजिये कोई अश्वारोही किसी भीड भरे मार्ग से अपने अश्व को विना किसी की हत्या का विचार किये किसी स्वार्थवश भगाता चला जाता है। तब उसके घोड़े के पैरों के नीचे दबकर यदि कोई मर जाता है अथवा किसी को चोट पहुँचती है तो यह कर्म निष्काम भाव से किया हुआ होने पर भी उस अश्वारोही को पाप का भागी बना देगा। भीड़ भरे मार्ग में इस प्रकार घोड़ा दौड़ाना बुद्धिहीनता है।

"इस कारण धर्म-अधर्म के विषय में जानने के लिए तनिक विचार करने की आवश्यकता होती है।"

इस प्रकार पण्डित शिवकुमार भगवद्गीता के अनुसार कर्म की व्याख्या कर रहा था कि तभी महाराज ने उसको रोककर आचार्य सान्त्वनाकुमार से पूछ लिया, "आचार्यजी ! इस विषय में आपके विचार क्या हैं ?"

"यह सब अनर्गल है। सब कर्मकाण्ड नित्य कर्म होते हैं। वे कोई भी महत्त्व-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हीन नहीं हैं।"

"उदाहरणार्थ ?" शिवकुमार ने कहा।

"जैसे देवयज्ञ।"

"आचार्यजी ! देवयज्ञ नित्य कर्म नहीं कहाता। नित्य कर्म तो वह है जिसका करना छोड़ा न जा सके। जैसे शौच, स्नान, भोजन, वस्त्र धारण, शयन, दैनिक कर्म आदि-आदि।

"जिस कर्म को न करने से किसी प्रकार के जीवन-कार्य में कोई हानि न हो वह नित्य कर्म नहीं कहाता। देवयज्ञ तो निष्काम भाव से किया गया कर्म है। यदि देव यज्ञ बुद्धियुक्त होगा तो लाभकारी होगा।

"देवयज्ञ के बुद्धियुक्त होने का अभिप्राय यह है कि जिसमें हवन करने वाली सामग्री समिधा इत्यादि बुद्धि से विचार कर सुगन्धि देने वाली पौष्टिक एवं स्वास्थ्यवर्द्धक होनी चाहिए। अन्यथा यदि यह इसके विपरीत हुई तो वह देवयज्ञ अधर्म हो जायेगा।

"इसीलिए मैं कहता हूँ कि निष्काम भाव से किया गया कर्म भी बुद्धियुक्त होना चाहिए। बुद्धिविहीन कर्म तो घोर पाप कर्म भी हो सकता है।"

आचार्यजी फिर कुछ कहने ही वाले थे कि उस समय राजकुमार विक्रम आ गया। वह आया तो महाराज ने कहा, "आओ विक्रम ! यहाँ एक पारिवारिक समस्या पर विचार होने लगा तो पुरोहितजी ने कह दिया कि इस चर्चा में तुम्हारी अनुपस्थिति उचित नहीं। इस कारण हमने तुमको भी बुलवा लिया है।"

"आज्ञा पाते ही मैं उपस्थित हो गया हूँ।"

"एक समस्या तो तुम्हारी माताजी ने उपस्थित कर दी है। उनका कहना है कि कल के यज्ञ में उनको सम्मिलित न करना अयुक्त कार्य था।

"किन्तु आचार्यजी ने इसको उचित बताया था। इसलिए कल हम आचार्यजी की बात को मान गये थे। परन्तु अब हम भी चाहते हैं कि यह विषय पुरोहितजी के सम्मुख स्पष्ट हो जाय।"

यह कहकर महाराज ने प्रथम दिन की घटना का विवरण पण्डित शिवकुमार को सुनाते हुए कहा, "कल जब पूर्णमासी के यज्ञ पर हम जाने लगे तो हमने दोनों महारानियों को अपने साथ चलने के लिए बुलाया। तब पुरोहितजी बोले कि यज्ञ में तो एक ही पत्नी का आना उचित होगा। दत्तदेवी का उसमें सम्मिलित होना ठीक नहीं है।

"हमें इस व्यवस्था में संशय था। हम इस विषय पर आपसे समाधान करवाना चाहते थे। इसलिए कल तो हमने आचार्यजी की बात को स्वीकार कर लिया था। अब आप बताइये कि यह कर्म उचित था अथवा कि अनुचित ?"

"महाराज ! यहाँ पर उचितानुचित तो बहुत ही शिथिल अर्थयुक्त है। यज्ञ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सम्मिलित होना धर्म है। इसलिए प्रश्न तो यह होना चाहिए था कि छोटी महारानी जी को यज्ञ में सम्मिलित होने देना अथवा न होने देना, धर्म है अथवा अधर्म।"

यह सुनकर आचार्य का मुख लाल हो गया। आचार्य की आयु से भी कम आयु वाला युवक उसकी व्यवस्था पर विवेचना करे कि वह धर्म था अथवा अधर्म यह उसको सह्य नहीं था। परन्तु प्रश्न तो मगध सम्राट् की ओर से उपस्थित किया गया था इस कारण क्रोध तो उसको आ गया तदपि वह कुछ बोल नहीं पाया। चुपचाप शिवकुमार की युक्ति सुनने लगा।

शिवकुमार ने कहा, "किसी भी व्यक्ति को यज्ञ में सम्मिलित होने से वर्जना अधर्म है। यदि यज्ञ कर्म धर्म है तो इसमें सम्मिलित होना भी धर्म है। और उस धर्म कर्म को रोकना अधर्म है।"

"परन्तु स्मृति ऐसा कहती है कि द्वितीय पत्नी यज्ञ में बैठने की अधिकारिणी नहीं है।" आचार्यजी ने कहा।

"यह सम्भव है। परन्तु पत्नी बनकर बैठना और यज्ञ में सम्मिलित होना ये दो पृथक्-पृथक् बातें हैं। यज्ञ सदा सार्वजनिक और सार्वभौमिक होता है। वह सबके कल्याण के लिए होता है। इसमें जिसका भी मन करे वह यज्ञ के नियम-उपनियमों का पालन करता हुआ सम्मिलित हो सकता है।"

"परन्तु उसमें वेदमन्त्र जो बोले जाते हैं?"

"तो फिर?"

"स्मृतिकार कहते हैं कि शूद्र के कान में वह मन्त्र नहीं पड़ने चाहिए।"

"वह किसी मूर्ख द्वारा रचित स्मृति होगी। वेद स्वयं इसकी स्वीकृति देता है। वह कहता है कि मेरी कल्याणमयी वाणी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और चाण्डाल के लिए भी है।"

"याज्ञवल्क्य स्मृति में तो ऐसा ही उल्लेख है।"

"मुझे विश्वास नहीं होता। यह प्रक्षिप्त अंश हो सकता है।"

"आप क्या मुझे मूर्ख समझते हैं?"

"मूर्ख तो नहीं। हाँ, साम्प्रदायिक मानता हूँ। साम्प्रदायिक का अर्थ है जो सम्प्रदाय के रीति-रिवाजों को सम्प्रदाय के उद्देश्यों से अधिक श्रेष्ठ समझे।

"देखिए आचार्यजी! महारानी दत्तदेवी महाराज की धर्मपत्नी हैं। आपके ऋषिवर की स्मृति में वर्णित विधि-विधान के अनुसार ही इनका विवाह हुआ है। अब आप ही बताइये, इस प्रकार विधियुक्त विवाह से लायी गयी पत्नी के भी कुछ अधिकार हैं अथवा नहीं? विवाह कर्म में आप पति-पत्नी को एक दूसरे का परस्पर पूरक और सहयोगी मानते हैं अथवा नहीं? तो फिर आप किस प्रकार उस पत्नी को यज्ञ से बाहर कर सकते हैं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य सर्वथा निरुत्तर हो गया। क्रोध तो उसको इस कारण आ रहा था कि वह कल का छोकरा उनको तर्कहीन सिद्ध कर रहा है।

तब आचार्य ने महाराज से कहा, "महाराज ! यह मेरा अपमान है। मैं यहाँ से जाना चाहता हूँ।"

महाराज बोले, "आचार्यजी ! पण्डितजी ने आपके विषय में तो कुछ भी नहीं कहा। आपका अपमान किस प्रकार हो गया ? इन्होंने तो युक्ति से ही बात की है।

"यदि आप कहें तो न्यायमूर्ति प्रभाकरजी को बुलवा लें ?"

"नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं है। आचार्यों के वाद-विवाद को न्यायमूर्ति क्या समझेगा !"

"तो फिर कौन समझ सकता है ?"

आचार्य सान्त्वनाकुमार इसका उत्तर देने के लिए उपयुक्त शब्द खोज ही रहे थे कि महाराज ने पुरोहितजी के सम्मुख दूसरी समस्या रख दी। उन्होंने कहा, "पुरोहितजी की सम्मति से ही मैंने महारानी चन्द्रावती को यज्ञ में अपने साथ बैठाने के लिए निमन्त्रण भेजा था।"

"परन्तु आप तो कहते हैं कि यज्ञ में साथ बैठने से वह पटरानी बन जायेगी और पटरानी का ही पुत्र युवराज भी होना चाहिए।"

"पुरोहितजी आप बताइये, इस विषय में आपकी क्या सम्मति है ?"

"पटरानी बनना और युवराज की माँ बनना इन दोनों को कभी एक ही व्यक्ति के रूप में नहीं माना गया है। दोनों पृथक्-पृथक् प्रयोजन के कर्म हैं। इनके निर्माण की प्रक्रिया भी भिन्न-भिन्न है। अनेक पटरानियों के पुत्र योग्य और वीर भाइयों द्वारा पीछे धकेल दिये जाने पर राज्यासन पर बैठने से वंचित कर दिये गये हैं। महाराज स्वयं भी इसका एक उदाहरण हैं। यद्यपि इनके बड़े भाई बड़ी रानी की सन्तान होने पर भी राज्यासीन नहीं हो सके।

"इसी प्रकार मेरा मत है कि राजकुमार राम अब पाटलिपुत्र में आये हैं। इनको चाहिए कि ये अब यहीं रहें। प्रजा के साथ मिलें। प्रजा के कल्याण के कार्य करें। तब यदि यह प्रजा के प्रिय बन गये तो युवराज पद के अधिकारी भी बन जायेंगे।

"प्रजा का सबसे बड़ा हित उसकी दुष्ट, चोर, डाकुओं से और विदेशियों एवं विधर्मियों से रक्षा करना है। भावी युवराज को इस दृष्टि से भी अपनी योग्यता का परिचय देना चाहिए।

"मुझे स्मरण है। एक वर्ष से कुछ अधिक समय की बात है। जब यहाँ के सेनाध्यक्ष को किसी कारण पदच्युत कर राजकुमार चन्द्रगुप्त विक्रम को सेनाध्यक्ष बनाया गया था। इस घोषणा के होते ही दो घड़ी के भीतर ही पूर्ण पाटलिपुत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीपमाला से जगमगा उठा था।

"विक्रम से आगे निकलने के लिए राम को बहुत यत्न करना पड़ेगा। आगे निकले बिना अर्थात् प्रजा का मन जीते बिना युवराज बनना असम्भव है।"

"यह स्मृति के विरुद्ध है ?" आचार्य का मत था।

महाराज तुरन्त बोल पड़े, "अर्थात् मैं स्मृति के विरुद्ध बना हुआ सम्राट् हूँ?"

आचार्य सान्त्वनाकुमार इस प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ थे। वह मौन रहे।

तभी पण्डित शिवकुमार का संकेत पाते ही सेवक सबके लिए अल्पाहार ले आया।

जब सब अल्पाहार करने में तल्लीन थे, पण्डित शिवकुमार ने कहा, "महाराज! राजकुमार राम को मेरे पास छोड़ जाइये। मैं दो-तीन वर्ष में इसे युवराज पद के योग्य बना दूंगा।"

अल्पाहार समाप्त हुआ तो सभी राज-भवन को चल पड़े। मार्ग में चलते हुए आचार्य सान्त्वनाकुमार ने महाराज को कहा, "महाराज ! आपका पुरोहित बड़ा तार्किक है और राजनीति तर्क से नहीं चलती। यह किसी दिन आपको किसी गर्त में धकेल देगा।"

महाराज सुनते रहे, किन्तु कुछ बोले नहीं। महारानी चन्द्रावती भी मौन थी किन्तु उनके मौन में विषाद भरा था। दत्तदेवी प्रसन्न थी। वह अपने पुत्र को देख गर्व का अनुभव कर रही थी।

राजप्रासाद में पहुँचने के बाद अपने आगार में पहुँचकर महारानी चन्द्रावती ने अपने पुत्र से कहा, "राम ! तुमने उज्जयिनी में अपने मित्र ही ऐसे बनाये जो मूर्ख और गँवार होने के साथ-साथ धूर्त भी थे। यहाँ तुमने अपना एक भी गुण प्रकट नहीं किया।"

"माँ ! मेरी इच्छा हो रही है कि मैं आज ही उज्जयिनी लौट जाऊँ।"

"वहाँ क्या है ?"

"और कुछ नहीं तो राधा तो है। यहाँ तो कल मैं विक्रम के मित्रों की गोष्ठी में गया था। वे साहित्य चर्चा करते हुए सुन्दरियों के रूप-लावण्य की चर्चा ही करते थे। यह तो मानसिक व्यभिचार है। उनकी अपेक्षा मैं रूप-लावण्य का वास्तविक उपभोग करता हूँ। मैं तो उनकी बातें सुनता हुआ मन-ही-मन उन्हें मूर्ख समझ रहा था।

"आचार्य विशाखदत्त उस गोष्ठी का प्रधान है। वह प्रौढ़ावस्था का है। एक युवा कवि किसी नारी की कटि, उसकी त्रिवल्लियों की शोभा, उसकी जांघों का वर्णन आदि सुन-सुनकर हँस रहा था। इस सबके उपरान्त जब सब वहाँ से विदा होने लगे तो पण्डित विशाखदत्त मुझसे पूछने लगा कि मुझे कुछ आनन्द आया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा नहीं ।

"मैंने उसको मूर्ख सिद्ध करने के लिए कह दिया कि मिठाई का स्वाद तो उसको खाने से ही आता है केवल मिठाई शब्द जपने से नहीं ।

"तब वह बोला कि जिस इन्द्रिय का जो विषय है वही इन्द्रिय तो उसका रस प्राप्त कर सकती है। सुन्दरी के शरीर का सौन्दर्य देखने का विषय है। इसमें भोग का प्रश्न कहाँ से आ गया ? और कविता सुनने का विषय है, इसका भोग से क्या सम्बन्ध ?

"यह सुनकर मैंने उसको कहा कि किसी सुन्दरी के शरीर के उपभोग का अवसर मिले तो फिर उसको विदित हो कि सौन्दर्य क्या है। उसकी तुलना कविता के रस से करना व्यर्थ है। वे सब निरुत्तर हो गये ।

"माँ ! मैं तो आज ही उज्जयिनी वापस लौटना चाहता हूँ ।"

"ठीक है जा सकते हो। किन्तु यह जान लो कि इसके बाद तुम्हें मेरा मुख देखने को नहीं मिलेगा । यदि मैंने तुम्हें अपना पुत्र अस्वीकार कर दिया तो फिर वह राजपद तुम्हारे लिए हवा की बात बन जायेगा ।"

राम यह सुनकर रुष्ट होकर अपने आगार में चला गया । उसका उज्जयिनी का मित्र शेखर वहाँ बैठा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था । राम को विस्मय हुआ ।

राम ने आश्चर्य से पूछा, "ओह शेखर ! कैसे आना हुआ ?"

शेखर हँस पड़ा। उसने केवल इतना कहा, "आपके प्रश्न का उत्तर देने में समय लग जायेगा । मुझे जोर की प्यास लगी है। इस नगर में जल की प्याऊ तो अनेक स्थानों पर हैं परन्तु माधवी का कहीं नाम नहीं है।"

"माधवी उपलब्ध तो है। किन्तु यदि पीकर अचेत हो गये तो राज-प्रासाद के सबसे ऊँचे शिखर से इस प्रकार नीचे धकेल दिये जाओगे कि पत्थरों पर गिरकर चकनाचूर हो निश्शेष हो जाओगे।"

"तब आप किस प्रकार यहाँ रह पा रहे हैं ?"

"मैं माँ के पास रहता हूँ और माँ माधवी पीने नहीं देती, इसी कारण बचा हुआ हूँ।"

"पर मैं तो अपने साथ राधा और उसकी छोटी वहिन सुमति को भी लाया हूँ ।"

"ओह ! कहाँ रखा है उनको ?"

"अभी तो पद्मावती पंथागार में टिका हूँ। परन्तु वहाँ तो राजप्रासाद की अपेक्षा अधिक ही प्रतिबन्ध हैं।"

राम ने कहा, "यहाँ मुझे एक ही सज्जन मिले हैं जो हमें इस कार्य में सहायता कर सकते हैं।"

"उस सज्जन से कैसे मिला जा सकता है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम अपनी आगार संख्या बता दो। मैं उस सज्जन को तुम्हारे पास भेज दूंगा।"

"आगार संख्या एक सौ पाँच है।

"ठीक है, रात एक प्रहर गये वह तुमसे मिलने के लिए आयेगा। तुम उससे मिलकर प्रबन्ध कर लेना। मैं दिन के समय राधा से मिलने का यत्न करूँगा।"

"रात को नहीं ?"

"यहाँ प्रबन्ध हो रहा है कि मुझे युवराज घोषित किया जाय। और मैं यदि रात के समय राजप्रासाद से बाहर गया तो माँ को पता चल जायेगा। माँ इससे रुष्ट होंगी। फिर मेरा एकमात्र सहायक भी जाता रहेगा। मैं माँ को अपना विरोधी नहीं बना सकता।"

"ठीक है। परन्तु इन को यहाँ लाने में मेरा बहुत कुछ व्यय हुआ है। वह तो मुझे अभी मिल जाय जिससे कि मैं इस नगर में रहने के लायक हो जाऊँ।"

"यह तो वे लड़कियाँ ही अपनी आय में से आपको आपका भाग जो देंगी।"

"वह आय जब होगी तभी तो होगी। यदि इस समय आपने कुछ न दिया तो मुझे रात को भूखा ही सोना पड़ेगा।"

"कितना व्यय कर आये हो ?"

"मेरा अपना तो दो सौ स्वर्ण व्यय हुआ है।"

"अच्छी बात है। रात को वह व्यक्ति तुम्हें दो सौ स्वर्ण भी दे देगा।"

इस प्रकार राम ने शेखर को वापस पंथागार भेज दिया।

: ४ :

महाराज उस रात को चन्द्रावती के साथ रहने वाले थे। चन्द्रावती भी महाराज के स्वागत के लिए सुसज्जित बैठी थी। राम ने इसे उचित अवसर जान सामान्य व्यक्तियों के से वस्त्र पहने और वह राजप्रासाद से बाहर हो गया।

राम ने अपने एक मित्र नरेश मिश्र को शेखर तथा राधा और उसकी बहिन के निवास आदि का प्रबन्ध करने के लिए पहले ही भेज दिया था। नरेश मिश्र पाटलिपुत्र में रह चुका था। वह यहाँ के भले-बुरे सब प्रकार के व्यक्तियों से परिचित था।

राम ने नरेश से कहा, "कोई ऐसा मकान लो जो धनी बस्ती में हो। किन्तु खुला और हवादार होना चाहिए। उसमें चार-पाँच आगार तो अवश्य हों।"

नरेश मिश्र ने मकान का प्रबन्ध कर लिया और रात एक प्रहर गये वह पद्मावती पंथागार में पहुँच गया। वहाँ से शेखर और उसके साथ राधा और सुमति को उस मकान में ले गया। यह मकान राजप्रासाद से एक कोस के अन्तर पर था।

दोनों बहिनों को मकान तो पसन्द आ गया। तीनों वहाँ रहते हुए रामगुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रतीक्षा करने लगे। उनका विचार था कि रामगुप्त तो अब अगले दिन ही आयेगा तब उस समय यज्ञ में चलने की योजना बनायी जायेगी।

परन्तु शेखर आदि के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा जब राजकुमार रामगुप्त साधारण देहातियों के वेश में नरेश मिश्र के साथ वहाँ पहुँच गया। दोनों राज-प्रासाद से पैदल ही चले थे इस कारण मध्य रात्रि से कुछ ही पहले वहाँ पहुँच पाये थे।

शेखर उन युवतियों के साथ मद्य और भुना हुआ मांस का सेवन कर रहा था। तीनों ही प्राणी अर्द्ध चेतनावस्था में थे।

राम को आया देख शेखर बोला, "राजकुमार! आप तो कल दिन को आने वाले थे?"

"हाँ था तो। परन्तु आज सायं विदित हुआ कि बूढ़ा महाराज आज रात्रि अपनी प्रथम पत्नी के निवास पर व्यतीत करेगा तो बस मैंने भी अपनी योजना बदल डाली।"

राम भी उनके खान-पान में सम्मिलित हो गया।

राम प्रातः एक घड़ी सूर्योदय के उपरान्त ही अपने आगार में पहुँच पाया था। उसके आते ही सेवक ने उसको बताया कि प्रातःकाल महारानी पुरोहितजी के घर पर कथा सुनने जाने के लिए उसको साथ ले जाना चाह रही थीं। किन्तु वह मिला नहीं।

"मैं तो जानता था कि आप शयनागार में नहीं हैं, इस पर भी मैं महारानीजी का सन्देश लेकर यहाँ आया और मैंने वहाँ जाकर कह दिया कि आप पुरोहितजी के दर्शन करना नहीं चाहते। इसलिए क्षमा चाहते हैं।

"तब समीप खड़े महाराज ने भी कह दिया कि उसे सोने दो। संसार आगे निकल जायेगा और वह फिर हाथ मलता रह जायेगा।

"इस प्रकार महारानीजी यहाँ आती-आती रुक गयीं।"

राम रात के विलास से थका हुआ पलंग पर लेटा तो सो गया। चन्द्रावती पुरोहितजी के निवास-स्थान से लौटी तो सीधी राम के आगार में जा पहुँची।

तबतक दो मुहूर्त दिन व्यतीत हो चुका था। अतः इस समय भी पुत्र को सोया हुआ देखकर उनको क्रोध तो आया किन्तु स्नेहवश वह कुछ कह नहीं सकीं। वह वहाँ से अपने कक्ष में जाकर विश्राम करने लगीं।

उधर महाराज के कक्ष में कुछ और ही बात होने लगी थी। महाराज समुद्र-गुप्त पुरोहितजी के पास से लौटे और अपने आगार में पहुँचे ही थे कि राजप्रासाद का संरक्षक उनके पास जा पहुँचा। द्वार पर खड़े प्रतिहारी ने भीतर जाकर सूचना भेजी कि प्रासाद संरक्षक कुछ निवेदन करने आये हैं।

महाराज ने उसे उसी समय वहीं पर बुलवा लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महाराज ! राजप्रासाद से बाहर जाने से द्वारपाल किसी को रोकता नहीं है," संरक्षक ने कहना आरम्भ किया, "परन्तु महामात्य का आदेश है कि राज-परिवार का कोई व्यक्ति जब रात्रि में कहीं बाहर चला जाय तो उसका पीछा कर उसका पता लगाया जाना चाहिए कि वह कहाँ जाता है। और यदि किसी प्रकार के भी संदिग्ध व्यक्ति से उसकी मेल-मुलाकात होती है तो तुरन्त महाराज को सूचित कर दिया जाय।

"अतः महाराज ! कल रात राज-परिवार का एक व्यक्ति यहाँ से डेढ़ कोस दूर राजपथ पर स्थित एक मकान पर गया। वह रात-भर वहाँ रहा और वहाँ से प्रातःकाल निकलकर राजप्रासाद में आ गया है।

"वह मकान, जिसमें वह व्यक्ति गया था, कल ही उज्जयिनी से आने वाली दो युवतियों और एक युवक ने भाड़े पर लिया है। युवतियाँ उज्जयिनी की वेश्यायें हैं।"

उज्जयिनी का नाम सुनकर महाराज समुद्रगुप्त के कान खड़े हो गये। तब महाराज ने पूछा, "कौन था वह व्यक्ति ?"

"राजकुमार रामगुप्त।"

"ठीक है। भविष्य में राम को जानकारी हुए बिना उसकी रक्षा का समुचित प्रबन्ध किया जाय।"

"प्रबन्ध से महाराज का अभिप्राय ?"

"उसकी जीवन रक्षा का प्रबन्ध।"

"और उसके चरित्र के विषय में ?"

"वह हम स्वयं देख लेंगे।"

राजप्रासाद के संरक्षक के जाने के बाद महाराज स्वयं राम के प्रासाद की ओर चल दिये।

राम अभी भी गहरी नींद सो रहा था। महाराज ज्योंही उसके समीप पहुँचे तो उन्हें दुर्गन्ध आयी। महाराज समझ गये कि उसने मद्यपान किया है।

महाराज उसका निरीक्षण-परीक्षण कर ही रहे थे कि महारानी चन्द्रावती भी वहाँ पहुँच गयी।

महाराज ने महारानी को देखकर कहा, "रात को आपका सुपुत्र कहीं जाकर मद्यपान करके आया है।"

"सन्देह तो मुझे भी हुआ था किन्तु जब यह सचेत हो तभी इस विषय में पूछा जा सकता है कि इसको मद्यपान का अवसर कहाँ मिला ?

"उज्जयिनी में तो यह कभी-कभी पान करता था। किन्तु यहाँ तो राजप्रासाद में मद्यपान ही जब वर्जित है तो यह किस प्रकार पान करने लगा, यह विस्मय की बात है।"

"यह रात को राजप्रासाद से बाहर रहा है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह किस प्रकार सम्भव है ?"

"यह इस प्रकार सम्भव हो गया कि यह राजकुमार है। अन्यथा कोई अन्य होता तो अबतक इसको राजप्रासाद के बुर्ज से नीचे गिराकर इसके टुकड़े कर दिये गये होते।"

"मैंने इसको इस विषय में बता दिया था।"

"हम समझते हैं कि इसको राजप्रासाद की पुष्करिणी में ले जाकर डुबकियाँ दिलायी जाएँ जिससे इसकी मादकता उतर जाय।"

"परन्तु इससे तो राजप्रासाद में हलचल मच जायेगी ?"

महाराज सोचने लगे। फिर बोले, "तुम इसको सचेत कर मध्याह्न के भोजन के समय साथ ले आना।"

महाराज वहाँ से चले गये। अपनी बैठक में पहुँचे तो देखा कि आचार्य सान्त्वनाकुमार वहाँ उनकी प्रतीक्षा में बैठे हैं।

महाराज ने आसनासीन होते हुए पूछा, "कहिये, किसी विशेष प्रयोजन से पधारे हैं ?"

"मैं जानना चाहता हूँ कि आपका वह पुरोहित यज्ञ पर चल रहा है क्या ?"

"आचार्यजी ! जहाँ देश-भर के ब्राह्मण एकत्रित हो रहे हैं वहाँ के विषय में आप पूछ रहे हैं कि क्या राज-पुरोहित भी जा रहा है ?"

"मेरा अभिप्राय उसके वहाँ ब्राह्मणों की भाँति जाने से नहीं है। मैं तो यह जानना चाहता हूँ कि क्या वह वहाँ आपके पुरोहित के नाते जायेगा ? मैं यह इस कारण पूछ रहा हूँ वहाँ पर यज्ञ में आपके पुरोहित का कार्य तो मैं करूँगा। अन्य सारा कार्य मेरे आश्रम के याज्ञिक करेंगे। इस कारण उसके वहाँ पर पुरोहित के रूप में जाने की आवश्यकता नहीं समझता।"

महाराज ने कहा, "पुरोहितजी की योजना थी कि पन्द्रह दिन तक यज्ञ होगा। उन पन्द्रह दिनों में प्रति सायंकाल यज्ञ के अवकाश के समय उन सब ब्राह्मणों को बुलाकर जो वहाँ निमन्त्रित हैं, सभाएँ की जायें और उन सभाओं में यज्ञ तथा उसके लिए मिलने वाली हवि के विषय में विस्तार से उनको समझाया जाय।"

"मैं समझता हूँ कि अधिकांश ब्राह्मण उससे अधिक ही जानते हैं। और फिर आपके पुरोहित का मत शास्त्र सम्मत नहीं होता। वह तो मानता है कि शास्त्र मनुष्यकृत होने से त्रुटिपूर्ण भी हो सकते हैं अतः ईश्वरकृत वेदों में जो वर्णित है वैसा ही कर्म होना चाहिए।"

"जी हाँ, हमारे पुरोहितजी मानते तो ऐसा ही हैं।"

"किन्तु वेद संहिताओं में तो यज्ञ के विषय में कुछ भी लिखा हुआ नहीं है।"

"तब यह सब क्यों किया जा रहा है ?"

"यह तो स्मृति शास्त्रों के अनुसार किया जा रहा है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु पुरोहितजी तो कहते हैं कि जो कुछ किया जा रहा है वह सब वेदानुसार किया जा रहा है ?"

"नहीं महाराज ! वह आपको ठग रहा है।"

"अच्छा, ठहरिये।"

यह कहकर महाराज ने ताली बजायी। ताली सुन प्रतिहारी भीतर आ गया। महाराज ने कहा, "तुरन्त पुरोहितजी के पास जाओ और उनसे निवेदन करो कि हमने स्मरण किया है।"

प्रतिहारी के जाने के आधा घड़ी के भीतर पण्डित शिवकुमार उपस्थित हो गये। शिवकुमार के हाथ में एक पत्र था। उसने कहा, "महाराज ! राज्य के न्याय-मूर्ति भृगुदेव ने यह पत्र मेरे पास भेजा है। मैं इसे आपको दिखाने के लिए आया हूँ क्योंकि इसका सम्बन्ध आपसे भी है।"

शिवकुमार ने पत्र महाराज को दिया और समीप बैठे आचार्यजी को देखा तो उनको प्रणाम कर उनके समीप ही वह भी बैठ गया।

महाराज ने पत्र पढ़ा। पत्र में औपचारिक कथन के उपरान्त लिखा था, "मेरे सम्मुख दो स्त्रियाँ और एक पुरुष उपस्थित किये गये हैं। स्त्रियाँ उज्जयिनी की वेश्यायें हैं और पुरुष उनका दलाल है। कल से ही इन तीनों ने मिलकर नगर के सभ्य नागरिकों के एक क्षेत्र में अपना वेश्यागार आरम्भ किया है। रात्रि को उस वेश्यागार में मद्य का सेवन और दुराचार होता रहा है।

"नगर सुभट्टों ने उन तीनों को बन्दी बनाकर मेरे पास भेजा है। पुरुष ने जो वक्तव्य दिया है उसके आधार पर मैं जानना चाहता हूँ कि रात जो व्यक्ति इनके पास गया है उसको पकड़ न्यायालय में बुलवाया जाय अथवा कि नहीं ?

"यदि आप उपयुक्त समझें तो इस विषय में महाराज से सम्मति कर सकते हैं। रात इनके पास रहने वाला व्यक्ति राजकुमार रामगुप्त था।

"मैंने उन दोनों युवतियों और दलाल को अभी तो बन्दीगृह में भेज दिया है। कल मैं उनके अपराध पर विचार करूँगा। यदि उन्होंने उस बात की पुष्टि कर दी जो कि सुभट्टों ने बतायी है तो फिर रामगुप्त को भी न्यायालय में उपस्थित करना पड़ जायेगा।

"कृपया सायंकाल से पूर्व इस विषय में अपनी, और सम्भव हो तो महाराज की सम्मति लेकर मुझे सूचित कीजिये।"

महाराज ने पत्र पढ़ा और फिर बोले, "पहले आचार्यजी की बात सुन लीजिये, पत्र के विषय में फिर बात करेंगे।"

शिवकुमार ने आचार्य की ओर देखकर पूछा, "क्या आज्ञा है आचार्यवर !"

"आज्ञा नहीं, मैं महाराज से कह रहा था कि जब हम यज्ञ कर रहे हैं तो फिर राजपुरोहित को वहाँ जाने की क्या आवश्यकता है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरी बात सुनकर महाराज ने आपको यहाँ बुलाकर इस विषय में जानने की इच्छा व्यक्त की है कि आप वहाँ जाकर क्या करना चाहते हैं ?"

शिवकुमार ने कहा, "वहाँ देश-भर के ब्राह्मणों से वार्त्तालाप का अवसर सुलभ होगा। मैं वहाँ ब्राह्मणों की सभायें आयोजित कर देश के सांस्कृतिक उत्थान के विषय में विचार-विनिमय करना चाहता था।"

"मैं इसकी आवश्यकता नहीं समझता।"

"तो आप महाराज को समझा दीजिये कि मेरे इस कार्य से किसी प्रकार की हानि होने वाली है। हानि भी बता दीजिये।"

"यही मैं आपको बता रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि आप सदृश अनुभवहीन व्यक्ति द्वारा इस प्रकार की चर्चा आरम्भ हो गयी तो समस्त देश में शास्त्रों पर टीका-टिप्पणी होनी आरम्भ हो जायेगी। यह यज्ञ के अवसर पर शोभायुक्त नहीं होगा। अतः मेरा आग्रह यही है कि आप ऐसा मत करिये। और जब यज्ञ सम्बन्धी सारा कार्य हमारे आश्रमवासी ही कर रहे हैं, तो उस अवधि में राजपुरोहित को अवकाश है।"

शिवकुमार ने महाराज से पूछा, "क्या यह ठीक है ?"

"इस विषय में हम कल कथा के समय बात करेंगे।"

"तथास्तु। तो अब मैं चलूं ?"

"जी हाँ। हमें एक अन्य विषय पर भी आपसे परामर्श करना था, वह भी हम कल उसी समय करेंगे। इस पत्र के विषय में हम पण्डित भृगुदत्त को बुलाकर उनसे विचार-विमर्श कर लेंगे।"

शिवकुमार वहाँ से चला आया। जब शिवकुमार गया तो महाराज ने आचार्य जी को कहा, "आप निश्चिन्त रहिये। यदि शिवकुमार गया तो वह वहाँ पर साधारण ब्राह्मण के रूप में ही जायेगा। आज से आप हमारे पुरोहित हैं और यज्ञ सम्पन्न होने तक आप ही हमारे पुरोहित रहेंगे।"

इस व्यवस्था से आचार्य सान्त्वनाकुमार सन्तुष्ट हो गये और वह महाराज को आशीर्वाद देकर अपने आगार में चले गये।

आचार्यजी के जाने पर महाराज ने प्रतिहारी को बुलवाया और उससे कहा कि वह न्यायमूर्ति पण्डित भृगुदत्त को बुलाकर लाये।

पण्डित भृगुदत्त ने जब पण्डित शिवकुमार को पत्र भेजा था तो उस समय से वह यही आशा कर रहा था कि महाराज उसको इस विषय में परामर्श के लिए बुलायेंगे। वह एक प्रकार से इस आज्ञा की प्रतीक्षा ही कर रहा था। पण्डित भृगुदत्त उसी समय महाराज के सम्मुख उपस्थित हो गया।

महाराज उस समय राम के विषय में चिन्ता करते हुए महारानी चन्द्रावती से वार्त्तालाप कर रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रावती का कहना था, "आप मगध के सम्राट हैं और इतनी छोटी-सी बात भी आप नहीं कर सकते ?"

महारानी ने भी यह मत व्यक्त किया था कि यदि पण्डित शिवकुमार का ब्राह्मणों में प्रभाव बढ़ रहा है तो उसको यज्ञ में न ले जाया जाये। पाटलिपुत्र मात्र के ब्राह्मणों के सम्पर्क में होने से जब उसमें इतनी सामर्थ्य आ गयी है तो वहाँ तो देशभर के ब्राह्मण एकत्रित होंगे।

महारानी की बात सुनकर महाराज ने विचार किया और फिर बोले, "परन्तु यदि वह अनुकूल हो जाय तो हमारा तथा हमारे परिवार का कल्याण भी कर सकता है।"

"यदि आप ऐसा ही समझते हैं तो फिर उसको साधारण ब्राह्मण की भाँति ले जाइये।"

"और राम का क्या करूँ ? कल रात वह दो वेश्याओं के पास रहा है। वहाँ जाकर उसने न केवल मद्यपान किया है अपितु वेश्यागमन भी किया है। यह सब सूचना यहाँ के मुख्य न्यायाधीश के पास पहुँच गयी है।"

"तो न्यायाधीश से कहिये कि वह इस विषय पर आपकी सम्मति ले ले।"

"परन्तु राम का साथी शेखर और वे दोनों वेश्यायें इस समय बन्दीगृह में हैं। उस ओर से तो आँखें नहीं मूँदी जा सकतीं ?"

"आप बुद्धिमान हैं। जन-जन की दृष्टि में उसे निन्दनीय मत होने दीजिये। इससे उसके युवराज बनने में बाधा उत्पन्न हो जायेगी।"

"मैं सोच रहा हूँ कि अभी उसको युवराज घोषित न किया जाय। वह तीन वर्ष तक यहाँ रहे और किसी योग्य विद्वान् से राजनीति की शिक्षा ग्रहण करे। तब फिर किसी अन्य महोत्सव के अवसर पर उसको युवराज घोषित कर दिया जायेगा।

"हमारी तथा किसी अन्य शिक्षक की देखरेख में तीन वर्ष तक शिक्षा ग्रहण किये बिना उसको युवराज घोषित कर देना भयंकर परिणाम भी ला सकता है।"

"यह सब क्या दत्तदेवी ने आपको समझाया है ?"

"नहीं, यह हमारा विचारित मत है।"

तभी बाहर से प्रतिहार ने न्यायमूर्ति के पधारने की घोषणा की। यह सुनकर महारानी उठी और आगार के पिछले द्वार से अपने आगार को चली गयी।

महाराज ने कहा, "पण्डितजी को भेज दो।"

पण्डित भृगुदत्त ने प्रवेश किया तो महाराज ने उन्हें देख कहा, "आइये पण्डित जी, पधारिये। आप तो तुरन्त ही आ गये।"

"जी महाराज ! राजकुमार रामगुप्त का मित्र शेखर तो तनिक भी संकट सहन नहीं कर पाया। सहज ही उसने बता दिया कि वह राजकुमार रामगुप्त का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्र है और उसकी इच्छानुसार ही उसने इन स्त्रियों के यहाँ पहुँचने में सहायता की है।

"मुझे तो भय है कि वह बन्दीगृह में भी इस बात को विख्यात कर रहा होगा। मैं इस विषय में तुरन्त निर्णय चाहता था।"

"आप क्या करना चाहते हैं ?"

"राज्य का नियम है कि पाटलिपुत्र तथा इसके चारों और बीस कोस की परिधि में न तो कोई मद्यपान कर सकता है, न वेश्यागमन और न स्त्री-पुरुषों का क्रय-विक्रय ही कर सकता है। इनमें से कोई एक भी अपराध करने वाले को दस वर्ष के कठोर करावास का दण्ड विधान है।"

"यह तो बड़ा कठोर है।" महाराज ने कहा।

भृगुदत्त चुप रहा। महाराज ने फिर कहा, "देखिये, हम यहाँ के सम्राट् हैं अतः न्यायाधीश के निर्णय पर हम दया भाव भी दिखा सकते हैं।

"अतः हम चाहते हैं कि आप चारों अभियुक्तों का दण्ड घोषित कर दीजिये तब हम अपनी दया पर दण्ड को कम करने का विचार करेंगे।"

भृगुदत्त अपना लिखित निर्णय अपने साथ ही लाया था। उसने अपना निर्णय महाराज के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया।

निर्णय में लिखा था, "उज्जयिनीवासिनी वेश्यायें राधा और सुमति तथा उनके साथी शेखर एवं उनके साथ वेश्यागमन करने वाले रामगुप्त को मद्यपान और व्यभिचार के सश्रम में दस-दस वर्ष के सश्रम कारावास का दण्ड दिया जाता है।"

महाराज ने न्यायाधीश की आज्ञा पढ़ी और फिर उसके नीचे लिख दिया, "अभियुक्तों का प्रथम अपराध समझ हम आज्ञा देते हैं कि रामगुप्त को सर्वथा अपराध मुक्त किया जाय क्योंकि उसको दूसरों की साक्षी पर दण्ड दिया जा रहा है। उसे मद्यपान अथवा वेश्यागमन करते नहीं पाया गया है। तदपि उसे सचेत कर दिया जाना चाहिए। शेष तीनों अपराधियों को राज्य की देख-रेख में वापस उज्जयिनी भेज दिया जाय। उन तीनों को सचेत कर दिया जाय कि यदि उनको पुनः पाटलिपुत्र में इस प्रकार पकड़ा गया तो तब उनको प्राणदंड दिया जायेगा।"

पण्डित भृगुदत्त यह आज्ञा-पत्र लेकर वहाँ से चला गया।

न्यायाधीश के कार्यालय से इस दण्ड-व्यवस्था पर कार्यारम्भ हुआ।

राम न्यायाधीश की आज्ञा और उस पर महाराज का क्षमादान देखकर चकित रह गया। न्यायाधीश के कार्यालय से प्राप्त आज्ञा-पत्र को लेकर वह अपनी माता के समीप गया।

माता ने उस आज्ञा-पत्र को पढ़ा तो कह दिया, "राम! पिताजी के पास जाकर उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु माँ ! मैं तो इस अपराध का अपराधी ही नहीं हूँ ?"

"राम ! अपराधी तो तुम हो। मद्य के प्रभाव से अचेत तो तुमको स्वयं महाराज ही देखकर गये हैं। रात तुम्हारे पीछे-पीछे प्रासाद का गुप्तचर उस मकान तक गया जहाँ तुम गये थे। उसने ही यह रहस्योद्घाटन किया है।"

राम यह सुनकर माँ का मुख देखता रह गया।

महारानी चन्द्रावती ने उसे समझाते हुए कहा, "राम ! यदि इस समय थोड़ा-सा भी संयम दिखाओगे तो तुम्हें भारत का भावी साम्राज्य मिल सकता है।"

राम चुपचाप वहाँ से उठा और अपने आगार में चला गया।

: ५ :

अगले दिन नित्य की भाँति महाराज और दत्तदेवी पण्डित शिवकुमार की यज्ञ-शाला में महाभारत की कथा सुनने के लिए गये। शिवकुमार महाभारत में से गीता पर विवेचना कर रहा था।

कथा समाप्त होने पर महाराज ने कहा, "हमने यहाँ से पत्र भेजकर आचार्य सान्त्वनाकुमारजी को बुलवाया है। हमारी इच्छानुसार ही वे अपने आश्रम से एक सौ एक याज्ञिक ब्राह्मणों को लेकर आये हैं। इसलिए हम उनके द्वारा यज्ञ कराये जाने पर विवश हैं क्योंकि हम वचनवद्ध हैं।

"आप दोनों में परस्पर मतभेद है। वह यज्ञ के प्रत्येक विधि-विधान पर बल देते हैं और आप कार्य के उद्देश्य की ओर ध्यान देते हैं। आप विधि-विधान को अधिक महत्त्व नहीं देते।

"इस मतभेद के कारण हमने यही उचित समझा है कि अपने स्थायी पुरोहित को अश्वमेध यज्ञ पर न ले जायें और यह पुरोहित का कार्य आचार्य सान्त्वनाकुमार से ही करावाएँ।"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं कब से स्वयं को कार्यमुक्त समझूँ ?" पण्डित शिवकुमार का प्रश्न था।

"हम आज से तीसरे दिन प्रयागराज के लिए प्रस्थान करेंगे। उस दिन से आरम्भ कर यज्ञ की पूर्णाहुति तक आचार्य जी हमारे पुरोहित रहेंगे।

"हाँ, यदि आप चाहें तो साधारण नागरिक के नाते यज्ञ देखने के लिए प्रयाग आ सकते हैं।"

"मेरी कुछ और ही इच्छा है।"

"क्या ?"

"मैं अपने परिवार सहित अपने पैतृक ग्राम को जाना चाहता हूँ। मेरी पत्नी की भी प्रबल इच्छा है कि वह अपने माता-पिता से भेंट करे।"

"उनके माता-पिता यज्ञ पर नहीं आ रहे हैं क्या ?"

"हमें इसकी कोई सूचना नहीं है। इसका अभिप्राय तो यही हुआ कि वे नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ रहे हैं।"

"वहाँ से कब तक लौटने का विचार है ?"

"मेरी इच्छा दो मास के लिए जाने की है। तदपि बीच में आवश्यकता पड़े तो सूचित करवा दीजिये, मैं उपस्थित हो जाऊँगा।"

"हम परसों फाल्गुन कृष्णा दशमी को चलकर त्रयोदशी को प्रयागराज पहुँच जायेंगे। फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा से यज्ञारम्भ होगा जो पूर्णिमा तक चलेगा। उस दिन पूर्णाहुति के उपरान्त पाँच दिन तक दान-दक्षिणा का कार्य होता रहेगा। हम चैत्र शुक्ला दशमी तक वापस राजधानी पहुँच जायेंगे। आचार्य सान्त्वनाकुमार को यहीं से विदा करेंगे। उसमें भी पाँच दिन लग ही जायेंगे। तदुपरान्त आपको आ जाना चाहिए।"

"महाराज! यत्न करूँगा। क्योंकि मैं भी पाँच वर्ष उपरान्त घर जा रहा हूँ, इस कारण वहाँ से चलते समय कुछ विलम्ब हो सकता है। यदि विलम्ब हुआ तो उसकी सूचना भेज दूंगा।"

"ठीक है।"

इस प्रकार बात सहज ही सुलझ जाने से महाराज और महारानी दोनों ही प्रसन्न थे।

शिवकुमार ने अपने मन में इस यज्ञ की जो कल्पना की थी उसके पूर्ण होने की कोई सम्भावना नहीं थी। आचार्य सान्त्वनाकुमार के आने पर तो उसके मनो-मस्तिष्क पर बड़ा भारी बोझ-सा पड़ गया था। उसको इस प्रकार हलका होते देख उसने अपने ग्राम वापस जाने की तैयारी आरम्भ कर दी।

चन्द्रमुखी ने कहा, "महामात्य और उनकी पत्नी को इसकी सूचना भेज देनी चाहिए।"

"मैं विचार कर रहा हूँ कि मंगला पहुँच कर वहाँ दस दिन रहने के उपरान्त में उज्जयिनी चला जाऊँगा। मैं आशा करता हूँ महामात्य तबतक वहाँ पहुँच चुके होंगे।

"उज्जयिनी में उनसे परामर्श कर निर्णय करूँगा कि मुझे वापस पाटलिपुत्र आना चाहिए अथवा कि नहीं। यदि लौटना ही निश्चय हुआ तो उसमें भी पाँच-छः मास तो लग ही जायेंगे।

"यहाँ से अपने वस्त्र और अपनी सम्पत्ति तो ले चलनी ही चाहिए। अन्य कुछ ले जाने की आवश्यकता नहीं है। दान-दक्षिणा से प्राप्त धन से जो सामग्री क्रय की है उसे भी यहीं छोड़ दूंगा।"

"ठीक है, बहुत बोझा उठाकर क्या करना है। फिर अपने मकान में उस सबको रखने के लिए स्थान भी कहाँ है ?"

उस दिन के बाद दो दिन तक और भी महाभारत की कथा होती रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तिम दिन महाराज के साथ आचार्य सान्त्वनाकुमार, महारानी चन्द्रावती और रामगुप्त भी आये। रामगुप्त के मुख पर सन्तोष और विजय के चिह्न प्रकट हो रहे थे। चन्द्रावती ने कहा, "पुरोहितजी ! राम की इच्छा है कि यदि आप यज्ञ के दिनों में प्रयागराज चलें तो राम वहीं पर स्वयं को आपका शिष्य बना लेगा। यज्ञ के दिन से आप उसके गुरु बन जायेंगे और फिर कभी यदि ईश्वर को स्वीकार हुआ तो वह सम्राट् बना तो आपको महामात्य पद पर अवश्य नियुक्त करेगा।"

शिवकुमार ने हाथ जोड़ निवेदन करते हुए कहा, "महारानीजी ! अब तो मैंने अवकाश के दिनों में अपने गाँव जाने का प्रबन्ध कर लिया है। मैंने सब व्यवस्था कर ली है। पत्र भी भेज दिया है कि अमुक दिन हम लोग वहाँ पहुँच जायेंगे।"

पत्र का नाम सुन महाराज ने पूछा, "पत्र किस प्रकार भेजा है ?"

"सेठ घनश्याम बाटक का हरकारा कल यहाँ से जाने वाला था। वह हस्तिनापुर को जा रहा था। मैंने उसको पत्र दे दिया है और कह दिया है कि वह वहाँ के आयुक्त के माध्यम से उसे मेरे श्वसुर के पास भिजवा दे।"

"तो आप यज्ञ पर नहीं चल रहे ?" चन्द्रावती ने पूछा।

"जी नहीं।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि जो यज्ञ वहाँ हो रहा है, वह मेरे मन की कल्पना नहीं है।"

"यदि आप पुरोहित होते तो वह कल्पना पूर्ण हो जाती ?"

"कम-से-कम मेरा यत्न तो यही होता कि वह पूर्ण हो। साधारण नागरिक के नाते तो मैं उसमें किसी प्रकार का हेर-फेर कर नहीं सकता।"

आचार्य सान्त्वनाकुमार बोले, "शिवकुमारजी ! सब कुछ तो आपके द्वारा निर्धारित विधि-विधान के अनुसार ही हो रहा है। अब उसमें क्या त्रुटि रह गयी है ?"

"नहीं आचार्यवर ! एक ही उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायेगी। आपने अश्व की बलि चढ़ाने का विधान किया है। मैं यदि आपके स्थान पर होता तो यह बलि न हो पाती। आपने उस बलि के अश्व के मांस को पकाकर यजमान को खिलाने का विधान किया है। मैं ऐसा कभी भी न होने देता।"

"परन्तु ऐसा शास्त्र में लिखा है।"

"ऐसा जिस शास्त्र में लिखा है मैं उसे शास्त्र ही नहीं मानता। तदपि यदि आप मुझसे अधिक ज्ञान का दावा करते हैं तो किसी विद्वान् के सम्मुख दोनों का परस्पर शास्त्रार्थ हो जाय।

"अश्वमेध यज्ञ का अश्व वह अश्व नहीं जो हवि एकत्रित करने के लिए भेजा जाता है। अश्व परमात्मा का नाम है। वही यज्ञ को सम्पन्न करने के लिए आहूत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाता है। उसकी बलि किसी प्रकार भी नहीं हो सकती।"

"और यह अश्व क्या है?"

"महाराज की पताका उठाकर ले जाने वाला चोबदार। मैं इससे अधिक उसका कोई महत्त्व नहीं समझता। तदपि महाराज की पताका फहराने वाले की हत्या का भी कहीं विधान नहीं है।

"शास्त्र में जहाँ बलि शब्द आया है, वहां उसका अभिप्राय हत्या नहीं है। हवि का वह भाग जो हवन में प्रयुक्त होता है उसे बलि कहते हैं। उसका अवशेष यजमान के प्रयोग में आता है। अश्व न तो हवि है और न ही उसकी आहुति दी जाती है।

"परन्तु आचार्यवर! आप तो मानेंगे नहीं, तदपि मैं शास्त्रों के माध्यम से अपनी विवेचना का प्रमाण प्रस्तुत करूँगा। परन्तु सत्यासत्य का निर्णय तो किसी योग्य विद्वान् के सम्मुख ही होना चाहिए। तभी इसका लाभ है।"

महाराज ने इस विवाद को समाप्त करते हुए कहा, "ठीक है पुरोहितजी! आपको दो मास का अवकाश है। मैं अपने यज्ञ में किसी वाद-विवाद का झमेला नहीं मोल लेना चाहता।"

इसका स्पष्ट अभिप्राय यही था कि अब शिवकुमार को इस विषय में अधिक कुछ नहीं कहना चाहिए।

शिवकुमार ने कहा, "ठीक है। मैं आज से कार्यमुक्त हूँ और आज ही अपने ग्राम के लिए प्रस्थान कर रहा हूँ।"

"घर से लौटने पर हम इस विषय पर आपसे बात करेंगे।"

शिवकुमार ने आचार्य को प्रणाम कर कहा, "आचार्यजी! बालक की घृष्टता क्षमा कर दीजिए। इन शास्त्रीय विषयों पर मतभेद तो वाद-विवादों द्वारा ही निश्चय हुआ करते थे। ये वाद-विवाद अनन्तकाल तक होते रहेंगे।"

महाराज ने भी वहाँ से चल देना ही उपयुक्त समझा। शिवकुमार सबको अपने द्वार तक छोड़ने गया।

चन्द्रमुखी नहीं उठी। वह वहीं अपने पति की प्रतीक्षा कर रही थी। पति को आया देख उसने कहा, "देव! मैं तो समझती हूँ कि हमें तुरन्त यहाँ से चल देना चाहिए।"

शिवकुमार ने भी एक क्षण विचार किया और कह दिया, "अभी चलने में भी कोई हानि नहीं। कदाचित् लाभ ही हो। यदि चाहो तो चल सकती हो। मैं नरसिंह देव को भेजकर रथवान को बुलवा लेता हूँ।"

"ऐसे नहीं। हम यहाँ से तुरन्त गंगाघाट पर चलते हैं। रथ को वहीं पर बुलवाइये। हमारा सामान तो बहुत थोड़ा-सा है, वह हम सेवक से उठवाकर गंगाघाट तक ले चलेंगे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवकुमार ने अपनी पत्नी की योजना में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं पायी। तदनुसार ही उसने नरसिंहदेव को आदेश दिया और अपनी दो पोटलियाँ उठाकर वे गंगाघाट की ओर चल दिये।

दो घड़ी बाद जब रथ गंगाघाट पर पहुँचा तो शिवकुमार सपरिवार उसपर सवार हो पश्चिम की ओर प्रस्थान कर गया।

इस प्रकार चलते हुए वे आठ दिन में अपने ग्राम में पहुँच गये।

जिस समय शिवकुमार अपने परिवार सहित मंगला पहुँचा उसका श्वसुर भी उसी समय हस्तिनापुर से लौटा था। उसने कहा, "मुझे तुम्हारा पत्र आज ही मिला है। परन्तु उसके अनुसार तो तुम दो दिन बाद पहुँचने वाले थे। आज कैसे पहुँच गये ?"

"बस, जब आने का विचार दृढ़ हो गया तो फिर विलम्ब करना उचित नहीं समझा। रथ की गति तीव्र करवा ली थी।"

वृहस्पति रथ से उतरकर अपने नाना का द्वार खटखटा रहा था। उसे देख उसके नाना ने कहा, "अरे वृहस्पति ! अब तो तुम शिशु नहीं कुमार हो गये हो।" इस प्रकार उसने उसको अपनी गोद में उठा लिया।

"हाँ पिताजी ! मैं अष्टाध्यायी समाप्त कर अब वेदाध्ययन करने लगा हूँ।"

"ओह ! क्या आयु है तुम्हारी ?"

"यह तो माताजी ही बता सकती हैं।"

"बहुत सुन्दर ! पीछे देखने वाले आगे नहीं बढ़ सकते। तुम्हें उन्नति करते देख मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है।"

तभी नाना ने छोटे सूर्य को देखा तो बोले, "सूर्य ! तुम मुझे पहचानते हो ?"

"पहचानता तो नहीं। किन्तु अब समझ गया हूँ कि आप हमारे नाना हैं।"

"ठीक, और यह बिल्ली कौन है ?" उसने कन्या की ओर संकेत दिया।

"यह माताजी की लाड़ली बेटी कृष्णा है।"

तबतक द्वार खुल गया था। चन्द्रमुखी की माँ तथा भाभी द्वार पर खड़ी थीं। भाभी के दो बच्चे भी साथ ही थे।

जब से शिवकुमार पाटलिपुत्र गया था तभी से उसका मकान बन्द पड़ा था। उसका परिवार पहले पण्डित ईश्वरकृष्ण के ही मकान में ठहरा।

गाँव वालों को जब पता चला कि मगध सम्राट् का पुरोहित पण्डित शिवकुमार आया है तो फिर उसके घर पर भीड़ एकत्रित हो गयी।

जो पूर्व परिचित थे वे शिवकुमार के पास जाकर उसका यथोचित अभिवादन करते और जो नहीं पहचानते थे वे दूर से ही नमस्कार कर लेते थे। ऐसा लग रहा था कि मानो कोई विचित्र प्राणी उस गाँव की धरती पर उतर आया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बात को समझकर सभी गौरवान्वित अनुभव कर रहे थे कि उनके गाँव का नाम उज्ज्वल करने वाला व्यक्ति आज उनके मध्य में है।

इस प्रकार दिन-भर लोगों का आना-जाना लगा रहा। रात के भोजनोपरान्त ही अपने श्वसुर आदि के सम्मुख अपनी स्थिति स्पष्ट करने का अवसर शिव को सुलभ हुआ। उसने कहा, "पिताजी! अपने विचार से तो मैं सदा के लिए पाटलिपुत्र को छोड़कर आ गया हूँ। मुझे वह स्थान सुखकर नहीं रहा। वहाँ मान-प्रतिष्ठा तो सब प्राप्त थी, परन्तु जो कुछ भी था वह सब दिखावा मात्र था।

"वहाँ सब के हृदय में स्वार्थ-भावना खेला करती है। उसी दृष्टि से वे मेल-जोल रखते हैं।

"उस बीहड़ वन में भी एक बुद्धिमान सज्जन मुझे मिले थे किन्तु वे भी उस वन को छोड़कर चले गये हैं।"

इसके बाद विस्तार से शिवकुमार ने अपने वहाँ से चले आने का सारा वर्णन कर दिया।

पण्डित ईश्वरकृष्ण ने कहा, "अर्थोपलब्धि की बात तो तुमने बतायी ही नहीं?"

"उस दृष्टि से तो वहाँ जाना सफल ही रहा है। वहाँ पहुँचने के चार दिन के भीतर ही मैं पुरोहित पद पर नियुक्त हो गया था। समय-समय पर दान-दक्षिणा के रूप में स्वर्ण मुद्रायें मिलती रहती थीं। महाराज के जन्म-दिवस के अवसर पर एक सौ स्वर्ण मिला करता था।

"महाराज के अतिरिक्त भी अन्य अनेक सेठों के यहाँ भी यज्ञादि करवाने पर पर्याप्त दक्षिणा मिलती रही है। आपके आशीर्वाद से इतना तो एकत्रित हो गया है कि वीस वर्ष तक निश्चिन्त होकर जीवन बिता सकता हूँ।

"सब धन देते थे, सम्मान करते थे, किन्तु उस सबके पीछे स्वार्थ ही छिपा रहता था।"

"यह तो सभी नगरों में होता है। नगरों में धन तो बहुत है परन्तु जीवन-निर्वाह की कठिनाई है। यही कारण है कि नगर-निवासी स्वभावतया स्वार्थी हो जाते हैं।"

"इसका कोई उपाय नहीं है?"

"एक ही उपाय है कि सब नगरों को गिराकर वहाँ पर हल चला दिये जाएँ और उन नगर-निवासियों को कहा जाय कि अपने निर्वाह के लिए अन्नादि स्वयं उत्पन्न करो।"

यह सुन शिवकुमार हँस पड़ा। बोला, "यह तो अब असम्भव है। किन्तु इसके अतिरिक्त भी उपाय हो सकता है।"

"क्या?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उदाहरण के रूप में एक वृहद् आयोजन किया जाय। उससे इस देश में घुसने वाले और हमारे आचार-व्यवहार को न मानने वाले शकों को देश से बाहर खदेड़ दिया जाय।"

"इसका नगरों में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनाचार, अत्याचार, व्यभिचार से क्या सम्बन्ध है ? अर्थात् इससे वह किस प्रकार दूर होगा ?"

"यह तो उस प्रयास का पूर्वरूप होगा। इसके उपरान्त दूसरा पग होगा वर्तमान ब्राह्मण वर्ग को शूद्र घोषित करना और उनमें जो गुण, कर्म, स्वभाव से ब्राह्मण हों उनको ब्राह्मण पद प्रदान किया जाय।

"इसका तीसरा चरण होगा, फिर वास्तविक अर्थों में महाराज से पुनः अश्व-मेध यज्ञ कराया जाय और समस्त भारत का राज्य ब्राह्मण वर्ग में बाँट दिया जाय।

"इसका अन्तिम चरण यह होगा कि वे ब्राह्मण स्वयं तो शासन चलाने में कुशल होंगे नहीं। वे अपने-अपने क्षेत्र के शौर्यवान किसी क्षत्रिय को अपने राज्य का नरेश घोषित कर उसको राज्य सौंप देंगे।

"इसका परिणाम यह होगा कि भारतवर्ष पुनः आर्यावर्त्त हो जायेगा। छोटे-छोटे राज्य होंगे। वहाँ राजा और प्रजा में परस्पर स्नेह का सम्बन्ध होगा। वे एक-दूसरे को जानते होंगे। तब न तो ब्राह्मण, न क्षत्रिय और वैश्य ही किसी प्रकार की उच्छृंखलता कर पायेंगे।"

ईश्वरकृष्ण विचार कर रहा था कि यदि यह हो गया तो उसको ब्राह्मण माना जायेगा अथवा कि नहीं और यदि हस्तिनापुर के सब ब्राह्मणों को हस्तिनापुर की भूमि दान में मिल जाय तो वे किसी को राजा बनाकर वह भूमि उसे धरोहर रूप में सौंप देंगे अथवा कि नहीं।

यदि नहीं सौंपेंगे तो वे इसका क्या करेंगे ?

इस प्रकार कितनी ही देर तक पण्डित ईश्वरकृष्ण के मन में संकल्प-विकल्प उठते रहे। उसको अपने निष्कर्ष पर पहुँचने में बहुत समय लगा।

अन्त में पण्डित ईश्वरकृष्ण ने कहा, "यह भी सम्भव नहीं है। इस प्रबन्ध को न तो ब्राह्मण स्वीकार करेंगे और न क्षत्रिय ही। वैश्य भी कदाचित् नहीं स्वीकार करेगा।"

इस प्रकार यह बात यहीं समाप्त हो गयी।

: ६ :

शिवकुमार एक मास तक अपने गाँव में रहा। इस अवधि में वह अपने परि-चितों और सम्बन्धियों से मिलता-जुलता रहा। वह हस्तिनापुर भी गया। हस्तिना-पुर का आयुक्त यज्ञ में भाग लेने के लिए गया हुआ था। शिवकुमार उसके पास जाकर उसको बताना चाहता था कि महामात्य हरिषेण के नाम जो उसने परिचय पत्र दिया था, उसका क्या प्रभाव हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक मास उपरान्त जब आयुक्त भीमपालसिंह प्रयागराज से लौटा तो वह उससे मिलने के लिए पुनः हस्तिनापुर जा पहुँचा।

हस्तिनापुर पहुँचकर जब पण्डित शिवकुमार ने राजप्रासाद में अपने पहुँचने की सूचना भेजी तो उसको तुरन्त बुला लिया गया। भीतर पहुँच पण्डित शिवकुमार ने भीमपालसिंह को आशीर्वाद दिया।

भीमपालसिंह ने उसका स्वागत करते हुए कहा, "पधारिये पुरोहितजी! विराजिये।"

शिवकुमार बैठ गया। आयुक्त ने पूछा, "आप पाटलिपुत्र कब जा रहे हैं ?"

"मेरा तो वहाँ जाने का कोई विचार नहीं है।"

"परन्तु मुझे तो आदेश हुआ है कि मैं हस्तिनापुर पहुँचते ही आपके पाटलिपुत्र प्रस्थान की व्यवस्था कर दूं।"

"मेरे हाथ-पैर बाँधकर प्रस्थान करायेंगे क्या ?"

"नहीं महाराज! ऐसी बात नहीं है। मगध सम्राट् दे मुझे बुलाकर स्वयं कहा था कि आप किसी प्रकार उनसे रुष्ट होकर गाँव को चले गये हैं। वे आपको महामात्य बनाना चाहते हैं।

"उन्होंने यह भी कहा कि आचार्य सान्त्वनाकुमार भी किसी कारण रुष्ट होकर यज्ञ समाप्ति से पूर्व ही वहाँ से चले गये थे। अपने साथ वह अपने याज्ञिकों को भी लेता गया। यज्ञ का शेष कार्य पण्डित विभूतिचरण और पण्डित हरिषेण के सहयोग से ही सम्पन्न हुआ है। यज्ञ की दान-दक्षिणा बाँट दिये जाने के उपरान्त राज्य का कोष रिक्त हो गया है। इस कारण उन्हें किसी योग्य महामात्य की आवश्यकता है। पण्डित हरिषेण तो यज्ञ समाप्त होते ही चले जाने की बात कर रहे थे।"

"मैं महाराज से रुष्ट नही हूँ। और फिर यजमान पुरोहित के मध्य कुछ सांझा तो होता नहीं, तब फिर रूठने का कोई कारण ही नहीं।

"तदपि, मैं यहाँ से पहले उज्जयिनी जा रहा हूँ। वहाँ जाने के बाद यदि मेरी पत्नी को मान्य हुआ तो पाटलिपुत्र जायेंगे अन्यथा नहीं। और वहाँ जाने पर भी मैं पुरोहित ही रहना चाहूँगा, महामात्य नहीं बनना चाहता।"

"यही तो रूठना है।"

"नहीं, यह रूठना नहीं। मैंने महाराज को भी बताया था कि महामात्य राज्य का कर्मचारी होता है। वह वेतनभोगी होता है। मेरे सदृश विचारों वाला ब्राह्मण राज्य का वेतनभोगी सेवक नहीं बन सकता।"

भीमपाल बोला, "यह उन्होंने कहा था। उनका विचार था कि वे आपको अवैतनिक महामात्य नियुक्त करेंगे। तदपि आपका सारा व्यय भार राज्य पर होगा। आपके राजपुरोहित बनने पर जिस प्रकार होता था इस समय भी ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही होगा। आपका कोई वेतन नहीं था। समय-समय पर यज्ञ-अनुष्ठानादि के अवसर पर आपको दक्षिणा दी जाती थी और आपके भोजन-निवास आदि की व्यवस्था राज्य करता था, उसी प्रकार कुछ इस बार भी किया जायेगा।

"मुझसे कहा गया है कि मैं यह सब आपको बता दूं।"

"मैं कल उज्जयिनी के लिए जा रहा हूँ। वहाँ मुझे पण्डित हरिषेण से कुछ कार्य है। वहाँ पहुँचकर यदि मेरी पत्नी की सम्मति हुई तो हम पाटलिपुत्र जायेंगे, फिर वहाँ पर किसी प्रकार के कार्य की बात मैं स्वयं महाराज से मिलकर निश्चय करूंगा।

"आप परसों पाटलिपुत्र के लिए पत्र भेजियेगा। तबतक मैं यहाँ से पचास कोस दूर निकल जाऊँगा और आपको भी यह लिखने में कठिनाई नहीं होगी कि मैं यहाँ से उज्जयिनी के लिए जा चुका हूँ।"

"जैसा आप उचित समझें। वैसे मैं समझता हूँ कि अब पाटलिपुत्र में इतनी अव्यवस्था होने वाली है कि उसके दुष्परिणामस्वरूप भारत पर पुनः विदेशियों का आक्रमण हो जाय तो इसमें अब विस्मय करने की बात नहीं है।"

शिवकुमार ने पूछा, "यज्ञ में विघ्न क्यों पड़ा था ?"

"सारी बात तो विदित हो नहीं पायी। इतना पता है कि दोनों समय के यज्ञ में महाराज के साथ उनकी पहली रानी बैठती थीं। जब यज्ञ के तीन दिन शेष रह गये तो देखा गया कि ब्राह्मण के स्थान पर पण्डित विभूतिचरण बैठे हैं और याज्ञिकों का स्थान पाटलिपुत्र के कर्मकाण्डी ब्राह्मणों ने ले लिया है।

"इसके अतिरिक्त महारानी चन्द्रावती के स्थान पर उस दिन महारानी दत्त देवी बैठी थीं। रामगुप्त नित्य ही महाराज के पीछे बैठता था। उस दिन के बाद उसको वहाँ नहीं देखा गया।

"यज्ञ समाप्त होने पर घोड़े की बलि नहीं दी गयी। उसको जंगल में स्वतन्त्र छोड़ दिया गया और फिर एक स्थान पर उसके आराम से रहने का प्रबन्ध कर दिया गया है।

"यज्ञोपरान्त दान-दक्षिणा बाँटने के लिए पण्डित चतुरानन मिश्र नियुक्त किये गये थे। उन्होंने मुक्त हस्त से ब्राह्मणों को दक्षिणा दी।

"महाराज का कहना था कि पूर्ण राजकोष ही दान कर दिया गया है।"

यह वृतान्त सुनने पर शिवकुमार यही अनुमान लगा पाया कि अश्व की बलि देने के विषय पर आचार्य सान्त्वनाकुमार से विवाद उठ पड़ा होगा। उससे वह रुष्ट होकर जाने लगा होगा तो उसके सब साथी भी चल दिये होंगे।

परन्तु महारानी चन्द्रावती भी वहाँ दिखायी नहीं दी, इससे यह प्रकट होता है कि कोई बहुत बड़ी बात हुई है। इसके कारण सब कार्यक्रम उथल-पुथल हो गया होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे उज्जयिनी जाकर पण्डित हरिषेण से पूर्ण वृतान्त जानने की उसके मन में उत्कट अभिलाषा होने लगी।

शिवकुमार हस्तिनापुर से लौटा और उसने सारा विवरण जब अपनी पत्नी चन्द्रमुखी को बताया तो उसका भी यही कहना था कि उन्हें सीधे उज्जयिनी जाना चाहिए। बीच में तीर्थाटन का जो कार्यक्रम है उसे स्थगित कर देना चाहिए।

शिवकुमार ने हस्तिनापुर से एक रथ क्रय किया। उन दिनों यात्रा का यही प्रबन्ध था। रथ तो यात्री का अपना होता था और उसके लिए अश्व पड़ाव से पड़ाव तक के लिए किराये पर ले लिये जाते थे।

इस प्रकार प्रबन्ध करता हुआ शिवकुमार मंगला से चला और बीस दिन के भीतर वह उज्जयिनी पहुँच गया।

मध्याह्नोत्तर शिवकुमार का रथ पण्डित हरिषेण के घर जा पहुँचा। उसने ज्यों ही द्वार खटखटाया कि सर्वभाष द्वार खोलने निकला।

द्वार खोलकर सर्वभाष ने द्वार पर गुरुजी को खड़ा देखा तो वह लपककर बढ़ा और उनके चरण-स्पर्श किये। फिर कहने लगा, "पिताजी आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। किन्तु अभी नहीं, लगभग एक पखवाड़े तक।"

"अब तो आ ही गया हूँ। कहो तो वापस जाकर एक पखवाड़े बाद आऊँ?"

सर्वभाष हँस पड़ा। बोला, "गुरुजी! मेरा यह तो अभिप्राय नहीं था। चलिये भीतर चलिये।"

इस प्रकार वह सबको भीतर ले गया। वृहस्पति को देख सर्वभाष कहने लगा, "वृहस्पति! पहचाना नहीं?"

एकाएक वृहस्पति ने सर्वभाष को देखा तो वह लपककर उसके गले मिला। सर्वभाष ने उसको प्यार से गले लगाया।

सर्वभाष को द्वार खोलने जाते देख किन्तु भीतर वापस न आते देख सर्वभाष की बहिन कालिन्दी भी बाहर देखने के लिए आ गयी। उसने पण्डित शिवकुमार के परिवार को देखा तो उलटे पाँव भीतर भागी जिससे कि सबसे पहले वह उनके आने की सूचना दे।

शिवकुमार आदि प्रांगण तक ही पहुँच पाये थे कि भीतर से गंगादेवी, कालिन्द के साथ-साथ पण्डित हरिषेण भी बाहर निकल आये।

पण्डित हरिषेण को सामने देख शिवकुमार उनके चरण-स्पर्श करने के लिए झुका तो उन्होंने उसे उठाकर गले लगा लिया।

इस प्रकार परस्पर प्रणामाशीर्वाद आदि के उपरान्त सब भीतर पहुँच गये।

भीतर पहुँच पण्डित हरिषेण ने पूछा, "कब के चले हो और आज प्रातः कब चले थे?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ग्राम से चले तो बीस दिन हो गये हैं। प्रातःकाल मुँह अन्धेरे ही चल दिये थे। हमें उज्जयिनी पहुँचने की उत्सुकता थी। इसलिए पिछले पड़ाव पर रुककर विश्राम करने की अपेक्षा हमने यहाँ पहुँचकर विश्राम करना अधिक उपयुक्त समझा। इसलिए वहाँ रुके ही नहीं, सीधे चलते ही रहे।"

पण्डित हरिषेण ने अपने सेवक को बुलाकर सबके स्नान आदि तथा फिर भोजन आदि की व्यवस्था के लिए कह दिया।

जब तक चन्द्रमुखी और बच्चे आदि स्नान कर रहे थे तब तक पण्डित हरिषेण शिवकुमार को अपनी बैठक में ले गये और उसको यज्ञ का वृत्तान्त सुनाने लगे।

हरिषेण ने कहा, "महाराज जब भारद्वाज आश्रम प्रयागराज पहुँचे तो पहले दिन ही मुझे विदित हुआ कि आप यज्ञ पर न आकर अपने गाँव चले गये हो। मैंने महाराज से इसका कारण पूछा था।

"महाराज ने मुझे अपने शिविर में सबसे पृथक् ले जाकर बताया कि आचार्य सान्त्वनाकुमार नहीं चाहते थे कि आप आओ। उनका कहना था कि उसको यज्ञ में पौरोहित्य के लिए बुलाया गया है और फिर शिवकुमार यज्ञ के विधि-विधान भी ठीक प्रकार से नहीं जानता है। इस कारण वे उसकी उपस्थिति उचित नहीं समझते। वहाँ व्यर्थ में विवाद उठ खड़ा हो सकता है।

"उसका परिणाम यह हुआ कि यज्ञ की अवधि के लिए महाराज ने आपको अवकाश दे दिया। महाराज बोले कि जब अन्तिम दिन वे कथा सुनने के लिए आपके पास आये तो उनके साथ उनकी पहली रानी, उसका पुत्र तथा पण्डित सान्त्वनाकुमार भी चल पड़े थे। तब दत्तदेवी उनके साथ नहीं आयी। सुना है कि चन्द्रावती ने राम को शिक्षा देने के लिए आपको साथ चलने के लिए कहा था। आपने अपने घर जाने की बात कहकर उसको टाल दिया।

"राम और आप में कुछ परस्पर वाद-विवाद भी उठा था। महाराज ने उसे रुकवाकर वहाँ से उठ जाना उपयुक्त समझा। आप महाराज को छोड़ने अपने द्वार तक पहुँचे थे। महाराज को आपका यह व्यवहार देखकर आश्चर्य हो रहा था, क्योंकि इससे पूर्व आप कभी उन्हें छोड़ने नहीं गये थे।

"तब महाराज ने आपसे पूछा कि क्या तुम उनसे कुछ कहना चाहते हो। तुमने कह दिया कि कहना कुछ नहीं है। बस यही कि उस दिन से आप उनके पुरोहित नहीं रहे। राज्य के साधारण नागरिक के नाते शिष्टाचार का निर्वाह करने के लिए आप उनको विदा करने गये थे।

"महाराज ने कहा भी कि वे अभी भी आपको अपना पुरोहित मानते हैं।

"इस प्रकार महाराज आदि वहाँ से चले आये। उसके एक प्रहर उपरान्त मध्याह्न से कुछ समय पूर्व ही नरसिंहदेव ने महाराज से मिलने की याचना की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज ने समझा कि वह आपका कोई सन्देश लेकर आया होगा। उसको तुरन्त भीतर बुलवा लिया गया।

"महाराज ने देखा तो उसके मुख पर, बाँह पर और शरीर के अन्य अनेक स्थानों पर पट्टी बँधी थीं। महाराज ने उससे पूछा कि यह क्या हुआ है तो उसने बताया—

" 'महाराज! मुझे पाटलिपुत्र में रहकर आपकी सेवा करते हुए दस वर्ष बीत गये हैं। किन्तु जैसा व्यवहार आज मेरे साथ हुआ है वैसा कभी नहीं हुआ।'

" 'यह सब किसने किया?' महाराज ने पूछा

" 'मैं उनमें से किसी को भी नहीं जानता। यदि वे सामने आ जायें तो पहचान अवश्य लूँगा। हुआ यह, कि जब आप पुरोहितजी के निवासस्थान से चले तो उसी समय पुरोहितजी ने मुझसे उनके लिए नियत रथ लाने के लिए कह दिया। मैं रथ लेने चला गया। पुरोहितजी ने आदेश दिया था कि मैं रथ लेकर गंगाघाट पर पहुँच जाऊँ। मैं रथवान के घर से रथ लेकर जब गंगाघाट पर पहुँचा तो पुरोहितजी एक पेटिका और एक पोटली लिये गंगाघाट पर प्रतीक्षा करते हुए मिल गये। मेरे वहाँ पहुँचते ही उन्होंने कहा कि मैं तुरन्त घर वापस चला जाऊँ और घर का ताला लगाकर आपको सूचना दे दूँ कि पुरोहितजी पाटलिपुत्र से अपने गाँव के लिए चले गये हैं।

" 'मेरे देखते-देखते वे रथ पर आरूढ़ हुए और चल दिये। मैं वहाँ से लौटकर जब निवासस्थान पर आया तो कुछ लोगों ने मुझे पकड़कर पहले तो खूब पिटाई की और फिर पूछने लगे कि पुरोहित किधर है।

" 'ऐसी स्थिति में मैंने न बताना ही उचित समझा, किन्तु उसका परिणाम मुझे भुगतना पड़ा। उन्होंने फिर मेरी पिटाई की। तदनन्तर उन्होंने पुरोहित-निवास को लूट लिया। वहाँ की सभी मूल्यवान वस्तुएँ लेकर वे जाने लगे तो मेरे हाथ-पैर बाँधकर मुझे पटक दिया।

" 'मैं उसी अवस्था में दो-तीन घड़ी पड़ा रहा। तब उद्यान का माली आया जो पहले उन डाकुओं को देखते ही भाग खड़ा हुआ था। वह यह देखने आया था कि उसके घर का क्या हाल है। उसने मेरे हाथ-पाँव खोले और मेरी मरहम-पट्टी की, तब मैं यहाँ आ पाया हूँ।'

"महाराज ने आगे बताया, 'मैंने नरसिंहदेव को तो रुग्णालय भेज दिया और अपने अंगरक्षकों के नायक से भृगुदेव को बुलवाया। उसको पुरोहितजी के घर पर हुई घटना का विवरण बताया और कहा कि वह अपराधियों का पता लगायें।

" 'उसके अगले दिन हम सपरिवार प्रयागराज के लिए चल दिये थे। वहाँ पहुँचते ही मुझे यज्ञ की दीक्षा दी गयी और मैं यज्ञ-कर्म में लीन हो गया हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सब वृतान्त सुनाकर महामात्य बोले, "यद्यपि सब प्रबन्ध याज्ञवल्क्य आश्रम वालों के हाथ में था तदपि मैं नित्य प्रातः-सायं महाराज से मिलता रहता था।

"यज्ञ के तीसरे दिन मुझे विदित हुआ कि अश्व की बलि दी जायेगी। मैंने महाराज को सम्मति दी कि ऐसा न किया जाय। यह शास्त्र का विधान नहीं है। मेरे ऐसा कहने की प्रतिक्रिया विचित्र हुई। अगले दिन मध्याह्न के समय मुझे बुलाया गया और फिर आचार्यजी के सम्मुख उपस्थित किया गया। मुझसे कहा गया कि आचार्यजी कहते हैं कि यज्ञ के अन्त में अश्व की बलि देने का विधान है।

"मैंने आचार्यजी से पूछा कि यह किस शास्त्र का विधान है?

"आचार्य ने कहा, 'अश्वमेध यज्ञ संहिता में।'

"ऐसा कोई ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं माना जा सकता, आप किसी ब्राह्मण ग्रन्थ की बात करिये।

"उन्होंने शतपथ ब्राह्मण में इन्द्र के अश्व की बलि देने की एक कथा सुना दी।

"मैंने कहा, आचार्यवर! यह कथा अश्व की बलि देने की नहीं है। यह आकाश में संघर्ष का विद्यमान वर्णन है, जिससे वर्षा होती है।

"इन्द्र विद्युत् है जो बादलों में रहता है। अश्व बादल हैं। लोकहित के लिए इन्द्र को कहा है कि वह बादलों की हत्या करे। अर्थात् बादल चीरे जायें तो उनसे वर्षा हो।

"यह सुनकर उस आचार्य ने मुझे तो मूर्ख कह दिया और उन्हें शास्त्रों से अनभिज्ञ कह दिया। महाराज ने कहा कि यह वाद-विवाद बन्द किया जाय। यह सुनकर मैंने महाराज को आशीर्वाद दिया और उठकर चला गया।

"एक दिन भृगुदत्त पाटलिपुत्र से आ पहुँचा। उसने बताया कि रामगुप्त ने कदाचित् आचार्य सान्त्वनाकुमार की सम्मति से ही शिवकुमार की हत्या का षड्यन्त्र किया था। परन्तु किसी अन्तर्प्रेरणावश शिवकुमारजी अपने घर से निर्धारित समय से पूर्व ही चल दिये। महाराज ने उस घटना की जाँच-पड़ताल के लिए उसको नियुक्त किया था।

"भृगुदत्त को उस जाँच-पड़ताल से पता चला कि यज्ञ के तुरन्त उपरान्त महाराज की हत्या कर दी जायेगी और उसी समय रामगुप्त राज्य का सम्राट् बन जायेगा। वह कुछ वैसा ही खेल खेलने वाला था जैसा कि पुष्यमित्र ने वृहद्रथ के साथ किया था।

"भृगुदत्त ने बताया, 'मैं इस षड्यन्त्र की सूचना देने के लिए स्वयं चला आया हूँ। मैं आशा करता हूँ कि यह सूचना देकर सायंकाल पाटलिपुत्र के लिए लौट जाऊँगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भृगुदत्त ने यह भी बताया कि साक्षियों ने स्वीकार कर लिया कि आचार्य सान्त्वनाकुमार इस षड्यन्त्र में सम्मिलित हैं और यदि वे महाराज की हत्या करने में सफल हो गये तो वह उसी समय रामगुप्त को सम्राट् घोषित कर उसका राज्याभिषेक कर देगा।

"मुझसे मिलने के उपरान्त भृगुदत्त महाराज से मिलने के लिए गया और महाराज से मिलकर पाटलिपुत्र के लिए लौटने से पूर्व वह मेरे पास आया था। उसने कहा कि सब बातों को सुनकर महाराज ने उनके प्रमाण माँगे थे। उसने पुरोहितजी के घर पर लूट मचाने वाले नेता का वक्तव्य उसके हस्ताक्षर सहित महाराज को दे दिया। महाराज ने फिर एक भी शब्द उससे नहीं कहा और केवल यही आदेश दिया कि वह तुरन्त पाटलिपुत्र लौट जाय।

"उसी दिन रात्रि के समय महाराज ने मुझे बुलवाया था। मैं जब पहुँचा तो उन्होंने मुझसे पृथक् में कहा, 'भृगुदेव मिला था?'

"जी मिला हैं।

" 'क्योंकि अभी तक आप महामात्य हैं, इसलिए हमने उसको आदेश दिया था कि वह पूर्ण वृत्तान्त आपको बता दे।"

"जी महाराज! उसने पुरोहित के घर डाका डालने वालों के वक्तव्य के आधार पर आपके जीवन को भी भयग्रस्त देखा तो वह आपको सचेत करने के लिए चला आया।

" 'आप इसमें क्या सम्मति देते हैं?'

"महाराज! डाकुओं के नेता का वक्तव्य किसी अभियुक्त का वक्तव्य है, किन्तु उसकी पुष्टि भी आवश्यक है। रामगुप्त को भी अपना पक्ष प्रस्तुत करने और उसका प्रमाण प्रस्तुत करने का अवसर मिलना चाहिए। उसके उपरान्त ही किसी निर्णय पर पहुँचा जा सकता है। मैंने भृगुदत्त को भी यह कहा था। परन्तु उस का कहना था कि वह दोषियों को दण्ड दिलवाने नहीं अपितु हमें सचेत करने के लिए आया है।

" 'महामात्य जी! यह तो सब ठीक है। परन्तु हमको बताइये कि हमें क्या सावधानी रखनी चाहिए?'

"महाराज! रामगुप्त यज्ञ में आपके पीछे बैठता है। वह किसी भी समय अवसर पाकर आपका अनिष्ट कर सकता है। आचार्य उसी समय उसका राज्याभिषेक भी कर सकते हैं। अतः उचित यही है कि राम के बैठने का स्थान बदल दिया जाय।

" 'उसे कहाँ भेज दिया जाय?'

"कहीं अन्यत्र भेजने की आवश्यकता नहीं है। उसे यज्ञमण्डप में ही आचार्य के पास बैठने के लिए कहा जाय। यह आदेश दे दिया जाय कि कोई खड्ग लेकर यज्ञ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मण्डप में नहीं बैठ सकता।

"चन्द्रगुप्त विक्रम राज्य का सेनाध्यक्ष है। उसको दो कार्य सौंपे जायें। एक तो यह कि जब आप यज्ञ में बैठे हों, वह अपनी खड्ग लेकर आपकी रक्षा के लिए वहाँ खड़ा रहे और दूसरे यह कि यज्ञ की पूर्णाहुति के दिन उसकी सेना पूर्ण यज्ञ-शाला की परिधि में छा जाय।

" 'इससे तो आचार्य रुष्ट हो जायेंगे ?'

"उस अनपढ़ मूढ़ को रुष्ट होने दीजिये। उसकी आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

"महाराज ने मेरी योजना सुनकर कहा कि मैं कल मध्याह्न उनके पास आऊँ।

"उस समय अपनी सम्मति देकर मैं चला आया। अगले दिन जब मैं यज्ञ देखने गया तो मैंने देखा कि राम वहाँ नहीं है और उसके स्थान पर विक्रम खड्ग लिये तैनात खड़ा है। राम भी वहीं था तो किन्तु कुण्ड के पास आचार्य के सम्मुख उसको बैठाया गया था।

"मैंने समझा कि मेरी योजना पर कार्य हो रहा है। परन्तु जब मैं मध्याह्न के समय महाराज से मिलने के लिए गया तो उस समय महारानी चन्द्रावती भी महाराज के साथ ही थीं। मेरे जाते ही महारानी ने कहा, 'महामात्य ! यज्ञ के प्रबन्ध में यह परिवर्तन आपने करवाया है ?'

"महारानी जी ! आपको विदित होना चाहिए कि मैं यज्ञ का प्रबन्धक नहीं हूँ।

" 'परन्तु महाराज कहते हैं कि राम को यज्ञ-कुण्ड के समीप बैठना चाहिए।'

"हाँ, यह मैंने कहा था कि महाराज यदि राम को युवराज बनाना चाहते हैं तो उसे यज्ञ-कुण्ड के पास बैठना चाहिए, पीछे नहीं।

" 'मैं समझती हूँ राम का उचित स्थान वही है जहाँ वह पहले बैठता था।'

"महारानीजी ! मैं आज्ञा देने वाला नहीं हूँ। मुझे जो उचित प्रतीत हुआ वह मैंने निवेदन कर दिया।

"अब महाराज बोले, 'मैं भी यही ठीक समझता हूँ और आचार्यजी ने भी इसे स्वीकार किया है।'

"तब मैंने कह दिया, महाराज अब मैं जाऊँ ?

" 'हाँ पण्डितजी ! अब आप जा सकते हैं।'

"उस दिन सायंकाल भी वही प्रबन्ध रहा। किन्तु अगले दिन प्रातःकाल राम और उसकी माता यज्ञ में उपस्थित नहीं हुए। चन्द्रावती के स्थान पर दत्तदेवी बैठी थीं।

"विक्रम अपने स्थान पर खड्ग लिये खड़ा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मध्याह्न के समय मैं महाराज से मिलने के लिए गया तो महाराज ने कहा, 'महारानी चन्द्रावती और राम तो प्रातःकाल ही उज्जयिनी चले गये थे। अब आचार्यजी का सन्देश आया है कि वे भी यज्ञ अधूरा छोड़कर जा रहे हैं।'

"मैं गम्भीर भाव से यह सब सुन रहा था। महाराज कुछ क्षण तक मौन रहे फिर पूछने लगे, 'अब हमारे लिए क्या करणीय है?'

"मेरा सतर्क उत्तर था, आज्ञा करिए। शेष यज्ञ के लिए प्रबन्ध कर दूं?

" 'इसीलिए तो आपको बुलवाया है।'

"मैंने कहा, महाराज! ठीक है आप यथापूर्व यज्ञ-मण्डप पर अपने स्थान पर विराजमान हो जाइए। यज्ञ-कार्य सम्पन्न होगा।

"मैं अपने शिविर में लौटा और पण्डित विभूतिचरण को बुलवाया। उसके आने के बाद एक घड़ी-भर में ही एक सौ एक याज्ञिकों की व्यवस्था हो गयी।

"ठीक तृतीय प्रहर जब घड़ियाल बजा तो यज्ञ प्रारम्भ हो गया। ब्रह्मा के स्थान पर पण्डित विभूतिचरण विराजमान थे।

"यज्ञ समाप्त होने पर महाराज ने मुझसे पुनः आग्रह किया कि मैं महामात्य पद पर बना रहूँ। मैंने उनको अपनी सम्मति दी थी कि वह आपको अपना महामात्य बना लें। यज्ञ तो समाप्त हो गया था किन्तु दान-दक्षिणा का कार्य चल रहा था कि मैं वहाँ से चला आया। उसके बाद क्या हुआ होगा, उसका मुझे ज्ञान नहीं है।"

शिवकुमार ने बताया कि हस्तिनापुर के आयुक्त के माध्यम से महाराज ने सन्देश भेजा है।

महामात्य बोले, "तुमको वहाँ जाना चाहिए। यह राष्ट्र का कार्य है। और ब्राह्मण होने के नाते तुम्हें राष्ट्र की सेवा अस्वीकार नहीं करनी चाहिए। मैं तो अब वृद्ध हो गया हूँ। मेरे महामात्य पद अस्वीकार करने का दूसरा कारण यह भी है कि इस पद पर तुम्हारी नियुक्ति हो जाय।"

शिवकुमार ने कुछ विचार किया और फिर महाराज को वहीं से एक पत्र लिख दिया। उसमें उसने लिखा कि वह शीघ्र ही पाटलिपुत्र पहुँच रहा है।

: ७ :

वर्तमान परिस्थिति में शिवकुमार ने उचित नहीं समझा कि वह अधिक दिन तक उज्जयिनी में रहे। अतः दूसरे दिन ही वह पाटलिपुत्र के लिए चल पड़ा।

पाटलिपुत्र पहुँचकर शिवकुमार उसी पद्मावती पन्थागार में गया जहाँ पहले दिन पाटलिपुत्र पहुँचने पर राज्य का रथवान उसे ले गया था। वहाँ उसको स्थान मिल गया। वहाँ की व्यवस्था कर शिवकुमार महाराज से मिलने के लिए चला गया।

राज-भवन पहुँचने पर पण्डित शिवकुमार ने अपना नाम भीतर भिजवा दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिहारी पण्डित शिवकुमार को जानता था। वह उसका नाम लेकर लम्बे डग भरता हुआ भीतर चला गया।

प्रतिहार को वापस लौटने में आधी घड़ी समय लग गया और आते ही उस ने झुककर निवेदन किया, "महाराज स्मरण कर रहे हैं।"

प्रतिहारी शिवकुमार को उस कक्ष में ले गया जहाँ महाराज राजकुमार चन्द्र गुप्त के साथ उसकी प्रतीक्षा में बैठे थे।

उसे आया देख महाराज ने कहा, "आइये पुरोहितजी! कल ही हमें आपका उज्जयिनी वाला तथा हस्तिनापुर से भीमपाल सिंह का भेजा पत्र मिला। हम विस्मय कर रहे हैं कि आपने हस्तिनापुर के आयुक्त से भी उत्तम प्रबन्ध कर लिया है। उज्जयिनी हस्तिनापुर से दुगनी दूरी पर है।

"महाराज! जब पण्डित हरिषेणजी ने बताया कि राष्ट्र मेरी सेवा माँग रहा है तो मैंने यही उचित समझा कि तुरन्त यहाँ पहुँचने की व्यवस्था की जाय। इसमें पण्डित हरिषेणजी ने मेरी सहायता की। एक अश्वारोही सन्देशवाहक का उन्होंने प्रबन्ध कर दिया जो तुरन्त मेरा पत्र लेकर चल पड़ा।"

"मैंने भी यह यत्न किया कि कम-से-कम पड़ाव कर मैं उस अश्वारोही के साथ-ही-साथ पहुँच सकूं। इस प्रकार उसके पहुँचने के एक दिन बाद मैं भी पहुँच पाया हूँ।"

"आपको महामात्य पद स्वीकार है?"

"स्वीकार तो है किन्तु उसी शर्त पर जिसका कि मैं पहले ही उल्लेख कर चुका हूँ। मैं राज्य का वेतनभोगी सेवक नहीं बन सकता।"

"वह हमें स्वीकार है और हमने उसकी व्यवस्था भी कर दी है। अब आप बताइये कि अकेले आये हैं अथवा परिवार भी साथ ही आया है?"

"मैं सपरिवार आया हूँ। परिवार को अभी पद्मावती पंथागार में ठहराकर सीधा यहाँ चला आया हूँ।"

"ठीक है। अब आप राजकुमार चन्द्रगुप्त के साथ चले जाइये। ये आपके लिए निश्चित निवास-गृह में आपको ले जायेंगे। आपके लिए सब सुविधा की सामग्री वहाँ जुटा दी गयी है। प्रबन्धक और सेवकों को भी नियुक्त कर दिया गया है।

"कल राज्य सभा होगी। उस सभा में प्रमुख राज्याधिकारी, प्रमुख नागरिक, प्रमुख श्रेष्ठीजन, सेना के प्रमुख अधिकारी बुलाये जायेंगे और उनके सम्मुख ही आपकी महामात्य पद पर नियुक्ति की घोषणा की जायेगी।

"जहाँ तक आपके वेतन का सम्बन्ध है, आप अवैतनिक कार्य करेंगे, इस कारण मैं यह राज्य का कर्तव्य समझता हूँ कि वह आपके सम्माननीय पद के अनुसार आपकी सुख-सुविधा की व्यवस्था करे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"महाराज ! उस नियुक्ति के अवसर पर मैं जो शपथ लूंगा, वह मैं आपको अभी दे देता हूँ । यदि आपको वह स्वीकार हो तो फिर मैं अपने तन-मन और बुद्धि से समर्पित भाव से राज्य की सेवा करूँगा ।"

"ठीक है दे दीजिये ।"

शिवकुमार पहले से ही तैयार होकर आया था । उसने अपना लिखित शपथ-पत्र निकालकर महाराज के सम्मुख रख दिया ।

उस पत्र पर लिखा था, "मैं, शिवकुमार सारस्वत, सुपुत्र पण्डित माधव सारस्वत, मंगला, हस्तिनापुर जनपद निवासी, महाराजाधिराज समुद्रगुप्त द्वारा मगध साम्राज्य का महामात्य नियुक्ति किये जाने पर शपथ लेता हूँ कि मैं अपनी पूर्ण सामर्थ्य से इस राष्ट्र की वृद्धि, समृद्धि और उन्नति के लिए यत्न करूँगा । मैं यह शपथ लेता हूँ कि मैं वेद-शास्त्रानुसार इस महान् राष्ट्र की सेवा करूँगा ।"

विक्रम ने पढ़कर यह शपथ-पत्र महाराज को सुनाया । जब वह पढ़ चुका तो महाराज ने विक्रम से पूछा, "क्यों ठीक है ?"

"महाराज ! इसमें हमारे परिवार के लिए तो कोई कामना नहीं की गयी है ।"

महाराज ने बात को समझा तो वे उसके उत्तर के लिए शिवकुमार की ओर देखने लगे ।

शिवकुमार ने कहा, "राजकुमार ! उसके लिए किसी राज-पुरोहित की नियुक्ति करो । मैं तो राष्ट्र की सेवा के लिए आया हूँ । पहले जब मैं राज-पुरोहित था तो आपके परिवार के कल्याण की सतत् कामना करता था । उसमें आप के परिवार के राज्यसिंहासन पर आसीन रहना भी था ।"

"तो महामात्य के कार्य की सीमा में यह नहीं आता ?"

"मेरी धारणा के अनुसार महामात्य राज्य की देख-रेख के लिए होता है । यदि राज-परिवार ने भी कहीं राज्य एवं राष्ट्र को हानि पहुँचाने का यत्न किया तो मेरा यह कर्तव्य होगा कि मैं आपको भी उसके लिए रोकूँ ।"

समुद्रगुप्त हँस दिया । उसने कहा, "राजकुमार ! पण्डित शिवकुमार ठीक ही कहते हैं । महामात्य राष्ट्र का ही होता है । राज-परिवार की कल्याण-कामना के लिए राज-पुरोहित है ।"

"तो आप यह शपथ स्वीकार कर लेंगे ?" राजकुमार ने पूछा ।

"हाँ, यह ठीक ही है । हम चाहते हैं कि इस शपथ-पत्र को ताम्र पर अंकित कर लिया जाय, जिससे कि भावी महामात्य भी इसी शपथ को दोहराया करें ।"

जब यह निश्चय हो गया तो राजकुमार ने शिवकुमार से कहा, "पण्डित प्रवर ! चलिये ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवकुमार ने उठते हुए महाराज को आशीर्वाद दिया और फिर वह राजकुमार के साथ चलता हुआ उस आगार से निकल गया।

बाहर आकर राजकुमार ने पण्डित शिवकुमार को अपने रथ पर बैठाया और उसको सेनाध्यक्ष के निवासगृह पर ले गया।

शिवकुमार जानता था कि यह निवासगृह पहले सेनाध्यक्ष रणवीरसिंह का निवासगृह था। अभी तक वह रिक्त पड़ा था। रणवीरसिंह के स्थान पर राजकुमार विक्रम को सेनाध्यक्ष बनाया गया था। वह अपने राज-प्रासाद के आगार में रहता था।

रथ जब उसके मुख्य द्वार से भीतर जाने लगा तो पण्डित शिवकुमार ने पूछा, "यह निवास अभी तक भी रिक्त है ?"

"रणवीरसिहजी के श्रीनगर जाने के बाद यह निवास आपकी प्रतीक्षा में खाली पड़ा है। यज्ञ से लौटने पर महाराज ने इसके प्रतिसंस्कार का आदेश दिया था। किन्तु तब महाराज ने यह नहीं बताया था कि यह सब किसलिए कराया जा रहा है।

"किन्तु जब कल आपका पत्र प्राप्त हुआ तो उस समय उन्होंने घोषणा की कि यहाँ आपका निवास होगा और इसको सब प्रकार से आपके निवास के योग्य बना कर आपके आने से पूर्व इसको सुसज्जित कर दिया जाय।"

तब तक रथ भवन के भीतरी द्वार तक पहुँच गया था। दोनों रथ से उतरे तो वहाँ नियुक्त प्रतिहारी दौड़ा हुआ आया और झुककर प्रणाम कर आज्ञा के लिए खड़ा हो गया।

उसे खड़ा देख राजकुमार ने कहा, "सुभट्टों के नायक को बुलाओ।"

प्रतिहारी नायक को बुलाने से लिए चला गया। किन्तु उसके आने में अधिक समय नहीं लगा क्योंकि द्वार पर खड़े द्वारपाल ने नायक के पास पहले ही सूचना भेज दी थी कि राजकुमार भवन में पधार रहे हैं।

नायक ने पहुँचकर राजकुमार का अभिवादन किया।

राजकुमार ने उससे कहा, "महेन्द्रजी ! आप पण्डितजी महाराज को जानते हो ?" यह कहते हुए उसने शिवकुमार की ओर संकेत किया।

"जी श्रीमन् ! आप राज-पुरोहित पण्डित शिवकुमारजी हैं।"

"राज-पुरोहित थे। अब नहीं हैं। पण्डितजी हमारे साम्राज्य के भावी महामात्य हैं। यह भवन इनके निवास के लिए नियत किया गया है। आप सब लोग जो भी यहाँ सेवा आदि-आदि विभिन्न कार्यों पर नियुक्त हैं, सब इनके अधीन कार्य करोगे।

"अब आप पण्डितजी को सारा भवन दिखाकर उसके विषय में पूर्ण जानकारी दे दो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नायक चलने लगा तो राजकुमार ने कहा, "नरसिंहदेवजी को बुलवाइये।"

नरसिंहदेव का नाम सुनकर शिवकुमार ने पूछा, "नरसिंहदेव भी यहाँ आ गये हैं ?"

"जी आ गये हैं। क्या आप उसकी सेवाओं से सन्तुष्ट नहीं थे ?"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है। विपरीत इसके उसकी यहाँ पर नियुक्ति से मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई है। वह अपने कार्य में सर्वथा निपुण है।"

"मुझे अब आप आज्ञा दीजिये। मुझे अपनी साहित्यिक गोष्ठी में जाना है। आप अब इन लोगों को जो उचित समझें उस प्रकार का आदेश दीजिये।" राजकुमार ने जाने की इच्छा व्यक्त करते हुए कहा।

"आपकी साहित्यिक गोष्ठी अभी चलती है ?"

"हाँ। वह तो मेरा जीवन तत्त्व है। मैं उसके बिना नहीं रह सकता। यदि आप चाहें तो कभी हम उस गोष्ठी का आयोजन आपके भवन में भी करेंगे। आप भी तो उसके सदस्य हैं।"

"मेरे राजधानी से चले जाने के बाद भी आपने मुझे सदस्यता से निलम्बित नहीं किया ?"

"हमारे यहाँ जो सदस्य बन गया वह आजीवन सदस्य बना रहता है। भले ही राजधानी अथवा देश से ही बाहर क्यों न रहने लग जाय।"

"जब आप मगध सम्राट् बन जायेंगे तब भी आप इस गोष्ठी की शोभा बढ़ाते रहेंगे ?"

"पण्डितजी ! गोष्ठी तो रहेगी और मेरी सदस्यता भी रहेगी ही। परन्तु तब मेरी उपस्थिति वैसी ही रहेगी जैसी कि पहले हमारे भूतपूर्व राज-पुरोहितजी की रहा करती थी।

"इसपर भी पण्डित वर ! मैं सम्राट् बनने का इच्छुक नहीं हूँ। मैं तो सेनाध्यक्ष पद से ही संन्यास ग्रहण कर वनों में जाने की अभिलाषा करता हूँ।"

"राजकुमार !" शिवकुमार ने मुस्कराते हुए कहा, "कोई भी राजा, गणपति अथवा सम्राट् स्वयं नहीं बनता। यह तो उसके पूर्वजन्म के कर्मों का फल होता है। यदि प्रजा के भाग्य उज्ज्वल हों तो परमात्मा किसी योग्य और भले व्यक्ति को सम्राट् पद पर नियुक्त कर देता है और यदि प्रजा भाग्यहीन तथा कर्महीन हुई तो कोई अयोग्य व्यक्ति सम्राट् बन जाता है। और तब प्रजा अपने दुष्कर्मों का फल स्वयं ही भोग लेती है।"

राजकुमार ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। इतना अवश्य कहा, "इस विषय पर फिर कभी अपनी योजना से आपको अवगत कराऊँगा। इस समय तो मुझे गोष्ठी में जाने की त्वरा है।"

राजकुमार ने इतना कहा और पण्डितजी को हाथ जोड़ प्रणाम किया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर अपने रथ पर सवार होकर वहाँ से चल दिया।

तभी नरसिंहदेव पहुँच गया। उसने पण्डितजी को प्रणाम किया और उनको साथ लेकर आगार दिखाने चल दिया।

जब पूर्ण भवन देख लिया और उसकी सारी जानकारी मिल गयी तो पण्डित शिवकुमार ने सुभट्टों के नायक से पूछा, "क्या नाम है आपका ?"

"हरिहर नायक श्रीमन् ?"

"यहाँ आपके अधीन कितने सुभट्ट हैं ?"

"अभी तो इस भवन की रक्षा के लिए वीस सैनिक हैं। किन्तु मैं इनको पर्याप्त नहीं समझता। मैं याचिका प्रस्तुत करने वाला हूँ कि कम-से-कम यहाँ के लिए वीस और सुभट्टों की नियुक्ति की जाय, तब कुछ कार्य सम्भव होगा। जब यहाँ सेनाध्यक्ष महोदय रहते थे तो इस निवास की रक्षा के लिए एक सौ सैनिक नियुक्त थे।"

"परन्तु मुझे इतनी बड़ी सेना रखने की क्या आवश्यकता है ?"

"जब आप पुरोहित थे, तभी आपकी हत्या का प्रयास किया गया था। अब तो आप महामात्य हैं। इस कारण अब आपके शत्रुओं में वृद्धि हो सकती है।"

"पण्डित हरिषेणजी जब महामात्य थे, उनके घर पर तो पाँच से अधिक सुभट्ट थे ही नहीं।"

"वे बहुत प्राचीनकाल से महामात्य थे तथा उनका कोई शत्रु भी नहीं था। राज्य की प्रजा उनसे प्रेम करती थी। आपकी स्थिति अभी वैसी नहीं है। और आप की हत्या का प्रयत्न करने वाले के मुख को लहू लग गया है। वह पुनः वही प्रयास कर सकता है।"

शिवकुमार चुप रहा। वह समझता था कि यदि वह महामात्य बना तो हरि-हरदेव की याचिका पहले उसके पास ही तो आयेगी। उस समय उसपर विचार कर लिया जायेगा।

शिवकुमार ने नरसिंहदेव को कहा, "मैं अभी पद्मावती पन्थागार में जा रहा हूँ। मेरा परिवार अभी वहीं पर टिका है। मैं उनको यहाँ लाना चाहता हूँ।"

"तो आज्ञा कीजिये।"

"कोई रथ ले आओ।"

नायक हरिहर ने कहा, "आपकी सेवा के लिए राज्य की ओर से दो रथों की व्यवस्था है।"

"नरसिंहदेव ! भोजन की क्या व्यवस्था है ?"

"पण्डितजी ! वही जो पहले निवास गृह में थी।"

"ठीक है। हम मध्याह्न का भोजन यहीं करेंगे। मध्याह्न के समय हम क्या भोजन करते हैं यह आप भलीभाँति जानते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सब यथावत् तैयार मिलेगा श्रीमन् !"

रथ आया और उसपर सवार होकर शिवकुमार पन्थागार की ओर चला गया।

पन्थागार पहुँचकर जब उसने सारा प्रबन्ध अपनी पत्नी को बताया तो उसके मुख से निकल गया, "देव ! जिस स्थिति में आप पहुँच गये हैं वह बहुत ही विकट स्थिति है। हमें बहुत ही सावधानी से रहना होगा। राज-परिवार में ही शत्रु और असुर उत्पन्न हो गये हैं। ये तो बाहरी शत्रुओं और असुरों की अपेक्षा अधिक भयंकर सिद्ध हो सकते हैं।"

"देवी ! मैं राष्ट्र की सेवा के लिए यहाँ आया हूँ। अब इससे मैं अपना पग पीछे नहीं रख सकता। जीवन-मरण तो अपने-अपने भाग्य के अधीन है।"

पण्डित विभूतिचरण को महाराज ने पहले दिन ही बता दिया था कि पण्डित शिवकुमार उज्जयिनी में पण्डित हरिषेण से मिलते हुए पाटलिपुत्र पधार रहे हैं।

विभूतिचरण ने अपनी पुत्री रोहिणी को यह सूचना दी तो उससे भृगुदत्त को सूचना मिल गयी। भृगुदत्त टोह में ही था कि शिवकुमार कब आता है। उस दिन वह पद्मावती पन्थागार में पता करने गया तो उसको विदित हुआ कि शिवकुमार आ गया है और आगार संख्या १०५ में निवास कर रहा है।

भृगुदत्त को अपने माता-पिता का समाचार जानने की उत्सुकता थी। इस कारण वह आगार संख्या १०५ में जा पहुँचा। वहाँ केवल चन्द्रमुखी और उसके बच्चे थे। शिवकुमार महाराज से मिलने के लिए गया हुआ था।

चन्द्रमुखी से भृगु अपने घर का कुशल समाचार सुनने लगा तो चन्द्रमुखी ने यह बताया "भैया ! पिताजी ने आपके नाम एक बहुत लम्बा-चौड़ा पत्र भेजा है। वह पत्र बृहस्पति के पिताजी के पास है।

"वे बिना किसी पूर्व सूचना के महाराज से मिलने के लिए गये हैं। अतः सम्भव है कुछ विलम्ब हो जाय। आप यदि मध्याह्न के भोजन के बाद आ जायें तो कदाचित् वे आपको मिल जायेंगे।"

भृगुदत्त को शिवकुमार से मिलने की उत्सुकता थी, इस कारण वह राजप्रासाद गया। वहाँ जाकर उसको विदित हुआ कि पुरोहितजी आये तो थे किन्तु महाराज से मिलने के उपरान्त राजकुमार के रथ पर बैठकर कहीं चले गये हैं।

निराश भृगुदत्त पुनः अपने कार्यालय में ही जाकर बैठ गया। मध्याह्न के भोजन के समय की प्रतीक्षा करने के उपरान्त वह पुनः पद्मावती पन्थागार गया तो उसको विदित हुआ कि पण्डितजी रथ में आये थे और उसी रथ में अपने परिवार को बैठाकर वहाँ से चले गये हैं। पन्थागार के प्रबन्धक ने बताया कि उनका अपना रथ यहीं पन्थागार में ही रखा हुआ है। उसके विषय में कह गये हैं कि सायंकाल तक अश्व भेजकर उसको वे मँगवा लेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भृगुदत्त निराश हो गया। भाग-दौड़ में वह थक भी गया था, अतः भोजन करने के उद्देश्य से अपने घर को चल दिया।

भृगुदत्त भोजन कर ही रहा था कि तभी अपनी पत्नी के साथ पण्डित शिवकुमार आ गया।

भृगुदत्त ने पूछा, "पण्डितजी! भोजन कीजियेगा?" फिर कहने लगा, "आपको भोजन पर आमन्त्रित करने के लिए मैं आपके पीछे-पीछे भागता रहा हूँ।"

भृगुदत्त ने अपनी भाग-दौड़ का जब सारा विवरण शिवकुमार को बताया तो उसने क्षमायाचना करते हुए कहा, "भैया! यह मेरे वश में नहीं था। मेरे निवास का प्रबन्ध राजकुमार को सौंपा गया तो उसने सारा कार्य सैनिक-स्फूर्ति से करना आरम्भ कर दिया।

"मेरे निवास का प्रबन्ध भूतपूर्व सेनाध्यक्ष के निवास पर हुआ है। वहाँ से मैं अपने परिवार को लेने पन्थागार गया तो विदित हुआ कि आप मेरे आने की सूचना पाकर मिलने आये थे और भोजन के लिए कह रहे थे। मैं अपने निवास पर पाचक को पहले ही कह आया था कि भोजन तैयार रखे, मैं परिवार को लेकर आ रहा हूँ। एक तो परिवार को वहाँ पहुँचाना था और दूसरे पाचक को अपने भोजन के विषय में भी बताना था कि मेरा मध्याह्न का भोजन अब आपके यहाँ होगा।

"इसके लिए अपने निवास जाना उचित था। वहाँ अपना सामान रखा और पाचक को सूचना देकर हम सीधे आपके पास चले आये हैं।

"मेरा वर्तमान निवास राज-प्रासाद से कुछ दूरी पर है। परन्तु मुझे विदित हुआ है कि उसके अहाते में महामात्य का कार्यालय भी बनवा दिया जायेगा। उसे राज-प्रासाद से पृथक् कर दिया जायेगा।"

"इसका अभिप्राय तो यही हुआ कि आपको महामात्य पद पर नियुक्त कर दिया गया है?"

"नियुक्त तो अभी नहीं किया है। हाँ, महाराज का विचार है कि किसी शुभ दिन नगर के प्रमुख नागरिकों, सेना तथा राज्य के अधिकारियों के सम्मुख मुझे महामात्य पद की शपथ दिलायी जायेगी और मेरी नियुक्ति की घोषणा कर दी जायेगी।"

"यह कब होने वाला है?"

"कार्य की गति को देखते हुए तो यही समझ में आ रहा है कि यह सब शीघ्र होने की सम्भावना है।"

"हाँ, किसी महामात्य के न होने से उसके कार्य को भी मैं ही आजकल देख रहा हूँ। इस कारण मेरा कार्यभार बढ़ जाने से मुझे अतिरिक्त समय देकर यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब निपटाना पड़ रहा है।"

"तब तो यह आवश्यक हो गया है कि मुझे शीघ्र ही आपके कार्यभार को हलका करने का यत्न करना चाहिए !"

शिवकुमार और भृगुदत्त भोजन करने बैठ गये। बच्चे तथा चन्द्रमुखी रोहिणी के साथ बैठे थे।

दोनों ने भोजन किया और फिर दोनों साथ ही भृगुदत्त के कार्यालय को चल पड़े। न्यायालय का दूसरा दैनिक सत्र तृतीय प्रहर आरम्भ होता था। जब तक वे दोनों न्यायालय पहुँचे उससे पूर्व ही महाराज की विज्ञप्ति पहुँच गई कि अगले दिन राज-प्रासाद में सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया है। उस सभा में जिन-जिनको आमन्त्रित किया गया था उनकी एक लम्बी सूची भी थी। उस सूची में पण्डित भृगुदत्त का भी नाम था।

विज्ञप्ति में सभा के आयोजन का उद्देश्य भी दिया हुआ था।

सभा तृतीय प्रहर के समय आयोजित की गयी थी।

कार्यालय के भीतर पहुँचते ही शिवकुमार ने भृगुदत्त को उसके पिताजी का पत्र दिया। वहाँ देने का कारण बताते हुए उसने कहा, "पिताजी ने कहा था कि यह पत्र आपको कार्यालय में पहुँचाया जाय। इसी कारण मैं आपके साथ यहाँ आया हूँ।"

भृगुदत्त ने उत्सुकता से वह पत्र लिया और उतनी ही उत्सुकता से उसको खोलकर पढ़ना आरम्भ किया। पत्र तीन पृष्ठ का था। पढ़ने के उपरान्त उसने कहा, "इसमें बातें तो बहुत-सी लिखी हैं। आपके विषय में लिखा है कि उन्होंने आग्रह करके आपको महामात्य का पद ग्रहण करने के लिए तैयार किया है। किन्तु विगत मासों में रामगुप्त ने जो व्यवहार किया है उसकी विद्यमानता में यह पद भयरहित नहीं रहा है। उन्होंने मुझे और राज्य के मुख्य अधिकारी को लिखा है कि हम आपके जीवन की रक्षा के लिए सतत् प्रयत्नशील रहें।

"शिवकुमारजी! पिताजी ने यह उत्तरदायित्व मुझ पर सौंपा है। इस कारण मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप यह व्यवस्था मुझे करने की अनुमति दीजिये। मैं आज आपके निवास पर आऊँगा और वहाँ की स्थिति समझकर तदनुसार सुरक्षा की व्यवस्था करने का यत्न करूँगा।"

"मुझे निवास के सुभट्टों ने भी कुछ ऐसा ही संकेत दिया है। मैं समझ नहीं पा रहा कि पाटलिपुत्र की शान्ति-व्यवस्था क्यों बिगड़ गई है ?"

"यह केवल राम के एक पखवाड़ा यहाँ रहने का ही परिणाम है। यहाँ के गुप्तचर विभाग की यह सूचना है कि राम के कुछ साथी यहाँ पर विद्यमान हैं जो उसके प्रवेश के लिए मार्ग प्रशस्त करने में लगे हुए हैं।"

यह सुन शिवकुमार को विस्मय हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवकुमार तो भृगुदत्त को पत्र देने के लिए ही आया था। वहाँ से वह पुनः भृगुदत्त के निवास पर गया। उसका परिवार अभी वहीं था। इन दिनों भृगुदत्त का निवास पण्डित हरिषेण का प्राचीन निवास हो गया था। क्योंकि उस भवन को पण्डित हरिषेण ने अपने धन से बनाया था। वह राज्य की सम्पत्ति नहीं था। जब हरिषेण वहाँ से गये तो अपना मकान अपने पुत्र को सौंप गये।

शिवकुमार के जाते ही भृगुदत्त ने तुरन्त गुप्तचर विभाग के प्रमुख को बुला कर आगामी दिवस को होने वाली सभा के सुप्रबन्ध के विषय में विचार-विमर्श किया। उस समय गुप्तचर विभाग के प्रमुख ने बताया, "श्रीमन्! हमें यह सूचना मिली है कि यज्ञ के समय महाराज की हत्या के षड्यन्त्र का भेद खुल जाने के कारण रामगुप्त और उसकी माताजी यज्ञ पर से उठकर चले गये थे। उसके बाद से ही हम महाराज की रक्षा का विशेष प्रबन्ध करते रहे हैं।

"कल की सभा की सूचना मुझे अभी-अभी मिली है। मैं उसमें सुरक्षा के प्रबन्ध पर पहले ही विचार करने लग गया था।"

"हाँ कीजिये। और महाराज के साथ बैठने वाले महामात्य की सुरक्षा की भी समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।"

अगले दिन सभा आरम्भ होने से पूर्व ही सभा भवन खचाखच भर गया था।

तृतीय प्रहर का घंटा बजते ही मंच के पीछे का द्वार खुला और प्रतिहारी ने घोषणा की, "महाराजाधिराज समर शतवितत विजयोजिगिर पुराजितोदित्रम् जयति महाराजा समुद्रगुप्त पधार रहे हैं।"

घोषणा समाप्त होते ही सब सभासद् उठकर खड़े हो गये। शंख ध्वनि के मध्य महाराज मंच पर आरूढ़ हुए। उनके साथ उनकी पत्नी भी थी। दोनों यथास्थान बैठ गये। सेनाध्यक्ष चन्द्रगुप्त स्वयं नग्न खड्ग लेकर उन दोनों के पीछे आकर खड़ा हो गया।

महाराज के बराबर में किन्तु कुछ नीचे आसन पर पण्डित शिवकुमार के लिए स्थान नियत था। वह उसपर आकर बैठ गये।

सबके बैठने पर महाराज ने बैठे-बैठे ही कहना आरम्भ किया, "हमारे अश्व-मेध यज्ञ की पूर्ति पर हमारे पूर्व महामात्य पण्डित हरिषेणजी ने पदत्याग की स्वीकृति लेकर वानप्रस्थ स्वीकार कर लिया है।

"तब से ही हम इस उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर नियुक्त करने के लिए किसी योग्य विद्वान् ब्राह्मण की खोज में थे। बहुत सोच-विचार के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँच पाये हैं कि इस पद के लिए पण्डित शिवकुमार सारस्वत, न्याय-भूषण सदृश व्यक्ति ही नितान्त उपयुक्त है। इससे पूर्व पण्डितजी तीन वर्ष तक राज-पुरोहित के पद पर विराजमान रहकर अपने पाण्डित्य और प्रशासनिक योग्यता का परिचय दे चुके हैं। पण्डित हरिषेणजी ने भी पण्डित शिवकुमार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशंसा की थी।

"पण्डितजी पौरोहित्य से अवकाश लेकर अपने ग्राम चले गये थे। हमने उन्हें वापस बुलवा लिया है। हम चाहते हैं कि पण्डितजी इस राजसभा में समस्त विभागों के प्रमुख-प्रमुख एवं उच्चाधिकारियों के सम्मुख महामात्य पद की शपथ ग्रहण करें जिससे कि उनकी राज्य के इस सर्वोच्च पद पर नियुक्ति की विधिवत् घोषणा हो सके।

"यह बता देना भी हम आवश्यक समझते हैं कि पण्डितजी राज्य के महामात्य होंगे किन्तु ये राज्य के सेवक नहीं बनेंगे। महामात्य का कार्य पण्डितजी अवैतनिक रूप से करेंगे। ब्राह्मण होने के नाते उन्होंने वेतनभोगी सेवक बनना स्वीकार नहीं किया है और हमें इस पर कोई आपत्ति नहीं है। तदपि राष्ट्र के प्रति अपनी निष्ठा की शपथ लेना महामात्य के लिए आवश्यक है।

"अत: पण्डितजी से हमारा निवेदन है कि वे इस राज्य का सर्वोच्च पद स्वीकार करने के उपलक्ष्य में शपथ ग्रहण कर सभा को अनुग्रहीत करें।"

महाराज की विज्ञप्ति पूर्ण होने पर पण्डित शिवकुमार अपने आसन पर से उठे तो उनके हाथ में स्वर्णपत्र पर अंकित शपथ दे दी गयी।

शिवकुमार ने सभा की ओर मुख किया और स्वर्णपत्र पर अंकित शपथ को पढ़ना आरम्भ किया, "मैं, शिवकुमार सुपुत्र श्री पण्डित माधव सारस्वत हस्तिनापुरान्तर्गत मंगला ग्राम निवासी, समाशत विततविजयोजितारि पुरोजित जयति मगध महाराजाधिराज समुद्रगुप्त महाराज द्वारा मगध साम्राज्य का महामात्य नियुक्त किया जा रहा हूँ।

"इस अवसर पर मैं आप सब सभासदों के सम्मुख शपथ लेता हूँ कि मैं अपनी पूर्ण सामर्थ्य से इस राष्ट्र और राज्य की श्रीवृद्धि, समृद्धि और श्रेष्ठता के लिए यत्न करूँगा। मैं यह भी शपथ लेता हूँ कि वेद-विहित धर्मानुसार इस महान् राष्ट्र और राज्य के प्रत्येक घटक से समान एवं धर्मयुक्त व्यवहार करता हुआ राष्ट्र का पालन करूँगा।"

शपथ ग्रहण करने के उपरान्त पण्डित शिवकुमार ने वह पत्र महाराज को समर्पित कर दिया। तदुपरान्त उसने महाराज को ब्राह्मणोचित आशीर्वाद दिया।

शिवकुमार ने पुन: सभासदों को सम्बोधित करते हुए कहना आरम्भ किया, "इस राज्य में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के जीवन और उसकी सम्पत्ति की बिना वर्ण, जाति, मत तथा विचार के मैं रक्षा करने का पूर्ण प्रयत्न करूँगा।

"मेरे सम्मुख सभी नागरिक समान होंगे। राज्य की ओर से प्रदत सभी सुविधाएँ सभी नागरिकों को समान ही होंगी। इस राज्य में बेगार प्रथा प्रचलित नहीं होगी। सबको अपने परिश्रम का उचित पारिश्रमिक प्राप्त होगा।

"मेरे इस संकल्प के विपरीत किसी प्रकार से भी पीड़ित व्यक्ति के संरक्षण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में राज्य के सामर्थ्य के प्रयोग का मुझे अधिकार होगा।

"एतदर्थ मैं अपने निवास-गृह के बाहर एक पेटिका रखवा दूंगा। यदि किसी को किसी प्रकार की असुविधा हो तो वह न्यायप्राप्ति के लिए अपना विवरण लिखकर उस पेटिका में डाल दे। राज्य-कर्मचारी उस याचिका की जाँच-पड़ताल कर उसको उचित न्याय दिलाने के लिए वचनबद्ध होंगे।

"इस आश्वासन के साथ, महाराज की आज्ञा से, मैं इस पद को स्वीकार करता हूँ।"

महामात्य का वक्तव्य समाप्त होने पर पुनः शंखध्वनि की गयी।

शंखध्वनि हो ही रही थी कि भवन के बायें कोने से एक चमचमाती कटार वेग से उड़ती-सी आई और शिवकुमार के सिर से कुछ ही ऊपर से होती हुई सामने दीवार पर जा लगी।

सभासदों ने जब उधर दृष्टि की जिधर से कटार फेंकी गयी थी तो देखा कि एक प्रतिहारी एक नागरिक को पकड़े हुए है और वह नागरिक छूटने के लिए छटपटा रहा है। प्रतिहारी उस व्यक्ति को बाहर ले गया।

उसके जाते ही महाराज ने अपना वक्तव्य दिया। उन्होंने कहा, "जिस समय हमने पण्डित शिवकुमार को अपने परिवार का पुरोहित नियुक्त किया था तो उस समय हमारा विचार था कि ये हमारे राजकुमारों और उनके पुत्र-पौत्रों का इस लोक में मार्ग-दर्शन करते रहेंगे। परन्तु इनकी योग्यता और कार्य-कुशलता को देखकर हमने अनुभव किया कि इनके गुणों का लाभ केवल राज-परिवार तक ही सीमित न रखकर इनका लाभ पूर्ण मगध राष्ट्र को प्राप्त होना चाहिए।

"इस विचार के आते ही हमने मन में संकल्प कर लिया था कि पण्डितजी को मगध का महामात्य नियुक्त करेंगे। किन्तु इनका वेतनभोगी बनना स्वीकार न करना इस नियुक्ति में बड़ी अड़चन बन रहा था। किन्तु परिस्थिति से समझौता कर हमने पण्डितजी की बात को स्वीकार कर लिया है। ये राज्य के सेवक नहीं अपितु वैसे ही अधिकारी हैं जैसे कि हम हैं। हमारे पदों में अन्तर है और उसी प्रकार हमारे कार्यों में भी अन्तर रहेगा। हम दोनों ही वेतनभोगी नहीं हैं। पण्डित-जी तथा इनके परिवार का भी निर्वाह उसी प्रकार होगा जिस प्रकार हमारे परिवार का होता है।

"यह हमने एक प्रथा की स्थापना की है और आशा की जानी चाहिए कि यह परम्परा कालान्तर में प्रचलित रहेगी।

"हमने पण्डितजी की शपथ को स्वीकार कर इनको महामात्य पद पर नियुक्त किया है। हमें इससे प्रसन्नता है और हम आशा करते हैं कि हमारी प्रजा भी इनके कार्य से सन्तुष्टि का अनुभव करेगी।"

इस घोषणा के उपरान्त शंखध्वनि हुई और महाराज तथा महारानी जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वार से प्रविष्ट हुए थे उसी द्वार से राज-प्रासाद में चले गये।

महामात्य शिवकुमार भी वहाँ से निकले और अपने रथ पर सवार हो अपने निवास के लिए चले गये।

: ८ :

शपथ ग्रहण करते ही शिवकुमार को अनुभव होने लगा कि महामात्य का जीवन और पाठशाला के अध्यापक का जीवन अथवा राज-पुरोहित का जीवन इन दोनों से सर्वथा पृथक् प्रकार का जीवन है।

प्रथम दिन ही जब वह प्रातःकाल अपनी यज्ञशाला में यज्ञ के लिए बैठा था कि तभी रक्षामन्त्री श्री वीरभद्र के आने की सूचना मिली। उसे अत्यावश्यक कार्य है यह भी उसने कहलवा दिया था।

जिस समय यह सूचना मिली उस समय यज्ञ तो समाप्त हो गया था किन्तु महाभारत की कथा होने वाली थी। महाराज और महारानी कथा सुनने के लिए विराजमान थे।

सूचना पाकर पण्डित शिवकुमार की अपेक्षा महाराज ने प्रतिहारी को कहा, "रक्षामन्त्री से जाकर कहो कि हम भी यहाँ पर विद्यमान हैं। यदि उन्हें किसी प्रकार की आपत्ति न हो तो वह भी यहाँ पधार सकते हैं।"

यह सूचना पाकर रक्षामन्त्री वीरभद्र यज्ञशाला में पहुँच गया। उसने सभी को यथावत् अभिवादन किया और फिर एक ओर बैठ गया।

उसी समय पण्डित शिवकुमार महाभारत में दुर्योधनादि कौरवों के समक्ष पाण्डवों का सन्देश लेकर गये श्रीकृष्ण के आने तथा उनके द्वारा सन्धि प्रस्ताव प्रस्तुत करने का विवरण सुना रहे थे। वह कह रहे थे—

"महाराज! श्रीकृष्ण ने कहा, कि मैं सन्धि प्रस्ताव लेकर उपस्थित हुआ हूँ अतः युद्ध को रोक देना चाहिए।

"तब धृतराष्ट्र ने कहा, आज जब दोनों सेनायें लड़ने के लिए सन्नद्ध हैं तो यह युद्ध क्यों रोक दिया जाय?

"कृष्ण ने कहा 'महाराज! राजा द्रुपद के पुरोहित पाण्डवों के प्रति आपकी प्रतिज्ञा-पालन के लिए कहने आये थे। आपने उनका आग्रह नहीं माना। उस समय तो सेनाओं का आह्वान भी नहीं हुआ था।

" 'तदनन्तर महामना संजय के द्वारा युधिष्ठिर ने सन्देश भेजा था कि वे भी आपके ही बालक हैं। उनपर कृपा कीजिये। आपने कृपा करने का भी कष्ट नहीं किया। अब सेना के स्वामी युधिष्ठिर की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर मैं उपस्थित हुआ हूँ। मैं न तो आपसे वचन-पालन के लिए आग्रह कर रहा हूँ और न ही किसी प्रकार की कृपा की याचना कर रहा हूँ। अब तो प्रतिद्वन्द्वी की ओर से हाथ मिलाकर शपथ ले सन्धि करने की बात है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इसका उत्तर देते हुए दुर्योधन ने कहा कि वनवासियों के पास यदि सेना एकत्रित हो गयी है तो फिर क्या हुआ ? हम उनकी समस्त सेना का एक ही दिन में विध्वंस कर देंगे।

"श्रीकृष्ण का कहना था—'किन्तु उस संघर्ष में आपके भी कुछ लोग मारे ही जायेंगे। उनकी रक्षा के लिए ही यह सन्धि का प्रस्ताव है। यदि आप पाँच पाण्डव भाइयों को पाँच गाँव दे दें तो युद्ध टल जायेगा!'

"तब दुर्योधन गरजकर बोला, 'मैंने शपथ ली है कि बिना युद्ध के मैं सूई की नोक के बराबर भूमि भी उनको नहीं दूंगा। मैं उनको भाई ही नहीं मानता।'

"दुर्योधन की इस गर्वोक्ति को सुनकर कृष्ण ने पहले भीष्म को तदनन्तर धृतराष्ट्र को समझाया कि वे दुर्योधन को सन्धि के लिए प्रेरित करें। परन्तु वे दोनों ही मौन रहे।

"तब कृष्ण ने कहा, 'इस अवस्था में युधिष्ठिर ने मेरे द्वारा यह सन्देश दिया है कि अर्जुन अपने बाणों से आप सबको भूमिसात कर देगा।"

इस प्रकार कथा समाप्त हुई। शिवकुमार का परिवार उठकर अपने आगार में चला गया।

परिवार के भीतर जाते ही सेवक अल्पाहार की सामग्री ले आया और चारों समुपस्थित जनों के सम्मुख परोस दी गयी।

सेवक जब अल्पाहार परोसकर चला गया तो रक्षामन्त्री वीरभद्र ने कहा, "महामात्यजी! अंग राज्य की पूर्ण सेना हमारी सीमा के साथ एकत्रित कर ली गयी है।"

महामात्य ने कहा, "महाराज को अंग नरेश का एक पत्र मिला है जिसमें लिखा कि रामगुप्त ने अंगराज की दोनों कन्याओं को देखा है और वह दोनों के साथ तुरन्त विवाह करने को उत्सुक है।

"आज से तीन वर्ष पूर्व यही अंगराज अपनी कन्याओं को लेकर पाटलिपुत्र भी आया था। उसने उनको राजकुमार को दिखाया था। वह चाहता था कि तुरन्त ही उनका विवाह राजकुमार विक्रम के साथ हो जाय। परन्तु राजकुमार ने स्वयं ही इस सम्बन्ध में रुचि प्रकट नहीं की थी।

"अब यह नयी समस्या उत्पन्न हो गयी है।"

वीरभद्र बोला, "इससे तो यही आभास मिलता है कि वह सेना द्वारा हमें भयभीत कर राजकुमार राम का विवाह स्वीकार करने के लिए विवश करना चाहता है।"

यह सुन महाराज बोले, "विवाह तो सेना का सेना के साथ ही होना चाहिए। हम वीरभद्र को आज्ञा देते हैं कि इस सम्भावित आक्रमण के विरोध का समुचित प्रबन्ध किया जाय।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरभद्र ने कहा, "सेना को गति देने के लिए धन की आवश्यकता होगी।"

"यह रक्षामन्त्री की चिन्ता का विषय नहीं है।"

तब वीरभद्र बोला, "तो महाराज ! मुझे आज्ञा दीजिए कि अंग सेना के मगध में पैर रखते ही मैं उसे घेर लूं।"

"यह आज्ञा आधी घड़ी तक आपके पास पहुँच जायेगी। परन्तु ध्यान रहे पहल हमारी ओर से नहीं, अंगराज की ओर से ही होनी चाहिए।"

"जो आज्ञा महाराज !"

तबतक अल्पाहार भी समाप्त हो गया था। वीरभद्र चला गया तो महाराज ने कहा, "महामात्य जी ! आप हमारी बैठक-घर में पधारिये। अब शेष विचार-विमर्श वहाँ कर लिया जायेगा।"

महाराज और महारानी को विदाकर पण्डित शिवकुमार भीतर गया तो उसकी पत्नी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। शिवकुमार बोला, "मैं तो अभी राज-भवन जा रहा हूँ, वस्त्र बदलने के लिए आया हूँ।" यह कहकर वह अपने आगार में चला गया।

चन्द्रमुखी ने बच्चों को वहीं रहने के लिए कहा और स्वयं शिवकुमार के पीछे-पीछे उसके कक्ष में चली गयी। शिवकुमार समझ गया कि उसकी पत्नी कोई विशेष बात कहना चाह रही है। उसने उस ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा।

चन्द्रमुखी बोली, "मैं यह अनुभव करने लगी हूँ कि अब आपको स्वाध्याय का समय ही नहीं मिलेगा। इसके साथ ही सूर्य और वृहस्पति का अध्ययन भी अब आपके द्वारा सम्भव नहीं। अतः मेरा निवेदन है कि कम-से-कम बच्चों की शिक्षा का तो कोई उचित प्रबन्ध होना ही चाहिए।"

"तुम ठीक कहती हो। वृहस्पति को तो मैं काशी भेज दूंगा। किन्तु चिन्ता सूर्य की है। वह अभी इस आयु का नहीं है कि उसको बाहर भेजा जा सके। उसे अभी माँ का संरक्षण चाहिए।"

इस समय वृहस्पति नौ वर्ष का था, सूर्य छः वर्ष का और कृष्णा केवल दो वर्ष की थी। वृहस्पति का तो यज्ञोपवीत संस्कार हो चुका था, दो वर्ष तक सूर्य का यज्ञोपवीत करने का विचार था।

वृहस्पति का आग्रह था कि उसको शिक्षा-ग्रहण करने के लिए व्यास-आश्रम में ही भेजा जाय।

वर्तमान समस्या पर शिवकुमार ने कहा, "चन्द्र ! तुम एक सप्ताह रुको। मुझे कुछ इस राज्य की व्यवस्था कर लेने दो। सम्भव है उसकी शिक्षा का प्रबन्ध यहीं हो जाय।

"इससे पूर्व याज्ञवल्क्य आश्रम की भी धूम थी। किन्तु उसकी कुछ पोल तो सर्वभाष ने पहले ही खोल दी थी। अवशिष्ट पोल आचार्य सान्त्वनाकुमार ने स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने निकृष्ट व्यवहार से खोल दी है।

"व्यास आश्रम का कुछ-कुछ ज्ञान वहाँ लिखे जाने वाले पुराणों से हो रहा है।

"पुराणों का जो संकलन व्यास आश्रम में हो रहा है यद्यपि मैं इसे उचित ही समझता हूँ, इसपर भी व्यासजी के आश्रमवासियों की मनोवृत्ति ठीक नहीं प्रतीत होती।

"दो वर्ष पूर्व वहाँ के मुख्य आचार्य आये थे। मैंने कहा था उनको कुछ आश्रम-वासी असुर या मलेच्छ देशों में भेजकर वहाँ पर सृजन किये जा रहे साहित्य का अनुशीलन कराना चाहिए।

"उनका कहना था कि अपने आश्रम का कोई भी विद्यार्थी इस प्रकार विदेश जाने के लिए उद्यत नहीं है। उसका कारण यह है कि हमारे कर्मकाण्डियों ने यह विख्यात कर दिया है कि विदेशी आचार-विचार अनुपयुक्त हैं।

"मैं समझता हूँ कि यह भी मूर्खता ही है।

"वहाँ रचे जाने वाले पुराण अशुद्ध और भ्रमोत्पादक हैं। उनमें तिथिकाल का विचार नहीं किया जा रहा है। और साथ ही जो बात अनुमान से जानी जाती है उसको भी इतिहास का नाम दिया जा रहा है। अनुमान लगाया तो जा सकता है परन्तु उसे इतिहास नहीं कहा जा सकता। और अनुमान प्रमाण में भी प्रत्यक्ष प्रमाण का आश्रय लेना ही पड़ता है।

"प्रकृति की घटनाओं में अनुमान चल सकता है। परन्तु मानव क्रिया-कलाप में वह यथार्थ नहीं बैठता। उसका कारण यह है कि मनुष्य के कार्य किसी ईश्वरीय नियमोपनियम द्वारा संचालित नहीं हैं। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है।

"एक पुत्र कामनाओं से प्रेरित होकर असुर का-सा व्यवहार करने लगता है। दूसरा पुत्र संयमी और धर्माधर्म में विभेद समझकर धर्म का पालन करने लगता है। इस प्रकार की प्रवृत्ति मानव में देखी जाती है। उनमें नियम की रेखा नहीं खींची जा सकती।

"इस सब दृष्टिकोण से विचार करना होगा और फिर वृहस्पति की शिक्षा के विषय में निर्णय करना होगा।"

वार्त्तालाप करते हुए शिवकुमार ने वस्त्र भी बदल लिये। उसने कहा, "आज महामात्य पद पर कार्य करने का मेरा प्रथम दिन है। अभी अपने अनुकूल व्यवस्था करने में कुछ समय लग जायेगा। मुझे इन दिनों घर पहुँचने में समय-समय पर विलम्ब भी हो सकता है। इसलिए मेरा कहना है कि तुम्हारा और तीनों बालकों का जीवन नियमपूर्वक ही चलना चाहिए। समय पर भोजन आदि सब कुछ होना चाहिए। मेरी प्रतीक्षा उचित नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मुझे आशा है कि शीघ्र ही सारी व्यवस्था ठीक हो जायेगी। तब हमारा पारिवारिक जीवन भी सुव्यवस्थित हो जायेगा।"

शिवकुमार अपने आगार से बाहर आया और बाहर खड़े रथ पर आरूढ़ हो कर वह राज-प्रासाद की ओर चला गया।

महामात्य ने अपने आने की सूचना महाराज को भेजी तो तुरन्त ही प्रतिहारी ने आकर बताया कि महाराज उनकी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं।

शिवकुमार के पहुँचते ही महाराज ने कहा, "महामात्यजी! रक्षामन्त्री को आज्ञा लिखकर भिजवा दीजिए कि वह अंगराज के आक्रमण का समुचित विरोध करें जिससे कि मगध के सम्मान को ठेस न पहुँचने पाये।

"दूसरी बात है धन की। कोष में धन है नहीं। आचार्य सान्त्वनाकुमार के कथनानुसार मैंने अपने परिवार के सभी आभूषणादि यज्ञ में समर्पित कर दिये थे।"

"मैं इसका प्रबन्ध करने का यत्न करूँगा। आशा है कि सायंकाल से पूर्व इसका कुछ-न-कुछ प्रबन्ध हो जायेगा।"

"वह किस प्रकार?"

"मेरी योजना नगर के श्रेष्ठियों से ऋण लेने की है।"

"तीसरी समस्या राम की है। उसको क्या उत्तर दिया जाय?"

"उसको लिख दिया जाय कि जिस प्रकार वह यज्ञ को अपूर्ण छोड़कर उससे उठकर चला गया है उसने यज्ञ की तथा आपकी अवहेलना की है। इसके फलस्वरूप आपका उससे अब कोई सम्बन्ध नहीं माना जा सकता।

"इस स्थिति में दो ही बातें हो सकती हैं। एक तो यह कि उसने जो आपका अपमान किया है उसके प्रतिकारस्वरूप वह अपनी माता सहित पाटलिपुत्र में आ जाय और यहाँ रहकर वह नियमपूर्वक अध्ययन आरम्भ कर दे। यदि इस प्रकार वह एक वर्ष तक पाटलिपुत्र में रह लेगा तो उसके राजकुमार के अधिकार को पुनः स्वीकार किये जाने की सम्भावना हो सकती है। उसके विवाह के विषय में उसके बाद ही विचार किया जा सकता है, उससे पूर्व नहीं।

"दूसरा विकल्प यह है कि वह स्वयं मगध राज्य के साधारण नागरिक के रूप में अपना जीवनयापन करे, उस स्थिति में राज्य से उसे किसी प्रकार की आशा नहीं करनी चाहिए।"

महाराज ने कहा, "मुझे भय है कि वह हमारे शत्रुओं से मिलकर राज्य का विरोध करेगा। भृगु की जाँच का यह परिणाम है कि वह हमारी हत्या का यत्न कर रहा था। जब हमने अपनी रक्षा का प्रबन्ध कर लिया तो वह यज्ञ से अपनी माता के साथ उठकर उज्जयिनी चला गया।

"हम समझते हैं कि आचार्य सान्त्वनाकुमार को यह आभास हो गया है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम जानते हैं कि हमारी हत्या के षड्यन्त्र में वह भी सम्मिलित था। वह समझता होगा कि इसके फलस्वरूप उसको प्राणदण्ड भी दिया जा सकता है। इसी कारण वह और उसके सारे याज्ञिक यज्ञमण्डप से भाग गये थे।"

"महाराज! पण्डित हरिषेणजी से यह सारा वृत्तान्त मैं सुन चुका हूँ। और जो कुछ उन्होंने मुझे बताया है उसके आधार पर राम को प्राणदण्ड दिया जा सकता है।

"परन्तु आपके परिवार की मान-प्रतिष्ठा के लिए ही मैं यह सम्मति दे रहा हूँ कि आप उसे और उसकी माता को एक ऐसा पत्र लिखिये और उसमें ये दोनों विकल्प भी लिख दीजिये।

"राज-परिवार से उन लोगों का सम्बन्ध और राज-परिवार का नाम उनके लिए तभी हो सकता है जब वे दोनों यहाँ आकर आपकी आज्ञानुसार रहना आरम्भ करें।

"अन्यथा उसे एक सामान्य नागरिक के रूप में रहना होगा।"

महाराज ने इस दूसरे विकल्प का यही अभिप्राय समझा कि उसको मिलने वाला व्यय बन्द कर दिया जायेगा। उसको उज्जयिनी का राज-प्रासाद छोड़कर अपना अन्यत्र प्रबन्ध भी करना होगा।

इस कठोर व्यवस्था पर तो वह महामात्य का मुख देखते रह गये।

महाराज को विचलित पा शिवकुमार ने कहा, "महाराज! यदि आज्ञा हो तो आपकी ओर से मैं पत्र लिखकर भेज दूं? आप उसपर हस्ताक्षर कर दें, भेजने का प्रबन्ध मैं कर दूंगा।

"राम कदाचित् जानता है कि अंगराज ने युद्ध की तैयारी की हुई है। इसीलिए उसने विवाह का प्रस्ताव भेजा है। यह भी सम्भव है कि अंगराज का दूत इस समय उज्जयिनी में हो और उसने जो पत्र आपको लिखा है उसके उत्तर की वह वहीं प्रतीक्षा कर रहा हो।"

"मैंने विक्रम से बात की थी। वह भाई की सुरक्षा चाहता है और उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार का पक्षपाती है। वह स्वयं उज्जयिनी जाना चाहता है। परन्तु जब पूर्वी सीमा पर शत्रु अपनी सेना लिये खड़ा हो तो फिर सेनाध्यक्ष किस प्रकार पश्चिम की यात्रा कर सकता है?"

"महाराज! मेरा तो यही आग्रह है कि आप तनिक कठोर व्यवहार अपनाइये। जब वह कुछ अपनी भूल स्वीकार करने लगे तो फिर आप भी सहानुभूति प्रदर्शित करने लगिए।"

"ठीक है, आप भोजन के समय तक यह प्रबन्ध करवा दीजिये। सायंकाल फिर मिलिये, शेष तभी निश्चय कर लेंगे।"

शिवकुमार ने महामात्य के आसन पर बैठते ही सबसे पहले अर्थ मन्त्री को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुलवाया। जबतक अर्थमन्त्री आया तबतक उसने अंगराज के विषय में रक्षा-मन्त्री को उचित आज्ञा लिखकर दे दी।

कुछ क्षण उपरान्त अर्थमन्त्री भी आ गये। शिवकुमार ने उनसे पूछा, "अश्व-मेध यज्ञ समाप्त होने के उपरान्त राज्यकोष में कितना धन एकत्रित हुआ है ?"

"भूमि-कर तो अभी दो मास उपरान्त जब धान और ज्वार-बाजरे की खेती बिक जायेगी उसके उपरान्त ही प्राप्त होगा।

"हाँ व्यापार-कर की प्राप्ति हुई है। राज्य प्रबन्ध पर व्यय घटाकर कुछ लाख मुद्रा कोष में जमा हैं। वह भी दस-बारह लाख ही होगी, इससे अधिक नहीं।"

"नगर के श्रेष्ठियों से राज्य के सम्बन्ध कैसे हैं ?"

"सम्बन्ध तो अच्छे ही हैं। उनको पण्डित हरिषेण का प्रबन्ध रुचिकर था, आपसे तो अभी बातचीत हुई ही नहीं है।"

शिवकुमार ने कुछ विचार करके कहा, "आप अपनी ओर से नगर के चोटी के बीस श्रेष्ठियों को एक पत्र लिखकर भेजिये। उसमें लिखिये कि किसी आव-श्यक कार्य के निमित्त उन्हें चौथे प्रहर के आरम्भ होने पर दर्शन देने के लिए प्रार्थना की जाती है।

"यह पत्र केवल सर्वाधिक धनी माने जाने वाले श्रेष्ठियों को ही भेजा जाय।"

अर्थमन्त्री आदेश प्राप्त कर चला गया।

शिवकुमार ने महाराज की ओर से रामगुप्त के लिए एक पत्र लिपिबद्ध किया। वह कार्य हो जाने के बाद उसने नगर के न्यायाधीश को बुलवाया। उसने भृगुदत्त को मध्याह्न के भोजन के अवसर पर बुलवाया था।

भृगुदत्त को इसकी अपेक्षा भी थी। यद्यपि वह इससे पूर्व शिवकुमार से मिल चुका था किन्तु उसके महामात्य बनने के बाद यह उसका पहला बुलावा था। भेंट तो कार्यालय में ही हुई थी किन्तु भोजन के लिए शिवकुमार उसको अपने घर ले गया।

भृगुदत्त बोला, "आपको पिताजी के आसन पर विराजमान देख मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है।"

शिवकुमार बोला, "पण्डितजी कहते थे कि यदि मुझे महामात्य बनाया गया तो आपकी ओर से मुझे सब प्रकार की सहायता प्राप्त होगी।"

"आप तो मेरे लिए बड़े भाई के समान हैं। अपने योग्य सेवा से मैं कभी पीछे नहीं हटूंगा।"

"मैं समझता हूँ कि राज्य के दो ही पैर होते हैं जिसपर वह दृढ़ता से स्थिर रह सकता है। एक सेना और दूसरा न्याय-व्यवस्था।

"यह मगध का सौभाग्य है न्याय-व्यवस्था आपके अधीन है। मैं समझता हूँ अपने कार्य को नियमित करने के लिए हम दोनों को दिन में एक बार अवश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिल लेना चाहिए। परन्तु यह मेल-मुलाकात कर्मचारियों की दृष्टि बचाकर होनी चाहिए।"

"ठीक है, इसका प्रबन्ध तो हो सकता है। मैं नित्य आपके कार्यालय में राजकीय कार्य से उपस्थित हो जाया करूँगा। उस समय जैसा उचित होगा हम विचार-विमर्श कर लेंगे।"

"हाँ, यह ठीक है। मैं चाहता हूँ कि न्याय की कुछ इस प्रकार व्यवस्था हो, कुछ ऐसे नियमोपनियम बना लिये जायें कि जिससे सबको न्याय सुलभ हो सके। भले ही फिर वह कोई साधारण जन हो अथवा उच्चाधिकारी।

"इसके लिए मेरी दृष्टि में समस्त साम्राज्य को बीस विभागों में विभक्त कर दिया जाय। उन बीस केन्द्रों में न्याय के पृथक् कार्यालय हों और उन कार्यालयों के न्यायाधीश नगर और ग्रामीण न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध याचिकायें सुना करें।

"शासन में कोई भी नर-नारी पीड़ित नहीं किया जाना चाहिए। इसके लिए प्रत्येक न्याय-कार्यालय में एक न्यायशास्त्री की नियुक्ति की जाय जो अपने क्षेत्र के दुःखी एवं पीड़ित जनों की न्याय-व्यवस्था के लिए उत्तरदायी हो।

"विभागीय न्याय-कार्यालय से यदि किसी को सन्तोष न हो तो वह अपनी याचिका आपके पास प्रस्तुत करे। यदि आपके न्याय से भी किसी को सन्तोष न हो तो उसको महाराज के पास अपनी याचिका प्रस्तुत करने का विधान हो।

"यद्यपि पहले से ऐसा होता ही चला आ रहा है किन्तु ग्राम पंचायत में वर्तमान युग के ब्राह्मणों को ही पंच बनाया जाता है या फिर वहाँ के बड़े-बड़े जमींदारों को बनाया जाता है। इस कारण वहाँ के निर्णय अन्तिम नहीं हैं, यह बात जनता के मन में बैठ जानी चाहिए।

"न्यायपालिका के बीस विभाग हो जाने से आपका कार्य हलका हो जायेगा और जिसको ग्राम पंचायत से सन्तोष नहीं होगा वह आपके समक्ष उपस्थित हो जायेगा।

"यह भी प्रचलित कर देना चाहिए कि न्याय का द्वार खटखटाने का तो कोई शुल्क नहीं होगा किन्तु यदि किसी ने असत्य और अशुद्ध आचरण किया तो उसको उसका दण्ड देना ही होगा।

"यह दण्ड कितना होना चाहिए, इसका निर्णय मुख्य न्यायाधीश के अधीन होगा। विशेष अवस्थाओं में ही यह दण्ड निर्धारित होगा।

"एक मास से अधिक किसी भी विषय को लटकाया नहीं जाना चाहिए। न्याय ठीक हो और अविलम्ब हो, यह बात विशेष ध्यान देने की है।

"इस सबके लिए एक संहिता का निर्माण किया जाना चाहिए। मनु ने जो दण्ड निर्धारण किया है उसको कार्यरूप दिया जाना चाहिए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार भोजन के मध्य वार्त्तालाप होता रहा। भोजनोपरान्त गौ-दुग्धपान हुआ। इस बीच शिवकुमार ने कहा, "रामगुप्त के विषय में आप क्या दण्ड उचित समझते हैं?"

"मैं उसे अभी दण्डनीय नहीं मानता। यद्यपि मैंने महाराज को सूचित कर दिया था कि रामगुप्त और उसकी माता के विरुद्ध महाराज की हत्या का षड्यन्त्र का आरोप है अतः उसको पाटलिपुत्र में बन्दी के रूप में लाकर न्यायालय में उपस्थित किया जाना चाहिए।

"किन्तु महाराज ने इस विषय में कोई भी कार्यवाही नहीं की। इस षड्यन्त्र का रहस्योद्घाटन हुए दो मास समय व्यतीत हो गया है। न्यायालय तो अब इस विषय पर कुछ भी नहीं कर सकता।"

"मैं समझता हूँ कि आप अपने न्यायालय की ओर से उज्जयिनी रामगुप्त के पास यह आदेश भेजिये कि वह पाटलिपुत्र न्यायालय में उपस्थित होकर उसके विरुद्ध अपने पिता की हत्या के षड्यन्त्र का जो आरोप है उसके विषय में अपना पक्ष स्पष्ट करे।

"मैं समझता हूँ कि यह आज्ञा महाराज के द्वारा अपने पुत्र के नाम जानी चाहिए।"

"महाराज इसे कदापि राम के पास नहीं भेजेंगे। वे उसे रद्द कर देंगे।"

"यह तो मैं भी जानता हूँ। परन्तु दुर्घटना उनके साथ होने वाली थी, अतः मैं चाहता हूँ कि उसका उत्तरदायित्व भी उनपर ही हो। राज्य के कर्मचारी कम-से-कम परमात्मा के सम्मुख यह तो सिद्ध कर सकेंगे कि उन्होंने अपना कर्तव्य पूर्णतया और ठीक प्रकार से निभाया है।"

"मैं विचार करूँगा।"

"ठीक है, मैं तो आपको सुझाव ही दे सकता हूँ, किसी प्रकार का आदेश नहीं।"

भोजन समाप्त होते ही न्यायाधीश भृगुदत्त चला गया। उसके जाते ही शिवकुमार की पत्नी और बच्चे पास आ गये।

चन्द्रमुखी ने कहा, "आपको घर के लिए भी कोई समय मिल सकेगा अथवा कि नहीं?"

"देवी! मैं इस समय अवकाश पर हूँ, बताओ तुम क्या कहना चाहती हो?"

चन्द्रमुखी ने बृहस्पति से कहा, "कहो, तुम क्या कहना चाहते थे?"

बृहस्पति बोला, "मैं आज राजकीय पुस्तकालय में गया था। पुस्तकालय के अध्यक्ष ने कहा कि मैं अल्पायु होने के कारण वहाँ की पुस्तक नहीं ले सकता।

"मैंने उससे पूछा कि अक्ल बड़ी कि भैंस। इसके उत्तर में उसने कहा कि वह अक्ल और भैंस में कौन बड़ा है, इसका निर्णय करने के लिए वहाँ पर नहीं बैठा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पुस्तकालय के नियम हैं, उन नियमों को वह नहीं बदल सकता।

"तब मैंने उसके सम्मुख यह प्रस्ताव रखा कि यदि मैं किसी ऐसे व्यक्ति के हस्ताक्षरयुक्त पत्र लाऊँ जो पुस्तकें लेने के अधिकारी हैं, तब मुझे पुस्तकें मिलेंगी अथवा कि नहीं।

"तब उसने मेरे सम्मुख एक योजना प्रस्तुत की। मैं उसी सम्बन्ध में आपसे सहायता की अपेक्षा कर रहा हूँ।

"पुस्तकाध्यक्ष का कथन है कि अधिकारी व्यक्ति अधिकाधिक दो पुस्तकें अपने घर पर मँगवा सकता है। एक सप्ताह तक वह उन्हें अपने पास रख सकता है।

"उसका कहना है कि मैं माँग-पत्र सहित पुस्तकों के नाम लिखकर ले जाऊँ तो वे मुझको पुस्तकें देंगे।"

"आप क्या कहती हैं ?" शिवकुमार ने अपनी पत्नी से पूछा।

"मैं समझती हूँ कि इसकी माँग उचित है। मैं यह भी जानती हूँ कि यह पुस्तकों के साथ अन्याय नहीं करेगा।"

"तो ठीक है।" फिर उसने वृहस्पति से कहा, "वृहस्पति! विद्यालय में विषयश: पुस्तकों की सूची रहती है, उस सूची की सहायता से तुम अपने लिए पुस्तकों के नाम ले आया करो, मैं तुम्हें माँग-पत्र लिखकर दे दिया करूँगा।"

इस व्यवस्था से वृहस्पति तो प्रसन्न हो उसी दिन राजकीय पुस्तकालय चला गया। उसने पुस्तकाध्यक्ष से पुस्तकों की सूची माँगी और उसका अध्ययन किया।

वृहस्पति का विशेष विषय था वेद और ब्राह्मण ग्रन्थ। उसने सर्वप्रथम यजुर्वेद और शतपथ ब्राह्मण का नाम अपने पास लिखकर रख लिया।

जिस समय वह पुस्तकों की सूची और माँग-पत्र लेकर घर पहुँचा, उसके पिता उस समय घर पर नहीं थे। उन्हें ढूँढ़ने वह महामात्य के कार्यालय में चला गया।

वहाँ जाकर उसको विदित हुआ कि उसके पिता नगर श्रेष्ठियों की सभा को सम्बोधित कर रहे हैं। वह सभा-भवन के द्वार पर खड़ा हो गया।

द्वारपाल ने उससे पूछा कि वह वहाँ क्यों खड़ा है तो उसने बता दिया कि वह महामात्य से मिलने के लिए आया है।

"क्या काम है ?" द्वारपाल ने पूछा।

"एक पत्र पर उनके हस्ताक्षर लेने हैं।"

द्वारपाल बोला, "वे इस समय एक आवश्यक बैठक में बैठे हैं। यदि तुम्हें प्रतीक्षा करनी है तो वह दूर पेड़ के नीचे जो चौकी बनी है उसपर बैठकर प्रतीक्षा करो।"

वृहस्पति उसके कहे अनुसार उस चौकी पर जाकर बैठ गया और प्रतीक्षा करने लगा। एक नौ वर्ष के बालक को महामात्य की प्रतीक्षा में इस प्रकार शान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाव से बैठा देख सभा-भवन के कर्मचारी और व्यवस्थापक विस्मय कर रहे थे।

वृहस्पति इस समय एकाकी था। उसके पास सोचने और करने के लिए विषय नहीं रहा तो उसने अपनी आँखें मूंद लीं और पूर्व स्मृति से अपने मन में पूर्व का दर्शन करने लगा। वह देख रहा था कि जब वह रमण था तब एक बार इस पेड़ के नीचे आया था। उसने इसी चौकी पर बैठकर महामात्य की प्रतीक्षा भी की थी। उस दिन समय प्रातःकाल का था। मध्याह्न तक उसने महामात्य को अपनी याचिका देने के लिए प्रतीक्षा की थी।

मध्याह्न का जब घड़ियाल बजा तो उसने प्रतिहारी से पूछा कि महामात्य बैठक से निकले कि नहीं। तब उसने बताया था कि महामात्य तो महाराज से मिलने के लिए चले गये हैं।

तब वह निराश होकर वापस लौट गया था। उसे स्मरण आ रहा था कि वह महाराज से यह आज्ञा लेकर आया था कि वह अपनी विद्वत्ता की परीक्षा महामात्य से कराकर उनका प्रमाण-पत्र प्राप्त करे। उसके आधार पर ही उसको नित्य कथा-वाचक के रूप में नियुक्त किया जा सकेगा अन्यथा नहीं।

इस प्रकार दो प्रहर तक यहाँ प्रतीक्षा करने के उपरान्त वह पुनः महाराज के पास गया था। उसने अपने आने की सूचना दी और उत्तर की प्रतीक्षा में वहीं बैठ गया। उस समय उसको तुरन्त बुला लिया गया था।

महाराज ने पूछा था, "महामात्य का प्रमाण-पत्र लाये हो?"

"महाराज! महामात्य के पास मुझ जैसे निर्धन बालक की परीक्षा का समय नहीं है। मैं दो प्रहर तक उनके द्वार पर बैठा प्रतीक्षा करता रहा हूँ किन्तु मुझे भीतर नहीं बुलाया गया।"

"तो फिर?"

"महाराज! आपने गुरुजी के पास सन्देश भेजा था कि किसी विद्वान् युवक को नित्य प्रातःकाल महाभारत की कथा सुनाने के लिए भेजा जाय। गुरुजी ने मुझे इस कार्य के लिए योग्य समझकर आपके पास भेजा है। महामात्य मेरे गुरुजी से अधिक योग्य होंगे ऐसा मैं नहीं मानता।

"यदि आपको गुरुजी के कथन पर विश्वास न हो तो आप किसी अन्य विद्वान् से उसके किसी शिष्य को बुलवाइये। किन्तु योग्य पुरोहित की योग्य विद्वान् द्वारा ही परीक्षा होनी चाहिए किसी कम योग्यता वाले द्वारा नहीं। निवेदन है कि मैं प्रत्येक प्रकार से योग्य हूँ।

"यदि आपको विश्वास न हो तो आप परीक्षा प्रबन्ध करिये। मैं किसी व्यस्त व्यक्ति के द्वार पर खड़ा होकर अपना अमूल्य समय व्यर्थ नहीं गँवाना चाहता।

"महाराज! महामात्य के तिरस्कार के उपरान्त मैं यहाँ आने की भी आवश्यकता नहीं समझता था परन्तु गुरुजी की आज्ञा थी कि आपके उत्तर से मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको अवगत कराऊँ। आपका उत्तर पूर्ण ज्ञान के आधार पर होना चाहिए इसलिए पुनः आपको सूचना देने के लिए मैं यहाँ चला आया हूँ।"

महाराज समुद्रगुप्त उस बालक के निर्भीक कथन और उसकी विनयशीलता को देखकर आश्चर्य कर रहे थे। अन्त में महाराज ने कहा, "यदि मैं कहूँ कि बिना महामात्य के प्रमाण-पत्र के हम किसी को भी नियुक्त करने में असमर्थ हैं तब आप क्या करेंगे?"

"मैं यह सारा वृत्तान्त अपने गुरुजी को बताकर उनसे निवेदन कर दूँगा कि मैं राज्य की सेवा नहीं करूँगा।

"यदि किसी को विद्वान् ब्राह्मण की आवश्यकता है तो वह स्वयं यहाँ आकर देख जाय।"

यह सुनकर महाराज सोचने के लिए विवश हो गये। उन्हें विचारमग्न देख रमण ने कहा, "महाराज! मैं अब जा रहा हूँ।"

"तो आप यह कार्य नहीं करेंगे?"

"मैं सेवा-कार्य नहीं करूँगा।"

"तो क्या करोगे?"

"इस संसार में बहुत कुछ करने के लिए है।"

इतना कह रमण ने महाराज को आशीर्वाद दिया और बिना उनके उत्तर की प्रतीक्षा किये वह वहाँ से उठा और अपने गुरु के पास लौट गया।

बृहस्पति स्मरण कर रहा था कि महाराज ने उसका पीछा करने के लिए एक प्रतिहारी को भेजा था। रमण तो स्वयं गुरुजी के आश्रम की ओर चल पड़ा था।

आश्रम पाटलिपुत्र से गंगा के पार उत्तरी तट पर था। रमण गंगाघाट पर पहुँच गया। यात्रियों को पार ले जाने वाली नौका में बैठ गया। उसके समीप ही महाराज का प्रतिहारी भी बैठ गया।

रमण ने जब उसकी ओर देखा तो उसने कहा, "आपको तो मैंने महाराज के आगार के बाहर खड़े देखा था।"

"हाँ।"

"अब किधर जा रहे हैं?"

"जिधर आप जा रहे हैं।"

"तो क्या महाराज ने आपको गुरुजी से मेरी शिकायत करने के लिए भेजा है?"

"नहीं, शिकायत करने के लिए नहीं। केवल यह जानने के लिए आप गुरुजी को क्या कहते हैं और फिर गुरुजी उसका उत्तर क्या देते हैं।"

बृहस्पति को स्मरण हो आया कि इस प्रकार वह आश्रम में जाकर अपने गुरुजी को बताने लगा था कि किस प्रकार राजप्रासाद में तथा महामात्य के पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके साथ व्यवहार किया गया था। उसने अन्त में गुरुजी से कहा था, "आचार्यवर! मुझे इन अनधिकारियों के पास भेजकर मेरा जीवन व्यर्थ न होने दीजिये।"

"ठीक है। तुम अपनी कुटिया में जाकर स्वाध्याय करो।"

गुरुजी की आज्ञा सुनकर रमण तो अपनी कुटिया में चला गया था किन्तु राज्य का प्रतिहारी वहीं खड़ा रहा था।

प्रतिहारी ने गुरुजी से कुछ बात की थी अथवा कि नहीं, इसका ज्ञान रमण को नहीं हुआ था। परन्तु उसे स्मरण आ रहा था कि अगले दिन स्वयं महामात्य उसके आश्रम में आये और गुरुजी के परामर्श पर रमण को अपने रथ पर बैठाकर राजभवन ले गये। इस प्रकार उसकी नियुक्ति महाराज के कथावाचक के रूप में हो गयी थी।

इस प्रकार वहाँ पर अपने पिता की प्रतीक्षा करते हुए वृहस्पति को आधा प्रहर हो गया। इस अवधि में वह वर्तमान को पूर्णतया भूल चुका था। सहसा श्रेष्ठिगण उस भवन से निकलकर अपने रथों पर सवार होने लगे तो उसे भी चेतना हुई। उसे अपना प्रयोजन स्मरण हो आया।

वृहस्पति वहाँ से उठकर प्रतिहारी के पास जाकर बोला, "मुझे महामात्य से मिलना है।"

"एक पत्र पर अपना नाम और काम लिख दो।"

वृहस्पति ने वैसा ही किया।

प्रतिहारी वह पत्र लेकर भीतर गया और कुछ क्षण उपरान्त लौटकर वृहस्पति को एक पत्र देते हुए बोला, "तुम्हारे पत्र के उत्तर में महामात्य ने यह लिखकर दिया है।"

वृहस्पति ने देखा। वह राजकीय पुस्तकाध्यक्ष के नाम पर पत्र लिखा गया था। उसमें लिखा था, "पत्रवाहक को जब भी, जिस किसी पुस्तक की भी आवश्यकता हो उसे वहीं पढ़ने अथवा घर ले जाने की अनुमति होनी चाहिए। पत्रवाहक योग्य पाठक है।"

वृहस्पति ने प्रतिहारी का धन्यवाद किया और वहाँ से चला गया।

: १० :

रात को जब शिवकुमार घर पर आया तो उसने देखा कि वृहस्पति दीपक के प्रकाश में बैठा एक बड़ा-सा ग्रन्थ पढ़ रहा है।

शिवकुमार ने अपने पुत्र को आवाज दी, "वृहस्पति!"

"जी! आया पिताजी।" वृहस्पति ने कहा और उसने बड़ी सावधानी से उस ग्रन्थ को बन्द किया जिसे वह पढ़ रहा था।

अपने पति की आवाज सुन चन्द्रमुखी भी बाहर आ गयी। उसने कहा, "तो आप गये हैं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ देवी ! आ गया हूँ। बड़े जोर की भूख लगी है।"

"भोजन तो आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा है। आप हाथ-मुख धोइये और वस्त्र बदलकर भोजनालय में पधारिये।"

उसी समय वृहस्पति भी वहाँ आ गया। उसे आया देख उसकी माता ने बताया, "यह पुस्तकालय से तीन बड़े-बड़े ग्रन्थ उठा लाया है। और जब से आया है तब से उनको ही पढ़ने में लीन है।"

"क्या लाये हो ?" शिवकुमार ने पूछा।

"वृहत् ज्योतिष संहिता है।"

"अब तुम ज्योतिष का अध्ययन करोगे ?"

"पिताजी ! मैं तीन विषय के तीन ग्रन्थ लाया हूँ। एक ज्योतिष पर है। दूसरी नारद संहिता है। यह गान विद्या है। और तीसरा ग्रन्थ है भेषज संहिता। यह चिकित्सा शास्त्र है। इनको देखकर मैं कल तक निचश्य कर लूँगा कि मैं किस विषय का अध्ययन किया करूँ और फिर भविष्य में उसी विषय के ग्रन्थ लाया करूँगा।"

"विचार तो उत्तम है। परन्तु यदि मेरी बात मानो तो तुम शरीर पर ग्रन्थ पढ़ो यह मूल बात है। उसका ज्ञान प्राप्त कर फिर किसी सांसारिक विषय का ग्रन्थ पढ़ उसका ज्ञान प्राप्त करना।

"शरीर से मेरा अभिप्राय है उसके मूल तत्त्वों और उनके कार्य का ज्ञान प्राप्त करना।"

"तो अभी इन ग्रन्थों को वापस कर दूं ?"

"अब जब ले ही आये हो तो इन विषयों का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लो। परन्तु किसी एक विषय का विशेष ज्ञान भी होना चाहिए। पहले उसका चयन करो। उसके बाद मैं तुम्हें बताऊँगा कि सामान्य ज्ञान के लिए कौन-सा ग्रन्थ पढ़ना उप्रयोगी है ?"

"पिताजी ! जब मैंने आपका प्रमाण-पत्र पुस्तकाध्यक्ष को दिया तो वह उस पत्र को ऊपर से नीचे तक और आगे-पीछे देखता रहा। उसको सब प्रकार से ठीक पाकर पूछने लगा कि तुम कौन हो ?

" 'एक बालक।' मैंने उत्तर दिया।

" 'मेरा अभिप्राय है कि किसके पुत्र हो ?'

"मैं बताना नहीं चाहता था कि आप मेरे पिता हैं। इस कारण मैंने कह दिया 'अपने माता-पिता का।'

"पुस्तकाध्यक्ष हँस पड़ा। पूछने लगा, 'तुम्हारी वाक्पटुता तो मैं कल ही जान गया था। परन्तु आज तुम्हारी कार्यपटुता का भी ज्ञान हो गया है। अब इन दोनों योग्यताओं का कारण जानने के लिए उन दोनों सौभाग्यवानों का नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानना चाहता हूँ जिनके घर तुमने जन्म लिया है।'

"तब मैंने सोचा कि उसे अब अधिक कष्ट नहीं देना चाहिए। मैंने कहा, 'मैं इस राज्य के आज ही नियुक्त महामात्य पण्डित शिवकुमारजी का पुत्र हूँ।'

"यह सुनकर वह उठा और उसने मुझे प्रणाम किया तो मैंने उसके चरणस्पर्श करते हुए कहा, 'भगवन्! आप तो मेरे पिता नहीं अपितु पितामह के बराबर हैं। आपको मेरा इस प्रकार आदर करने की आवश्यकता नहीं है।"

"इस परिचय के उपरान्त वह स्वयं मेरे साथ पुस्तकागार में गये और इन ग्रन्थों को निकालकर दे दिया।"

पिता-पुत्र ने हाथ-मुख धोया और भोजन करने के लिए भोजनालय में पहुँच गये। वहाँ चौकियों पर बैठकर भोजन करने लगे।

भोजन करते हुए बृहस्पति ने कहा, "मैं जब आपके कार्यालय के बाहर आपके अवकाश पाने की प्रतीक्षा में वटवृक्ष के नीचे बैठा था तो मुझे वह वटवृक्ष और वहाँ पर बैठे मेरे पूर्वजन्म की स्मृति हो आयी थी।"

"क्या स्मरण आया था?"

बृहस्पति ने वह सारी घटना सुना दी जो उस समय रमण के साथ घटित हुई थी।

"पण्डित हरिषेणजी को यह विदित हो गया था कि तुमने क्या किया था?"

"जी हाँ। एक दिन महामात्य कथा के अवसर पर वहाँ पधारे थे। वे कथा सुनते रहे और मुस्कराते रहे।

"जब कथा समाप्त हो चुकी तो कहने लगे, 'मैं इस बालक से क्षमा माँगने आया हूँ।'

"उस समय उन्होंने मेरे चरणस्पर्श करने के लिए हाथ बढ़ाया तो मैंने वही किया जो आज मैंने पुस्तकाध्यक्ष के साथ किया था।

"तब महामात्य ने कहा था, 'मैं तो यह देखने के लिए आया था कि आप कोरे अभिमानी ब्राह्मण ही हैं अथवा कि आपको कुछ ज्ञान भी है। अब मैं जान गया हूँ कि आपको अपने ज्ञान पर गर्व करना उचित ही है।'

"उस समय महाराज मेरी बात का आदर किया करते थे।

"और फिर एक दिन मुझे ज्वर हुआ, उसमें मैं अचेत हो गया था। उसके बाद आज से पाँच-छः वर्ष पूर्व जब हम पहली बार पाटलिपुत्र आये तो तभी फिर महाराज के मैंने दर्शन किये हैं। उन्हें देखते ही मैंने पहचान लिया था।"

"देखो बृहस्पति! तुम जो भी ग्रन्थ पढ़ो उसका सार संक्षेप में एक पुस्तिका पर लिखते जाओ। मैं यथासमय देखूंगा कि तुम क्या और कितना पढ़ गये हो।"

उस दिन तृतीय प्रहर बीतते-बीतते नगर के बीस प्रतिष्ठित श्रेष्ठी जन शिवकुमार के कार्यालय में एकत्रित हो गये थे। शिवकुमार ने उनके समुचित जलपान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की व्यवस्था करवायी हुई थी।

जलपान करते हुए महामात्य ने उन श्रेष्ठियों को वहाँ बुलाने का अपना विशेष प्रयोजन बताया। उसने कहा, "अश्वमेध यज्ञ के समय जो हवि एकत्रित की गयी थी यज्ञ में उससे अधिक ही व्यय हुई है। ब्राह्मणों को आमन्त्रित कर उन्हें खाली हाथ और निराश लौटाना महाराज ने उचित नहीं समझा। उसका परिणाम यह हुआ कि सारा राज्यकोष तो गया ही, महाराज ने अपने निजी रत्नजड़ित आभूषण तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुयें भी दान कर दी थीं।

"राज्य से राजस्व प्राप्त करने में समय लगता है। किन्तु राज्य के आश्रय पलने वाले लोगों को तो भूखे पेट नहीं रखा जा सकता ? राज्य के सेवक, सेना, अध्यापक और चिकित्सक आदि राज्य के वेतनभोगी कर्मचारी हैं।

"उनके वेतन का भुगतान करने के लिए ऋण लेना आवश्यक हो गया है। बताइये महाराज आप महानुभावों से इतनी सहायता की अपेक्षा कर सकते हैं ?

"असुर राज्यों में तो जब ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है तो वहाँ आज्ञा हो जाती है कि जिसके पास जो है वह सब लूट लो अथवा कुछ ऐसा बखेड़ा खड़ा कर बलात् राजस्व प्राप्त कर लिया जाता है।

"किन्तु यहाँ तो आसुरी राज्य नहीं है। हमारे सम्मुख ऋण ही एक ऐसी व्यवस्था है जिसपर विचार किया जा सकता था। यदि आप लोगों को राज्य की ऋण लेने की क्षमता में सन्देह हो तो राज्य अपनी सम्पत्ति में से कुछ बन्धक रखने के लिए तैयार है।"

महामात्य के निवेदन के बाद भिन्न-भिन्न श्रेष्ठियों ने अपने-अपने विषय में बताया कि वे कितना-कितना ऋण दे सकते हैं।

श्रेष्ठियों के बताने के उपरान्त शिवकुमार ने उनके सम्मुख एक प्रस्ताव रखा। उसने कहा, "आप सब मिल जाइये और परस्पर दो करोड़ मुद्रा एकत्रित कर लीजिये। आप लोगों का संयुक्त साहूकारा। आप अपना एक मुखिया नियुक्त कर लीजिये। वही राज्य से लेन-देन की बात करेंगे।

"इस ऋण से जो लाभ होगा वह आप लोग परस्पर उस अनुपात में बाँट लीजिये जिस अनुपात में जिसने जितना इस साहूकारे में धन लगाया हो।"

तब उनमें से एक श्रेष्ठि बोले, "महामात्यजी ! आपका प्रस्ताव उत्तम है। आपने बड़ी सरलता से अपनी और हमारी स्थिति स्पष्ट कर दी है। कलतक हम अपने मुखिया का निर्णय कर लेंगे। वे आपसे मिलेंगे। वे ही सारी बात आपसे तय करेंगे।"

इस प्रकार निर्णय होने के उपरान्त श्रेष्ठिगण वहाँ से चले गये। उनका आदर सम्मान तो पहले ही किया जा चुका था।

श्रेष्ठिगण जा रहे थे कि प्रतिहारी ने भीतर जाकर महामात्य को बृहस्पति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पत्र दिया। शिवकुमार ने पुस्तकाध्यक्ष को अपने हाथ से पत्र लिखा और वह प्रतिहारी को पकड़ा स्वयं महाराज को श्रेष्ठियों के साथ हुई आज की बैठक का विवरण देने के लिए चला गया।

अगले दिन वही श्रेष्ठी जिसने पहले दिन कहा था कि हम कल तक अपने मुखिया का निर्णय कर लेंगे, मुखिया बनकर आया और महामात्य को बता गया कि वे लोग राज्य को दो करोड़ स्वर्ण ऋण रूप में दे देंगे। उसने कहा, "जब आप इस राज्य के महामात्य हैं, हम राज्य से किसी प्रकार की कोई वस्तु बन्धक रूप में रखने की बात नहीं सोचते। पाटलिपुत्र के नागरिक पिछले पाँच वर्ष से आपको भली-भाँति जान गये हैं कि आप धर्म का पक्ष कभी नहीं छोड़ते।

"बस, हमारा तो इतना ही निवेदन है कि यदि किसी कारणवश आप इस पद का त्याग करें तो फिर हमारे धन की व्यवस्था कर जाइयेगा।"

शिवकुमार को हँसी आ गयी। वह बोला, "इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि आपने मुझे बन्धक रूप में रख लिया है।"

"हाँ भगवन्! परन्तु बिना लिखा-पढ़ी के। आपका कथन लिखे से अधिक प्रामाणिक है।"

"और यदि इस बीच सहसा मेरा निधन हो गया तो?"

"हम लोगों ने इस सम्भावना पर भी विचार किया था। हम समझते हैं कि यदि इस प्रकार की कोई दुर्घटना हो गयी तो हमें किसी से कोई शिकायत नहीं होगी और उस स्थिति में अपने मन को समझा लेंगे। तदपि आप सदृश ब्राह्मण से हम लिखकर कुछ भी नहीं लेंगे।"

"यह स्वर्ण कब और किस प्रकार मिलेगा?"

"इसमें से आधा तो इसी समय भी मिल सकता है। आधा पन्द्रह दिवस उपरान्त मिल जायेगा। क्योंकि यह पाटलिपुत्र से बाहर से मँगवाया जायेगा।"

"आप लोगों की इस उदारता का उल्लेख में महाराज के सम्मुख करूँगा। किन्तु ब्याज के सम्बन्ध में आपने कुछ नहीं बताया।"

"इस सम्बन्ध में राज्य का निश्चय हमें स्वीकार होगा।"

"यह मैं आपको कल तक बता पाऊँगा।"

इस प्रकार बात करके श्रेष्ठी चला गया तो शिवकुमार महाराज से मिलने के लिए चला गया। वहाँ यह निश्चय हुआ कि इस सम्बन्ध में एक अनुबन्ध लिखा जाय। उस अनुबन्ध में गंगा तट के दस गाँव और एक नगर के राजस्व की आय इस धन के ब्याज के रूप में लिखी जाय। क्योंकि अनुमान लगाया गया कि दो करोड़ स्वर्ण का ब्याज लगभग इन दस ग्रामों और एक नगर के राजस्व के बराबर ही होगा।

ब्याज लगभग तीन प्रतिशत प्रतिवर्ष के हिसाब से निर्धारित किया गया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋण का भुगतान दस वर्ष में कर देने का अनुबन्ध में उल्लेख किया गया। यदि राज्य दस वर्ष में भुगतान नहीं कर पाया तो पुनः नया अनुबन्ध तैयार किया जायेगा।

इस प्रकार एक-एक करोड़ स्वर्ण के दो अनुबन्ध-पत्रक लिखकर तैयार कर लिये गये और अगले दिन श्रेष्ठी से जब एक करोड़ स्वर्ण मुद्रा ली गयी तो उसका अनुबन्ध श्रेष्ठी को दे दिया गया।

इस बीच शिवकुमार ने राम तथा उसकी माता को जो पत्र महाराज की ओर से लिखवाया था वह भी लिखकर भेज दिया गया था।

उधर सेनाध्यक्ष चन्द्रगुप्त विक्रम ने सेना के संचालन में तीव्रता की तो दो दिन में ही भिन्न-भिन्न स्थानों से दो लाख सैनिक अंगदेश के उत्तरी किनारे पर एकत्रित हो गये।

: ११ :

महामात्य पद ग्रहण करते ही पण्डित शिवकुमार ने जो प्रथम कार्य किया वह था नालन्दा विश्वविद्यालय के कुलपति को पत्र लिखकर उन्हें पाटलिपुत्र आने का निमन्त्रण देना।

यह बड़ी अप्रत्याशित बात थी। जब से मगध पर अबौद्धों का राज्य हुआ था तब के नालन्दा विश्वविद्यालय राज्याश्रय विहीन हो गया था। इस कारण धना-भाव हुआ और उसकी दशा बिगड़ती गयी।

नालन्दा विश्वविद्यालय अभी भी बौद्ध शिक्षा का ही केन्द्र था। अतः वहाँ के कुलाधिपति को जब पाटलिपुत्र आने का निमन्त्रण मिला तो वह इसका अभिप्राय समझ नहीं पाया था। इस कारण उसकी चिन्ता और भी बढ़ गयी थी। तदपि उस निमन्त्रण को अस्वीकार करना उसके सामर्थ्य की बात नहीं थी।

भिक्षु निर्मल जब पाटलिपुत्र आये तो उन्हें सम्मान सहित पद्मावती पन्थागार में राज्य की ओर से ठहराया गया। राज्य की ओर से उनकी सेवा-सुश्रूषा का समुचित प्रबन्ध किया गया।

पाटलिपुत्र पहुँचने के दिन ही भिक्षु निर्मल प्रभु को रात्रि के भोजन के लिए महाराज की ओर से निमन्त्रण मिला।

उस भोज के समय महाराज स्वयं, महारानी दत्तदेवी, महामात्य शिवकुमार और न्यायाधीश पण्डित भृगुदत्त सपत्नीक उपस्थित थे।

भोजन के समय महाराज ने महाप्रभु से कहा, "हमें हमारे महामात्य ने सूचना दी है कि धनाभाव के कारण आपका विश्वविद्यालय संकट का सामना कर रहा है। इस सम्बन्ध में हमारे महामात्य की सम्मति है कि राज्य की ओर से विद्यालय के संचालन के लिए राशि दी जानी चाहिए।"

निर्मल प्रभु के लिए यह प्रस्ताव नितान्त अप्रत्याशित था। इस कारण उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछा, "महाराज ! यह तो प्रसन्नता की बात है कि राज्य हमारे संकट को दूर करने की कृपा कर रहा है। परन्तु इसके विनिमय में विद्यालय को क्या करना होगा ?"

"केवल इतना ही कि उस धन-राशि के व्यय का वृत्तान्त प्रतिवर्ष महामात्य के पास निरीक्षणार्थ भेज दिया जाय। यदि राज्य को किसी राशि पर कोई सन्देह हुआ तो उसकी जाँच कर वह अपना सन्देह मिटाना चाहेगा।"

"हमारी शिक्षा-प्रणाली पर तो किसी प्रकार का हस्तक्षेप राज्य की ओर से नहीं किया जायेगा ?"

"नहीं, केवल इतना ही कि काशी से शिक्षित कुछ विद्वानों को भी वहाँ शिक्षा-कार्य करने की सुविधा प्रदान की जाय। उन विद्वानों की नियुक्ति हमारी विद्वत्परिषद् करेगी। उनका व्यय भी विद्वत्परिषद् ही वहन करेगी।"

"इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि विश्वविद्यालय का दोहरा प्रवन्ध हो जायेगा।"

"प्रवन्ध तो वर्तमान प्रबन्धकों के पास ही रहेगा। केवल काशी के विद्वानों की नियुक्ति और उनका पाठ्यक्रम ही नालन्दा के वर्तमान प्रवन्धक के अधिकार में नहीं होगा।"

"परन्तु महाराज ! इतना भी क्यों ?"

"वह इस कारण कि काशी के विद्वान् जो कुछ वहाँ पढ़ायेंगे उस विषय में वर्तमान प्रवन्धक अनभिज्ञ हैं। यदि उन्होंने उनके पाठ्यक्रम में हस्तक्षेप किया तो यह उनकी अनधिकार चेष्टा हो जायेगी।"

"महाराज। राज्य कितनी वार्षिक सहायता देगा ?"

"राज्य ने दस सहस्र स्वर्ण प्रतिवर्ष देने का निर्णय किया है। विद्वत्परिषद् अपने विभाग का प्रवन्ध स्वयं करेगी। आपको केवल अध्यापकों और छात्रों को स्थान मात्र देना होगा। उनके भोजन का प्रबन्ध भी आप लोगों को वैसे ही करना होगा जैसे अन्य अध्यापकों और छात्रों का करते हैं। पाठ्यक्रम का निर्धारण विद्वत्परिषद् करेगी।"

"इसका उत्तर तो मैं अपनी प्रवन्ध-समिति में इस विषय पर विचार-विमर्श करने के उपरान्त ही दे पाऊँगा।"

अब महामात्य ने कहा, "राज्य की ओर से दिये जाने वाले अनुदान की केवल एक ही शर्त होगी। वह यह कि उस विद्यालय में किसी भी सम्प्रदाय के आचार्य को वहाँ के विद्यार्थियों को शिक्षा देने की स्वीकृति प्रदान करनी होगी। हम यह नहीं चाहते कि नालन्दा विश्वविद्यालय मात्र किसी एक सम्प्रदाय की शिक्षा देने वाला विश्वविद्यालय ही रह जाय।"

"इसे क्यां आप राज्य की साम्प्रदायिकता नहीं मानते ? यह साम्प्रदायिकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी उतनी ही असहनीय है।"

"राज्य की साम्प्रदायिकता कहाँ है? राज्य तो किसी भी सम्प्रदाय की शिक्षा में हस्तक्षेप करना नहीं चाहता। तदपि राज्य यह अवश्य चाहता है कि सब सम्प्रदाय समीप बैठकर परस्पर विचारों का आदान-प्रदान अवश्य किया करें।"

"महाराज! काशीजी में ऐसा प्रबन्ध क्यों नहीं किया जाता?"

इसका उत्तर महामात्य ने दिया। उन्होंने कहा, "वहाँ किसी भी सम्प्रदाय के शिक्षक को स्वेच्छा से पठन-पाठन पर किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध है ही नहीं। हमें विदित है कि वहाँ पर धार्मिक गोष्ठियाँ और सम्मेलन होते हैं। उनमें न केवल प्रत्येक सम्प्रदाय को अपना मत व्यक्त करने का अधिकार है अपितु वहाँ सबको आमन्त्रित भी किया जाता है।"

महाप्रभु निर्मल कभी काशी गया नहीं था इस कारण वह इस व्यवस्था के सम्बन्ध में कुछ जानता नहीं था। अतः उसने उसका किसी प्रकार का न तो प्रतिवाद किया और न समर्थन ही।

भोजन करते तक इसी विषय पर चर्चा होती रही।

भोजनोपरान्त जब पण्डित शिवकुमार निर्मल प्रभु को लेकर पन्थागार की ओर चला तो निर्मल प्रभु ने पूछा, "राज्य की ओर से इस प्रकार का प्रस्ताव पहले कभी नहीं आया। हम अभी तक अपने विश्वविद्यालय में केवल बौद्ध सम्प्रदाय की ही शिक्षा देते आ रहे हैं। आज इस नवीन प्रस्ताव का आधार क्या है?"

"जो कुछ इससे पूर्व होता रहा है उस विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता। पाँच वर्ष पूर्व जब मैं यहाँ राज-पुरोहित के पद पर नियुक्त हुआ था तो उस समय भी मुझको महामात्य के कार्य पर टीका-टिप्पणी करने के लिए नियुक्त नहीं किया गया था। अब मैं स्वयं महामात्य हूँ, और यह प्रस्ताव मैंने अपने विचारानुसार ही किया है।

"क्योंकि मेरा विचार है कि इस प्रकार की व्यवस्था से विभिन्न सम्प्रदायों के ज्ञान में वृद्धि होगी। गोष्ठियों में होने वाला विचार-विनिमय ज्ञान प्राप्ति का सहज उपाय है।"

महाप्रभु निर्मल अगले प्रातःकाल ही अपने विश्वविद्यालय नालन्दा के लिए लौट गये। जाने से पूर्व उन्होंने पण्डित शिवकुमार को पत्र लिखा कि महाराज और महामात्य द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव पर अपनी सम्मति देने से पूर्व अपने सहयोगियों से विचार-विमर्श करना उपयुक्त समझकर वह नालन्दा जा रहा है। वहाँ जो विचार-विमर्श होगा और उसके उपरान्त जो सहमति होगी वह उसे लिखकर भेज देगा। इसके उपरान्त भी यदि कुछ जानना शेष रह जाय तो पुनः सन्देह भेजा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवकुमार के प्रोत्साहन से ही यह प्रस्ताव विद्वत्परिषद् में पारित किया गया था कि नालन्दा विश्वविद्यालय में बौद्ध सम्प्रदाय की शिक्षा के साथ-साथ वैदिक सम्प्रदाय की शिक्षा भी दी जानी चाहिए। उसी प्रस्ताव के अनुरूप महाप्रभु निर्मल को निमन्त्रण भेजा गया था।

किन्तु नालन्दा से उसका जो उत्तर प्राप्त हुआ वह निराशाजनक था। महाप्रभु निर्मल ने नालन्दा से जो पत्र लिखा वह इस प्रकार था—

"आदरणीय महामात्य महोदय,

पाटलिपुत्र से लौटने पर मैंने अपने विश्वविद्यालय की गोष्ठी आमन्त्रित कर आपका प्रस्ताव उसके सम्मुख प्रस्तुत किया। किन्तु खेद के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि किसी एक आचार्य ने भी उसके पक्ष में अपनी सहमति व्यक्त नहीं की। इस परिपेक्ष्य में मेरा निवेदन है कि राज्य को धर्म-निरपेक्ष भाव से व्यवहार करना चाहिए। हम अपना शिक्षण-कार्य स्वयमेव करने में सक्षम हैं और हमें किसी अन्य सम्प्रदाय से विचार-विनिमय करने की आवश्यकता नहीं।"

महामात्य शिवकुमार ने जब विद्वत्परिषद् को इस उत्तर से अवगत कराया तो विद्वत्परिषद् ने इसपर विचार-विनिमय करने के लिए एक साप्ताहिक गोष्ठी का ही आयोजन कर दिया।

पण्डित शिवकुमार उस दिन उस सभा में उपस्थित नहीं हुआ। उस बैठक में एक प्रस्ताव प्रस्तावित किया गया। जिसमें कहा गया कि जब मगध में बौद्ध सम्प्रदाय के अनुकूल राज्य था तो बौद्ध सम्प्रदाय वाले शिक्षा-पद्धति में राज्य के हस्तक्षेप का आह्वान करते थे। अब जब राज्य बौद्ध सम्प्रदाय का नहीं रहा तो वे शिक्षा-पद्धति में राज्य के हस्तक्षेप का विरोध कर रहे हैं। यह एकपक्षीय विचार है जिसे राज्य को स्वीकार नहीं करना चाहिए। विद्वत्परिषद् राज्य से माँग करता है नालन्दा विश्वविद्यालय के समीप उसको कुछ भूमि प्रदान की जाय जिससे वह वहाँ पर विद्यालय स्थापित कर वैदिक शिक्षा-पद्धति का प्रचलन कर सके।

महामात्य के पास जब यह प्रस्ताव पहुँचा तो वह उसे लेकर महाराज के पास विचार-विनिमय के लिए चले गये।

शिवकुमार को यह विदित था कि महाराज का ब्राह्मण वर्ग से सीधा सम्बन्ध भी है। अतः वह जानता था कि जिस प्रकार अश्वमेध यज्ञ के समय ब्राह्मण वर्ग ने महाराज को अपने अनुकूल करने के लिए यत्न किया था उसी प्रकार वह इस प्रसंग में भी महाराज को अपने अनुकूल करने के लिए अवश्य यत्न करेगा।

यही कारण था कि इस विषय में विद्वत्परिषद् को कुछ लिखने से पूर्व उसने महाराज से विचार-विमर्श कर लेना उचित समझा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामात्य ने जब इस सम्बन्ध में महाराज की सम्मति माँगी तो उन्होंने विद्वत्परिषद् की माँग को उचित बताया। महाराज की ओर से दो टूक उत्तर पाकर शिवकुमार के मन में संशय उत्पन्न हो गया। उसका विचार था कि या तो विद्वत्-परिषद् के कुछ प्रमुख सदस्य बैठक में प्रस्ताव प्रस्तुत करने से पूर्व महाराज से मिले हैं और उनके सम्मुख अपने विचार व्यक्त किये हैं और प्रस्ताव को परिषद् में प्रस्तुत किया है। अथवा यह भी सम्भव है कि महाराज ने ही इस प्रकार के प्रस्ताव के लिए विद्वत्परिषद् के कुछ सदस्यों को प्रेरित किया हो।

शिवकुमार ने महाराज की सम्मति सुनकर कहा, "महाराज ! मैं समझता हूँ कि राज-पुरोहित द्वारा ही महाराज का प्रचार-कार्य हो तो उत्तम होगा।"

"आप हमारे मनोनीत पुरोहित हैं। पण्डित विभूतिचरणजी को तो हमने आपके अधीन कार्य करने के लिए नियुक्त किया हुआ है।"

"परन्तु महाराज ! मुझे तो इस बात की कोई सूचना नहीं है। मैं तो जिस दिन से महामात्य नियुक्त हुआ हूँ उसी दिन से पुरोहित के पद से मुक्त हो गया हूँ।"

"इसके विपरीत हमने जब से महामात्य के पद को अवैतनिक स्वीकार किया है उसी दिन से हमने दोनों पदों को एक ही समझ लिया था।

"यही कारण है कि हम नित्य महामात्य की यज्ञशाला में कथा सुनने के लिए पहुँचते हैं।"

"परन्तु महाराज ! कथा सुनाना और महाराज के धार्मिक कार्य को चलाना दोनों कार्य समान तो नहीं माने जा सकते ?"

"महामात्य ! हमने आपको पुरोहित पद पर नियुक्ति के लिए जो स्वर्ण-पत्र लिखकर दिया था उसे वापस तो नहीं लिया ?"

"उसे तो महाराज ! मैंने उस समय की स्मृतिस्वरूप सँजोकर रखा हुआ है। मेरा विचार था कि श्रीमान्‌जी ने पण्डित विभूतिचरण को नवीन प्रमाण-पत्र दे दिया होगा।"

"अपने महामात्य से विचार-विमर्श किये बिना हम यह किस प्रकार कर सकते थे ?"

शिवकुमार ने एक क्षण विचार किया और फिर इस विषय पर अपना मत स्थिर कर लिया। तब उसने कहा, "महाराज ! मैं आपकी इस इच्छा को स्वीकार करने में असमर्थ हूँ कि महामात्य और पुरोहित पद पर एक व्यक्ति नियुक्त हो।

"मैं महाराज के सम्प्रदाय को महामात्य के द्वारा राज्य में चलाना नहीं चाहता। महाराज के राज्य में वैदिक मतानुयायियों के अतिरिक्त बौद्ध, जैन, चार्वाकीय असुर और कुछ, यद्यपि बहुत कम संख्या में, जरुस्थ सम्प्रदाय के लोग भी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"राज्य के महामात्य का उनके सांसारिक कार्यों पर शासन होता है। परन्तु उनके साम्प्रदायिक कार्यों पर नहीं। इस कारण इन दोनों प्रकार के कार्य मैं एक ही समय पर नहीं कर सकता।"

"तो फिर ?"

"तब या तो मुझे महामात्य पद से त्याग-पत्र देना होगा अन्यथा आप द्वारा नियुक्त पुरोहित को स्वयं से पृथक् मानना होगा। पुरोहित के क्षेत्र में महामात्य के नाते मैं अपने विचार उनपर थोपना पसन्द नहीं करता।"

"परन्तु हम अपने धार्मिक कार्य में महामात्य से परामर्श तो कर सकते हैं ?"

"हाँ, कर सकते हैं। यदि आपने पुरोहित से परामर्श कर लिया है तो मैं जानना चाहूँगा कि उसने इस विषय में आपको क्या सम्मति दी है।"

"उसने नालन्दा में एक वैदिक विद्यालय के संचालन के पक्ष में ही सम्मति दी है।"

"मुझे यह पसन्द है। महाराज की वहाँ अपनी निजी भूमि है। आप उसपर वैदिक विद्यालय खोलने की स्वीकृति प्रदान कर सकते हैं।"

तब महाराज ने पूछा, "परन्तु यह कार्य राज्य स्वयं क्यों नहीं कर सकता ? बौद्ध सम्प्रदाय के लिए तो समस्त नालन्दा की भूमि उनको प्रदान की गयी है।"

शिवकुमार ने उत्तर में कहा, "महाराज ! जहाँ तक शासकीय सुरक्षाओं का सम्बन्ध है नालन्दा विश्वविद्यालय सम्राट् अशोक के काल से आज तक चला आ रहा है। इससे पूर्व यह मात्र एक संस्कृत पाठशाला ही था। महाराज अशोक ने भी नालन्दा का पूर्ण ग्राम उस पाठशाला को तभी प्रदान किया जब उस पाठशाला का आचार्य कोई बौद्धधर्मानुयायी बन गया। तब से ही यह विद्यालय इस रूप में उन्नति करता रहा है।

"महाराज ने अपने पूर्वजों के इस उदारतापूर्ण व्यवहार को अभी तक स्वीकार किया हुआ था कि आप बौद्धकाल के राज्य-कार्यों में यदि सहायता नहीं करेंगे तो उनका विरोध भी नही करेंगे।

"अब यदि उनको दिये जाने वाले अनुदान में से कुछ को वापस लेना होगा तो यह स्पष्ट उस उदारता का विरोध होगा जो महाराज ने पूर्व प्रदर्शित की है।

"अतः मेरी सम्मति है कि उस विश्वविद्यालय को मिले अनुदान में जो भूमि है उसमें से कुछ भी न लिया जाय। यदि महाराज की इच्छा हो कि उसी ग्राम में एक वैदिक विद्यालय की भी स्थापना हो तो ब्राह्मणवर्ग को कहा जाय कि वे उसके लिए धन संचय कर वहाँ कार्य आरम्भ कर दें।"

"तब राज्य उनकी क्या सहायता करेगा ?" महाराज ने पूछा।

"विद्यालय जब आरम्भ हो जायेगा तो जन-जन के लिए उसकी उपयोगिता समझकर उसी अनुपात में राज्य को उस विद्यालय की सहायता करनी चाहिए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"किन्तु इस बौद्ध विद्यालय की क्या उपयोगिता है ?"

"निजी रूप में तो में उसकी कुछ भी उपयोगिता नहीं समझता। परन्तु जब राज्य की ओर से उसकी सहायता का प्रश्न आयेगा तो मैं प्रजा और राज्य की एक संयुक्त समिति बनाकर यह प्रश्न उसके समक्ष प्रस्तुत कर दूंगा।

"महामात्य की अपनी निजी सम्मति राज्य की सम्मति स्वीकार नहीं की जानी चाहिए।"

यह सुनकर महाराज समुद्रगुप्त मौन हो गये।

महाराज को विदित था कि पण्डित शिवकुमार बौद्ध मीमांसा के प्रबल विरोधी हैं। तदपि महाराज अनुभव कर रहे थे कि महामात्य अपने निजी विचार राज्य पर थोपना उपयुक्त नहीं समझते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ परिच्छेद

प्रयागराज में सम्पन्न अश्वमेध यज्ञ के अन्तिम दिनों में जब महाराज समुद्र-गुप्त को राम के षड्यन्त्रों का ज्ञान हुआ तो उन्होंने उस समय यही उचित समझा कि यज्ञ में राम के बैठने के स्थान को ही बदल दिया जाय। राम को जब परिवर्तित स्थान पर बैठने के लिए कहा गया तो पहले तो उसने उसे अस्वीकार करना चाहा परन्तु फिर आचार्य सान्त्वनाकुमार से उस विषय पर विचार-विमर्श करने की बात सोचकर उसने उस दिन वह परिवर्तित स्थान स्वीकार कर लिया था।

आचार्य सान्त्वनाकुमार पुरोहित के आसन पर विराजमान थे। उन्होंने जब राम को अपने सम्मुख भूमि पर बैठते हुए देखा तो उनको आश्चर्य हुआ। परन्तु यज्ञ आरम्भ करने का समय हो गया था। इसलिए उस समय इस स्थिति पर विवाद करने के लिए समय नहीं था। समय पर यज्ञारम्भ हुआ। सान्त्वनाकुमार ने यह भी देखा कि जिस स्थान पर राम बैठा करता था उस स्थान पर आज चन्द्र गुप्त विक्रम नग्न खड्ग लिये खड़ा है। यह भी उसके लिए आश्चर्य और विस्मय-कारक था।

आचार्य सान्त्वनाकुमार के सम्मुख इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं था कि वह यज्ञ-कार्य आरम्भ करे।

उस दिन यज्ञ समाप्त होने पर भोजन के लिए जाने से पूर्व आचार्य सान्त्वना-कुमार और चन्द्रावती ने राम को बुलाकर पूछा, "तुम अपना पूर्व स्थान छोड़कर वहाँ किस लिए जा बैठे थे?"

"महाराज की आज्ञा हुई थी, इसलिए।"

"इसका उन्होंने कुछ कारण भी बताया था?"

"जी हाँ, उन्होंने कहा था कि यदि मैं युवराज बनना चाहता हूँ तो मुझे यज्ञ पर यजमान बनना चाहिए। महाराज का अंगरक्षक नहीं।"

"तो फिर?"

"मुझे यह युक्तियुक्त लगा, इसलिए मैंने स्वीकार कर लिया।"

"किन्तु तुम तो युवराज नहीं महाराज बनना चाहते थे?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वह किस प्रकार ?"

सान्त्वनाकुमार और चन्द्रावती ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया।

भोजनोपरान्त चन्द्रावती और आचार्य सान्त्वनाकुमार दोनों ही महाराज के पास गये। उन्होंने प्रातःकाल के यज्ञ में राम के स्थान परिवर्तन का कारण पूछा।

महाराज ने कहा, "हमें किसी विद्वान् ने बताया है कि इस यज्ञ में महाराज, महारानी और युवराज तीनों ही यजमान हैं। इस कारण युवराज के हाथ में खड्ग दे महाराज के अंगरक्षक से रूप में खड़ा करना युवराज को यजमान पद से हटाकर सेवक के पद पर खड़ा करना है।"

आचार्य सान्त्वनाकुमार कुछ कहना चाह रहा था किन्तु महाराज ने उसके बोलने से पहले ही कह दिया, "हमारा भी यही मत था। तदपि आपको यदि इस विषय पर कुछ सन्देह हो तो आप हमारे महामात्य से विचार-विमर्श कर सकते हैं।"

इसका स्पष्ट अभिप्राय यही था कि यह परिवर्तन महामात्य पण्डित हरिषेण के निर्देश पर किया गया था।

महारानी चन्द्रावती और सान्त्वनाकुमार दोनों को अपने-अपने विश्वस्त सूत्रों से विदित हुआ था कि महामात्य हरिषेण उन दोनों का विरोध कर रहा है। उनको यह भी विदित हुआ था कि हरिषेण अपने स्थान पर पण्डित शिवकुमार को महामात्य पद दिलाने के लिए प्रयत्नशील है।

इस बात को स्मरण कर चन्द्रावती और आचार्य सान्त्वनाकुमार पृथक् में परस्पर विचार-विमर्श करने लगे। उन दोनों में इस बात पर सहमति थी कि पहले यह पता किया जाय कि पिछले दो दिनों में महामात्य के निवास-स्थान पर उससे मिलने के लिए कौन-कौन गया था।

महारानी ने अपने गुप्तचर को समझा-बुझाकर महामात्य के निजी सेवकों से सम्पर्क स्थापित करने की प्रेरणा दी। इस पर उसे यह सूचना मिली कि जिन दुष्टों को उन्होंने शिवकुमार की हत्या के लिए नियुक्त किया था वे शिवकुमार की हत्या करने में तो सफल नहीं हो सके विपरीत इसके उनमें से राज्य सरकार ने कुछ को बन्दी बना लिया है। साथ ही महारानी को विदित हुआ कि राज्य का न्यायमूर्ति गुप्त रूप में यहाँ आया था। वह महामात्य और महाराज से मिलकर पुनः राजधानी के लिए लौट गया है। उसके जाने के उपरान्त महामात्य और महाराज में परस्पर विचार-विमर्श हुआ है। यह विचार-विमर्श गुप्त रूप में हुआ था। यह गुप्त बैठक पिछली रात ही हुई थी।

यह सुनकर आचार्य सान्त्वनाकुमार को यह समझने में तनिक भी विलम्ब नहीं हुआ कि न्यायमूर्ति भृगुदत्त राजधानी की गतिविधि से महाराज और महामात्य को अवगत करा गया है। और उसकी प्रतिक्रियास्वरूप महाराज ने प्रातः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल यज्ञ में राजकुमार के आसन में परिवर्तन कराया है।

वह समझता था कि उनके जिन व्यक्तियों को राजधानी में बन्दी बनाया गया है उनमें से किसी ने दबाव में आकर उनकी योजना का भाण्डा फोड़ दिया तो महाराज का सतर्क हो जाना स्वाभाविक है।

गुप्तचर से यह सूचना पाकर आचार्य सान्त्वनाकुमार ने महारानी चन्द्रावती से विचार-विनिमय किया। महारानी समझ गयी कि अब यह स्थान उसके तथा उसके प्रिय पुत्र के लिए भयावह है। अतः इस विचार के आते ही वह रात्रि में ही अपने पुत्र को लेकर उज्जयिनी के लिए भाग गयी।

प्रातःकाल यज्ञ आरम्भ होने से पूर्व महारानी चन्द्रावती पहले महाराज के शिविर में आती थी और फिर वहाँ से दोनों साथ-साथ यज्ञ-मण्डप में जाते थे।

उस घटना के दूसरे दिन जब महारानी यथासमय नहीं आयी तो महाराज ने उसको बुलाने के लिए अपना सेवक उसके शिविर में भेजा। सेवक ने आकर सूचना दी कि महारानी का शिविर सूना पड़ा है। वे अपने दास-दासियों और पुत्र सहित वहाँ से रात ही प्रस्थान कर गयी थीं।

महाराज ने जब यह सुना तो उन्होंने अपनी दूसरी पत्नी दत्तदेवी को बुलवा कर उसे अपने साथ यज्ञ पर बैठने के लिए तैयार कर लिया। पहले दिन उसने भी यज्ञ में हुए परिवर्तन को देख लिया था। उसने अपने पुत्र चन्द्र को राम के स्थान पर खड्ग लिए खड़े भी देखा था।

आचार्य सान्त्वनाकुमार ने जब उस दिन रामगुप्त और चन्द्रावती दोनों को यज्ञ-मण्डप में उपस्थित नहीं पाया तो वह उस परिस्थिति पर विचार करने पर विवश हो गया। उसका परिणाम यह हुआ कि मध्याह्न के भोजन से पूर्व ही वह अपने सब याज्ञिकों को एकत्रित कर हरिद्वार के लिए प्रस्थान कर गया।

महाराज को जब यह सूचना मिली तो उन्होंने महामात्य हरिषेण को बुला-कर उनसे विचार-विमर्श किया। तब महामात्य हरिषेण ने मध्याह्नोत्तर के यज्ञ की सुव्यवस्था कर दी।

यज्ञ सम्पन्न होकर जब महाराज राजधानी वापस लौट आये तो न्यायमूर्ति भृगुदत्त ने महारानी चन्द्रावती और रामगुप्त को उज्जयिनी में पत्र भेजकर लिखा कि उनके विरुद्ध महाराज की हत्या के षड्यन्त्र का आरोप है, अतः वे अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए पाटलिपुत्र आयें।

महाराज ने समझा कि भृगुदत्त भी अपने पिता के अनुसार ही रामगुप्त और महारानी चन्द्रावती से रुष्ट है और वह उन दोनों को इतना कुख्यात कर देगा कि राम किसी भी प्रकार युवराज बनने के योग्य न रह जाय।

समुद्रगुप्त जहाँ एक ओर अपने जीवन की सुरक्षा चाहता था वहाँ वह यह नहीं चाहता था कि राज-परिवार की किसी प्रकार की कुख्याति हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही कारण था कि भृगुदत्त ने चन्द्रावती और रामगुप्त के लिए जो पत्र लिखा था उसे महाराज उज्जयिनी भेजने में असमर्थ रहे।

महाराज भृगुदत्त ने जब इस सम्बन्ध में दत्तदेवी से पूछा तो उनका कहना था, "मुझमें राजमाता बनने की तनिक भी लालसा नहीं है। किन्तु मैं अपने सुहाग को अपने मरणपर्यन्त बनाये रखने के प्रत्येक उपाय में सदा सहायक रहना चाहती हूँ।"

राजकुमार विक्रम से जब पूछा गया तो उसने कहा, "मुझे राज-सिंहासन की तनिक भी लालसा नहीं है। जब हमारा देश इस योग्य हो जाय कि शकों द्वारा अधिकृत शेष भारत-भूमि को स्वतन्त्र कर ले, मैं केवल उस अवसर की लालसा किए हुए हूँ, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं।"

इसका परिणाम यह हुआ कि महाराज ने न्यायमूर्ति का पत्र उज्जयिनी भेजा ही नहीं।

यज्ञ को समाप्त हुए दो मास बीत रहे थे। महाराज नये महामात्य की नियुक्ति के लिए पण्डित शिवकुमार के अपने गाँव से लौटने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

जब पण्डित शिवकुमार महामात्य पद पर नियुक्त हो गया तो उसने न्यायमूर्ति भृगुदत्त से यह जानना चाहा कि उसके निवास पर आक्रमण करने वालों की क्या गति हुई है।

भृगुदत्त ने बताया कि उसने अपनी आज्ञा लिखकर महाराज द्वारा उज्जयिनी भिजवायी। उसके उत्तर की प्रतीक्षा की जा रही है।

तब शिवकुमार ने भृगुदत्त को बताया कि अंग नरेश अपनी दोनों पुत्रियों का विवाह रामगुप्त से करना चाहता है।

भृगुदत्त ने कहा, "मैं इसे उचित नहीं समझता।"

"क्यों भला?"

"क्योंकि मेरी दृष्टि में रामगुप्त युवराज पद के योग्य नहीं है। यह केवल महाराज के परिवार का ही प्रश्न नहीं है अपितु पूर्ण भारत देश का प्रश्न है। मैं यह विवाह नहीं होने दूंगा।"

इसी समय यह समाचार मिला कि अंग नरेश अपनी राजकुमारियों के साथ उज्जयिनी में निवास कर रहे हैं। वहाँ विवाह की तैयारियाँ भी हो रही हैं और विवाह की तिथि भी निश्चित हो चुकी है। महामात्य शिवकुमार को यह भी सूचना मिली कि उज्जयिनी के श्रेष्ठिगण राम के विवाह के लिए खूब धन दे रहे हैं।

इस परिपेक्ष्य में शिवकुमार तो यही उचित समझता था कि इस षड्यन्त्र को निष्फल करने का एकमात्र उपाय यही है कि राजकुमार और महारानी को बन्दी बनाकर अथवा किसी प्रकार से पकड़कर पाटलिपुत्र लाया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी स्थिति में महामात्य भृगुदत्त द्वारा उज्जयिनी को लिखे गये पत्र के सम्बन्ध में महाराज से जानकारी प्राप्त करने के लिए उनके पास गया।

महाराज ने दो टूक उत्तर दिया कि उन्होंने राम और उसकी माता को पहले ही क्षमा प्रदान कर दी थी।

"महाराज! आप किसी भी अपराधी को क्षमा तो कर सकते हैं किन्तु अपराधी पर लगाये गये अभियोग को स्थगित नहीं कर सकते।"

"ठीक है। यदि ऐसा है तो न्यायमूर्ति को महारानी और राजकुमार के विरुद्ध आज्ञा कर देनी चाहिए। वह आज्ञा मेरे पास आयेगी तो मैं दोनों का अपराध क्षमा कर दूंगा।"

शिवकुमार समझता था कि महाराज का यह व्यवहार कुछ तो अपनों के प्रति आत्मीयता के कारण था और कुछ वैष्णवमतानुयायी होने के कारण उनके मन में दया-ममता की भावना अधिक ही घर गयी थी, इस कारण भी वे अपने स्वभाव से विवश थे। वैष्णव मत की यह भावना बौद्ध सम्प्रदाय की भावना से मिलती थी।

शिवकुमार के मन में दूसरी ही योजना थी। वह समझ रहा था कि कदाचित् अंग नरेश और राम में किसी प्रकार की सीधी सन्धि हो चुकी है, और यह विवाह तो उसके षड्यन्त्र का एक भाग मात्र है।

इस विचार से महामात्य ने यह योजना बनायी कि राम और उसकी माँ को विवाह से पूर्व ही पकड़कर पाटलिपुत्र में लाया जाय और उन पर खुले न्यायालय में अभियोग चलाकर उन दोनों को इतना कुख्यात कर दिया जाय कि महाराज स्वयं भी राम को युवराज बनाने में संकोच करने लगें।

अतः शिवकुमार ने महाराज के इस कथन को कि न्यायमूर्ति उनपर आरोप लगाकर उनके पास भेज दे और वे उनको क्षमा कर देंगे, न्यायमूर्ति को कहा किन्तु साथ ही यह भी कह दिया कि वह यह कह दे कि बिना जाँच-पड़ताल के वह सीधी दण्ड की आज्ञा नहीं दे सकता।

भृगुदत्त का कहना था कि वह राम और उसकी माता को किसी आरोप में न्यायालय में उपस्थित कर उनका पक्ष सुनने के उपरान्त ही यदि उचित हुआ तो उनको दण्ड भुगतने की आज्ञा दे सकता है। बिना दण्ड दिये महाराज किसको क्षमा करेंगे। महाराज राज-परिवार के किसी भी सदस्य को न्यायालय में उपस्थित किये जाने से रोक नहीं सकते।

यदि महाराज ने ऐसा किया तो फिर यह धर्मराज्य नहीं रह जायेगा।

भृगुदत्त ने इस सब पर विचार किया और अन्त में उज्जयिनी के आयुक्त को आज्ञा दी कि रामगुप्त और महारानी चन्द्रावती को षड्यन्त्र करने के आरोप में बन्दी बनाकर पाटलिपुत्र भेज दिया जाय। अपने आरोप का उत्तर वे न्यायालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में उपस्थित होकर दे सकेंगे। भृगुदत्त का आग्रह था कि यह कार्य तुरन्त करा दिया जाना चाहिए।

जिस दिन विवाह सम्पन्न होने वाला था उसी दिन माँ-पुत्र को वन्दी वनाने के उद्देश्य से पाँच-सौ सैनिकों ने उज्जयिनी के राज-प्रासाद पर घेरा डाला और फिर उन दोनों को बन्दी बनाकर सैनिकों की देख-रेख में पाटलिपुत्र के लिए विदा कर दिया।

अंगनरेश ने विदिशा के साथ मिलकर षड्यन्त्र रचा था। उनकी योजना थी कि राम का विवाह कर उसे विदिशा में रखा जाय,और फिर दोनों ओर से मगध पर आक्रमण कर दिया जाय। रामगुप्त के नाम पर घोषणा की जाय कि महाराज बूढ़े हो गये हैं अतः उनको संन्यास ले लेना चाहिए। उनके संन्यास न लेने की स्थिति में यह आक्रमण अनिवार्य हो गया है।

उस योजना के अनुसार विदिशा तो उज्जयिनी पर अधिकार कर लेता और नर्मदा का क्षेत्र भी उसके अधिकार में आ जाता। अंग सेना बढ़ती हुई पाटलिपुत्र में प्रविष्ट होकर राम को राज्यासीन कर देती। राम के राज्यासीन होते ही युद्ध के व्यय के रूप में वह अंग देश को मगध का पूर्वी भाग प्रदान कर देता।

परन्तु विवाह की सारी तैयारी धरी रह गयीं। जिस समय विदिशा भवन में अंग नरेश की ओर से विवाह की तैयारियाँ हो रही थीं उस समय मगध के सैनिक राम और उसकी माताजी को बन्दी बनाकर पाटलिपुत्र के मार्ग पर जा रहे थे। अंगनरेश के यहाँ बड़ी धूम से तैयारियाँ हो रही थीं। अंग और विदिशा राज्य के अधिकारी इस तैयारी में बड़े मनोयोग से जुटे हुए थे।

जब दिन का आधा प्रहर बीत गया तब किसी ने विदिशा भवन में जाकर सूचना दी कि राजकुमार राम और उसकी माता चन्द्रावती को उज्जयिनी के आयुक्त ने बन्दी बना लिया है।

यह सूचना मिलने पर अंग और विदिशा राज्य के अधिकारी उज्जयिनी के आयुक्त के पास पहुँचकर माँ-पुत्र को छोड़ने की माँग करने लगे।

आयुक्त ने कहा, "उन दोनों को मेरी आज्ञा से बन्दी नहीं बनाया गया है। उनको बन्दी बनाने की आज्ञा पाटलिपुत्र के महामात्य की थी। उनको वन्दी बनाये बहुत समय हो गया है और वे विदिशा राज्य में हैं भी नहीं। अब तक वे पाटलिपुत्र के मार्ग पर कोसों दूर जा चुके होंगे।"

अंग और विदिशा राज्यों को यह सुनकर बड़ी निराशा हुई। वे अपने-अपने शासकों को यह सूचना देने के लिए चले गये। अंग की राजकुमारियों को विदिशा के राज-भवन में जहाँ उनकी ननिहाल थी, भेज दिया गया।

बीस दिन की यात्रा के उपरान्त राजकुमार रामगुप्त और महारानी चन्द्रावती पाटलिपुत्र पहुँचे। उनको बन्दीगृह के सुसज्जित आगार में रखा गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी दिन सायंकाल उन दोनों माँ-पुत्र को स्थानीय न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित किया गया और उनपर लगाये गये आरोपों को उन्हें बताया गया।

उसके उत्तर में महारानी चन्द्रावती ने कहा, "मेरी रक्षा का भार मगध सम्राट् पर है अतः यह आरोप-पत्र उनके पास भेज दिया जाय।"

न्यायाधीश ने उसी सायंकाल वह आरोप-पत्र और उसपर महारानी के उत्तर को लिखकर महाराज के पास भेज दिया।

: २ :

महाराज समुद्रगुप्त रात के भोजन पर बैठने ही वाले थे कि न्यायपालिका की ओर से चन्द्रावती और उनके पुत्र राजकुमार राम के विरुद्ध आरोप-पत्र और न्यायपालिका में महारानी द्वारा दिया गया उत्तर उनके सम्मुख प्रस्तुत कर दिया।

न्यायपालिका ने जब न्यायाधीश की आज्ञा महाराज के पास भेजी तो उस समय महामात्य और मुख्य न्यायमूर्ति पण्डित भृगुदत्त दोनों महामात्य भवन में बैठकर स्थिति पर विचार-विमर्श कर रहे थे। वे अनुमान लगाने का यत्न कर रहे थे कि इसपर महाराज की क्या प्रतिक्रिया हो सकती है।

शिवकुमार ने तो अपने परिवार को पाटलिपुत्र के बाहर किसी अज्ञात स्थान पर भेजने की व्यवस्था की हुई थी। उसने भृगुदत्त को भी यही परामर्श दिया था। उसने कहा, "आप भी अपने परिवार को पाटलिपुत्र से बाहर आर्यपुरा भेज दीजिये। मुझे सन्देह है हम दोनों को बन्दी बना लिया जायेगा। हम पर महाराज के परिवार को व्यर्थ में कष्ट देने का आरोप लगाकर सम्भवतया प्राणदण्ड की भी घोषणा कर दी जाय।

"इस स्थिति में मैंने अपनी रक्षा का प्रबन्ध किया हुआ है। राज-प्रासाद से ही मैं बचकर निकलने में सफल हो जाऊँगा।"

न्यायमूर्ति भृगुदत्त ने स्थिति पर विचार किया और उसको शिवकुमार का परामर्श स्वीकार करना पड़ा। उसका परिणाम यह हुआ कि जिस समय न्याय-पालिका की ओर से महाराज को उनकी पत्नी और पुत्र पर लगाये गये आरोपों को सौंपा जा रहा था, उसी समय महामात्य और मुख्य न्यायाशीश के परिवार रथों में बैठकर आर्यपुरा में एक श्रेष्ठि के घर के लिए भेजे जा रहे थे।

महाराज ने वह आरोप-पत्र पढ़ा तो वह आश्चर्यचकित रह गये।

भोजन के लिए जाने की अपेक्षा महाराज अपनी बैठक में पहुँच गये और उन्होंने प्रतिहारी द्वारा राजकुमार चन्द्र और उसकी माता दत्तदेवी को बुलवाया।

वे दोनों भी भोजन की तैयारी कर रहे थे कि महाराज का आदेश पाकर उनके पास आ गये। उनके आने पर महाराज ने न्यायपालिका का आदेश उनके सम्मुख कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरोप-पत्र इस प्रकार था—

"राजकुमार रामगुप्त और महारानी चन्द्रावती ने आचार्य सान्त्वना-कुमार की सहायता से अश्वमेध यज्ञ के समय प्रयागराज में महाराज और राजकुमार चन्द्रगुप्त की हत्या का षड्यन्त्र रचा था। इस आरोप के समर्थन में साक्षीरूप रामगुप्त के उज्जयिनी के दो कर्मचारियों के वक्तव्य भी संलग्न हैं।

"रामगुप्त के विरुद्ध भूतपूर्व राज-पुरोहित शिवकुमार की हत्या के षड्यन्त्र का भी आरोप है। रामगुप्त के सैनिकों ने पण्डित शिवकुमार के मकान को लूट लिया और अविशिष्ट सम्पत्ति को क्षति पहुँचाई।

"जब यह आरोप महारानी चन्द्रावती और उनके पुत्र राम को स्थानीय न्यायालय में न्यायाधीश पण्डित चतुरानन के सम्मुख पढ़कर सुनाया गया तो महारानी ने इसके उत्तर में कह दिया कि अपनी रक्षा के लिए वह मगध सम्राट् को नियुक्त करती हैं। उनकी इच्छा है कि आरोप-पत्र महाराज के पास भेज दिया जाय।"

राजकुमार चन्द्र ने यह आरोप-पत्र पढ़ा और फिर वापस महाराज को दे दिया। उसने पूछा, "इस पर आप क्या करना चाहते हैं?"

"तुम क्या चाहते हो?"

"मैं इस समय सेनाध्यक्ष हूँ और महाराज की आज्ञापालन के लिए तत्पर हूँ।"

दत्तदेवी ने कहा, "नहीं विक्रम! सेना और सेनाध्यक्ष नगर सुभट्ट की श्रेणी में नहीं आते। सेना का गठन देश की रक्षा करने के लिए होता है, न्याय-पालिका की आज्ञा लाने और ले जाने के लिए नहीं।"

"इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि आप राज-परिवार के साथ होने वाले अन्याय को रोकने के लिए सेना का प्रयोग उचित नहीं समझतीं?"

"महाराज! पहले तो यह जानना होगा कि राज-परिवार के साथ न्याय हो रहा है अथवा अन्याय?"

"आप क्या समझती हैं?"

"अभी तो न न्याय हो रहा है और न अन्याय ही। किन्तु इतना तो मैं भी जानती हूँ कि आपकी प्रिय रानी सहसा यज्ञ-मण्डप से नहीं अपितु प्रयागराज से ही भाग खड़ी हुई थीं। इससे स्पष्ट था कि वे दोषी हैं।

"परन्तु दोष तो अभी सिद्ध हुआ नहीं है। उसे सिद्ध करने का यत्न किया जा रहा है। पहले न्यायपालिका की प्रक्रिया तो पूर्ण होने दीजिए।"

"परन्तु चन्द्रावती ने हमें अपना रक्षक नियुक्त किया है।"

"वह तो मैं भी देख रही हूँ। जिसकी हत्या करने का आरोप है उसी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संरक्षक नियुक्त किया जा रहा है। उचित तो यही होगा कि आप इस कार्य को अस्वीकार कर दें।"

"विक्रम! इस विषय में तुम्हारी क्या सम्मति है?"

"सेनाध्यक्ष इस विषय पर सम्मति देने के लिए बाध्य नहीं है।"

"परन्तु प्रश्न यह है कि कल को यह महामात्य मुझे भी तो बन्दी बना सकता है?"

विक्रम की अपेक्षा दत्तदेवी ने पूछा, "तो क्या आप भी राज्य के विरुद्ध कोई षड्यन्त्र रच रहे हैं?"

"महामात्य अपने प्राणों की रक्षा के लिए ऐसा भी कर सकता है।"

"तो क्या आप उसके प्राण हरण का विचार कर रहे हैं?"

"हाँ, उसने हमारी महारानी को पाँच सौ कोस से पकड़कर मँगवाया है, इस अपराध में हम यह करना उपयुक्त समझते हैं।"

अन्त में दत्तदेवी ने कहा, "देखिये महाराज! मेरी इच्छा अभी विधवा होने की नहीं है। आपकी बड़ी रानी ने तो यही सब करने का यत्न किया था। यह मुझे भलीभाँति विदित है।

"यदि आप राज-पाट छोड़कर वन जाने को तैयार हों तो मैं भी आपके साथ जाने के लिए तैयार हूँ। मुझे राज-पाट की कोई अभिलाषा नहीं है। परन्तु मुझे अपने सुहाग की चिन्ता अवश्य है। जिसने उसकी रक्षा की है मैं उसकी कृतज्ञ हूँ। इस कारण मेरी आपको यही सम्मति है आप महामात्य को यहाँ बुलाकर यह जानने का यत्न कीजिए कि यह सब उसकी जानकारी में हुआ है अथवा उसके जाने बिना ही हुआ है।"

महाराज ने प्रतिहारी को बुलाकर उसे महामात्य को तुरन्त बुलाकर लाने का आदेश दे दिया।

आदेश पाकर जब प्रतिहारी चला गया तो दत्तदेवी बोली, "महाराज! बहुत जोर-से भूख लगी है। जब तक महामात्य आते हैं तब तक भोजन कर लेना चाहिए।"

तीनों भोजन करने के लिए चले गये।

भोजन समाप्त भी नहीं हुआ था कि महाराज को महामात्य के आने की सूचना दे दी गयी।

जो प्रतिहारी शिवकुमार की सूचना देने के लिए आया था उसने यह भी बताया कि नगर के लगभग एक सौ ब्राह्मण महाराज से मिलने के लिए राज-भवन के द्वार पर एकत्रित हैं।

महाराज अभी इस स्थिति पर विचार ही कर रहे थे कि विक्रम ने प्रतिहारी से कहा, "उन ब्राह्मणों से जाकर कह दो कि महाराज इस समय आवश्यक कार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहे हैं। उनसे ग्रब कल प्रातःकाल ही भेंट हो सकेगी।"

तभी राज-प्रासाद के संरक्षक वीरसेन ने ग्राकर कहा, "कुमार! वे तो ग्रभी मिलने का ग्राग्रह कर रहे हैं। उनका यह भी कहना है कि यदि वे मिलना नहीं चाहते हैं तो कह दें।"

यह सुनकर विक्रम गम्भीर हो गया। विवश वह महाराज का मुख देखने लगा। महाराज ने कहा, "उनसे कह दो कि भोजनोपरान्त हम उनसे भेंट करेंगे।"

वीरसेन जा रहा था कि महाराज ने फिर कहा, "ग्रौर सुनो। महामात्य को यहीं ले ग्राग्रो।"

महाराज समझ रहे थे कि ये ब्राह्मण इस समय शिवकुमार का ही पक्ष प्रस्तुत करने ग्राये होंगे। महाराज जानते थे कि ग्राजकल पण्डित शिवकुमार पाटलिपुत्र के ब्राह्मणों का मुखिया बना हुग्रा है।

शिवकुमार ने भोजनशाला में प्रविष्ट होते हुए महाराज को ग्राशीर्वाद दिया ग्रौर बोला, "महाराज! उपस्थित हूँ।"

"महामात्य! बैठिए।"

शिवकुमार बैठ गया तो महाराज ने कहा, "ग्रभी-ग्रभी हमें न्यायपालिका का पत्र मिला है। उससे हमें ज्ञात हुग्रा है कि हमारी रानी चन्द्रावती ग्रौर उनके पुत्र राम को बन्दी बनाकर पाटलिपुत्र लाया गया है ग्रौर उनपर ग्रभियोग चल रहा है।"

"मुझे यह विदित है महाराज! यह ग्राज्ञा मुझसे पूछकर भेजी गयी थी।"

"किन्तु ग्रापने हमें इसका संकेत नहीं दिया।"

"मुझे जिस दिन यह विदित हुग्रा कि दोनों माँ-पुत्र ग्रापकी हत्या का षड्-यन्त्र कर रहे हैं उस दिन से ही मैंने उनको ग्रभियुक्त मान लिया था ग्रौर उस स्थिति में ग्रापसे उनके सम्बन्ध को गौण मानने लगा था।

"महाराज! ग्रापको स्मरण होगा कि मैंने महामात्य बनते ही ग्रापको सम्मति दी थी कि महारानी चन्द्रावती ग्रौर कुमार राम को राज्य-कोष से व्यय देना बन्द कर दीजिये। ग्रापने इसे स्वीकार भी किया था।

"मैंने ग्रापको यह भी बताया था कि उनपर ग्रापकी हत्या का षड्यन्त्र करने का ग्रारोप है। ग्रापने कहा था कि ग्रापने उन्हें क्षमा कर दिया है।

"तब मैंने कहा था कि क्षमा तो ग्रपराध सिद्ध होने के उपरान्त ही किया जा सकता है। ग्रभियुक्त को क्षमा करने का कोई विधान नहीं है।"

"क्या मैं ग्रपने परिवार वालों को भी क्षमा नहीं कर सकता?"

"महाराज! समुद्रगुप्त नाम का व्यक्ति ग्रपनी पत्नी चन्द्रावती को क्षमा कर सकता है। परन्तु सम्राट् समुद्रगुप्त ग्रपने कथित हत्यारे को क्षमा नहीं कर सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि वह षड्यन्त्र मात्र समुद्रगुप्त की हत्या का नहीं था अपितु वह षड्यन्त्र था मगध के सम्राट् की हत्या का। उसने राज्य और उसकी प्रजा के हितों के विरुद्ध षड्यन्त्र किया था। अतः आप ऐसे अपराधी को बन्दी बनाने से नहीं रोक सकते।"

"यदि हम बन्दी को मुक्त कर दें तो क्या होगा ?"

"ऐसी स्थिति में तो मैं इसी समय अपना पद त्यागकर राज्य की सेवा से मुक्त किये जाने की प्रार्थना करूँगा।

"महाराज ! कदाचित् आप यह नहीं समझ पा रहे हैं कि इसके साथ ही साम्राज्य का विघटन आरम्भ हो जायेगा। और दस-बीस वर्ष के भीतर ही यह नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा।"

"आप महामात्य पद त्यागकर कहाँ जायेंगे ?"

"यदि आपने जाने से रोका नहीं तो मैं अपने ग्राम वापस चला जाऊँगा।"

"ठीक है। परन्तु आप मगध की महारानी और राजकुमार का अपमान करने के आरोप में हमारे बन्दी हैं।"

"मुझे बन्दी बनना स्वीकार है। आप अपने प्रासाद रक्षक को आज्ञा दीजिये कि वह मुझे बन्दी-गृह को ले जाय।" यह कहकर वह अपने आसन से उठ गया।

"आप इस आरोप का उत्तर नहीं देंगे ?"

"यदि आपने मुझे न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित किया तो उसको मैं इसका उत्तर दूंगा, महाराज को नहीं।"

"हमारा अधिकार क्या न्यायाधीश के ऊपर नहीं है ?"

"है। किन्तु केवल न्यायाधीश की आज्ञा को स्वीकार करने अथवा रद्द करने तक ही। आप न्यायाधीश नहीं बन सकते। एक ही व्यक्ति एक समय में आरोप लगाने वाला और न्याय करने वाला नहीं हो सकता। यदि यह हुआ तो घोर अन्याय होगा।

"और आपने यदि इस प्रकार का अन्याय किया तो समझ लीजिये कि आपने स्वयं अपने हाथ से अपने साम्राज्य की जड़ों को तेल से सींचा है।"

महाराज ने ताली बजायी। आगार रक्षक भीतर आ गया। महाराज ने आज्ञा की, "महामात्य पण्डित शिवकुमार का जीवन संकट में है। इन्हें सुरक्षापूर्वक इनके निवास-स्थान तक ले जाया जाय और वहाँ ले जाकर इनके तथा इनके भवन की सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध किया जाय।"

"जो आज्ञा महाराज !"

रक्षक वीरसेन ने आज्ञा स्वीकार की और पण्डित शिवकुमार की ओर देखने लगा। पण्डित शिवकुमार ने महाराज को आशीर्वाद दिया और वीरसेन के साथ आगार से बाहर निकल गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके चले जाने पर दत्तदेवी ने कहा, "महाराज ! मैं समझती हूँ कि इस प्रकार आपने एक ब्राह्मण को अपना शत्रु बना लिया है।"

"नहीं महारानी ! मैंने उसे अपना घनिष्ठ मित्र बना लिया है।"

तीनों ने भोजन समाप्त किया तो वहाँ से बैठक-घर में आ गये। महाराज ने प्रतिहारी को बुलाकर पूछा, "कितने ब्राह्मण हैं ?"

"महाराज ! प्रारम्भ में तो चालीस-पचास ही थे। किन्तु अब तो लगता है कि नगर भर के ब्राह्मण भागते हुए चले आ रहे हैं। अबतक लगभग दो सौ तो यहाँ पर एकत्रित हो गये हैं किन्तु क्षण-क्षण में यह संख्या बढ़ती जा रही है।"

महाराज ने कुछ विचार किया और फिर बोले, "उन लोगों से कहो कि वे सब तो भीतर समा नहीं सकते इसलिए अपने प्रतिनिधि के रूप नें पाँच पण्डितों को भीतर भेजकर अपनी समस्या प्रस्तुत करें।"

"जो आज्ञा।" कहकर प्रतिहारी चला गया।

कुछ क्षण उपरान्त प्रतिहारी ने महाराज को सूचित किया कि ब्राह्मणों का प्रतिनिधि मण्डल उनसे मिलने आया है।

महाराज ने उन्हें भीतर भेजने के लिए कह दिया।

महाराज ने देखा कि उन पाँचों में पण्डित विभूतिचरण और पण्डित चतुरानन भी सम्मिलित थे।

समुद्रगुप्त ने पण्डित विभूतिचरण की ओर देखकर कहा, "कहिये पण्डितजी! क्या आज्ञा है ?"

पण्डित विभूतिचरण आजकल पुनः विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष पद पर नियुक्त हो गया था। विभूतिचरण ने प्रथम महाराज को आशीर्वाद दिया और फिर अपने आने का कारण बताते हुए कहने लगा, "महाराज ! हमें सूचना मिली है कि महामात्य पण्डित शिवकुमार को अपने निवासगृह पर बन्दी बना लिया गया है। इससे ब्राह्मण समाज में चिन्ता व्याप गयी है। हम जानना चाहते हैं कि महामात्य को किस अपराध में बन्दी बनाया गया है ?"

"आपसे यह किसने कहा कि महामात्य को बन्दी बना लिया गया है ?"

"जो प्रतिहारी महामात्य को बुलाने के लिए गया था उसने वहाँ के किसी सेवक को यह सूचना दी है। मैं उस समय अपने परिषद् के कार्य से वहाँ गया हुआ था। जब महामात्य गम्भीर मुद्रा में अपने रथ पर आरूढ़ राज-भवन की ओर आ रहे थे तो मैंने स्वयं वहीं पर यह चर्चा सुनी थी कि महामात्य को बन्दी बनाया जा रहा है।

"महाराज ! यह तो हमें कल ही विदित हो गया था कि महारानी चन्द्रावती और राजकुमार राम को बन्दी बनाकर पाटलिपुत्र लाया गया है। इसका सम्बन्ध मैंने महामात्य के बन्दी बनाये जाने की चर्चा से समझकर अन्यत्र जाने की अपेक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामात्य के रथ के पीछे-पीछे राज-भवन आना ही उचित समझा है। मैं आ रहा था कि इसी प्रकार मुझे अन्य ब्राह्मण भी इसी ओर आते दिखायी दिये। वे सब मेरे साथ हो लिये। मेरे यहाँ पहुँचने तक उनकी संख्या पचास हो गयी थी।

"यहाँ पहुँचने के कुछ देर बाद हमने देखा कि महामात्य को सुभट्टों के घेरे में ले जाया जा रहा है। हमने यह भी आज्ञा सुनी है कि महामात्य को घर से बाहर न जाने दिया जाय।"

महाराज इस स्थिति पर विचार ही कर रहे थे। वह समझ रहे थे कि पण्डित विभूतिचरण ने समस्या को ठीक उसी प्रकार से समझा है जिस प्रकार में वह वास्तव में है। वह इसका उत्तर देने ही वाले थे कि तभी प्रासाद संरक्षक ने आकर कहा, "महाराज! राज-प्रासाद के द्वार पर तो पूर्ण पाटलिपुत्र के नागरिक एकत्रित होते दिखायी दे रहे हैं। सहस्रों की भीड़ एकत्रित हो गयी है जो प्रतिक्षण बढ़ती जा रही है।"

यह सुनकर महाराज समुद्रगुप्त उद्विग्न हो गये। उन्होंने ब्राह्मणों से कहा, "लगता है ये नगर के ब्राह्मण नहीं भेड़ों का समूह हो गये हैं जो एक के पीछे एक करके आते ही चले जा रहे हैं।"

"नहीं महाराज! हम भेड़ें नहीं हैं। पाटलिपुत्र का नागरिक महान् भय से त्रस्त होने के कारण राज-भवन में एकत्रित हो गया है। मैंने अपने साथ आने वाले और उनके पीछे आने वालों से इसका कारण पूछा है। उनको यह भय सता रहा है कि आज महाराज भारत के एक महान् विद्वान् की हत्या करना चाह रहे हैं। इसीलिए वे चिन्तित हैं और आपसे इसका कारण जानने के लिए आतुर हैं।"

"किन्तु इसका आधार क्या है?"

"महामात्य को सैनिकों के घेरे में आते-जाते देखा गया है, जोकि अप्रत्याशित है।"

"किन्तु इसे आप महामात्य के जीवन की सुरक्षा का प्रबन्ध क्यों नहीं मान सकते?"

"महाराज! इतनी-सी बुद्धि तो मुझ में ही क्या, यह तो नगर का साधारण बुद्धि का बालक भी जानता है कि महामात्य के निवास पर उनकी सुरक्षा के लिए जो सैनिक तैनात हैं वे पर्याप्त थे। वहाँ आपके सुभट्टों की कोई आवश्यकता नहीं थी। और फिर वे तो अपनी रक्षा के लिए पूर्ण सेना को ही बुला सकते हैं। आपके सुभट्टों की संख्या ही कितनी है सेना के सम्मुख?"

"क्या महामात्य ने कुछ ऐसा संकेत दिया है कि यह सुरक्षा-प्रबन्ध उनके अपने कहने पर नहीं किया गया है?"

"उनसे पूछने का अवसर ही आपके सुभट्टों ने कहाँ आने दिया। यह तो अभी आपके सुभट्टों के नायक के ही कथन से भी स्पष्ट हो गया था कि वे बन्दी हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज को भय है कि वे कहीं राज्य से भाग न जायें।"

इसी समय पुनः वीरसेन ने आकर सूचना दी, "महाराज! राज-प्रासाद के बाहर इतनी भीड़ है कि उसको नियन्त्रित रखना कठिन होता जा रहा है। लोग माँग कर रहे हैं कि महामात्य को तुरन्त मुक्त किया जाय।"

राजकुमार विक्रम तुरन्त खड़ा हो गया और बोला, "महाराज! यदि आज्ञा हो तो इन सब पर मैं अश्वारोहियों को दौड़ाकर इनको कुचल डालूं?"

महाराज ने हाथ से संकेत करते हुए कहा, "सेनाध्यक्ष! बैठो। यह जन-समूह शत्रुओं का नहीं है। शत्रु याचना करने नहीं आते।"

महाराज ने अपने संरक्षक नायक से कहा, "जाओ, महामात्य के भवन से सब सैनिकों को वापस बुला लो और घोषणा कर दो कि महामात्य स्वतन्त्र थे और वे स्वतन्त्र ही हैं। जो चाहे उनके भवन पर जाकर उनसे मिल सकता है।"

वीरसेन गया तो ब्राह्मणों के प्रतिनिधि मण्डल ने महाराज की जय-जयकार की। तब महाराज ने पण्डित विभूतिचरण से कहा, "पण्डितजी! अब यह आपका कार्य है कि आप जनता को शान्त कर उसे वस्तुस्थिति से अवगत करायें।"

ब्राह्मणों का प्रतिनिधि मण्डल महाराज को आशीर्वाद देकर बाहर की ओर चला गया।

विभूतिचरण आदि जब गये तो महारानी ने पुनः अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा, "महाराज! आपने एक प्रभावी विद्वान् को अपना शत्रु बना लिया है।"

"नहीं महारानीजी! यह आपका भ्रम है।"

राजकुमार कहने लगा, "महाराज! यह राज्य संचालन नहीं है। यह तो पंचायत का-सा तमाशा बन गया है। मैं ऐसे राज्य का सेनाध्यक्ष नहीं रह सकता।"

"विक्रम!" महाराज ने उसे कुछ डाँटते हुए से कहा, "तुम क्या सेनाध्यक्ष का यह भी अधिकार समझते हो कि वह महाराज को आज्ञा दे? जाओ, अब सो जाओ, बहुत रात बीत गयी है। कल प्रातः हमारे साथ पुरोहितजी के घर कथा सुनने के लिए चलना। वहाँ तुम्हें बताऊँगा कि इस पूर्ण नाटक से मेरा क्या अभि-प्राय था।"

यह सुनकर विक्रम चला गया। दत्तदेवी ने कहा, "चलिये, अब आप भी आराम कीजिये।"

"हम वीरसेन के वापस लौटने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

वीरसेन के लौटने में आधी घड़ी समय लग गया। महाराज ने पूछा, "क्यों, क्या हुआ?"

"महाराज! जब मैंने बाहर एकत्रित भीड़ को आपकी 'महामात्य के भवन से सैनिकों का घेरा उठा लेने की आज्ञा सुनायी' तो लोग आपकी जय-जयकार करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए लौट गये। उनमें से अनेक तो महामात्य भवन जाकर उनको सुरक्षित देखने की इच्छा करने लगे। और इस कारण वे उधर चल दिये हैं।"

महाराज ने महारानी की ओर देखते हुए कहा, "यह ब्राह्मण देवता तो किसी दिन हमको राज्य-सिंहासन से च्युत कर स्वयं सम्राट् बनने की क्षमता रखता है।"

महाराज और महारानी अपने शयनागार की ओर चल पड़े।

महारानी बोली, "महाराज ! मैं समझती हूँ कि महामात्य के परामर्शानुसार कार्य करने में ही राज्य और राज-परिवार का कल्याण है।"

महाराज ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया।

: ३ :

अगले दिन यथासमय राज-परिवार पण्डित शिवकुमार के भवन पर कथा सुनने के लिए जा पहुँचा। उनका रथ ज्यों ही महामात्य के प्रासाद के बाहर जाकर खड़ा ही हुआ कि उसी समय महामात्य अपने परिवार को लिये एक रथ से उतरने लगे।

महामात्य ने महाराज को देखा तो वे अपने रथ से उतरकर महाराज की ओर आ गये।

महाराज ने पूछा, "पण्डितजी ! आज प्रातःकाल क्या भ्रमण के लिए चले गये थे?"

"जी नहीं, मैं अपने परिवार को वापस इस भवन में लाने के लिए गया था।"

"कहाँ गये हुए थे ये लोग?"

"पिछली सायंकाल मैंने इनको उस समय अपने एक मित्र के यहाँ भेज दिया था जिस समय आपका प्रतिहारी मुझे बुलाने के लिए आया था।"

"किसी विशेष कार्य से भेजा था?"

"जी हाँ।"

महामात्य ने सबको भीतर चलने के लिए कहा। चलते हुए ही महाराज ने पूछा, "कोई विशेष कार्य था क्या?"

"जी हाँ, यह निर्धन ब्राह्मण अपनी संचित पूंजी लुट जाने का भय कर रहा था।"

स्पष्ट था कि पण्डितजी जब बाहर हैं तो यज्ञशाला में अग्नि कौन प्रदीप्त करता। यह देख महाराज ने कहा, "तो आज देवयज्ञ भी नहीं हुआ?"

"नहीं महाराज ! यज्ञ पर साथ बैठने के लिए अर्द्धांगिनी घर पर नहीं थी। उसे लेने गया था।"

"तो आप अब यज्ञ करेंगे?"

"मैं समझता हूँ कि आप कथा के निमित्त आये है, इसलिए अब पहले कथा ही होगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हमें चाहते हैं कि कथा की अपेक्षा आज कुछ हमारे मन के संशयों का निवारण हो।"

"महाराज ! आज्ञा कीजिये। अपनी बुद्धि और ज्ञान के अनुसार जितना मुझ से बन पड़ेगा मैं आपके संशय निवारण करने का यत्न करूँगा।"

इस प्रकार जब संशय निवारण की बात चली और महाराज आदि बैठ गये तो शिवकुमार की पत्नी चन्द्रमुखी अपने बच्चों को लेकर अपने आगार में चली गयी। वह वहाँ नहीं बैठी और न किसी को इसपर विस्मय ही हुआ। सभी जानते थे कि जिस किसी भी समय इस प्रकार का वार्त्तालाप आरम्भ हुआ श्रीमती चन्द्रमुखी वहाँ से उठकर चली गयी।

महाराज बोले, "पण्डितजी ! हमने एक बार पहले भी आपसे निवेदन किया था कि इस यज्ञशाला में हम आपके यजमान मात्र ही हैं। यहाँ हमारा सम्बन्ध राजा और महामात्य का नहीं रहेगा। उस नाते ही मैं आज आपसे कुछ जानने की इच्छा कर रहा हूँ और आपसे निवेदन है कि आप भी इस समय मुझे उसी प्रकार सम्मति दीजियेगा जिस प्रकार पुरोहित यजमान को देते हैं।"

"आप अपनी बात कहिये।"

"राम के प्रति हमारा अत्यधिक स्नेह है।"

"यह कोई आचार्य की बात नहीं है। आश्चर्य केवल इस बात पर ही होता है कि वह आपके प्रति तनिक भी स्नेह अथवा श्रद्धा नहीं रखता। यहाँ तक कि आपसे प्राप्ति के लिए वह आपके प्रति कृतज्ञता भी अनुभव नहीं करता। मुझे तो आपका स्नेह भी मौखिक ही दिखायी देता है। स्नेह केवल कहने का ही नहीं, क्रिया का विषय है। उसका आपने कदाचित् पालन नहीं किया है। उसी का यह परिणाम था जो राम ने यज्ञ के समय करने का यत्न किया था। वह आपके स्नेहपात्र होने का सूचक कदापि नहीं था।

"उसने आपके पुरोहित के घर डाका डलवाया। आपके पुरोहित की हत्या करने का यत्न किया। यहाँ तक कि अपने जन्मदाता और बीस वर्ष तक पालनकर्ता की हत्या का षड्यन्त्र किया।

"यदि यथासमथ पण्डित भृगुदत्त वहाँ न पहुँच जाता और फिर आपको सचेत न करता तो दो सहस्र लम्बे-चौड़े देश में अबतक कभी की उथल-पुथल मच गयी होती।

"आप जिस स्नेह की बात कर रहे हैं उसका यदि तनिक भी क्रियारूप आपने दिखाया होता तो यह सब कुछ भी नहीं होता।"

"आपका कथन तो ठीक है। किन्तु मैं समझ नहींसर रहा हूँ कि इस स्थिति में मेरा क्या करणीय है?"

"महाराज ! यह तो आज से बीस वर्ष पूर्व करने की बात थी। राम का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म होते ही आपको उसे और उसकी माँ को अपने पास बुला लेना चाहिए था। वह आपका भावी युवराज था। इसके लिए आपको उसे अपने पास रखकर उसी प्रकार शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए था। यह आपके स्नेह का क्रियात्मक रूप होता। यदि उसकी माता आने को उद्यत नहीं थी तो भी आपको राजकुमार को बालात् अपने पास रखना चाहिए था। स्नेह केवल कहने की बात नहीं होती।"

"वह समय तो अब बीत गया है। मैं तो अब वर्तमान स्थिति में अपने करणीय की बात कर रहा हूँ?"

"धर्म की व्यवस्था तो यही है कि उसपर अभियोग चलने दिया जाय। यदि आपको तथा किसी अन्य को यह सन्देह है कि अभियोग निराधार है तो न्यायालय में उसको निर्दोष सिद्ध करने का यत्न किया जाय। यदि यह सम्भव नहीं है तो उसके दोषी सिद्ध हो जाने पर, राज्य का सर्वोपरि शासक होने के नाते यदि आप चाहें तो उसको क्षमा भी कर सकते हैं। यह भी आपके स्नेह के अनुरूप ही होगा।"

इस समय राजकुमार चन्द्रगुप्त ने बातों में हस्तक्षेप करते हुए कहा, "पण्डित जी! मेरा तो यह कहना है कि राज-परिवार के किसी भी सदस्य को इस प्रकार सार्वजनिक न्यायालय में अभियुक्त के रूप में खड़ा होने के लिए विवश करना तो समस्त राज-परिवार का अपमान है। इस प्रकार तो राज-परिवार कुख्यात हो जायेगा। तब फिर कौन उसके शासन को मानेगा? राज-परिवार की प्रतिष्ठा की रक्षा करना नितान्त आवश्यक है।"

"राजकुमार! तुमने राम के दोषों के विषय पर तो कुछ भी नहीं कहा। तुम्हारे कहने का तो मात्र इतना ही अभिप्राय है कि राम के सार्वजनिक न्यायालय अभियोग को तुम अनुपयुक्त समझते हो। यदि ऐसी ही बात है तो यह जाँच-पड़ताल किसी गुप्त न्यायालय द्वारा भी की जा सकती है। किन्तु उसमें शर्त इतनी है कि जाँच किसी उच्चाधिकारी द्वारा हो और धर्म के नियमों के अनुसार हो।"

"यह ठीक है। ऐसा हो जायेगा।" महाराज ने कहा।

"कैसे महाराज?"

"आप किस समय मिलने के लिए आयेंगे?" महाराज ने उत्तर देने की अपेक्षा महामात्य से प्रश्न किया।

"साधारणतया तो आपके पास मध्याह्न तृतीय प्रहर आया करता हूँ, वैसे आप जिस समय आज्ञा करें मैं उपस्थित हो जाऊँगा।"

"हम चाहते हैं कि आज आप अल्पाहार के उपरान्त आ जाइये।"

"मैं उपस्थित हो जाऊँगा।"

यह निश्चय होने के बाद राज-परिवार उठा और जाने लगा तो पण्डित शिवकुमार उनको विदा करने के लिए उनके रथ तक आया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको विदा कर पण्डित शिवकुमार सीधा अन्तःपुर में गया और अपनी पत्नी से बोला, "तुरन्त तैयार होकर बच्चों को ले मंगला ग्राम के लिए प्रस्थान कर दो।

"जबतक मैं अल्पाहार कर राज-प्रासाद जाने के लिए तैयार होता हूँ तबतक तुम पाटलिपुत्र से दस कोस बाहर हो जाना। रथवान को यह नहीं बताना कि तुम को कहाँ जाना है। यदि बताना ही पड़ जाय तो कह देना कि तुम बृहस्पति को भारद्वाज आश्रम में प्रविष्ट कराने के लिए ले जा रही हो।

"मैं आशा करता हूँ कि कहीं मार्ग में तुमको मैं किसी अश्व पर भागता हुआ आ मिलूँगा।"

चन्द्रमुखी ने तदनुसार तैयारी की और बच्चों को लेकर वह वहाँ से चल दी।

उनके जाने के बाद पण्डित शिवकुमार ने अल्पाहार किया फिर वह राजप्रासाद जाने की तैयारी करने लगा। वह तैयार होकर रथ पर आरूढ़ होने ही लगा था कि पण्डित भृगुदत्त उससे मिलने के लिए आ गया। उसे देखकर शिवकुमार जाता-जाता रुक गया। उसे बैठाकर पूछने लगा, "बोलो, अब क्या विचार है?"

भृगुदत्त ने कहा, "मैंने अपने परिवार को तो रात ही गंगा पार कराकर नेपाल की ओर भेज दिया है। वहाँ रोहिणी की नानी रहती है। मैं भी यहाँ से अवकाश पाते ही वहाँ चल दूँगा।"

"रात को तो मैंने बच्चों को पण्डित विश्वम्भरदयालजी के घर पर भेज दिया था। परन्तु राज्य की अवस्था देखकर मुझे वह स्थान सुरक्षित नहीं लगा। प्रातःकाल तो मैं बच्चों को ले आया था किन्तु अब मैंने उनको अपने ग्राम मंगला के लिए भेज दिया है। मैं भी यहाँ से अवकाश पाते ही वहाँ चला जाऊँगा। वहाँ से फिर कश्मीर जाने का विचार कर रहा हूँ।"

"महाराज मिले थे?"

"अभी आधा घड़ी-भर पूर्व महाराज यहीं थे। वे चाहते हैं कि राम के विषय की जाँच-पड़ताल गुप्त रूप से हो। मैंने कह दिया कि यदि वह जाँच न्याय और धर्म के नियमों के अनुसार हुई तो कुछ अधिक हानि नहीं होगी।

"महाराज ने मुझे अभी बुलाया है और मैं वहीं जा रहा हूँ।"

यह सुनकर भृगुदत्त गम्भीर हो गया। वह अपने घर की ओर गया तो शिव-कुमार राज-प्रासाद की ओर चल दिया।

राज-प्रासाद में पहुँच शिवकुमार महाराज के समीप गया और महाराज को आशीर्वाद दे आज्ञा के लिए खड़ा रहा। महाराज ने कहा, "बैठिये। आपके विचारानुसार मैंने राज-परिवार की न्यायपीठ नियुक्त करने का निश्चय किया है। राम और उसकी माता पर जो आरोप लगाये गये हैं उनकी जाँच उस न्याय-पीठ द्वारा कराने का विचार है।"

"ठीक है करिये।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हमारा विचार है कि उस न्यायपीठ के अध्यक्ष हम हों। इसके अतिरिक्त महारानी दत्तदेवी, राजकुमार चन्द्र और हमारे पुरोहित पण्डित शिवकुमार उसके सदस्य होंगे।"

"यह न्यायपीठ राजकुमार और उनकी माताजी को स्वीकार है क्या ?"

"महारानी दत्तदेवी तो इससे सन्तुष्ट हैं, परन्तु राजकुमार ने आपत्ति की थी। मैंने उसको समझा दिया है कि राज-पुरोहित होने से आप भी राज-परिवार के अंग ही हैं। इस कारण आपके बिना यह पारिवारिक न्यायपीठ अपूर्ण ही रह जायेगी।"

"महाराज ! किसी भी समिति के सदस्यों की संख्या सम नहीं होनी चाहिए। यह संख्या या तो तीन करिये या फिर पाँच करिये। चार उचित नहीं।"

"राजकुमार विक्रम को कोई अन्य नाम स्वीकार्य नहीं होगा।"

"महाराज ! आजकल राजकार्य राजकुमार विक्रम देख रहे हैं ?"

"नहीं, ऐसा नहीं है तदपि हम उसको रुष्ट करना नहीं चाहते। आप जिस बात की ओर संकेत कर रहे हैं हम उसको भी समझते हैं। यदि आप लोगों के मत बराबर हुए तो हम अपने अध्यक्षीय मत का प्रयोग कर उसका निर्णय करेंगे।"

शिवकुमार मुस्करा दिया। वह समझ गया कि राजकुमार जो चाहेगा वही अन्तिम निर्णय हो जायेगा। तदपि वह चुप ही रहा। इससे उसका अपने पद से त्याग-पत्र देने का विचार सुदृढ़ ही हुआ।

महाराज ने कहा, "आप मुख्य न्यायाधीश को एक पत्र लिख दीजिये कि वे राज-परिवार के बन्दियों को राज-प्रासाद में भेज दें। उनके अपराध की जाँच राजकीय न्यायपीठ द्वारा होगी।"

"यह आज्ञा किसकी ओर से जायेगी ?"

"यह आपके हस्ताक्षरों से ही जायेगी।"

"इस अवस्था में मुझे लिखित आज्ञा कीजिये कि मैं इस प्रकार की आज्ञा न्यायाधीश के पास भेज दूं।"

"वह आप लिख लीजिये, हम हस्ताक्षर कर देंगे।"

जब से शिवकुमार का कार्यालय उसके अपने भवन में ही बन गया था तब से ही राज-प्रासाद में उसको लिखने-पढ़ने के लिए एक कक्ष भी मिल गया था। वहाँ एक लेखाकार रहता था। शिवकुमार उस आगार में गया और उसने लेखाकार के माध्यम से अपने नाम महाराज का एक पत्र लिखवाया। उसमें लिखा था—
"महामात्य को सूचित किया जाता है कि महारानी चन्द्रावती और राजकुमार राम के विषय में जाँच करने के लिए विशेष न्यायपीठ का निर्माण किया गया है। इस कारण राज्य के मुख्य न्यायाधीश उनसे सम्बन्धित सब प्रमाण महाराज के पास भेज दें और अभियुक्तों को भी राज-प्रासाद में भेज देने की आज्ञा करें।"

लेखाकार को राज-प्रासाद में भेजकर इस पत्र पर महाराज के हस्ताक्षर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कराकर महामात्य ने मुख्य न्यायाधीश को उचित पत्र लिख दिया। उसके बाद महामात्य ने अपना महामात्य पद से त्याग-पत्र लिखा और उसे बन्द कर उसपर मुद्रा अंकित कर उसे महाराज को देने के लिए वह महाराज के आगार की ओर चला गया।

शिवकुमार ने जब वह पत्र दिया तो महाराज समझ गये कि यह शिवकुमार का त्याग-पत्र है। उन्होंने बिना खोले ही कह दिया, "हम इसे मन्त्रिमण्डल की आगामी बैठक में उपस्थित करेंगे। अब आप जाइये और तीसरे प्रहर आ जाइये। उस समय न्यायपीठ की बैठक होगी और आप उसके सदस्य हैं।"

मध्याह्न से पूर्व ही महारानी चन्द्रावती और राजकुमार राम राज-प्रासाद में पहुँचा दिये गये थे। उनको वहाँ बन्दी के रूप में ही भेजा गया था। दोनों के हाथ-पैर बँधे थे। यह देखकर महाराज का मुख क्रोध से लाल हो गया। क्योंकि उस क्रोध का भाजन वहाँ उस समय कोई उपस्थित नहीं था इसलिए महाराज को यह क्रोध स्वयं ही पीना पड़ा।

इधर तृतीय प्रहर का घण्टा बोला और उधर महामात्य राज-प्रासाद के द्वार पर जा खड़े हुए। प्रतिहारी ने भीतर सूचना दी तो राजकुमार विक्रम महामात्य को लिवा ले जाने के लिए द्वार पर आया और पण्डितजी को भीतर ले गया।

महाराज और महारानी यथास्थान विराजमान थे। पण्डित शिवकुमार ने दोनों को आशीर्वाद दिया तो महाराज ने कहा, "आइये पण्डितजी! बैठिये आप तो समय पर पधार गये हैं परन्तु मुख्य न्यायाधीश अभी तक भी नहीं पधारे।"

"मुख्य न्यायाधीश ने मुझे सूचित किया है कि आरोप सिद्ध करने का कार्य उनका नहीं है। इस कार्य के लिए एक अन्य अधिकारी नियुक्त है। वह व्यक्ति इस अभियोग से सम्बन्धित सब प्रमाण एकत्रित कर तथा साक्षियों को लेकर आ रहा है।"

"न्यायाधीश को स्वयं आना चाहिए था।"

"न्यायाधीश राज्य का प्रतिनिधि होने के कारण आरोप लगाने वाला नहीं है, अपितु आरोप सुनने वाला होता है। आरोप लगाने वाला अधिकारी आ रहा है।"

महाराज ने पूछा, "क्यों राजकुमार! तुम क्या समझते हो?"

"मैं तो इस अभियोग में राज-परिवार से बाहर के किसी व्यक्ति की भी उपस्थिति ठीक नहीं समझता।"

शिवकुमार ने पूछा, "क्या राजकुमार को विदित है कि अभियुक्त पर क्या आरोप है? महारानी चन्द्रावती और उनके पुत्र राम को उज्जयिनी से यहाँ पकड़ कर क्यों लाया गया है, यह राजकुमार को विदित है कि नहीं?"

राजकुमार विक्रम मुख देखता रह गया। शिवकुमार ने कहा, "राजकुमार! पहले आरोप सुन लो। उन आरोपों के समर्थन में जो प्रमाण एकत्रित किये गये हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको जान लो। उसके बाद ही तुम समझ पाओगे कि बाहर के किसी व्यक्ति की यहाँ आवश्यकता है अथवा नहीं ?"

तभी प्रतिहारी ने आकर सूचना दी कि न्यायालय का अधिकारी उपस्थित है।

अधिकारी को भीतर बुला लिया गया। उस अधिकारी का नाम सोमप्रभ था।

महारानी चन्द्रावती और राजकुमार राम राजप्रसाद के दो आगारों में बन्दी के रूप में रह रहे थे। महाराज की आज्ञा होने पर उन दोनों को उस बैठक में लाया गया। आते ही चन्द्रावती ने कहा, "मुझे यह बताया गया है कि मेरे विषय में जाँच करने के लिए राज-परिवार की जाँच पीठ बैठी है। परन्तु मैं तो यहाँ बाहरी व्यक्ति भी देख रही हूँ ?"

"बाहरी व्यक्ति कौन है ?"

"एक पण्डित शिवकुमार है और एक अन्य व्यक्ति है, जिसे मैं नहीं जानती।"

महाराज ने कहा, "महारानीजी ! पण्डित शिवकुमार तो परिवार के पुरोहित हैं। इस नाते ही उनको यहाँ बुलाया गया है। पुरोहित यजमान के घर का अंग होता है।"

"परन्तु मैं इसे अपना पुरोहित नहीं मानती।"

"आप स्वयं को राज-परिवार का अंग भी मानती हैं अथवा नहीं ?"

"यदि मैंने स्वयं को राज-परिवार का अंग न माना होता तो फिर मैं कल यह क्यों कहती कि मेरे पटरानी होने के नाते मेरी रक्षा का भार महाराज पर है ?"

"यदि ऐसी बात है तो जिसकी तुम स्वयं को पटरानी कह रही हो उसी ने पण्डित शिवकुमार को अपने परिवार का पुरोहित नियुक्त किया हुआ है। अपने पारिवारिक झगड़े को निपटाने के लिए सहायतार्थ उसको आमन्त्रित कर लिया है।"

"मैंने इस ब्राह्मण को अपना पुरोहित नहीं माना है। प्रत्येक बात में पति-पत्नी परस्पर सहमत ही हों यह आवश्यक नहीं है।"

"परन्तु देवी ! यह न्यायपीठ हमारे परिवार की है और यह तुम्हारे अपराधों की जाँच कर रही है।

"हमने पण्डित शिवकुमार को अपना पुरोहित तुम्हारे इस षड्यन्त्र से बहुत पहले से ही नियुक्त कर लिया था। इसको तुम अमान्य नहीं कर सकतीं।"

तब राम ने सोमप्रभ की ओर संकेत कर कहा, "और यह कौन है ?"

"इसे मुख्य न्यायाधीश ने भेजा है। यह तुम्हारे कुकर्मों का लेखा-जोखा लेकर यहाँ उपस्थित हुआ है।

"पुरोहितजी तो पीठ के अंग हैं परन्तु यह व्यक्ति इस पीठ का अंग नहीं है। यह तुम माँ-पुत्रों के विपरीत अभियोग उपस्थित करने के लिए यहाँ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इसके द्वारा प्रस्तुत आरोपों और प्रमाणों के आधार पर ही तुम दोनों के विषय में किसी निर्णय पर पहुँचा जा सकेगा।"

"इसके द्वारा प्रस्तुत प्रमाण झूठे भी तो हो सकते हैं?"

"इसका निर्णय करना न्यायपीठ का कार्य है। इसके लिए ही तो इसकी नियुक्ति की गई है।"

महाराज ने सोमप्रभ से कहा, "बताइये सोमप्रभजी! इन वन्दियों के विरुद्ध क्या आरोप हैं?"

सोमप्रभ ने एक पत्र निकाला और आरोप पढ़कर सुना दिये। उसमें उसने बताया "महारानी चन्द्रावती और राजकुमार राम पर यह आरोप है कि इन दोनों ने अश्वमेध यज्ञ से पूर्व पाटलिपुत्र में राजपुरोहित पण्डित शिवकुमार के घर पर डाका डालने और पुरोहितजी तथा उनके पूर्ण परिवार की हत्या करने के लिए कुछ लोगों को उनके निवासस्थान पर भेजा। उन लोगों को पुरोहितजी का घर लूटने की आज्ञा दी। जबकि वह भवन तथा उसकी सारी सम्पत्ति राज्य की सम्पति थी।

"महारानी और राजकुमार पर यह आरोप भी है कि उन दोनों ने आचार्य सान्त्वनाकुमार की सहायता से उस यज्ञ से पूर्व ही महाराज की हत्या का षड्यन्त्र भी किया।

"आचार्य सान्त्वनाकुमार पर यह आरोप है कि उन्होंने महारानीजी को यह आश्वासन दिया था कि महाराज की हत्या के उपरान्त तुरन्त यज्ञमण्डप पर ही रामगुप्त का राज्याभिषेक कर उसको भारत का सम्राट् घोषित कर दिया जायेगा।

"आचार्य के इस आश्वासन का मूल्य राम ने यह देने का वचन दिया था कि आचार्य को वह अपने साम्राज्य का महामात्य नियुक्त कर देगा।"

यह सुनकर महाराज ने पूछा, "इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि आचार्य सान्त्वनाकुमार भी इस समय वन्दीगृह में हैं।"

"राज्य प्रबन्ध का विचार तो था कि आचार्यजी को बन्दी बनाया जाय किन्तु मुख्य न्यायाधीश ने इसकी स्वीकृति नहीं दी। उनका कहना था कि आचार्य पर जो अभियोग है अनुमान मात्र है। अनुमान की पुष्टि किसी प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा होनी आवश्यक है। यद्यपि आचार्यजी का बिना सूचना दिये यज्ञ से भाग जाना एक प्रत्यक्ष घटना है और वह इस आरोप की कुछ-कुछ पुष्टि भी करती है तदपि इसका स्पष्ट प्रमाण आवश्यक है। अभियोग चलते हुए यदि आचार्य पर भी इसी प्रकार के आरोप सिद्ध हो गये तो उनके विरुद्ध भी कार्यवाही की जा सकेगी।"

आरोप-पत्र पढ़े जाने के उपरान्त महारानी दत्तदेवी ने कहा, "मैं समझती हूँ कि इन आरोपों का केवल राज-परिवार के साथ ही सम्बन्ध नहीं है। अपितु इनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध देश की समस्त प्रजा के साथ भी सम्बन्ध है। अतः मेरा मत है कि इन आरोपों की जाँच और उनका निर्णय प्रजा की जानकारी में होना चाहिए। यदि इस जाँच-पड़ताल को गुप्त रखा गया तो इससे प्रजा को सन्तोष नहीं होगा। असन्तुष्ट प्रजा पर राज्य करना यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है।

"इस कारण मेरी यह सम्मति है कि इन बन्दियों को राज्य के न्यायाधीश के अधीन कर दिया जाय और देश के विधि-विधान के अनुसार ही इनके साथ न्याय किया जाय।"

राजकुमार विक्रम बोला, "हमारे परिवार ने प्रजा की कृपा से यह राज्य प्राप्त नहीं किया है। इसलिए हम प्रजा के सम्मुख अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। असन्तुष्टों को सन्तुष्ट करने का उपाय हम जानते हैं।"

महाराज ने कहा, "पण्डित शिवकुमार इस विषय में क्या कहते हैं?"

"महाराज! राजकुमार विक्रम की यह बात तो ठीक है कि यह राज्य प्रजा की कृपा से प्राप्त नहीं हुआ है। किन्तु उन्होंने उसका जो परिणाम निकाला है मैं उससे सहमत नहीं हूँ। यदि यह राज्य प्रजा ने नहीं दिया तो फिर किसने दिया है? गुप्त परिवार के कुछ अन्य लोग भी तो थे कोई उनमें से सम्राट् क्यों नहीं बन गया? भारतवर्ष में कुछ अन्य नरेश भी तो हैं। उनमें से कोई मगध का सम्राट् क्यों नहीं बन गया? क्या यह सत्य नहीं कि महाराज को ऐसे अवसर मिलते रहे हैं जो महाराज को धकेलते हुए सम्राट् पद पर ले आये हैं। वे अवसर किसने प्रदान किये? वे अवसर महाराज के अपने कर्मफल और ईश्वरीय कृपा के फलस्वरूप हैं। उन ईश्वरीय नियमों के अनुसार ही न्यायालय का भी कार्य चलता है। न्यायालय किसी व्यक्ति की धरोहर नहीं। ईश्वरीय नियमों का उल्लंघन करने वाले ही न्यायालयों के अधीन किए जाते हैं। जो इन न्यायालयों का उल्लंघन करके भी मनमानी करते हैं, उनके लिए भी ईश्वर ने न्यायालय चलाये हुए हैं उन न्यायालयों द्वारा दिया गया दण्ड तो बहुत ही भयंकर होता है।"

"मुझे आपके कथन पर विश्वास नहीं है।" राजकुमार विक्रम का कहना था।

महाराज ने पूछा, "महारानी चन्द्रावती अपने विषय में क्या कहती हैं?"

"इन आरोपों का केवल एक ही उत्तर है कि सब राज्यों और सब राजपरिवारों में सदा से ही ऐसा होता चला आया है। अन्तिम निर्णय केवल उसके हाथ में होता है जो सफल हो जाता है। इस समय महाराज सफल व्यक्ति हैं। इसी कारण कल मैंने उनसे रक्षा का आह्वान किया था। यह मेरे और उनके बीच की बात है, इसमें किसी अन्य को बोलने का कोई अधिकार नहीं है।

"मैं इस न्यायपीठ को अपने विषय में विचार-विनिमय के लिए मान्य नहीं स्वीकार करती।"

"परन्तु महारानी जी! हमने ही तो इस न्यायपीठ की नियुक्ति की है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"की होगी।"

चन्द्रावती उठी और अपने पुत्र से बोली, "चलो राम! महाराज को अपना खेल खेलने दो।"

यह कहकर माँ और पुत्र दोनों ही महाराज की बैठक से निकल गये।

उनके जाने पर महाराज ने पुरोहितजी से कहा, "पण्डितजी! अब आप क्या सम्मति देते हैं ?"

"माँ और पुत्र दोनों को राज-प्रासाद की सबसे ऊँची चोटी पर टिकटिकी लगाकर फाँसी पर लटका देना चाहिए, जिससे सारे नगर और देश को विदित हो कि भारत सम्राट् की हत्या अथवा उससे षड्यन्त्र करने वाले का क्या परिणाम होता है।"

दत्तदेवी बोली, "मैं पुरोहितजी की राय का समर्थन करती हूँ।"

महाराज बोले, "न्यायपीठ के दो सदस्यों की सम्मति अपराधियों को प्राण-दण्ड देने की है। एक सदस्य उनके अपराध को क्षमा करने की बात करता है। राजकुमार विक्रम क्या! तुम्हारा यही अभिमत है ?"

"महाराज! मेरी यही सम्मति है।"

"हमारी सम्मति भी वही है जो राजकुमार की है। इस प्रकार इस न्यायपीठ में सम्मति बँटी हुई है। दोनों का पक्ष बराबर है। इस कारण हम अपना अध्यक्षीय मत सुरक्षित रखते हैं और वह मत ही निर्णायक होगा।"

यह सुनकर पण्डित शिवकुमार उठ गया तो अन्य सदस्य भी उठ पड़े। इसका अभिप्राय यह था कि सभा विसर्जित हो गयी है।

शिवकुमार ने खड़े होकर कहा, "महाराज! राज्य के महामात्य के त्याग-पत्र पर तो आप मन्त्रिमण्डल की सम्मति चाहते हैं। परन्तु राज-पुरोहित के पद से त्याग-पत्र स्वीकार करने के लिए तो किसी दूसरे की सम्मति लेने की आवश्यकता नहीं है। मैं इस पद का नियुक्ति-पत्र अभी आपकी सेवा में वापस भेज रहा हूँ।"

"इसकी अभी आवश्यकता नहीं है।"

"आवश्यकता तो मुझे अनुभव हो रही है। आपको अपने परिवार रूपी रथ का दूसरा चक्र कहीं अन्यत्र खोजना होगा।"

"तो अब हम कथा सुनने से भी वंचित रहेंगे ?"

"वह तो ब्राह्मण के नाते भी चल सकती है। जब तक मैं इस नगर में हूँ तब तक आप मेरी यह सेवा स्वीकार कर सकते हैं।"

"ठीक है। इस विषय में हम कल प्रातःकाल आपसे बात करेंगे।"

शिवकुमार ने आशीर्वाद दिया और बैठक से बाहर निकल गया।

शिवकुमार के जाने पर दत्तदेवी बोली, "यह ठीक नहीं हो रहा है।"

"तो अपने पुत्र को समझाओ। उसका मत तुम्हारे अनुकूल नहीं है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दत्तदेवी को इससे खिन्नता हुई। इसी खिन्नता में वह अपने शयनागार में जाकर लेट गयी।

शिवकुमार अपने घर के लिए चल पड़ा। वह सोचता था कि जाते ही वह अपने पद से त्याग-पत्र लिखकर उसकी नियुक्तिस्वरूप मिले स्वर्णपत्र को वापस कर देगा। किन्तु जब वह निवास-गृह पर पहुँचा तो उसको विदित हुआ कि सुरक्षा मन्त्री वीरभद्र उसकी प्रतीक्षा में बैठा है।

उसने पूछा, "कहिए, किस प्रकार आना हुआ ?"

"मैं महामात्य को यह सूचित करने के लिए आया हूँ कि अंगदेश की सेना हमारी सीमा के भीतर आ गयी है और दोनों ओर की सेनाओं में घोर युद्ध छिड़ गया है।"

"पश्चिम में विदिशा की सीमा पर क्या स्थिति है ?"

"उधर की किसी प्रकार की सूचना नहीं है। तदपि वहाँ के सेनापति के नाम यह आज्ञा जा चुकी है कि सीमा की रक्षा के लिए सतर्क रहें।"

"सेनाध्यक्ष को सूचना भेजी है ?"

"जी हाँ, भेज दी है और यह भी आज्ञा दी गयी है कि सेनाध्यक्ष युद्धभूमि पर उपस्थित होकर युद्ध का संचालन करें।"

"मैं आपको यह बता देना चाहता हूँ कि मैंने महामात्य पद से त्याग-पत्र दे दिया है। इस कारण युद्धविषयक नीति निर्धारण सम्बन्धी सारी आज्ञायें सीधी महाराज से प्राप्त की जानी चाहिएं।"

"तदपि जबतक आपके त्याग-पत्र की विधिवत् घोषणा नहीं हो जाती तबतक मेरा यह कर्तव्य है कि आवश्यक गतिविधियों से आपको अवगत कराता रहूँ।"

रक्षामन्त्री गया ही था कि न्यायाधीश पण्डित भृगुदत्त आ गये। उसने महामात्य के सम्मुख बैठते हुए कहा, "मैंने, अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया है और मैं आज ही अपने परिवार के साथ मिलने के लिए नेपाल जा रहा हूँ।"

"देश पर अंग देश की सेनाओं ने आक्रमण कर दिया है। यहाँ युद्धस्थिति उत्पन्न हो गयी है।"

"यह तो ठीक है परन्तु इसका न्यायाधीश से सीधा कोई सम्बन्ध नहीं है। युद्ध से सम्बन्ध देश की कार्यपालिका का होता है। न्यायपालिका का कार्य इस अधिकार क्षेत्र से बाहर है। अतः मैं तो जा रहा हूँ।"

"इच्छा तो मेरी भी कुछ ऐसी ही थी। किन्तु मैं समझता हूँ कि त्याग-पत्र स्वीकार हुए बिना जाना उचित नहीं। महामात्य पद का सम्बन्ध तो कार्यपालिका से ही है।"

"आप जो उचित समझें। परन्तु मेरा निर्णय यही है।"

शिवकुमार समझ गया कि भृगुदत्त उसकी अपेक्षा महाराज से अत्यधिक रुष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। भृगुदत्त शिवकुमार को सूचना देकर चला गया।

शिवकुमार ने कुछ विचार किया और अपने अधीन कार्य करने वाले एक सुभट्ट को तीव्रगामी अश्व पर आरूढ़ कराकर हस्तिनापुर के लिए भेज दिया। उसके हाथ उसने अपनी पत्नी को एक पत्र लिख भेजा। उस पत्र में उसने लिखा कि देश में युद्ध की स्थिति को देखते हुए वह पाटलिपुत्र तथा मगध राज्य की सेवा छोड़ने की स्थिति में नहीं है। इसलिए अभी तुरन्त आ पाना सम्भव नहीं है। तदपि ज्यों ही स्थिति कुछ सुधरी वह तुरन्त ही अपने परिवार से आ मिलेगा।

शिवकुमार ने सुभट्ट को बताया कि वह मार्ग में देखता जाय। यदि उसे उसकी पत्नी का रथ मार्ग में ही मिल जाय तो वह पत्र उसे देकर स्वयं वहीं से लौट आये।

अगले दिन यज्ञ के समय पर महाराज समुद्रगुप्त अपनी पत्नी दत्तदेवी के साथ पण्डित शिवकुमार के निवासस्थान पर आ गये। शिवकुमार यद्यपि यज्ञशाला में था तदपि यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित नहीं थी। यह देख महाराज ने पूछा, "पण्डित जी! आज यज्ञ नहीं हुआ?"

"नहीं महाराज! अर्द्धांगिनी घर पर नहीं है, इस कारण यज्ञ सम्भव नहीं हो सका।"

यह सुन दत्तदेवी ने पूछा, "क्यों, वे कहाँ गयी हैं?"

"बच्चों को यहाँ असुरक्षित समझकर वह अपनी माता के पास अपने गाँव मंगला चली गयी है।"

"उन्हें आपसे भी अधिक बच्चों की चिन्ता थी?"

"महारानीजी! यह स्वाभाविक ही है। बच्चे उसके निर्मित प्राणी हैं। पति उसका संरक्षक है। परन्तु वह बच्चों की संरक्षिका है। पति ने उसकी रक्षा की चिन्ता करते हुए उसे अपनी माँ के पास भेज दिया है और वह अपने रक्षितों की चिन्ता करती हुई उनको लेकर अपनी माता के घर चली गई है।"

महाराज यह स्पष्टीकरण सुनकर हँस दिये। फिर बोले, "पण्डितजी! आपकी इस प्रकार की युक्तिसंगत बातों को सुनकर ही हम आपका मान करते हैं। हम आपको यहाँ से जाने नहीं देंगे।"

"तब तो महाराज! रक्षित भी अरक्षित हो जायेंगे।"

"नहीं पण्डितवर! अब वैसी दुर्घटना नहीं हो पायेगी जैसी कि यज्ञ से पूर्व हुई थी।"

"आपके कथन पर विचार किया जायेगा।"

"आज कथा होगी?"

"कथा का यज्ञ से सम्बन्ध नहीं है।"

शिवकुमार ने कथा आरम्भ कर दी। "महाराज! जब युधिष्ठिर आदि वनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भ्रमण कर रहे थे तो एक बार कुछ वनवासी ऋषिगण महाराज धृतराष्ट्र से मिलने के लिए आये। बातों ही बातों में उन्होंने युधिष्ठिर की दयनीय दशा का वर्णन कर दिया। समीप बैठा शकुनि उन लोगों की बातों को सुन रहा था। उन बातों को सुनते हुए उसके मन में एक विचार आया। वह वहाँ से उठा और दुर्योधन के कक्ष में जा पहुँचा। उसने उसको वह सब सुना दिया जो उसने ऋषियों को कहते हुए सुना था। फिर वह स्वयं बोला, 'दुर्योधन ! यह समय है जब तुम अपने इस जीवन भर के काँटे को सदा के लिए उखाड़ कर फेंक सकते हो।

"यह कहकर शकुनि ने दुर्योधन के सम्मुख एक योजना प्रस्तुत की। उस योजना को क्रियान्वित करने के लिए वे कर्ण आदि को साथ लेकर चल पड़े।

"हस्तिनापुर में यह विख्यात किया गया कि राजकुमार आदि वन में स्थापित अपनी गौशालाओं को देखने के लिए जा रहे हैं।

"इस बहाने दुर्योधन अपने साथी और सहस्रों सैनिकों को लेकर द्वैतवन में जा पहुँचा। वहाँ गौशालाओं का निरीक्षण किया गया और फिर उस वन में कोई रमणीक स्थान देखकर अपना डेरा बनाने के लिए उसने सेवकों को आदेश दे दिया।"

"उसी स्थान पर गन्धर्वराज चित्रसेन अपनी रानियों के साथ डेरा डाले हुए था। वह वहाँ जलविहार करने के लिए आया था। गन्धर्वराज ने दुर्योधन के सेवकों को तम्बू तानते हुए देखा तो अपने सेवकों द्वारा उसने उनको मारकर भगा देने की आज्ञा दी और उन्होंने उनको खदेड़ दिया।

"दुर्योधन ने इसे अपना अपमान समझा और उसने सदल-बल चित्रसेन पर आक्रमण बोल दिया। घमासान युद्ध हुआ। उस युद्ध में दुर्योधन की पराजय हुई और उसे शकुनि सहित बन्दी बना लिया गया।

"समीप ही युधिष्ठिर का आश्रम था। दुर्योधन के कुछ बचे हुए सेवक उनके पास पहुँचे और उन्हें दुर्योधन की स्थिति का वर्णन किया। युधिष्ठिर उस समय यज्ञ पर बैठा था। उसने अर्जुन को कहा कि वह दुर्योधन को छुड़ा लाये।

"अर्जुन ने युधिष्ठिर को कहा भी कि उनको इस झगड़े में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। किन्तु युधिष्ठिर का कहना था, 'वे अपने हैं, हमें अपनों की सहायता करनी ही चाहिए।'

" 'वे हमारे शत्रु हैं।" अर्जुन ने फिर कहा।

" 'नहीं, वे अपने हैं। हम आपस में झगड़ा करें तो वे सौ और हम पाच हैं। परन्तु किसी बाहरी आक्रमण के समय हम एक सौ पाँच हैं।' युधिष्ठिर ने समझाया।

"अर्जुन गया और इन्द्र द्वारा प्रदत्त शस्त्रास्त्रों की सहायता से उसने चित्रसेन को पराजित कर दुर्योधन को मुक्त करवा दिया। साथ ही वह चित्रसेन को भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पकड़कर बड़े भाई के पास ले आया।

"चित्रसेन ने बताया कि उसने दुर्योधन को इन्द्र के कहने पर पकड़ा था और वह उसे इन्द्रलोक भेजने वाला था। तब युधिष्ठिर ने चित्रसेन से कहा, 'महाराज इन्द्र से कहिये कि दुर्योधनादि मेरे भाई हैं। हमारा परस्पर झगड़ा एक पृथक् बात है। किन्तु दूसरों के लिए तो हम एक सौ पाँच हैं।

"युधिष्ठिर की इस मिथ्या भावना केआधार पर ही महाभारत का विनाशकारी युद्ध हुआ था। उस युद्ध का प्रभाव आजतक भारत पर विद्यमान है। और भारतवासियों का जो पतन हुआ है वह किसी से छिपी हुई बात नहीं है।

"महाराज! राजनीति में सबसे बड़ी भूल इसी विषय पर होती है। जातीय नेतागण भ्रमवश अपनों को पराया और परायों को अपना समझने लगते हैं। अपने और पराये की पहचान ही राजनीति है।"

यह कथा सुनकर समुद्रगुप्त मुख देखता रह गया। कुछ विचार कर उसने कहा, "पण्डितजी! आपकी पत्नी अपने बच्चों को अपना क्यों समझती है?"

शिवकुमार महाराज के इस कथन का अभिप्राय समझता था। उसने बात को समझते हुए कहा, "महाराज! इस कारण कि वह केवल माँ है। वह न तो किसी देश की महारानी है और न महारानी बनने की उसमें आकांक्षा ही है।"

महारानी ने बात बदलकर कहा, "बहन चन्द्रावती और उनका पुत्र राम कल रात ही यहाँ से उज्जयिनी के लिए चले गये थे। मैं समझती हूँ कि इस समय वे यहाँ से तीस कोस के अन्तर पर होंगे।"

यह सुनकर शिवकुमार ने दीर्घ निःश्वास छोड़ा और फिर पूछा, "अर्थात् उनको मुक्त कर दिया गया है?"

महाराज ने कहा, "हाँ, उन्हें मुक्त कर दिया गया। न्यायपीठ के अध्यक्ष का मत भी उन माँ-पुत्रों के पक्ष में ही गया था।"

"परमात्मा उनको सद्बुद्धि दे।" यह कहकर शिवकुमार अपने आसन से उठ गया।

महाराज नहीं उठे तो महारानी भी बैठी ही रही। महाराज ने उसी अवस्था में महामात्य से कहा, "आपको अब यहाँ रहने में किसी प्रकार का भय नहीं मानना चाहिए और अपना त्यात्र-पत्र वापस ले लेना चाहिए।"

"महाराज! मैंने जीवन-भय के कारण त्याग-पत्र नहीं दिया है।"

"तो फिर?"

"त्याग-पत्र का कारण उस पत्र में ही लिखित है।"

शिवकुमार वार्त्तालाप को लम्बा करना नहीं चाहता था। वह बैठा नहीं। उसने खड़े-खड़े ही कहा, "मैं आपके इस पूर्ण व्यवहार को अधर्मयुक्त मानता हूँ और इस कार्य में सहायक होना भी अधर्म ही है। वह मैं नहीं करूँगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सुनकर महाराज का मुख क्रोध से लाल हो गया। किन्तु शिवकुमार को इसकी चिन्ता नहीं थी। दत्तदेवी स्वयं उठी ग्रौर उसने महाराज का हाथ पकड़कर उठाते हुए कहा, "पण्डितजी! हम ग्रापसे तबतक कथा सुनने ग्राते रहेंगे जबतक ग्राप यहाँ हैं।"

इतना कहकर उसने महाराज को एक प्रकार से धकेलकर वहाँ से बाहर किया ग्रौर तब वे राज-भवन की ग्रोर चले गये।

महाराज ग्रौर महारानी के जाने पर पण्डित शिवकुमार ग्रल्पाहार के लिए चला गया।

ग्रल्पाहार करके महामात्य ठीक समय पर ग्रपने कार्यालय में जा पहुँचा। युद्ध के कारण कार्य की ग्रधिकता के कारण वह भूल ही गया था कि महाराज उससे रुष्ट होकर गये हैं।

दिन के तृतीय प्रहर शिवकुमार राज-प्रासाद में जाया करता था। ग्रपने भवन से समय पर निकलकर वह रथ में ग्रारूढ़ राज-प्रासाद में ग्रपने कार्यालय में गया। वहाँ पहुँच वह विचार करने लगा कि उसे महाराज से मिलने जाना चाहिए ग्रथवा कि नहीं।

कुछ देर तक विचार करने के उपरान्त वह महाराज से बिना भेंट किये वहाँ से वापस हो गया। उसका विचार था कि त्याग-पत्र देने के बाद ग्रब उसका यह ग्रधिकार नहीं कि वह महाराज से नीति-विषयक विचार-विमर्श करे। ग्रतः ग्रब उसको स्वयमेव महाराज के पास जाने की भी ग्रावश्यकता नहीं है। यदि महाराज को ग्रावश्यकता ग्रनुभव हुई तो वे स्वयं उसको बुलवा लेंगे।

: ५ :

शिवकुमार द्वारा भेजा गया सुभट्ट हस्तिनापुर के मार्ग पर जा रहा था। दूसरे दिन की यात्रा करते हुए प्रातःकाल जब वह सोन नदी के तट पर पहुँचा तो उसने देखा कि श्रीमती चन्दमुखी रथ सहित नौका पर ग्रारूढ़ होकर नदी पार करने की तैयारी में हैं।

सुभट्ट ने ग्रपना ग्रश्व नदी किनारे खड़ा किया ग्रौर स्वयं नौका पर जाकर उसने श्रीमती चन्द्रमुखी को नमस्कार कर शिव का दिया हुग्रा पत्र उसको पकड़ा दिया।

चन्द्रमुखी ने उसी समय उस पत्र को खोला ग्रोर पढ़ने लगी।

"प्रिय चन्द्र,

मेरा त्याग-पत्र मन्त्रिमण्डल के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए रख लिया गया है। मन्त्रिमण्डल की बैठक कब होगी, यह कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इस देश पर ग्राज ग्रंग देश की सेना ने ग्राक्रमण कर दिया है। इस समय राज्य की पूर्ण शक्ति युद्ध-कार्य में लगी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि मैं यहाँ कुशल से हूँ और स्वयं को सुरक्षित भी अनुभव करता हूँ, तदपि मेरा विचार अपना पद त्यागकर वापस आने का ही है। किन्तु भागकर आना मैं उपयुक्त नहीं समझता। राज्य को मेरा त्याग-पत्र स्वीकार करना ही होगा।

मेरे विचार से तुमको तो मंगला जाना ही चाहिए। मैं शीघ्र ही वहाँ आकर तुम लोगों से मिलूँगा। तब फिर किसी अज्ञात स्थान पर रहने के विषय में सोचेंगे।

शेष मिलने पर।

अभिन्न
शिव"

चन्द्रमुखी ने पत्र पढ़ा और उसे लपेटकर रख लिया। फिर पत्र-वाहक सुभट्ट को एक स्वर्ण पुरस्कारस्वरूप प्रदान किया। सुभट्ट ने प्रणाम किया और नौका से उतर गया।

पत्र पढ़कर चन्द्रमुखी को प्रसन्नता नहीं हुई। तदपि इस स्थिति में उसके लिए कुछ भी करणीय नहीं था केवल उसके कि जिस योजना को कार्यान्वित करने के लिए वह ग्राम को वापस जा रही थी। अतः उसने नौका को आगे बढ़ने के लिए कह दिया।

वह सुभट्ट तबतक वहाँ खड़ा रहा जबतक वह नौका नदी के पार जाकर नहीं लग गयी। चन्द्रमुखी भी उसको खड़े देख सन्तोष अनुभव कर रही थी।

चन्द्रमुखी के मंगला पहुँचने से पूर्व ही युद्ध का समाचार वहाँ पहुँच चुका था। पण्डित ईश्वरकृष्ण उसके पहुँचने से एक ही दिन पहले हस्तिनापुर गया था और वहीं उसको युद्ध का समाचार मिला था।

युद्ध क्यों हुआ और राज्य में किस प्रकार की उथल-पुथल चल रही है, यह तो जब चन्द्रमुखी वहाँ पहुँची तब ही पता चल पाया था।

चन्द्रमुखी जब गाँव पहुँची तो वह अकेली क्यों आयी है इसका कारण जानने के लिए समस्त ग्रामवासी वहाँ एकत्रित हो गये। सब चिन्तित थे। चन्द्रमुखी का कहना था कि पाटलिपुत्र का जलवायु उसको अनुकूल नहीं रहा है, किन्तु किसी को भी उसकी इस बात पर विश्वास नहीं हुआ।

जब ग्रामवासी उसका कुशल-समाचार जानकर चले गये तो उसने अपने परिजनों को वह सारी स्थिति समझायी जिसके कारण उसको आना पड़ा। उसने वह पत्र भी दिखाया जो उसे मार्ग में ही शिवकुमार ने भेजा था।

यह सब बताते हुए चन्द्रमुखी का गला भर आया। माँ ने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा, "क्या तुम समझती हो कि शिव के जीवन को वहाँ किसी प्रकार का भय है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"माताजी ! वहाँ पल-पल में स्थिति बदल रही है। कोई नहीं जानता कि अगले पल क्या होने वाला है। जब स्वार्थ और मोह मस्तिष्क पर आरूढ़ हो जाते हैं तो मति भ्रष्ट हो जाती है। तब क्या हो जाय इसका अनुमान लगाना कठिन है। उनके इस पत्र से सान्त्वना तो मिलती है। परन्तु वहाँ स्थिति इतनी अस्थिर है कि कुछ कहना कठिन है।"

चन्द्रमुखी से प्राप्त समाचार से किसी को भी सन्तोष नहीं था। तदपि प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त अन्य उपाय भी तो नहीं था। वे पाटलिपुत्र से अन्य समाचार आने की प्रतीक्षा में दिन व्यतीत करने लगे।

ईश्वरकृष्ण ने अपने परिवार को सान्त्वना देते हुए कहा, "जीवन में यह सब देखना तो पड़ता ही है। हमें आशा करनी चाहिए कि अन्त में सब ठीक ही होगा। इन सब बातों को हमें अपने तक ही सीमित रखना चाहिए। बाहर किसी से इसका उल्लेख न किया जाय। नगर में तो इन बच्चों के यहाँ आने का समाचार भी नहीं जाना चाहिए।"

इस प्रकार धैर्य से पाटलिपुत्र से अगला समाचार आने की प्रतीक्षा की जाने लगी। ईश्वरकृष्ण समझ रहा था कि इस बार शिव जब गाँव आयेगा तो कुछ अधिक समय तक ही रहेगा। इसलिए उसने उसके मकान की मरम्मत और सफाई आदि का प्रबन्ध करवा दिया।

चन्द्रमुखी को अपने ग्राम पहुँचे पाँच ही दिन हुए थे कि पाटलिपुत्र से एक अश्वारोही आ पहुँचा। वह शिवकुमार का पत्र लाया था। उसने लिखा था कि यद्यपि राज्य में युद्ध की स्थिति है तदपि उसका विचार वहाँ से चले आने का ही है। उसने लिखा था कि कल सायंकाल अर्थात् जिस दिन उसने पत्र लिखा था उससे एक दिन पूर्व, जब वह राज-प्रासाद वाले अपने कार्यालय से अपने निवास-गृह आने वाला था कि उसी समय महारानी दत्तदेवी उसके कार्यालय में आ पहुँचीं। यह सर्वथा अप्रत्याशित था। उसके महामात्य काल में ऐसा पहली बार ही हुआ था।

उसने लिखा कि उसे स्मरण है कि एक बार पहले भी महारानी महाराज के बिना अपने पुरोहित से मिलने के लिए आयी थीं। परन्तु यजमान-पुरोहित का सम्बन्ध तो राज्य के महामात्य और महारानी के सम्बन्ध से सर्वथा भिन्न होता है। इस कारण वहाँ उपस्थित सभी को विस्मय हुआ था।

उसने महारानीजी को बैठाया और स्वयं खड़ा रहकर उनकी बात सुनने लगा। लगभग डेढ़ घड़ी तक महारानी अपनी बात करती रहीं और उस पूर्ण अवधि में उनकी आँखों अविरल से अश्रुधारा बह रही थी। उनका आग्रह था कि मैं अपना त्याग-पत्र वापस ले लूं। शिवकुमार ने केवल इस शर्त पर वापस लेना स्वीकार किया था कि यदि मन्त्रिमण्डल ने उसे स्वीकार न किया तो वह वापस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ले लेगा।

महारानी सोचती हैं कि महाराज वृद्ध हो गये हैं और इसका प्रभाव उनके मस्तिष्क पर भी हो गया है। सत्यासत्य और उचितानुचित में विभेद करने की उनकी बुद्धि क्षीण होती जा रही है। महारानीजी को भय है कि इस स्थिति में राज्य मन्त्रिमण्डल के अधीन हो जायेगा और मन्त्रिमण्डल में तो सब सेवक वृत्ति के ही मन्त्री हैं, वे राज्य का किसी प्रकार कल्याण करने में सक्षम नहीं हैं। महारानी के विचार में शिवकुमार यदि वहाँ रहे तो वह उनपर अंकुश रखकर राज्य को भली-भाँति चला लेगा।

शिवकुमार ने लिखा था कि उसने अभी उतना ही आश्वासन दिया है जितना कि पहले बताया जा चुका है। अत: बच्चों को अभी कुछ दिन और वहीं उसकी प्रतीक्षा करनी होगी। परिस्थिति कुछ ऐसी थी कि विना महाराज की अनुमति के मन्त्रिमण्डल शिवकुमार को महामात्य के रूप में स्वीकार नहीं करेगा। महारानी के लिए मन्त्रिमण्डल में कोई विशेष मान नहीं था। युद्ध समाप्त होते ही शिवकुमार अपने त्याग-पत्र पर बल देगा। अत: आशा की जा सकती है कि शीघ्र ही वह मंगला पहुँच जायेगा। तब भावी कार्यक्रम पर विचार करने का अवसर मिलेगा।

इस पत्र से चन्द्रमुखी की चिन्ता तो कुछ कम हो गयी किन्तु उसको सन्तोष फिर भी नहीं था। वह सोच रही थी कि यदि इस समय वह पाटलिपुत्र में होती तो महाराज और मन्त्रिमण्डल की अवज्ञा कर अपने पति को वहाँ से चलने को विवश कर देती। वह सोचती थी कि यदि किसी अज्ञात स्थान पर ही जीवन व्यतीत करना है तो फिर मन्त्रिमण्डल की आज्ञा की आवश्यकता ही क्या रह जाती है?

मंगला आने पर वृहस्पति को अपने पठन-पाठन के उपयुक्त ग्रन्थ नहीं मिल रहे थे। उसका परिणाम यह होता था कि वह घड़ियों ही एकान्त में ध्यानावस्थित बैठा रहता था। उसे इस अवस्था में देख उसकी माँ समझती थी कि वह अपने पूर्वजन्म के संस्कारों के वशीभूत समाधि लगाने की ओर अग्रसर है।

एक सप्ताह उपरान्त फिर शिवकुमार का पत्र आया। पत्र में लिखा था—"युद्ध अब समाप्त होने वाला ही है। अंग की सेना का वहुत बड़ा भाग मगध सेना के घेरे में आ गया है। यदि अंग की सेना ने पराजय स्वीकार नहीं की तो वह भूख-प्यास से व्याकुल विनष्ट हो जायेगी।

"अंग नरेश भागकर असम चला गया है। उसे बन्दी नहीं वनाया जा सका। तदपि मगध अंग को अपने राज्य में सम्मिलित करना नहीं चाहता। इसलिए अंग और असम में घोषणा करवा दी गयी है कि मगध राज अंग राज से सन्धि करना चाहता है। यहाँ आशा की जा रही है कि इस घोषणा पर शीघ्र ही अंग नरेश सम्मुख आकर सन्धि करेंगे। मगध की सेनाएँ अंगदेश की राजधानी पर अधिकार किये हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जहाँ तक मेरे यहाँ रहने का प्रश्न है मैं महामात्य अथवा पुरोहित बनकर यहाँ रहने में कोई लाभ नहीं देखता। तदपि यहाँ यत्न हो रहा है कि मैं न जाऊँ। महारानी इसमें प्रमुख हैं।

"महाराज और महारानी नित्य कथा सुनने के लिए आते हैं। कथा होती है किन्तु उस समय राज्य से सम्बन्धित कोई बात नहीं होती।

"अभी तुम लोगों को कुछ दिन और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।"

इस प्रकार एक सप्ताह और गया कि तभी शिवकुमार का एक और पत्र मिला। उसमें लिखा था—

"प्रिय चन्द्र,

मेरा त्याग-पत्र स्वीकार होने में कठिनाई उत्पन्न हो गयी है। मुझे महामात्य बनाये रखने वालों का पक्ष बल पकड़ता जा रहा है। महारानी दत्तदेवी की प्रेरणा पर पाटलिपुत्र की विद्वत्परिषद् के लगभग दो सौ सदस्य एक दिन मेरे निवास पर आये। उन्होंने आग्रह किया कि मैं अपना त्याग-पत्र वापस लूं। वे तो धरना देने की योजना बनाकर आये थे। मुझे विवश होकर अपने त्याग-पत्र पर पुनः विचार करने का वचन देना पड़ा।

"आज प्रातःकाल से ही नगर के सहस्रों ब्राह्मण मेरे निवास को घेरकर बैठे हैं। वे इतने जोर-जोर से घोष कर रहे हैं कि भीतर बैठे प्रतिनिधियों की बात भी नहीं सुनी जा सकती।

"मुझे लगता है कि मगध राज्य को अपनी सेवा का लाभ उठाने का एक अन्य अवसर देना ही पड़ जायेगा। जनता की पुकार की अवहेलना करना कठिन है।

"ऐसी स्थिति में तुमको भी यहाँ लौटकर आने का कार्यक्रम बना लेना चाहिए। यदि रामेश्वर अथवा विष्णु में से कोई साथ आ सके तो उत्तम होगा। अब मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।"

इस प्रकार शिव ने वह सारी स्थिति अपने पत्र में वर्णन कर दी थी जो उस समय पाटलिपुत्र में चल रही थी।

मगध मन्त्रिमण्डल में अंगराज के भविष्य के सम्बन्धों के विषय पर मतभेद था। कोई एक पक्ष दूसरे को समझा नहीं पा रहा था कि किस शर्त से मगध को क्या लाभ होगा। अतः कुछ इस प्रकार के लक्षण थे जिनके आधार पर ही शिव ने लिखा था कि राष्ट्र-सेवा की भावना से वह मगध राज्य की कुछ और सेवा करने का विचार कर रहा था।

मन्त्रिमण्डल में मतभेद की बात जब महारानी दत्तदेवी को विदित हुई तो उसने महाराज से कहा, "आपका मन्त्रिमण्डल तो पतिविहीन पत्नी की भाँति दिग्भ्रमित हो गया है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"दिखायी तो कुछ ऐसा ही दे रहा है।"

"तो उनके रूठे पति को वापस क्यों नहीं बुला लेते ?"

"जानती हो वह आते ही क्या करेगा ?"

"क्या करेगा ?"

"राम और उसकी माता को पकड़वाकर पाटलिपुत्र मँगवाने के लिए कहेगा।"

"जब ऐसा कहेगा तब बात कर ली जायेगी। अब तो राम का मित्र आपका वन्दी बना हुआ है। इसलिए निस्सहाय होने से वह विषरहित भुजंग की भाँति हो गया है।"

"तो उससे कहो कि वह अपना त्याग-पत्र वापस ले ले।"

"मैं तो आपके सामने ही कहूँगी। परन्तु उस कथन की पृष्ठभूमि में किसी के बल का प्रदर्शन करना चाहती हूँ।"

"किस बल का प्रदर्शन करोगी ?"

"वही जो उसको मुक्त कराने के लिए आपके सम्मुख किया गया था। मैं नगर भर को उसके द्वार पर धरना देने के लिए कह दूँगी।"

"यदि ऐसा कर सकती हो तो करो।"

महारानी ने पहले पण्डित विभूतिचरण को बुलवाकर विद्वत्परिषद् के सदस्यों को उसके घर पर भेजा। उतने से जब काम नहीं चला तो नगर भर के ब्राह्मण जिनमें सब आयु के नर-नारी थे, महामात्य के द्वार पर एकत्रित होने लगे।

महाराज को आश्चर्य हो रहा था कि महारानी ने सहज ही इस प्रदर्शन का आयोजन कर दिया है। महारानी ने कहा, "इसमें मेरा कुछ नहीं। यह पण्डित शिवकुमार की नगर में ख्याति के कारण हो रहा है।

"जब नगर के ब्राह्मण उसके द्वार पर आये तो वह उनकी बात सुनने के लिए आया। ब्राह्मण महिलाएँ आँचल फैलाये उससे भिक्षा माँग रही थीं। इससे वह अभिभूत हो गया। वह हाथ जोड़कर भीड़ के सम्मुख खड़ा हुआ तो पण्डित पंचानन मिश्र ने आगे बढ़कर कहा, 'पण्डितजी ! यदि आपने इनकी बात नहीं मानी तो कल सारा नगर आपके द्वार पर अनशन कर देगा।'

"यह सब देख और सुनकर शिवकुमार ने कहा, 'मैं नहीं जानता था कि आप मेरी सेवाओं का मूल्यांकन इस प्रकार करेंगे। आपके इस प्रेमपूर्ण आग्रह को मैं अस्वीकार नहीं कर सकता।

" 'परन्तु मैंने पद से त्याग-पत्र दिया हुआ है। वह त्याग-पत्र इस समय मन्त्रि-मण्डल के विचाराधीन है। यदि मन्त्रिमण्डल ने त्याग-पत्र स्वीकार नहीं किया तो मैं वचन देता हूँ कि मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा। अब यह बात मेरे हाथ में नहीं है। यह निर्णय मन्त्रिमण्डल को करना है। यदि मन्त्रिमण्डल ने अपने त्याग-पत्र पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनरावलोकन के लिए कहा तो मैं उसे वापस ले लूंगा।"

पंचानन मिश्र आदि ब्राह्मण यही तो चाहते थे। महामात्य के आश्वासन देने पर नगर-भर में उसका जयघोष होने लगा। तभी शिवकुमार ने अपनी पत्नी को वह पत्र लिखा था।

इस पत्र का परिणाम बीस दिन बाद निकला। चन्द्रमुखी अपने बच्चों सहित रामेश्वर के साथ पाटलिपुत्र लौट आयी।

जिस दिन पाटलिपुत्र के ब्राह्मणों ने पण्डित शिवकुमार के निवास-गृह के सामने प्रदर्शन किया था उसी दिन तृतीय प्रहर मगध राज्य के मन्त्रिमण्डल ने रक्षामन्त्री वीरभद्र को यह आदेश दिया कि मन्त्रिमण्डल की ओर से वह महामात्य से निवेदन करे कि मन्त्रिमण्डल ने उनका पत्र बिना खोले और बिना पढ़े वापस कर दिया है और महामात्य से आग्रह किया गया है कि वे इसे वापस लेने के विषय पर पुनर्विचार करें।

वीरभद्र ने शिवकुमार का त्याग-पत्र और मन्त्रिमण्डल की सम्मति का पत्र महारानी द्वारा पण्डित शिवकुमार को भिजवा दिया।

अगले दिन जब महारानी मगधराज के साथ शिवकुमार के पास कथा सुनने के लिए गयीं तो वे दोनों पत्र उसके समीप रख दिये।

शिवकुमार ने वीरभद्र के पत्र को पढ़ा और अपने वन्द पत्र पर एक दृष्टि डाल दोनों को अपनी पुस्तक के नीचे रखकर कथा आरम्भ कर दी।

आज की कथा का प्रसंग एक पुरुषवाद और वहुपुरुषवाद था। महाभारत में वैशम्पायन ने इसको ब्रह्मा और शिव के सम्वाद के रूप में वर्णन किया है। वैशम्पयान ने वहाँ कहा है कि इस जगत् को कुछ लोग एक ही पुरुष के रूप में देखते हैं। परन्तु सांख्य और न्याय के प्रवक्ता बहुपुरुष की कल्पना करते हैं।

महाभारत के प्रवक्ता ने इस प्रसंग पर अपने विचार वर्णन किये हैं। शिव के इसी प्रश्न को पूछने पर ब्रह्मा ने बताया था—

न लिप्यते फलैश्चापि पद्मपत्रमिवाम्भसा।
कर्मात्मा त्वपरो योऽसौ मोक्षबन्धैः स युज्यते।।

—म०भा० शा० ३५१-१५

शिवकुमार ने कहा, "महाराज! एक पुरुष है जो कमल के पत्र की भाँति अलिप्त रहता है। वैसे ही वह कर्मफल से अलिप्त रहता है। और दूसरे पुरुष हैं जो कर्मों के कर्ता हैं और बन्ध-मोक्ष से सम्वन्ध जोड़ते हैं।

"इस ग्रन्थ में सब युक्ति-प्रति युक्तियां नहीं दीं जो ब्रह्मसूत्र के प्रवक्ता ने अपने ग्रन्थ में दी हैं। यह इतिहास का ग्रन्थ है, ज्ञान-विज्ञान का नहीं। ब्रह्मसूत्रों में इस विषय पर विस्तार से लिखा गया है।"

महाराज समुद्रगुप्त ने पूछा, "पण्डितजी! जब एक से ही काम चल सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था तो फिर तीन के बनाने की क्या आवश्यकता थी ?"

"प्रकृति, जीव समूह और परमात्मा को किसी ने बनाया नहीं है। ये तीनों ही स्वयम्भू हैं। ये अनादिकाल से हैं। वास्तव में तीनों ही ब्रह्म कहाते हैं। तदपि हैं ये तीन ही। ब्रह्मसूत्र में कहा है कि इस चराचर संसार को देखने से यह ही पता चलता है कि उसके कार्य को बिना तीन अनादि पदार्थों को माने जगत् के कार्य को समझा नहीं जा सकता।

"ये तीनों कब से हैं और कहाँ तक विस्तृत हैं इसका आर-पार जानना मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर है। इसी कारण जब विद्वान् लोग इसपर विचार करने लगते हैं तो कह उठते हैं 'नेति, नेति'। अभिप्राय यह कि हम नहीं जान सकते, हम नहीं जान सकते।"

"परन्तु पण्डितजी! यह कैसे समझा जाये कि ये तीन हैं ?"

"ब्रह्मसूत्रों के प्रवक्ता इसको इस प्रकार कहते हैं कि इस चलायमान जगत् के अध्ययन से हम इसमें पहले दो प्रकार के पदार्थ देखते हैं। एक प्रकार के पदार्थों को चेतन कहते हैं। चेतन पदार्थ एक गुण है जिसे ईक्षण करना कहते हैं। ईक्षण करने से अभिप्राय है कार्य करने में काल, स्थान और दिशा का निश्चय करने वाला।

"इन चेतन पदार्थों में मनुष्य एक उदाहरण है। यह जब घर से भ्रमण करने के लिए निकलता है तो यह स्वयं ही निश्चय करता है कि भ्रमण करने के लिए वह घर से कब निकले, किस स्थान पर भ्रमण करने के लिए जाये और वह किस ओर जाये। यह मनुष्य में चेतन तत्त्व के कारण है।

"एक दूसरी प्रकार के पदार्थ भी इस जगत् में हैं। जो खड़े हैं तो खड़े ही रहते हैं, चलते हैं तो चलते ही रहते हैं। उनकी गति स्थिर होती है। इनमें उस चेतन तत्त्व की विद्यमानता नहीं मानी जाती जो पहली प्रकार के पदार्थों में मानी जाती है।

"इस स्थिति पर यदि विचार करें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि संसार में दो प्रकार के पदार्थ तो स्पष्ट दिखायी ही देते हैं। एक को जड़ कहते हैं और दूसरे को चेतन। चेतन पदार्थों में जीवात्मा की विद्यमानता मानी जाती है और जड़ पदार्थों में वह नहीं मानी जाती।

"जड़ पदार्थ भी दो प्रकार के देखे जाते हैं। एक वे जो सर्वथा अचल अर्थात् स्थिर हैं। दूसरे वे जो किसी नियमित गति से चल रहे हैं। जो नियमित गति से चल रहे हैं वे स्थिर पदार्थों की अपेक्षा विशिष्ट माने जाते हैं। यह विशेषता भी उनमें किसी कारण से ही हो सकती है। वह विशेषता परमात्मा के कारण कही जाती है।

"यह परमात्मतत्त्व वह नहीं है जो मनुष्य के शरीर में देखा जाता है। दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के गुण और सामर्थ्य में अन्तर है।

"इस प्रकार तीन तत्त्वों का अनुमान होता है। इस जगत् के पदार्थ में भेद तो हम प्रत्यक्ष देखते हैं। इस कारण अनुमान भी सत्य ही मानना चाहिए। जिस प्रकार धुआँ देखकर अदृश्य अग्नि का अनुमान सत्य होता है।

"ये तीनों तत्त्व अक्षर और अनादि हैं। इससे स्पष्ट है कि इनको किसी ने उत्पन्न नहीं किया। ये स्वयम्भू हैं।"

कथा समाप्त हुई। शिवकुमार के संकेत पर दुग्ध और मिष्ठान्न आया और तीनों ने अल्पाहार किया। फिर नित्य की भाँति शिवकुमार अपने आसन से उठा और महाराज और महारानी को विदा करने के लिए हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

महाराज और महारानी बैठे रहे। महारानी ने कहा, "मैं जो सन्देश लायी हूँ मैं उसका उत्तर जानना चाहती हूँ।"

"अपने प्रतिहारी द्वारा मैं इसका उत्तर वीरभद्रजी के पास भेज दूँगा।

"इस विषय में तो मैं प्रतिहारी का कार्य कर रही हूँ।"

"इस पत्र का मेरा उत्तर कुछ भी नहीं है। अर्थात् मैंने मन्त्रिमण्डल का सुझाव स्वीकार कर लिया है।"

महारानी ने उठते हुए कहा, "पण्डितजी! हम आपका हृदय से धन्यवाद करते हैं।"

"हमसे आपका अभिप्राय?"

"अर्थात् हम भी आपका धन्यवाद करते हैं।" महाराज ने स्पष्ट करते हुए कहा।

शिवकुमार खड़ा ही था। जब से उसने पुरोहित-पद से त्याग-पत्र दिया था, वह साधारण नागरिक के नाते महाराज और महारानी को विदा करने द्वार तक जाया करता था। जिस दिन पण्डित शिवकुमार ने पुरोहित-पद से त्याग-पत्र दिया था उस दिन वह स्वर्ण-पत्र जिसपर उसको पुरोहित नियुक्त किये जाने का प्रमाण-पत्र अंकित था, महाराज को वापस करना चाहा था। परन्तु महाराज ने उसे वापस नहीं लिया था। उनका कहना था कि मंगला गाँव के पण्डित परिवार में मगध सम्राट् समुद्रगुप्त के उनके किसी पुरखा को राज-पुरोहित बनाने की स्मृति-स्वरूप सुरक्षित रहेगा।

नित्य नियमानुसार शिवकुमार आज उनको विदा करने के लिए खड़ा था। महाराज ने कहा, "पण्डितजी! हम समझते हैं महामात्य पद स्वीकार करते हुए आपने राज-पुरोहित-पद पर रहना भी स्वीकार कर लिया है?"

"महाराज! यह विषय अभी विचारणीय है। दोनों के उद्देश्यों में अन्तर है। वह अन्तर अभी विद्यमान है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हमारी दृष्टि में तो कोई अन्तर नहीं है। आज की स्थिति की आशा में ही हमने अपना स्वर्ण-पत्र वापस नहीं लिया था।

"और एक बात यह भी है कि महामात्य-पद आपने स्वीकार किया था। इसलिए आप उसे छोड़ अथवा रख सकते हैं। परन्तु पुरोहित तो हमने आपको बनाया था। इस कारण यह हमारे मानने अथवा न मानने की बात है। यही कारण है कि हमने आपके पास आकर कथा सुनना कभी बन्द नहीं किया। न हमने पौर्णमासीय यज्ञ कराना छोड़ा। हम आपको अपना पुरोहित मानते हैं। आप हमारी इस मान्यता को किस प्रकार रोक सकते हैं?"

शिवकुमार इस परिस्थिति पर विचार करता हुआ खड़ा था कि महाराज और महारानी बाहर निकल गये।

: ६ :

उसी सायंकाल मन्त्रिमण्डल की बैठक हुई और उसमें पण्डित शिवकुमार भी सम्मिलित हुआ। जब महाराज अंग के साथ सन्धि का प्रश्न उपस्थित हुआ तो महामात्य शिवकुमार ने निर्णायक बात करते हुए कहा, "युद्ध पर मगध राज्य का जितना भी व्यय हुआ है वह सब अंग नरेश को देना होगा। इस व्यय का अनुमान पाँच करोड़ स्वर्ण है।

"अंग राज्य में हमारे दूतावास तथा उसके प्रत्येक कर्मचारी की सुरक्षा का उत्तरदायित्व भी अंग नरेश का होगा।

"इस सुरक्षा आदि के लिए हमें दूतावास में कम-से-कम पाँच सौ सैनिक नियुक्त करने पड़ेंगे, अंगराज को उनका वेतन देना होगा।

"सन्धि-पत्र पर अंग नरेश और उसके ज्येष्ठ पुत्र को हस्ताक्षर करने होंगे।"

इन शर्तों को सुनकर मन्त्रिमण्डल आश्चर्य कर रहा था। सब शिवकुमार के मुख की ओर देख रहे थे।

महाराज ने स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा, "अंग नरेश इन शर्तों को मानेगा नहीं।"

"यदि उसने इन शर्तों को स्वीकार नहीं किया तो अंग देश को मगध साम्राज्य के अन्तर्गत एक राज्य के रूप में अधिग्रहण कर लिया जायेगा। ऐसी स्थिति में हमें वंग और असम के साथ सीमा निर्धारण सन्धि करनी होगी। वह हम कर लेंगे। उसके लिए अंगराज चित्रसेन को कुछ नहीं करना होगा।"

यह तो मन्त्रिमण्डल को और भी अधिक विस्मयकारक था। शिवकुमार को महारानी दत्तदेवी की बात स्मरण हो आयी। महारानी ने कहा था कि महाराज अब वृद्ध हो जाने के कारण सोचने का सामर्थ्य खो बैठे हैं।

यह बात ध्यान में आने पर शिवकुमार ने उन सबको उत्साहित करते हुए कहा, "मेरे विचार में तो ये शर्तें न्यूनातिन्यून हैं। यदि आप इनको असम्भव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझते हैं तो मुझे चित्रसेन से बात करने की अनुमति दीजिये। यदि उसने स्वीकार नहीं किया तो फिर मैं उससे पूछूँगा कि इस परिस्थिति में वह क्या स्वीकार करना चाहता है। उसकी बात आपके सम्मुख प्रस्तुत करूँगा और फिर उस पर विचार कर लिया जायेगा।''

मन्त्रिमण्डल ने महामात्य को अंग नरेश चित्रसेन से बात करने की अनुमति प्रदान कर दी। तदनुसार अंग नरेश के साथ पण्डित शिवकुमार की छः घड़ी तक एक बन्द कमरे में बातचीत होती रही। चित्रसेन ने अपनी शर्तों की एक सूची बनायी और उनको लेकर महामात्य ने मन्त्रिमण्डल के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया।

जो शर्तें अंग नरेश चित्रसेन ने स्वयं स्वीकार की थीं वे तो उनसे भी कठोर थीं जो कि शिवकुमार ने रखी थीं।

इस अवसर पर महामात्य ने कहा कि अंग नरेश युद्ध के व्यय स्वरूप पाँच करोड़ स्वर्ण के अतिरिक्त नेपाल सीमा के साथ लगने वाली बीस कोस भूमि की पट्टी भी देने को उद्यत हो गया है। नदिया में काशी के पण्डितों द्वारा चलाये जाने वाले विद्यालय की भी उसने स्वीकृति दे दी है।

यह सुनकर मगध के मन्त्रिमण्डल को विस्मय हुआ। उन्हें तो यह भी आशा नहीं थी कि जो शर्तें शिवकुमार ने रखी हैं अंग नरेश उनको भी स्वीकार करेगा। उनके विस्मय का निवारण करते हुए पण्डित शिवकुमार ने कहा, ''चित्रसेन इस समय भयभीत है। यदि मैं चाहता तो वह और भी बहुत कुछ स्वीकार करने के लिए तैयार था। परन्तु मेरा निवेदन तो इतना ही है कि हमें उतने पर ही सन्तोष कर लेना चाहिए जो मैंने अपनी पिछली बैठक में कहा था।''

इस प्रकार महाराज चित्रसेन के साथ सन्धि हो गयी। महाराज का विचार था कि अंग नरेश के मन में अवश्य ही इन शर्तों को भंग करने की बात रही होगी।

इसका समाधान करते हुए शिवकुमार ने कहा, ''स्वर्ण तो अंग नरेश के मगध से जाने से पहले ही प्राप्त हो जायेगा। जहाँ तक हमारी सेना लौटने का प्रश्न है उसको हम वहीं रहने देंगे। उनके साथ युद्ध करके ही तो वह उनको वहाँ से निकाल सकता है। किन्तु युद्ध का परिणाम वह देख चुका है। उस कटु अनुभव की वह पुनरावृत्ति करना नहीं चाहेगा।

''मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि कम-से-कम बीस-तीस वर्ष तक तो वह इस सन्धि को भंग करने का दुस्साहस नहीं कर सकेगा।

''महाराज! एक बात समझ लेनी चाहिए कि साम्राज्य का अर्थ ही यह है कि प्रति दस वर्ष उपरान्त एक युद्ध। प्रत्येक साम्राज्य को इसके लिए तत्पर रहना चाहिए।

''सदियों तक शान्ति की आशा तो छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों से ही की जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती है। वह भी तबतक ही जबतक कि सांस्कृतिक ऐक्य का सूत्र उनमें सुदृढ़ बना रहे।

यह सुनकर महाराज समुद्रगुप्त ने कहा, "परन्तु महामात्य ! महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य का महामन्त्री विष्णुगुप्त चाणक्य तो कुछ दूसरी ही बात कहता है।"

"महाराज ! विष्णुगुप्त ने इस देश पर जो राजनीति चलायी है, वह यवन और असुर देशों की प्रतिच्छाया थी। इसका परिणाम भी वैसा ही होगा जैसा कि उन देशों में निरन्तर हो रहा है। अर्थात् पड़ोसियों के साथ निरन्तर युद्ध रहता है और प्रजा का मनोबल दिनों-दिन क्षीण होता जा रहा है।"

"तो वर्तमान परिस्थिति में किस प्रकार इसका निवारण हो सकता है?"

"साम्राज्यों का विधि-विधान बदलना होगा। परन्तु इस प्रकार का परिवर्तन बिना ब्राह्मण वर्ग के सहयोग के सम्भव नहीं है। देश की समस्या यह ब्राह्मण वर्ग ही है। इसको बलपूर्वक नहीं बदला जा सकता। इसके लिए तो पूर्ण देश का वातावरण ही बदलना होगा।

"महाराज ! यह अवस्था तो महाभारत के युद्धकाल से पहले से ही बिगड़नी आरम्भ हो गयी थी। पहले तो यह कहा गया कि ब्राह्मण पूज्य हैं। और ब्राह्मण राज्य की लालसा करने लगे। द्रोणाचार्य का उदाहरण स्पष्ट है। द्रोणाचार्य योग्यता का विचार छोड़ निम्न कुल में उत्पन्न हो निम्न विद्यायें ही मानने लगा था। रंगभूमि में राजकुमारों की परीक्षा के समय कर्ण के प्रति द्रोणाचार्य का व्यवहार विचारणीय है। एकलव्य के प्रति द्रोणाचार्य ने जो व्यवहार किया वह तो उसको ब्राह्मण-पद से च्युत करने योग्य था।

"द्रोणाचार्य और कृपाचार्य का दुर्योधन को अपना स्वामी स्वीकार कर स्वयं को उसका सेवक मानना ब्राह्मणत्व के पतन का ही सूचक माना जा सकता है। तत्कालीन ब्राह्मणों के व्यवहार के कारण ही महाभारत का भयंकर युद्ध हुआ था।

"महाभारत काल से आरम्भ होने वाला पतन बौद्धकाल में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया। प्रतिष्ठा के भूखे ब्राह्मण अशोक के अधर्मयुक्त राज्य में उसका गुणगान करते रहे। उसका परिणाम यह हुआ कि उसके काल में ही अनपढ़ बौद्ध भिक्षुओं ने मन्दिर गिराये। पुस्तकालयों को भस्मसात् कर दिया। तब भी ये ब्राह्मण देवता वेदों की निन्दा के ग्रन्थ रचने लगे।

"सबसे भयंकर बात यह थी कि देश में एक साम्राज्य होने के कारण सब ब्राह्मणों की पहुँच केन्द्रीय शासन तक सम्भव नहीं थी। स्थानीय शासक रहे नहीं थे, इसलिए वे ब्राह्मणत्व छोड़कर कृषि करने लगे।

"विष्णुगुप्त की शासन-पद्धति कुछ इस प्रकार की थी कि देश का सारा वैभव राजधानी पाटलिपुत्र में एकत्रित हो गया। उसके परिणामस्वरूप ब्राह्मणत्व का ही लोप हो गया। वह साम्राज्य प्रथा अभी भी चल ही रही है। ब्राह्मण अब या तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरोहित मात्र रह गये हैं या फिर कृषि आदि व्यापार करने लगे हैं।

"महाराज ! ब्राह्मण को समाज का मस्तिष्क कहा जाता है। जब मस्तिष्क ही बिगड़ गया तो समस्त समाज पतन की ओर चल पड़ा। इसलिए वर्तमान अवस्था का मेरा निदान तो यही है कि किसी प्रकार ब्राह्मण वर्ग के उत्थान का प्रयत्न होना चाहिए। इस दिशा में पहला पग यह होना चाहिए कि ब्राह्मण जन्म से न मानकर मानव के गुण, कर्म, स्वभाव से मानना चाहिए।"

"पण्डितजी ! यह किस प्रकार सम्भव है ?" महाराज ने पूछा।

"मैंने इस दिशा में यत्न किया है। जब मैं विद्वत्परिषद् का अध्यक्ष था तो मैंने उस समय एक प्रस्ताव उपस्थित किया था कि विद्वत्परिषद् एक उपाधि की योजना करे। उस उपाधि का नाम विद्यामार्तण्ड रखने का विचार था। सब वर्ण के घटक उस परीक्षा में बैठने के लिए स्वतन्त्र होंगे। जो उस परीक्षा में उत्तीर्ण हो, राजा की ओर से उसको ब्राह्मण का पद प्रदान किया जाय।

"इस प्रस्ताव का खण्डन तो किसी ने किया नहीं। किन्तु जब पारित होने के लिए मत-विभाजन का अवसर आया तो मेरे अतिरिक्त उस प्रस्ताव के पक्ष में कोई भी नहीं था।

"ब्राह्मण जन ब्राह्मणत्व को अपनी सम्पत्ति मानने लगे हैं। यही कारण है जो हैं तो निरक्षर भट्टाचार्य तदपि पुरोहिताई से निर्वाह कर रहे हैं।"

महाराज ने पूछा, "हम इसमें क्या कर सकते हैं ?"

"महाराज ! यह भी मैं बताऊँगा कि आप क्या कर सकते हैं। किन्तु उसका समय अभी नहीं आया है। मैं एक कहार के पुत्र को व्याकरण का महाभाष्य पढ़ाकर अब उसको दर्शनशास्त्र पढ़ा रहा हूँ। यदि मैं पाँच वर्ष तक पाटलिपुत्र में रह गया तो उसको वेद का प्रकाण्ड विद्वान् बनाकर आपकी राज्यसभा में उपस्थित करूँगा। तब आपसे याचना करूँगा कि उस व्यक्ति को विद्यामार्तण्ड की उपाधि प्रदान की जाय। यह उस क्रान्ति का श्रीगणेश होगा जिसको एक सौ वर्ष तक चलाने में यदि मैं सफल हो गया तो भारत सबल देश बन जायेगा।"

"ठीक है। आप करिये।" महाराज ने कह दिया।

महामात्य पण्डित शिवकुमार की शर्तों के अनुसार अंग नरेश चित्रसेन के साथ सन्धि हुई। अंग राजकोष से धन आते ही सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये गये। अंगराज पर से प्रतिबन्ध उठा लिया गया और अपनी सेनाओं को भी वापस बुला लिया गया।

अंगराज चित्रसेन अपने देश चला गया था। एक दिन प्रातःकाल महाराज और महारानी पण्डित शिवकुमार के निवास पर कथा सुनकर गये ही थे कि तभी रामेश्वर अपनी बहिन तथा उसके परिवार को लेकर पाटलिपुत्र आ गया।

पण्डित शिवकुमार उस समय भोजनालय में अल्पाहार कर रहा था। जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहस्पति दौड़ा-दौड़ा भीतर गया और अपने पिता के चरणस्पर्श करने लगा।

शिवकुमार समझ गया कि उसका परिवार आ गया है। अतः वह उठकर बाहर आ गया। परस्पर प्रणाम और कुल समाचारोपरान्त रथ से सामान उतरवाया गया। तदनन्तर स्नानादि की व्यवस्था हुई।

जबतक महामात्य की पत्नी और बच्चे स्नान करते रहे, पण्डित शिवकुमार अपने शयलक रामेश्वर को पाटलिपुत्र की स्थिति से अवगत कराता रहा। उसने कहा, "जब से भृगुदत्त गया है, मुझे लगता है मेरा एक हाथ कट गया है। तदपि मैं यत्न करता रहता हूँ कि राज-प्रासाद के भीतर की गतिविधियों का ज्ञान प्राप्त होता रहे। मेरे अधीन गुप्तचर विभाग का एक अंग कार्य करता है। मैं उसका उपयोग करता हूँ। जो कुछ भी अबतक विदित हुआ है मैं उससे आश्वस्त नहीं हूँ।"

"तब आप यह सब छोड़कर वापस क्यों नहीं चले आये ?"

"यहाँ के ब्राह्मणों की पुकार की मैं अवहेलना नहीं कर पा रहा। जब ब्राह्मण महिलाओं और कन्याओं ने आँचल फैला-फैलाकर मुझसे याचना की तो मैं अस्वीकार नहीं कर सका। तदपि मेरी स्थिति यहाँ सन्तोषजनक नहीं है। मैं यत्न कर रहा हूँ कि स्थिति को अपने वश में कर लूँ।

"अभी तक तो यही विदित हुआ है कि मेरे यहाँ रह जाने से राजकुमार सन्तुष्ट नहीं है। परन्तु क्योंकि वह राज-प्रासाद में ही रहता है और उसकी माँ का उसपर अंकुश भी है, इस कारण वह इतनी चिन्ता का विषय नहीं है। उधर रामगुप्त और उसकी माता कभी भी और किसी भी समय उपद्रव कर सकते हैं।

"मैंने महारानीजी को कहा था कि राजकुमार चन्द्र को भी कथा सुनने के लिए लाया करिये। कदाचित् महारानी ने यत्न भी किया है किन्तु उनको सफलता नहीं मिली है। राजकुमार की अधिक रुचि साहित्यिक गोष्ठी में है। उस गोष्ठी वालों से मेरा मतभेद रहा है।

"तदपि मैं सतर्क हूँ और अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध कर रहा हूँ।"

रामेश्वर ने बात बदलकर कहा, "मैं अपने यजमान भीमपाल से महाराज के लिए कुछ भेंट लाया हूँ। वह मैं महाराज को देना चाहता हूँ।"

"कल प्रातःकाल कथा के उपरान्त मैं महाराज से तुम्हारा परिचय करा दूंगा। उस समय तुम उनसे इस सम्बन्ध में बात कर लेना। तब जैसा वे कहेंगे तदनुसार करना ही उचित होगा।"

रात्रि को जब विश्राम करने लगे तो चन्द्रमुखी ने अपने पति से कहा, "मैं आपके यहाँ रहने पर सन्तुष्ट नहीं हूँ।"

"वह इस कारण कि मानव जीवन पूर्ण नहीं है। इसकी उपलब्धि से प्राणियों को कभी भी सन्तोष नहीं हो सकता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु आपको तो मैं श्रेष्ठ मानव मानती हूँ, आप किस प्रकार इस परिस्थिति पर सन्तुष्ट हैं।

"यह तुम्हें किसने बताया कि मैं यहाँ सन्तोष का जीवन जी रहा हूँ। परन्तु मेरे कर्मफलों से जिस योग्यता को परमात्मा ने मुझमें निर्माण किया है उसका प्रयोग भी तो करना ही है। उसका सन्तोष अथवा असन्तोष से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं है ?"

"देवी ! मैं तो अपने कर्मफलों को भोगता हुआ यहाँ पड़ा हुआ हूँ।"

"मुझे तो आपके लिए यहाँ भय प्रतीत होता है। जब मैं वहाँ से चलने लगी थी तो पिताजी ने मुझे पृथक् में समझाया था कि मैं आपको किसी प्रकार इस मूर्खों के जंगल से निकालकर शीघ्र ही किसी ऐसे स्थान पर ले चलूँ कि जहाँ सभ्यता का वास हो।"

"उनका सुझाव गलत नहीं है। इसके लिए यत्न करना चाहिए। मैं भी यत्नशील हूँ।"

इससे स्पष्ट था कि शिवकुमार का परिवार तथा उसके सम्बन्धी उसके पाटलिपुत्र में रहने पर सन्तुष्ट और प्रसन्न नहीं थे।

अगले दिन दो मास बाद शिवकुमार के निवास पर देवयज्ञ की अग्नि प्रज्वलित हुई। जब महाराज और महारानी कथा सुनने के लिए आये तो पुरोहितजी का परिवार यज्ञवेदी पर विराजमान था। महारानी को चन्द्रमुखी से मिल कर अति प्रसन्नता हुई।

शिवकुमार ने रामेश्वर का परिचय कराते हुए बता दिया कि वह हस्तिनापुर के आयुक्त का पुरोहित है।

रामेश्वर ने महाराज से कहा, "महाराज ! राजा साहब ने मेरे द्वारा आपके लिए एक वस्तु भेंटस्वरूप भेजी है।"

"क्या है वह ?"

"वह पेटिका में बन्द है। राजा साहब का कहना था कि उसको ले जाने में सावधानी बरतनी होगा। हमने उसे खोलकर नहीं देखा है।"

महाराज बोले, "मध्याह्न-पूर्व उसे लेकर प्रासाद में पहुँच जाइयेगा।"

मध्याह्न-पूर्व जब रामेश्वर ने राज-प्रासाद जाने के लिए रथ माँगा तो बृहस्पति भी अपने मामा के साथ जाने का आग्रह करने लगा। शिवकुमार ने रथ ले जाने की अनुमति दे दी।

बृहस्पति ने कहा, "पिताजी ! कल मैं राजकीय पुस्तकालय में गया था। मैं एक पुस्तक निकालकर पढ़ने बैठा ही था कि पुस्तकाध्यक्ष मेरे पास आकर कहने लगा, 'बृहस्पतिजी ! आप लोग फिर यहाँ आ गये हैं ?'

"मैंने पूछा, 'क्या हमें नहीं आना चाहिए था ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

" 'मैं समझता था कि आप लोग अब इस नगर में नहीं आयेंगे। दो बार आप यहाँ से भागे हैं। दोनों बार आप लोगों की हत्या का यत्न किया गया था किन्तु आप बच गये। यह स्थान आप लोगों के अनुकुल नहीं है।' बड़ी गम्भीरता से उसने कहा।"

प्रत्यक्ष में तो शिवकुमार ने वृहस्पति की बात को अनसुनी कर दिया और रामेश्वर से कहने लगा, "रथवान को कह देना कि वह वहाँ आप लोगों की प्रतीक्षा में खड़ा रहे।"

इस प्रकार वृहस्पति को साथ लिये रामेश्वर महाराज के प्रासाद में भीमपाल की भेंट पहुँचाने के लिए चला गया। भीतर सूचना भेजने पर दो प्रतिहारी आये और रथ पर से भेंट की पेटिका उठाकर ले गये और उन दोनों को भी भीतर चलने के लिए कहा।

महाराज और महारानी अपनी बैठक में भीमपाल द्वारा भेजी गयी भेंट को देखने के लिए उत्सकु थे। पेटिका को मध्य में रखा गया।

महारानी ने जब वृहस्पति को साथ आया देखा तो उसे प्रसन्नता हुई। उसने वृहस्पति को अपने समीप कुछ निम्न आसन पर बैठाकर प्रतिहारी को पेटिका खोलने का आदेश दिया।

रामेश्वर को भी उचित स्थान दिया गया। सब उत्सुकता से पेटिका में से निकलने वाली वस्तु को देखने के लिए लालायित थे। वह हाथीदाँत की बनी कोई मूर्ति थी। यह गंगाद्वार के घाट की सुन्दर प्रतिकृति थी।

उस भव्य मूर्ति को देखने के लिए महाराज और महारानी अपने आसन से उठ कर मध्य में आ गये। उनके पीछे ही वृहस्पति और रामेश्वर भी खड़े थे। सहसा महारानी ने वृहस्पति से पूछा, "यह क्या है जानते हो ?"

"महारानीजी! यह स्थान तो देखा-भाला प्रतीत होता है। परन्तु स्मरण नहीं आ रहा है।"

महारानी ने एक क्षण तक वृहस्पति के मुख पर देखकर विचार किया और फिर बोली, "अच्छा देखो, तुम और तुम्हारे मामा हमारे साथ ही भोजन करेंगे। और तबतक तुमको स्मरण हो आयेगा कि यह कहाँ की प्रतिकृति है, फिर तुम हमें बताना।"

महारानी समझ गयी थी कि वृहस्पति अपने किसी पूर्वजन्म की बात कर रहा है। महाराज ने प्रतिहारी को आज्ञा दी, "इसको सावधानी से उठाकर अन्तः पुर की बैठक में पहुँचा दो।"

तदुपरान्त चारों भोजन के लिए भोजनालय चले गये। भोजन तैयार था, अतः जाते ही भोजन करने लगे। भोजन करते हुए महाराज ने रामेश्वर से भीमपाल के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न पूछे। जब भीमपाल की बात समाप्त हुई तो उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरोहित के घर की बात होने लगी। अर्थात् रामेश्वर क्या पढ़ा हुआ है अथवा उसके पिता पण्डित ईश्वरकृष्ण क्या पढ़े हैं, आदि-आदि।

भोजन समाप्त होने पर महारानीजी वृहस्पति को लेकर अपने अन्तःपुर में चली गईं। महाराज अपने विश्राम कक्ष में चले गये तो रामेश्वर प्रतीक्षालय में बैठा वृहस्पति के लौटने की प्रतीक्षा करता रहा।

तृतीय प्रहर समाप्त होने पर वृहस्पति बाहर आया और अपने मामा से बोला, "मामाजी! आपको बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ी। किन्तु क्या करूँ, जब बात आरम्भ हुई तो वह समाप्त ही नहीं होने पायी।"

दोनों अपने घर जाने के लिए द्वार की ओर चल पड़े। प्रतिहारी भी उनके साथ था। रथ में सवार होने पर मामा ने अपने भानजे से पूछा, "महारानी जी क्या पूछ रही थीं?"

"मामाजी! घर चलकर माताजी के सम्मुख ही बताऊँगा।"

रामेश्वर इसका अभिप्राय नहीं समझ सका। तदपि वह चुप ही रहा। जब वे घर पहुँचे तो तबतक चौथे प्रहर के अल्पाहार का समय हो गया था। महामात्य इस समय महाराज से मिलने के लिए राज-प्रासाद की बैठक में जाया करते थे और वहाँ से सायंकाल दीपक जले वापस लौटते थे। वे वहीं अल्पाहार कर लिया करते थे।

चतुर्थ प्रहर का जब अल्पाहार आरम्भ हुआ तो रामेश्वर ने भीमपाल द्वारा महाराज को भेजी गयी भेंट के विषय में बताया। उसके बाद वृहस्पति ने अपना अनुभव बताते हुए कहा, "माताजी! मैंने उस मूर्ति को देखा तो मुझे लगा कि मैंने उस स्थान को देखा है। महारानी जी ने जब उसके सम्बन्ध में पूछा तो मैंने बता दिया कि कुछ स्मरण तो आ रहा है किन्तु ठीक समझ नहीं पा रहा हूँ।

"भोजनोपरान्त महारानीजी मुझे अन्तःपुर में ले गयीं। तबतक उस मूर्ति को वहाँ की बैठकघर में एक ऊँची चौकी पर स्थापित कर दिया गया था। महारानी जी ने उस मूर्ति के सामने दो चौकियाँ रखवायीं, एक पर वह स्वयं बैठ गईं और दूसरी पर मुझे बैठाया। राजप्रासाद की कुछ अन्य महिलायें भी हमारे पीछे आकर खड़ी हो गयी थीं। महारानीजी बोलीं, 'हाँ वृहस्पति! अब बताओ तुमने इस मूर्ति को कहाँ और कब देखा है तथा यह क्या है?'

"मैंने आँखें मूंदीं और मेरे सम्मुख अतीत की स्मृति स्पष्ट होने लगी। मैं धीरे-धीरे बताने लगा। मैंने देखा कि मैं सर्वथा निर्वसन अपने पिता महर्षि व्यास के साथ अपने आश्रम से चलकर गंगा किनारे चला जा रहा हूँ। मुझे आता देखकर मार्ग पर मिलने वाले अनेक तो मुझे प्रणाम करते थे और कुछ ऐसे भी थे जो साष्टांग दण्डवत भी करते थे।

"जो भी स्त्री अथवा पुरुष मार्ग में मिलता था, मुझको देखकर प्रणाम करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। यद्यपि में निर्वसन था तदपि मुझे अपनी इस अवस्था का ज्ञान नहीं था। अब मैं जब उस नग्नावस्था पर विचार करता हूँ तो मुझे विस्मय होता है कि मेरी ऐसी स्थिति पर किसी को किसी प्रकार का संकोच क्यों नहीं होता था।

"आज तो मुझे अपनी उस अवस्था पर लज्जा आती है।"

रामेश्वर, चन्द्रमुखी और सूर्य तीनों ही ध्यान से वृहस्पति की बात को सुन रहे थे। वृहस्पति कह रहा था, "मैं गंगा द्वार की ओर जा रहा था। दो दिन की पद-यात्रा के बाद जब मैं गंगा द्वार पर पहुँचा तो मुझे कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि मेरे वहाँ पहुँचने से पूर्व सहस्रों नर-नारियों की भीड़ घाट पर एकत्रित हो गई थी। मेरे पहुँचने पर जब लोगों ने जयघोष करना आरम्भ किया तो मैं समझा कि मेरे दर्शन करने के लिए ही वे लोग वहाँ पर एकत्रित हुए हैं। गगनभेदी स्वर से लोग जयघोष कर रहे थे, महात्मा शुकदेव महाराज की जय!

"मैंने स्नान किया। फिर धूप में खड़े होकर शरीर को सुखाया। तदनन्तर मुझे एक उच्चासन पर बैठाया गया और फिर मैंने लोगों को उपदेश दिया। गंगाघाट की सीढ़ियाँ, घाट के ऊपर मकानों के छज्जों और छतों पर लोग शान्त और मौन बैठ मेरे उपदेश को सुन रहे थे। मैंने कदाचित् कुछ ऐसा कहा था—यह पूर्ण जगत् एक है। इसमें निवास करने वाले जड़-चेतन, चराचर सब उस परब्रह्म का ही रूप हैं। एक ब्रह्म ही सब स्थान पर व्याप्त है। एक ब्रह्म ही है, दूसरा कोई नहीं।

"एक घड़ी-भर मैं वहाँ प्रवचन करता रहा। वे सहस्रों नर-नारी मुझ नंग-धड़ंग को मन्त्रमुग्ध की भाँति सुनते रहे। जब मैं अपना प्रवचन समाप्त कर पुनः ऊपर व्यास-आश्रम की ओर चला तो एक व्यक्ति मेरे साथ चल पड़ा। कुछ दूर तक तो कुछ अन्य लोग भी मेरे पीछे-पीछे आते रहे। परन्तु ज्यों-ज्यों मैं चलता गया, भीड़ कम होती गयी। इस प्रकार एक घड़ी-भर चलने के बाद केवल एक ही व्यक्ति मेरे साथ था। मैं अपने ध्यान में चला जा रहा था कि साथ चलने वाला व्यक्ति कह रहा था, 'भगवन्! आपके पिता ने तो अपने ग्रन्थ में कुछ और ही लिखा है!'

"यह सुनकर मेरा ध्यान भंग हुआ। मैंने साथ चलने वाले व्यक्ति की ओर देखा। मैं उसे देखकर चकित रह गया। वह मेरे इस जन्म के पिता समुद्रगुप्त के महामात्य से दिखाई दिये। मेरे मन में विभ्रम होने लगा। मैं विचार कर रहा था कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ अथवा कि अपने भूतकाल को। इसी समय पिताजी का कलेवर बदला और वह कोई प्राचीनकाल के जटा-जूटधारी ऋषि दिखायी देने लगे।

"मेरे मुख से निकल गया, 'आप कौन हैं?'

"वे मुस्कराये और बोले, 'पहचाना नहीं?'

"मैं उनको ध्यान से देखकर पहचानने का यत्न कर रहा था कि सहसा वे बोल पड़े—'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धयानादी उभावपि।
विकांराशच गुणांश्चैव विद्धि प्रकृति संभवान् ।।
कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ।।
पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ।।
उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चायुप्क्तो देहे स्मिन्पुरुषः परः ।।

"माताजी! मैं उन ऋषितुल्य साथ चलने वाले महानुभाव को देखने लगा तो वे वहाँ पर थे ही नहीं। मैं स्वेद से लथपथ महारानी के समीप चौकी पर बैठा, देख संकोच अनुभव कर रहा था।

"महारानीजी हँसीं तो उनके पीछे खड़ी अन्य महिलायें भी हँस पड़ीं। मैंने सामने की मूर्ति की ओर देखा तो वह सर्वथा वही थी जो मैं अपनी समाधिस्थ अवस्था में देख रहा था। घाट के मकानों में कुछ अन्तर था। परन्तु वह इतना नहीं था कि उनको पहचाना ही नहीं जा सके।

"महारानी ने पूछा, 'तो यह गंगा द्वार के घाट की मूर्ति है?'

"हाँ महारानीजी!

"तभी प्रासाद के ऊपर टँगे घड़ियाल ने तृतीय प्रहर और पाँच घटी का समय बताया तो महारानीजी उठीं और बोलीं, 'वृहस्पति! तुम अब जाओ, कल कथा के समय कुछ और पूछूंगी।'

"महारानी जी की एक दासी मुझे प्रतीक्षागृह में ले गयी। मामाजी मेरी प्रतीक्षा करते-करते थक गये थे।"

"तुम महात्मा शुक भी हो?" मुस्कराते हुए चन्द्रमुखी ने पूछा।

"माताजी! मेरा तो मस्तिष्क चकरा रहा है। मैं समझ नहीं पा रहा कि मैं क्या हूँ।"

अल्पाहार समाप्त हुआ और फिर सब अपने-अपने कार्य पर लग गये।

: ७ :

रामेश्वर पाटलिपुत्र में एक सप्ताह तक रहा। उसने वहाँ के सब दर्शनीय स्थल और मन्दिर आदि देख लिये। सबसे भव्य मन्दिर था महातमा बुद्ध का। चार हाथ ऊँची महात्मा बुद्ध की प्रतिमा थी। उसमें महात्मा बुद्ध आलथी-पालथी मारे बैठे थे। यह संगमरमर की बनी हुई थी। उसे संगमरमर के चबूतरे पर ही स्थापित किया गया था।

यद्यपि बौद्ध राज्य के दिनों में वैदिक धर्म और उसके अनुयायियों को दीन-हीन करने का भरसक यत्न किया गया था, तदपि जब तथाकथित वैदिक धर्मा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नुयायियों का राज्य आया तो उनको हीन कहने वाले महात्मा बुद्ध के मन्दिर में ही जाते थे और वहाँ चढ़ावा चढ़ाया करते थे। उस मन्दिर के पुजारी भी वैदिक धर्मानुयायी ही थे। वे ब्राह्मण थे। उन्होंने महात्मा बुद्ध को भी अपने अवतारों की पंक्ति में ला बैठाया था।

एक दिन वृहस्पति राजकीय पुस्तकालय के अध्यक्ष पण्डित काकभुशुण्ड से अपने पिता के नाम एक पत्र लाया। रामेश्वर तब तक पाटलिपुत्र में ही था। रात को खाना खाते समय वृहस्पति ने अपने पिता को वह सन्देश दिया। उसने कहा, "पिताजी! राजकीय पुस्तकालय के अध्यक्ष कहते थे कि वे आपसे पृथक् में मिलकर कुछ आवश्यक बात करना चाहते हैं।"

महामात्य ने यह बात अनसुनी कर दी। तदपि वह विचार कर रहा था कि उस व्यक्ति से बात तो पृथक् में हो सकती है परन्तु भेंट गुप्त रूप में होना बड़ा कठिन है। जिस समय वह महामात्य भवन में मिलने के लिए आयेगा तो वहाँ सभी को यह विदित हो जायेगा। शिवकुमार ने गम्भीरता से इस विषय पर विचार किया और फिर अपने मन में एक योजना बना ली।

महामात्य ने राजकीय पुस्तकालय के अध्यक्ष को लिखा कि उसके पुस्तकालय में न्यायदर्शन की जितनी भी प्रतिलिपियाँ हों उनको लेकर वह उनके कार्यालय में उपस्थित हों।

पुस्तकाध्यक्ष के अधीन बीस उपाध्यक्ष थे। उसने अपने एक उपाध्यक्ष को बुलाकर कहा कि वह न्यायदर्शन की सारी प्रतियाँ लेकर महामात्य के सम्मुख उपस्थित हो जाय।

पुस्तकाध्यक्ष काकभुशुण्ड जानता था कि वह महामात्य के सम्मुख जाने से डरेगा। इसी कारण उसने उसे भेजने की बात कही थी। जैसा उसने समझा था वैसा ही हुआ भी। वह उपाध्यक्ष बोला, "श्रीमन्! यह पत्र तो आपके नाम है, अतः आपको ही वहाँ जाना चाहिए।"

"मैं तुम्हें भेज रहा हूँ। इसलिए मैं ही गया समझा जाऊँगा।"

"मुझे तो महामात्य से भय अनुभव होता है।"

"भय किस बात का?"

"यह सर्वप्रसिद्ध है कि वह मनुष्य का मुख देखते ही उसके मन की बात जान जाते हैं।"

"तो तुम्हारे मन में कुछ उनके विरुद्ध है?"

"मैं उनको नास्तिक और ब्राह्मणादि ग्रन्थों का विरोधी मानता हूँ।"

"यही सही। परन्तु वह तुम्हारे मन की बात किस प्रकार जान पायेगा?"

"पण्डितजी! आप क्यों नहीं जाते? आपको वहाँ जाने में क्या डर है?"

"मुझे तो कोई डर नहीं है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो आप ही जाइये ।"

पण्डित काकभुशुण्ड यही चाहता था। वह समझ रहा था कि उसके द्वारा भेजे गये सन्देश ही की यह प्रतिक्रिया है कि महामात्य ने उसको बुलवाया है ।

तदनुसार पुस्तकें लेकर पुस्तकाध्यक्ष महामात्य के कार्यालय में जा पहुँचा । महामात्य पुस्तकों के साथ ही उसको एक पृथक् आगार में ले जाकर बैठ गये । वहाँ आधा प्रहर तक उनमें परस्पर वार्त्तालाप होता रहा । तदन्तर पण्डित काकभुशुण्ड न्यायभाष्य की पाँचों प्रतियाँ वहाँ छोड़कर अपने पुस्तकालय लौट आया ।

इस प्रकार उन दोनों की भेंट तो प्रत्यक्ष में किसी नियमित कार्य से हुई किन्तु उन दोनों में परस्पर वार्त्तालाप गुप्त ही रहा । तदपि काकभुशुण्ड को जिस बात का भय था वह हुई ही। उसी दिन सायंकाल राजकुमार चन्द्रगुप्त उसे पूछने आया कि वह महामात्य से मिलने किस कारण गया था ?

काकभुशुण्ड ने उसके उत्तर में कहा, "महामात्य ने न्यायदर्शन पर विभिन्न भाष्यकारों के भाष्य मँगवाये थे ।"

"आपने यह जानने का यत्न किया कि वे किस प्रयोजन से मँगवाये थे ?"

"जी हाँ । उनका कहना है कि उनको विदित हुआ है कि कुछ बौद्ध भाष्यकारों ने भाष्य करते हुए कुछ मूल में भी परिवर्तन कर दिया है ।"

"तो उससे इसका क्या प्रयोजन है ?"

"उनका कहना है कि यह राज्य का कर्तव्य है कि कोई दुकानदार ग्राहक को शुद्ध वस्तु दे । मिलावट वाला माल दिया जाना अपराध है । यह दण्डनीय है ।"

"साहित्य गेहूँ, चना नहीं है । इसमें मिलावट को देखने का अधिकार राज्य को नहीं है ।"

"श्रीमान्जी ! आप ठीक कहते हैं । मिलावट की परख करने का अधिकार तो राज्य को नहीं है । मैंने जब उनसे कहा तो उन्होंने कहा था कि वे विद्वत्परिषद् से इसकी परीक्षा करवायेंगे । उसके बाद ही वे राज्य द्वारा घोषणा करवायेंगे कि यथार्थ प्रति कौन-सी है । उनका यह भी कहना था कि वह किसी थी प्रति को विनष्ट नहीं करेंगे । परन्तु प्रत्येक पुस्तक पर वे विद्वत्परिषद् से लिखवा लेंगे कि वे उसके किस-किस भाग को और क्यों प्रक्षिप्त मानते हैं ।"

राजकुमार को आवेश आ गया । उसने कहा, "हम समझते हैं कि यह कार्य राज्य का नहीं है । यदि राज्य ने इसमें हस्तक्षेप किया तो यह उसका अनधिकृत हस्तक्षेप माना जायेगा ।"

पण्डित काकभुशुण्ड राजकुमार से विवाद करना नहीं चाहता था। उसने कहा, "आप महाराज से कहकर इसको रुकवा दीजिये, यही उचित होगा ।"

राजकुमार का विचार था कि महामात्य ने कदाचित् उन दिनों साहित्य-गोष्ठियों के विषय में पूछताछ की होगी । किन्तु उस दिशा में राजकुमार को कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकेत नहीं मिला।

राजकुमार ने यह विषय महाराज के सम्मुख प्रस्तुत किया। उसका कहना था कि महामात्य इस प्रकार देश के साहित्य के साथ अनाचार कर रहा है।

महाराज बोले, "हम कल कथा के समय उनसे इस विषय में बात करेंगे। अच्छा तो यही होगा कि तुम स्वयं चलकर बात कर लो।"

"वह राज-परिवार का घोर विरोधी है, मैं उससे बात तक करना नहीं चाहता।"

अगले दिन कथा के उपरान्त अल्पाहार कहते हुए महाराज ने न्यायदर्शन की बात चलाते हुए पूछा, "पण्डितजी ! सुना है आपने न्यायदर्शन के भाष्य की कुछ प्रतियों को प्रक्षिप्त घोषित करने का विचार किया है ?"

शिवकुमार समझ गया कि उसकी गतिविधि पर दृष्टि गढ़ायी जा रही है। वह सतर्क हो गया। उसने कहा, "महाराज ! महामात्य को यह करने का अधिकार नहीं है। विद्वत्परिषद् तो इस प्रकार की जाँच कर सकती है। हाँ, विद्वत्परिषद् की सिफारिश पर राज्य अपराधी को दण्ड दे सकता है।"

"दण्ड कौन देगा ?"

"राज्य का मुख्य न्यायाधीश।"

"वह राज्य का अंग नहीं है क्या ?"

"नहीं महाराज ! वह राज्य का अंग नहीं है। यदि मैं कहूँ कि वह अपने कार्य-क्षेत्र में राज्य और राज-परिवार से भी ऊपर है तो अनुचित न होगा।"

"वह राज्य का वेतनभोगी है ?"

"तदपि वह राज्य के अधीन नहीं है। वह राज-परिवार के किसी भी घटक को राज्य के नियमों का विरोध करने के अपराध में दण्ड दे सकता है।"

"और हम अपराधी को क्षमा कर सकते हैं।"

"वह तो आप राज-परिवार के ही क्यों किसी भी सामान्य अपराधी को भी क्षमा कर सकते हैं। आपका वह अधिकार सबके लिए समान है। परन्तु जहाँ तक न्यायाधीश के अधिकार की परिधि है वह दण्ड दे सकता है।"

इतना कहने के बाद शिवकुमार ने एक क्षण आँख मूंदकर विचार किया और फिर कहा, "महाराज ! एक बात में तो वह राज्य के सर्वोच्च अधिकारी महामात्य से भी विलक्षण है। वह अपने पद से त्याग-पत्र देकर बिना उसे स्वीकार कराये उससे स्वयं ही पृथक् हो सकता है। जबकि महामात्य तबतक अपने पद को नहीं छोड़ सकता जबतक कि उसका त्याग-पत्र स्वीकार न कर लिया जाय।"

शिवकुमार के इस विवेचन से महाराज को भृगुदत्त और शिवकुमार की बात स्मरण हो आयी। शिवकुमार ने त्याग-पत्र दिया था किन्तु वह राजधानी से जा नहीं पाया था। क्योंकि उसका त्याग-पत्र विचाराधीन था। परन्तु भृगुदत्त तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्याग-पत्र देते ही पाटलिपुत्र से कूच कर गया था।

यह विचार कर महाराज निरुत्तर हो चुप रहे। वह समझ गया कि जब न्याय-दर्शन का विषय विद्वत्परिषद् के सम्मुख आयेगा उस समय वह राजकुमार को पण्डित विभूतिचरण से मिला देगा। तदपि वह सोच रहा था कि उसका राजकुमार इस ग्रन्थ के विषय में क्या जानता है? वह कुछ समझ नहीं सका।

शिवकुमार समझ गया कि राजकुमार ने अथवा पुस्तकालय के किसी व्यक्ति ने पुस्तकाध्यक्ष से उसकी भेंट की बात को कुछ ऊहापोह के साथ महाराज को कहा है। तदपि उसे इस बात का सन्तोष था कि पुस्तकाध्यक्ष से जो उसकी वास्तविक बात हुई थी उसका अभी तक महाराज से किसीने ने उल्लेख नहीं किया है। इसका यही अर्थ था कि महाराज को वह बात अभी विदित नहीं है।"

उस दिन जब महाराज और महारानी चले गये तो शिवकुमार ने रामेश्वर से कहा, "रामेश्वर भैया! तुम गाँव जा रहे हो। पिताजी से कहना कि चन्द्रमुखी के वहाँ रहते मेरे मकान की जो मरम्मत आदि आरम्भ हुई थी उसे पूर्ण करा दें। चन्द्रमुखी शीघ्र ही वहाँ रहने के लिए आने वाली है।

चन्द्रमुखी समीप बैठी थी। उसने भी बात को सुना तो कहने लगी, "परन्तु इस बार तो मैं आपके बिना वहाँ नहीं जाऊँगी।"

"इसका अर्थ तो यह हुआ कि तुम भी मेरी ही भाँति राज्य की सेवा में निरत हो?"

"आपकी अर्द्धांगिनी होने के नाते कुछ तो मैं भी हूँ ही।"

"नहीं देवी! मैं ऐसा नहीं मानता। इस संसार में तुम्हारा कार्य मेरे कार्य से भिन्न प्रकार का है। इस कारण दोनों को एक डोर से बाँधकर रखना उचित नहीं।"

"क्या भेद है, हम दोनों के कर्तव्यों में?"

"एक तो इन बच्चों के पालन और संरक्षण का भार तुमपर है। इन बच्चों में मानव जाति की सर्वोत्कृष्ट विभूति वृहस्पति भी है। शुक देवजी का यह अवतार उनसे उन्नतावस्था में हमारे घर में जन्म लेकर परमात्मा के किसी आयोजन को ही पूर्ण करना चाहेगा।

"पुरुष होने के नाते मैं भाग-दौड़ कर सकता हूँ। तुम बच्चों सहित होने से भाग-दौड़ करने में असमर्थ हो। इसलिए तुम्हें अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए मुझसे स्वतन्त्र होकर ही विचार करना चाहिए।

"परमात्मा के किसी विधान के अनुसार मेरे कुछ सार्वजनिक कर्तव्य हैं। मैं उनका पालन करने के लिए यहाँ पर बँधा हुआ हूँ।"

यह सुनकर चन्द्रमुखी को चुप रहना पड़ा।

रामेश्वर चला गया। उसके बाद प्रत्यक्ष रूप में तो दिन सामान्य ही बीत रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। एक दिन भोजन के समय शिव ने अपने पुत्र से कहा, "तो तुम महात्मा शुक भी हो?"

"पिताजी! यदि मैं वास्तव में ही शुक था तो आप उस जन्म में भी मेरे पिता कृष्ण द्वैपायन व्यास थे।"

"परन्तु मैं तो स्वयं को उन ऋषितुल्य महानुभाव से कुछ उन्नत अवस्था में ही मानता हूँ।"

"परन्तु पिताजी! मैं स्वयं को उनके पुत्र से कुछ भिन्न ही मानता हूँ। मैं विस्मय करता हूँ कि वह नग्न किसलिए घूमता था।"

"पुराण में कहा गया है कि वह स्वयं को प्रकृति समान ही मानता था। जिस प्रकार यह सामने रखी चौकी के लिए किसी प्रकार के वस्त्रादिक की आवश्यकता नहीं है वैसे ही वह स्वयं को समझता था।"

"परन्तु पिताजी! उस चौकी पर भी तो कभी-कभी कपड़ा बिछाने की आवश्यकता होती है। इसपर कपड़ा अथवा इस तन पर कपड़ा किसी दूसरे को देखने-दिखाने के लिए नहीं होता वरन् यह आवश्यकता तो चौकी के लिए अथवा तन के लिए होती है। मैं तो यह समझता हूँ कि मैं अपने शरीर की रक्षा के लिए वस्त्र पहनता हूँ। इसी प्रकार यदि कभी उस चौकी पर वस्त्र बिछाया जाता है तो उस चौकी की रक्षा के लिए ही बिछाया जाता है।"

"शुकजी महाराज इसकी आवश्यकता नहीं समझते थे।"

"तो क्या उनके शरीर में शीतोष्ण का प्रभाव नहीं होता था?"

"यही अनुमान किया जा सकता है।"

"तब तो मैं समझता हूँ कि मेरा शरीर उनसे श्रेष्ठ है। इसमें संवेदनात्मक शक्ति है।"

"यह विषय विवाद का है। एक दृष्टिकोण यह भी है कि शरीर के कष्टों को सहन करना गुण है। दूसरा दृष्टिकोण है कि इससे इन्द्रियाँ और मन मर जाता है। परिणामस्परूप मनुष्य में ज्ञानार्जन की शक्ति कम हो जाती है। इन्द्रियाँ और मन ही तो ज्ञान के स्रोत हैं।

"परन्तु वृहस्पति! प्रथम दृष्टि के लोग यह कहते हैं कि मन जो इन्द्रियों द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है वह मिथ्या है। वास्तविक ज्ञान तो अन्तःचक्षुओं द्वारा प्राप्त किया जाता है। वे तो कहते हैं कि जीवात्मा माया के जाल में फँसा हुआ परमात्मा ही है। वह जब प्रकृति की वेदना-संवेदना से ऊपर हो जाता है तो वह परमात्मा के समीप हो जाता है।"

"परन्तु पिताजी! यह वाक्‌जाल नहीं है क्या?"

शिवकुमार हँस पड़ा और बोला, "तुम ठीक कहते हो। यही कारण है कि मेरी दृष्टि में तुम तपस्या और ज्ञान में महात्मा शुक से बढ़ गये हो। तुमको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि पूर्वापेक्षा उन्नत मिले हैं। इससे ही मैं समझता हूँ कि तुम्हारा जीवात्मा भी उन्नत हुआ है। जिस जीवात्मा के कारण उन्नत हैं उसका ज्ञान भी श्रेष्ठ ही होना चाहिए।"

इस समय शिवकुमार के मन में एक अन्य बात आयी। उसने बृहस्पति से पूछा, "तुम आजकल किस ग्रन्थ का अध्ययन कर रहे हो?"

"पिताजी! शतपथ ब्राह्मण का अध्ययन कर रहा हूँ।"

"जब इसका अध्ययन कर लो तो मुझे बताना। मैं समझता हूँ कि अब तुम्हें वेदाध्ययन के लिए काशी भेज देना चाहिए।"

"शतपथ ब्राह्मण समाप्त करते ही मैं आपको बताऊँगा।"

चन्द्रमुखी को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि इस प्रकार उसका पति उसके कन्धों का भार हलका कर रहा है।

इसी प्रकार दिन बीत रहे थे। महामात्य के विशेष गुप्तचर विभाग ने यह तो बताया था कि विशाखदत्त की गोष्ठियाँ आजकल पुस्तकालय भवन के कक्ष में होने लगी हैं। उनमें विद्वत्परिषद् के कुछ सदस्य भी भाग लेते हैं। इससे यह स्पष्ट हो गया था कि साहित्य सभा की गोष्ठियाँ किसी अन्य गतिविधि पर आवरण डालने के लिए हो रही थीं। किस गतिविधि पर आवरण डालने के लिए प्रयत्न हो रहा है उस मूल का पता नहीं चल पाया था।

इन्हीं दिनों सहसा राजकुमार विक्रम अपने माता-पिता के साथ कथा सुनने के लिए शिवकुमार के पास आने लगा। वह अपने माता-पिता के साथ ही आता था और उनके साथ ही वापस भी चला जाता था। तदपि कथा के समय वह मौन श्रोता के रूप में ही बैठता था। महाराज अथवा महारानी तो समय-समय पर अपने संशयों का निवारण कराते रहते थे।

एक दिन शिवकुमार ने राजकुमार से पूछा, "राजकुमार! तुम्हें कथा पर आते हुए कई दिन हो गये हैं। तुम सुनते भी रहते हो परन्तु तुम्हारे मन में कभी कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं हुआ? क्या तुम्हें कभी किसी प्रकार का संशय नहीं होता?"

राजकुमार ने मुस्कराते हुए कहा, "मैं तो सारी महाभारत को ही काल्पनिक मानता हूँ। ये कथा आज से तीन सहस्र वर्ष पूर्व लिखी गयी थी। उस समय की परिस्थिति से आज की परिस्थिति सर्वथा भिन्न है। इसलिए आज इसे सुनने का कोई लाभ नहीं है।"

"हाँ, तुम्हारे कथन में कुछ तो सत्य है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसको लिखे तीन सहस्र वर्ष बीत गये हैं। परन्तु जब कोई कथा कही जाती है तब उसके कहने का यदि उद्देश्य विदित हो जाय तो प्रायः वह असत्य भी सत्य ही प्रतीत होगा। उसका कारण यह है कि कार्य की प्रवृत्ति में कारण तो मानव शरीर, मन, इन्द्रियाँ और बुद्धि ही होते हैं। और काल व्यतीत होने पर भी इनमें किसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का परिवर्तन नहीं हुआ है।"

"नहीं पण्डितजी ! मुझे तो इनमें भी परिवर्तन अनुभव होता है। छोटे-छोटे राज्यों से हटकर बड़े-बड़े साम्राज्य बन जाने से इन्द्रियों से जो ज्ञान तब प्राप्त होता था वह आज नहीं। हमारे आस-पास सब वातावरण ही बदल गया है। अतः ज्ञान से जो किसी घटना का कारण हो सकता है, वह ही बदल गया है। इस कारण जो निष्कर्ष किसी प्रकार की घटनाओं से इस ग्रन्थकार ने निकाले हैं वे आज सत्य नहीं भी हो सकते।"

"राजकुमार ! ऐसा नहीं है। कर्म को चाहे कोई अकेला करे अथवा बहुत-से लोग मिलकर करें उसका स्रोत एक ही है। यह स्रोत मनुष्य प्राणी में विद्यमान है। आदिकाल से आज तक वह अपरिवर्तित चला आता है।

"सब भले-बुरे कर्मों का उद्गमस्थल है मन। इन्द्रियाँ द्वारा उत्पन्न ज्ञान से मन में संकल्प उत्पन्न होते हैं। संकल्प बनते हैं बुद्धि द्वारा। यदि किसी की बुद्धि सात्विकी होती है तो उसके संकल्प भी सात्विक और कल्याणकारी होते हैं। और यदि बुद्धि तामसी हो तो संकल्प मूर्खतापूर्ण और अकल्याणकारी होंगे।

"मन और बुद्धि तो आदिकाल से ऐसे ही चले आ रहे हैं। यह तो आप हैं जो बदलती हुई परिस्थिति का वर्णन कर रहे हो। इसका विश्लेषण भी तो बुद्धि ही करती है। इस कारण बुद्धि के विश्लेषण में अन्तर नहीं पड़ रहा है।

"जो कुछ मैं इस ग्रन्थ में नित्य महाराज और महारानीजी को सुनाता हूँ वह तो केवल मैं घटनाओं को ही बताता हूँ। उन घटनाओं का विश्लेषण तो मेरी आज की बुद्धि करती है। यह बुद्धि इस ग्रन्थ के रचयिता से कुछ भिन्न तो है ही और मैं समझता हूँ कि कुछ बातों में यह श्रेष्ठ भी है।"

यह सुन राजकुमार हँस दिया और चुप ही रहा।

राजकुमार को चुप देख महारानी ने कहा, "विक्रम ! तुम्हारे हँसने का क्या अभिप्राय है और फिर चुप रहने का क्या है ?"

"मैं महामात्य को पण्डित विभूतिचरण से भिन्न श्रेणी का नहीं मानता। विभूतिचरण तो सर्वथा भैंस बुद्धि का है।"

अब हँसने की बारी शिवकुमार की थी। उसने हँसते हुए कहा, "राजकुमार ! उस बेचारे को बीच में क्यों ले आये हो ? हम सब जानते हैं कि वह अप्रत्यक्ष रूप में राज्य का कर्मचारी है। उसकी निन्दा अथवा प्रशंसा तो राज्य की निन्दा-प्रशंसा हो जायेगी।"

"आप क्या राज्य के सेवक नहीं हैं ?"

"निस्सन्देह हूँ। तब यदि मैं मूर्ख हूँ तो मुझको नियुक्त करने वाला भी तो मूर्ख ही सिद्ध होगा ?"

यह सुन महाराज उठ खड़े हुए और बोले, "आज बहुत समय हो गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेष बातें कल हो जायेंगी।"

राज-भवन को लौटते हुए रथ में बैठे महाराज ने अपने पुत्र से कहा, "विक्रम! अभी तक तुम विशाखदत्त को ही ज्ञान का अन्त समझे बैठे हो। किन्तु मेरा कहना है कि पण्डित शिवकुमार के, जोकि उसकी आधी वयस् का है, चरण धोने के योग्य भी बुद्धि उसमें नहीं है।"

"पण्डित विशाखदत्त अब विद्वत्परिषद् के सदस्य बन चुके हैं।"

"हमें विदित है। उसको सदस्य बनाने के पूर्व पण्डित विभूतिचरण ने हमसे उसकी स्वीकृति प्राप्त की थी। यह स्वीकृति हमने केवल इस कारण दी थी कि विद्वानों के साथ बैठकर उसके ज्ञान में कुछ वृद्धि होगी।"

"महाराज! मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि शीघ्र ही पण्डित विशाखदत्त पाटलिपुत्र की विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष बनने वाले हैं।"

"हमें इसका स्वागत करेंगे।"

"महाराज! क्या यह सत्य है कि आपका महामात्य किसी कहार के पुत्र को वेद पढ़ा रहा है?"

"अभी पढ़ा तो नहीं रहा है परन्तु उसका विचार उसे वेद पढ़ाने का है।"

"बस यही इसके पाटलिपुत्र से प्रस्थान की घण्टी होगी।"

"इसका उसके महामात्य पद से क्या सम्बन्ध है?"

"शास्त्र कहता है कि स्त्री और शूद्र को वेद नहीं पढ़ाना चाहिए।"

"कल पण्डितजी से बात करना तब तुम्हें शास्त्र की बात का ज्ञान होगा।"

"शिवकुमार क्या शास्त्रों का ठेकेदार है?"

"सभी विद्वान् इसके ठेकेदार हैं।"

"किन्तु वह विद्वान् नहीं है।"

"अर्थात् उसको महामात्य बनाकर हमने मूर्खता की है?"

बात बढ़ती देख राजकुमार ने मौन रहना ही उचित समझा।

उसके बाद भी राजकुमार कथा पर आता रहा। परन्तु उसके बाद उसकी महामात्य से किसी विषय पर चर्चा नहीं हुई। उस दिन भी महामात्य ने स्वयं ही उसको प्रोत्साहित किया था।

इस घटना के बहुत दिन बाद की बात है। एक दिन पण्डित विभूतिचरण महामात्य से उसके अपने भवन वाले कार्यालय में मिलने के लिए आया। सामान्य आदर-सत्कार करने के उपरान्त महामात्य ने पूछा, "पण्डितजी! आज किस निमित्त आना हुआ?"

"मैं आपको कल की विद्वत्परिषद् में आने का निमन्त्रण देने के लिए आया हूँ।"

"कल क्या विशेष बात है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वहाँ एक ऐसे विषय पर विवाद हो रहा है जिसका आपके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।"

"किसने विषय प्रस्तुत किया है और वह विषय क्या है?"

"विषय तो है जन्म से अद्विज और वेदाध्ययन।"

"इससे मेरा क्या सम्बन्ध है?"

"आप किसी अद्विज को वेदाध्ययन करा रहे हैं।"

"नहीं पण्डितजी! मैं कभी ऐसी अशास्त्रीय बात नहीं करूँगा। हाँ, एक बालक है जो जन्म से शूद्र माता-पिता से उत्पन्न है। मैं उसको वेदाध्ययन के लिए तैयार कर रहा हूँ। परन्तु वेदाध्ययन से पूर्व में उसको द्विज की उपाधि के योग्य बना दूंगा। मेरा अभिप्राय है कि मैं उसका उपनयन संस्कार कर लूंगा।"

"इस समय उसकी क्या आयु है?"

"इस समय वह दस वर्ष का है और अष्टाध्यायी कण्ठस्थ कर चुका है। उसको आगामी मास यज्ञोपवीत दिया जायेगा।"

"यह आप नहीं कर सकेंगे, यह शास्त्रविरुद्ध है।"

"यह किस शास्त्र में लिखा है कि किसी अष्टाध्यायी पठित विद्वान् को यज्ञोपवीत न दिया जाय।"

"इसका ही निर्णय कल की बैठक में होगा। पण्डितजी! कई विद्वानों ने कहना आरम्भ कर दिया है 'स्त्रीशूद्रो नाधीयतामिति श्रुतः'।"

"यह वाक्य ही श्रुति के विपरीत है। मनुस्मृति में तो कहा है कि जहाँ वेद और स्मृति में भेद हो वहाँ वेद को प्रमाण मानना चाहिए।

"और यह वेदानुकुल ही है। वेद में कहा है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याँ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणायच॥[1]

"हाँ वेदाध्ययन आरम्भ करने से पूर्व विद्यार्थी को अधिकारी जान उसका उपनयन संस्कार कर देना चाहिए।"

"तो कल आप आइये। सम्भव यह है कि आपके व्यवहार पर टीका-टिप्पणी भी हो।"

"मैं सिद्धान्त की बात कहने के लिए नही आऊँगा। मैं पाटलिपुत्र के ब्राह्मण समाज को विद्वत्ताशून्य भी नहीं समझता कि वह इस मोटी-सी बात को भी नहीं समझ पायें। यदि किसी ने इस मूर्खतापूर्ण बात को वहाँ उपस्थित किया तो ब्राह्मण समाज में ही कोई इसका प्रतिवाद करने के लिए उठ खड़ा होगा।

---

१. मेरी कल्याणमयी वाणी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री और नीच से नीच व्यक्ति के लिए है। (यजु० २६-२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ यदि किसी ने मुझ पर आक्षेप किया तो परिषद् को चाहिए वह मुझे बुलाकर उसका स्पष्टीकरण करवा ले।"

"मैं इसीलिए तो आपको निमन्त्रण देने के लिए आया हूँ।"

"कल की सभा में चर्चा का विषय क्या है?"

"यही कि 'अद्विज' को वेद पढ़ाना चाहिए अथवा कि नहीं।"

"इसमें मेरा कहीं उल्लेख नहीं है। इसलिए मेरा वहाँ आना लाभप्रद नहीं। यह शास्त्रीय चर्चा है और मेरा विश्वास है कि कोई भी सदस्य उसपर चर्चा कर देगा।"

यह विषय समाप्त हुआ। विभूतिचरण ने भृगुदत्त के विषय में पूछताछ आरम्भ कर दी। पण्डित शिवकुमार ने कहा, "नेपाल के पाटन से उसका पत्र आया था। अब एक पत्र कन्नौज से आया है। वह दक्षिण के तीर्थस्थानों को देखने के लिए जा रहा है।"

"हमें तो वह पत्र लिखता ही नहीं।"

"उसने मुझे लिखा है कि मैं उसका अता-पता आपको न बताऊँ।"

"ऐसा क्यों?"

"यह उसने नहीं लिखा है।"

"पर आपने बता तो दिया है?"

"जी नहीं, इस समय वह कन्नौज में नहीं है।"

थोड़ी इधर-उधर की बात के उपरान्त पण्डित विभूतिचरण चला गया।

: ८ :

विभूतिचरण के जाते ही पण्डित शिवकुमार ने दो पत्र लिखे। एक श्रेष्ठि घनश्याम बाटक को और दूसरा पण्डित पंचानन मिश्र को। सेठ के पत्र में तो उसने लिखा कि उनको कल की विद्वत्परिषद् में जाकर अपने हितों की रक्षा करनी चाहिए। ब्राह्मण वर्ग को अनियन्त्रित नहीं होने देना चाहिए।

दूसरे पत्र में पण्डित शिवकुमार ने लिखा कि कल की विद्वत्परिषद् में किसी प्रच्छन्न नास्तिक द्वारा वेदस्मृति का विवाद उठाया जा रहा है। आपको वहाँ जाना चाहिए और सत्य का पक्ष लेना चाहिए।

श्रेष्ठि वाला पत्र उसने बृहस्पति द्वारा भेजा और पंचाननजी वाला पत्र सेठ के पुत्र राधेश्याम बाटक द्वारा भेज दिया। बाटक पण्डितजी की पाठशाला में पढ़ता था।

इन दोनों पत्रों का अनुकूल प्रभाव हुआ। दूसरे दिन घनश्याम बाटक विद्वत्-परिषद् में यथासमय पहुँच गया। उसने वहाँ पहुँच जब विचार्य-विषय पर दृष्टि डाली तो वह समझ गया कि पण्डितजी ने उसको किस कारण वहाँ भेजा है।

सेठ घनश्याम भवन के भीतर गया और मंच के समीप ही बैठ गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचानन मिश्र उससे पहले ही वहाँ उपस्थित था। उसने देखा कि विशाखदत्त वहाँ सबसे पहले पहुँचा हुआ है। पण्डित शिवकुमार की दृष्टि में वही प्रच्छन्न नास्तिक था।

विभूतिचरण ने सेठ बाटक को मंच के निकट आकर बैठते देखा तो कह दिया, "सेठजी ! आज की चर्चा का विषय धर्म का कोई अंग नहीं है।"

"आज क्या अधर्म के अंगों पर चर्चा होने वाली है ?" सेठ ने प्रति प्रश्न कर दिया।

विभूतिचरण अपनी भूल समझ गया। उसने अपने कथन में संशोधन करने के लिए कहा, "सेठजी ! हमारे महामात्य किसी शूद्र को वेद पढ़ा रहे हैं, यह हमारे स्मृतिशास्त्रों के विरुद्ध है।

"आज इसी विषय पर चर्चा होगी। अभिप्राय यह कि उनका यह व्यवहार उचित है अथवा अनुचित इसी विषय पर विचार किया जायेगा।"

"परन्तु इस बात का तो धर्म से ही सम्बन्ध है किन्तु आप कह रहे हैं कि आज की चर्चा का सम्बन्ध धर्म से नहीं है।"

विभूतिचरण निरुत्तर हो गया। वह किसी अन्य से बात करने लगा। सेठ समझ गया कि महामात्य ने उसको इस सभा में आने के लिए क्यों प्रेरित किया है। महामात्य ने कहा था उसको अपने हितों की रक्षा करनी चाहिए।

जिस प्रकार विशेष समारोहों के अवसर पर सभा-भवन खचाखचा भरा रहता था उस दिन भी उसी प्रकार भरा हुआ था। सेठ समझ रहा था भारी संघर्ष होने वाला है।

सरस्वती वदना हुई और तदुपरान्त कार्यवाही आरम्भ हो गयी। सभा के अध्यक्ष पण्डित विभूतिचरण ने घोषणा की, "कविवर मयूर आज की चर्चा का आरम्भ करेंगे।"

कवि महोदय ने महामात्य का नाम लेकर अपना वक्तव्य आरम्भ किया। उसने कहा, "न केवल हमारे नगर के प्रतिष्ठित नागरिक अपितु राज्य में भी उच्च पद पर आसीन शिवकुमारजी आजकल किसी कहार के पुत्र को वेद पढ़ा रहे हैं। हमारे स्मृति ग्रन्थों में यह वर्जित है। वेदों का अध्ययन-अध्यापन केवल द्विजों के लिए ही स्वीकार किया गया है। मैं चाहता हूँ कि मगध राज्य की राजधानी के विद्वानों की यह सभा पण्डित शिवकुमार के इस कार्य की घोर निन्दा करे और उनको आदेश दे कि वह यह अध्यापन-कार्य तुरन्त बन्द कर दें।"

परिषद् के किसी सामान्य से सदस्य ने इस प्रस्ताव का समर्थन कर दिया। जिस सदस्य ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया था अधिकांश सदस्य उसके नाम से भी परिचित नहीं थे। उसने कहा, "अपने महामात्य विचित्र ही बुद्धि के प्राणी हैं। जब से वे इस नगर में आये हैं किसी-न-किसी से उनका सदा विरोध रहा है। दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार नगर के ब्राह्मणों ने इनकी रक्षा का प्रबन्ध किया। उस समय इनकी मृत्यु का भय था। परन्तु यह महाशय इतने कृतघ्न सिद्ध हुए कि जिस हाथ ने इनकी रक्षा की ये उसी को काटने का यत्न कर रहे हैं।

"स्त्री और शूद्र को वेद न पढ़ाये जाएँ, ऐसा स्मृतिकार का कथन है। मैं समझता हूँ कि महाराज से एक प्रतिनिधि-मण्डल मिले और उनसे निवेदन करे कि शिवकुमार पर अब जनता का विश्वास नहीं रह गया है अतः उनको महामात्य पद से मुक्त कर दिया जाय।"

इसके उपरान्त पंचानन मिश्र उठे। उन्होंने कहा, "पूर्व इसके कि मैं आज के विषय पर बोलूं, मैं सदस्यों को यह बताना चाहता हूँ कि अध्यक्ष महोदय ने आज परिषद् की परम्परा का उल्लंघन किया है। दोनों पूर्व वक्ताओं ने विषय से बाहर की बात पर चर्चा की है और उन्होंने उनको ऐसा करने से रोका नहीं। क्या अध्यक्ष महोदय यह बताने की कृपा करेंगे कि उन्होंने ऐसा क्यों किया है ?"

अध्यक्ष विभूतिचरण ने कहा, "मेरे विचार से पूर्व के दोनों वक्ता अपने विषय की परिधि में ही बोल रहे थे।"

मिश्रजी अभी तक खड़े ही थे। उन्होंने अध्यक्ष के कथन का प्रतिवाद करते हुए कहा, "अध्यक्ष महोदय भूल कर रहे हैं। अतः। यह मेरा कर्तव्य है कि मैं सभा को बता दूं कि पूर्व वक्ताओं ने कहाँ विषय की परिधि का उल्लंघन किया है। बाहर के पट्ट पर जो विषय अंकित है, वह है—'अद्विजों को वेद की शिक्षा।' इसमें न तो कहीं महामात्य का नाम है और न उनके किसी संकट के समय ब्राह्मण समुदाय का उनकी रक्षा के लिए यत्न के विषय का उल्लेख है। यदि आज के विचार का विषय महामात्य होता तो हम महामात्य को यहाँ उपस्थित रहने के लिए विवश करते और उनसे कहते कि वे अपने स्मृति विरुद्ध व्यवहार के लिए स्पष्टीकरण प्रस्तुत करें।

"विषय सिद्धान्तात्मक है। उस सिद्धान्त के विषय में तो दोनों में से किसी भी महानुभाव ने एक शब्द भी नहीं कहा। यहाँ तक कि यह भी नहीं बताया गया कि किस स्मृति के आधार पर इस कृत्य को वेद-विरुद्ध माना जा सकता है।

"मैं समझता हूँ कि उन दोनों का भी कोई विशेष दोष नहीं है। दोनों नवयुवक हैं और राजधानी की विद्वत् समाज में सर्वथा अपरिचित और नगण्य व्यक्ति हैं।

"मेरी दृष्टि में आज की इस सभा में परम्परा के विरुद्ध जो कुछ भी कार्य-वाही हुई है उसका पूर्ण उत्तरदायित्व परिषद् के अध्यक्ष महोदय पर है। मुझे उनकी इस असावधानी पर खेद होता है।

"जहाँ तक आज के विचार्य विषय का सम्बन्ध है, उस सम्बन्ध में, जैसाकि मैं पहले में कह चुका हूँ कि कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया गया है। महाराज मनु ने निर्देश दिया है कि जहाँ स्मृति और वेद में किसी विषय पर मतभेद हो वहाँ वेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को प्रमाण माना जाए। उस अवस्था में स्मृति का विधान अमान्य हो जाता है।

"वेद में यह स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि वेद की कल्याणकारी वाणी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री और समाज के नीच से भी नीच व्यक्ति के लिए है।

"मैं विद्वत्परिषद् में चल रही इस कार्यवाही का घोर विरोध करता हूँ।"

इसके उपरान्त एक के बाद एक व्यक्ति उठकर आया और इस मत की पुष्टि करता रहा कि अद्विजों के लिए वेद का अध्ययन वर्जित नहीं अपितु विहित है। इस प्रकार दो घड़ी तक इस विषय का प्रतिपादन होता रहा।

अन्त में विभूतिचरण ने कहा, "विषय के सम्बन्ध में मतभेद है, अतः मेरा निर्णय है कि इस विषय पर मतदान कराया जाय।"

सभा में सदस्यों के अतिरिक्त असदस्य भी उपस्थित थे। इस कारण यह व्यवस्था की गयी कि सब सदस्य एक कागज के टुकड़े पर अपनी सम्मति 'हाँ' अथवा 'न' लिखें और उसके नीचे अपने हस्ताक्षर कर उस कागज के टुकड़े को अध्यक्ष को सौंप दें।

पंचानन आदि का विश्वास था कि उस सभा में अद्विजों का विरोधी कदाचित् ही कोई हो। किन्तु जब मतगणना का परिणाम आँका गया तो पक्ष और विपक्ष के मतों की संख्या लगभग बराबर-बराबर ही निकली। सभा में उपस्थित एक सौ बीस सदस्यों में से चौंसठ सदस्यों ने तो अद्विजों को वेद पढ़ने के अधिकार के पक्ष में मतदान किया था और छप्पन मत इसके विरोध में थे।

इस मतदान के उपरान्त दोनों पक्ष एक-दूसरे का मुख देखते रह गये। क्योंकि दोनों ही पक्ष यह समझते थे कि उनको प्रबल बहुमत का समर्थन प्राप्त होगा। इससे दोनों की पक्षों हो निराशा हुई।

जब अन्य सदस्य सभा भवन से बाहर आ रहे थे तो घनश्याम बाटक पण्डित विभूतिचरण के समीप ही खड़ा था। विभूतिचरण जब मत-पत्रों को समेटकर लपेट रहा था तो उसने कहा, "पण्डितजी! मैं इन पत्रकों को सुरक्षित रखना चाहता हूँ।"

"किसलिए?"

"यह जानने के लिए इस एक-एक मत के लिए कितनी-कितनी घूस एक-एक ब्राह्मण को दी गयी है।"

"यह गुप्त है।"

"तो ब्राह्मण भी अब धर्म और वेद के विषय में छलना करने लगे हैं?"

"इसमें छलना क्या है?"

"आप हमसे कुछ छिपाना चाहते हैं, यह छलना ही है।"

"मतदान गुप्त था।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अर्थात् अब ब्राह्मण भी कुंजड़ों की भाँति दो प्रकार का जीवन व्यतीत करने लगे हैं। एक यजमानों को दिखाने के लिए और दूसरा गुप्त जीवन।"

"मैं आपको नहीं दिखाऊँगा।"

"और मैं आपको यहाँ से बाहर ही नहीं जाने दूँगा।"

"कैसे रोकेंगे?"

"आप इन मत-पत्रों को लेकर भवन के बाहर पग रखिए तब बताऊँगा।"

विभूतिचरण ने अपना थैला कन्धे से लटकाया और बाहर की ओर चला तो सेठ घनश्याम बाटक ने बाहर जाकर शोर मचाया, "चोर, चोर, चोर।"

मार्ग पर सुरक्षा के लिए खड़े दो सुभट्टों ने विभूतिचरण को पकड़ लिया। कुछ सदस्य अभी भी भवन के भीतर थे। बाहर हल्ला सुनकर आये तो स्थिति को देख वे विस्मय कर रहे थे।

सुभट्टों ने कहा, "पण्डितजी! अब आपको नगर न्यायाधीश के कार्यालय तक चलना होगा। आपको पकड़ने का आग्रह करने वाले सेठजी को भी जाना होगा। वहाँ हम आप दोनों को न्यायाधीश को सौंप देंगे।"

"परन्तु तुमने सेठ को तो पकड़ा ही नहीं है, ये तो भाग भी सकते हैं।"

"क्यों सेठ भागोगे?"

"मैं अभियोग लगाने वाला हूँ, मैं क्यों भागूँगा?"

"ठीक है, आप दोनों वहीं चलिये। वहाँ आपका निर्णय होगा कि कौन चोर है और कौन साधु है।"

तभी एक सदस्य बोला, "ठाकुर! पण्डितजी को छोड़ दो। सेठजी का तो मस्तिष्क विकृत हो गया लगता है।"

"हम न्यायकर्ता नहीं हैं। कौन विकृत मस्तिष्क है अथवा कौन चोर है, यह निर्णय करना न्यायाधीश का कार्य है हमारा नहीं।"

विभूतिचरण ने अपना थैला कवि मयूर को देने का यत्न किया तो सेठ ने इसका विरोध करते हुए कहा, "चोरी की वस्तु तो इसी में है, यह आप नहीं दे सकते।"

इस झगड़े के कारण अनेक जन वहाँ पर एकत्रित हो गये थे। वे सब भी उनके पीछे-पीछे न्यायालय तक जा पहुँचे।

वहाँ पहुँचकर सेठ घनश्याम बाटक ने पण्डित विभूतिचरण के विरुद्ध आरोप लगाया, "विद्वत्परिषद् में हुए मतदान के कुछ मत-पत्रकों को लेकर पण्डित विभूतिचरण भाग रहे थे। मैं उन मत-पत्रकों को देखना चाहता था। मैं यह जानना चाहता था कि किस विद्वान् ने विषय के पक्ष में मत दिया है और किसने उसके विपक्ष में। किन्तु पण्डितजी ने दिखाना नहीं चाहा। इसलिए मुझे सन्देह है कि यहाँ किसी प्रकार की छलना की गयी है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लिखित याचिका पर न्यायाधीश से पूछा, "पण्डितजी! आप क्या कहना चाहते हैं इस आरोप के विषय में?"

"सेठ विद्वत्परिषद् का सदस्य नहीं है। इस कारण इसका कोई अधिकार नहीं कि वह मत-पत्रकों को देखने की माँग करे।"

"क्यों सेठ! तुम्हारा अधिकार है?"

"जिस सभा में यह मतदान कराया गया था वह सार्वजनिक थी। उस सभा में विषय पर जो वाद-विवाद होता रहा है मैंने उसे सुना है। इससे यह स्पष्ट है कि न तो मतदान गुप्त था और न उस विषय पर विवाद ही। अतः मैं उन सदस्यों के नाम जानना चाहता हूँ जिन्होंने विषय के पक्ष में मतदान किया है। इससे मेरे ज्ञान में वृद्धि होगी। विद्वत्परिषद् का प्रयोजन भी यही है और इसी प्रयोजन से मैं इसकी सभाओं में उपस्थित रहने का यत्न करता हूँ। जब मुझे वहाँ बैठकर कुछ सुनने की अनुमति प्राप्त है तो फिर इन मत-पत्रकों को छिपाकर रखना परिषद् के नियम के विरुद्ध है।"

पण्डित विभूतिचरण ने कहा, "मैं परिषद् का प्रधान हूँ और इस नाते जो चाहूँ कर सकता हूँ।"

न्यायाधीश महोदय ने दोनों पक्षों को सुनकर अपना निर्णय देते हुए कहा, "किसी सार्वजनिक सभा का अध्यक्ष सभा के साथ जो चाहे कर सकता है, परन्तु वह जनता से चोरी नहीं कर सकता। विद्वत्परिषद् सार्वजनिक सभा है जहाँ सदस्यों के अतिरिक्त जन भी जाकर वहाँ की कार्यवाही में भाग ले सकते हैं। अतः वहाँ का कुछ भी गोपनीय नहीं हो सकता। विशेषतया उस स्थिति में जबकि परिषद् जनता के दान और दक्षिणा से चलती हो।

"जनता परिषद् के प्रबन्ध में भले ही सम्मति न दे सके परन्तु उससे छिपाकर वहाँ कुछ नहीं रखा जा सकता। जिससे जनता निश्चय कर सके कि वह इस परिषद् की सहायता करे अथवा कि न करे।"

ऐसी स्थिति में विभूतिचरण को मत-पत्रों का वह थैला न्यायालय में जमा कराना पड़ा। उसके बाद उसने कहा, "इस थैले के कागज अभी इस सेठ को न दिखाये जायें क्योंकि मैं इस न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में याचिका करना चाहता हूँ।"

पण्डित विभूतिचरण के निवेदन पर न्यायाधीश ने थैले को मोहर बन्द करा कर न्यायालय के वस्तु-भण्डार में भरवा दिया। उसने निर्णय दिया, "यदि पाँच दिन के भीतर याचिका प्रस्तुत न की गयी तो यह थैला घनश्याम बाटक को देखने के लिए दे दिया जाय।"

पंचानन मिश्र भी उस जन-समूह में था जो न्यायालय तक पहुँचा। वह सारे समय कार्यवाही देखता रहा। वह देख रहा था कि यदि न्यायाधीश ने सेठ बाटक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रार्थना को इस कारण ठुकरा दिया कि वह परिषद् का सदस्य नहीं है अतः उसको अधिकार नहीं है कि वह मत-पत्रकों की माँग करे तो वह स्वयं सदस्य होने के नाते अपनी माँग प्रस्तुत कर देगा।

परन्तु जब उसने न्यायाधीश को अपने उद्देश्य के अनुकूल देखा तो वह चुपचाप कार्यवाही देखता रहा। अन्त में उसने यह याचिका प्रस्तुत कर दी कि जिस समय यह थैला सेठ घनश्याम बाटक को दिखाया जाय उस समय उसे भी देखने के लिए बुला लिया जाय। क्योंकि वह परिषद् का सदस्य है और वह भी वही बात देखना चाहता है जिसे सेठ देखना चाहता है।

विभूतिचरण ने उच्च न्यायालय में याचिका प्रस्तुत की तो उसकी सुनवायी हुई। जिस दिन सुनवायी हुई उस दिन सेठ घनश्याम बाटक तथा पंचानन मिश्र के अतिरिक्त सहस्रों नागरिक न्यायालय के अहाते में उपस्थित थे। सभी नागरिक विभूतिचरण को घेरकर खड़े थे।

विभूतिचरण ने अपना स्पष्टीकरण देते हुए कहा, "परिषद् के प्रस्ताव में महामात्य की निन्दा अथवा प्रशंसा नहीं थी। आप लोगों को किसी ने यह मिथ्या बात कही है कि महामात्य के विरुद्ध निन्दा प्रस्ताव रखा गया था।"

यह देखकर पंचानन मिश्र एक ऊँचे स्थान पर खड़ा हो गया और वस्तुस्थिति का वर्णन करता हुआ बोला, "इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि प्रस्ताव में महामात्य का नाम नहीं है किन्तु जो व्याख्यान वहाँ हुए हैं उनमें उनके व्यवहार को अशास्त्रीय कहा गया था। प्रस्ताव प्रस्तुत करने वाले ने तो यहाँ तक कहा कि महामात्य अशास्त्रीय और ब्राह्मण समुदाय के विरुद्ध व्यवहार कर रहे हैं। सभा में अन्य अनेक जनों ने अपने वक्तव्य में प्रस्ताव को वेद-विरुद्ध कहा था किन्तु जब मतदान हुआ तो उसमें बहुत बड़ी संख्या में सदस्यों ने प्रस्ताव के पक्ष में मतदान किया।

"सेठ घनश्याम यही जानना चाहते हैं कि वे कौन लोग हैं जिन्होंने इस प्रस्ताव के पक्ष में मत दिया है। इन्होंने परिषद् के अध्यक्ष से कहा था कि वह इनको मत-पत्रक दिखा दे किन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। तब राज्य की सहायता से इन्होंने उन मत-पत्रकों को देखने का यत्न किया। नगर न्यायाधीश ने इसकी स्वीकृति दे दी थी किन्तु परिषद् के अध्यक्ष ने उस निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में याचिका उपस्थित कर दी। आज यहाँ उस पर निर्णय होने की सम्भावना है।"

न्यायालय में विषय उपस्थित होने पर विभूतिचरण ने कहा, "नगर न्यायाधीश की आज्ञा अयुक्तियुक्त है। सदस्यों के अतिरिक्त कोई इन मत-पत्रकों को नहीं देख सकता।"

न्यायाधीश को जब यह बताया गया कि इस विषय पर सहस्रों नागरिकों की रुचि है और वे लोग न्यायालय के बाहर एकत्रित हैं तो न्यायाधीश ने कहा, "उनका कोई एक प्रतिनिधि भीतर आकर अपना पक्ष रख सकता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवसर पाकर पंचानन मिश्र उस भीड़ का प्रतिनिधि बनकर न्यायालय में उपस्थित हो गया। न्यायाधीश ने प्रथम पंचानन मिश्र से ही पूछा, "आप लोग इतनी संख्या में यहाँ क्यों उपस्थित हैं ?"

"श्रीमन्! बाहर एकत्रित जन-समुदाय का विद्वत्परिषद् अथवा उसके अध्यक्ष से किसी प्रकार का मतभेद नहीं है। वह तो केवल यह जानने के लिए उत्सुक है कि वह कौन-से सदस्य हैं जो उनके दिये दान-दक्षिणा से जीवन व्यतीत करने पर भी उनके विरुद्ध मतदान करते हैं।"

न्यायाधीश ने पूछा, "उनका हित किस बात में है ?"

पंचानन ने जनता के हित की विवेचना करते हुए परिषद् में उठे विवाद का पूर्ण विवरण प्रस्तुत कर दिया। और फिर कहा कि बाहर जो लोग खड़े हैं वे यह जानना चाहते हैं कि जो लोग उनकी सन्तान को शास्त्रीय अधिकार से वंचित रखना चाहते हैं वे कौन लोग हैं। उपस्थित समुदाय घनश्याम बाटक की माँग का समर्थन कर रहा है और याचना कर रहा है कि मतदान को गुप्त न रखा जाय।

न्यायाधीश ने यह सब सुनकर विभूतिचरण से पूछा, "पण्डितजी ! आप इस सम्बन्ध में क्या कहना चाहते हैं ?"

विभूतिचरण ने अपनी पहली ही बात दोहरा दी। उसने केवल इतना कहा, "केवल परिषद् के सदस्य ही परिषद् की कार्यवाही जानने के अधिकारी हैं।"

"यह परिषद् सार्वजनिक संस्था है अथवा नहीं ?"

"यह सार्वजनिक केवल इसी नाते है कि इसकी कार्यवाही के समय कोई भी नागरिक उपस्थित होकर इसकी कार्यवाही को देख-सुन सकता है। किन्तु इसमें बोलने का अधिकार केवल इसके सदस्यों को ही है।"

"सर्वसाधारण को देखने-सुनने की अनुमति देने का क्या प्रयोजन है ?"

"जन-जन का ज्ञानवर्द्धन करना ही इसका प्रयोजन हो सकता है।"

"इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि वहाँ पर उपस्थित व्यक्ति यह भी जान सकता है कि कौन विद्वान् क्या कह रहा है ?"

"जी, यही सुनने के लिए तो वे लोग वहाँ उपस्थित होते हैं।"

"ऐसी स्थिति में ये मत-पत्रक गोपनीय नहीं हो सकते। इन पत्रकों को गोपनीय रखने के दो ही अर्थ हो सकते हैं। एक तो यह कि मतगणना का परिणाम वह नहीं है जो आपने घोषित किया है। इसका दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि कुछ सदस्यों ने प्रत्यक्ष में तो कुछ और कहा है और अपना मत उसके विपरीत दिया है। इसका स्पष्ट निष्कर्ष यह निकला कि वहाँ उपस्थित जनों को किसी एक प्रकार से धोखा दिया गया है। इन दोनों कारणों के अतिरिक्त अन्य भी कोई है तो बताइये।"

पंचानन मिश्र को इससे प्रोत्साहन मिला तो उसने कुछ कहने की अनुमति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाही। न्यायाधीश ने अनुमति प्रधान की तो मिश्र ने कहा, "मैं समझता हूँ कि जिन लोगों ने प्रस्ताव प्रस्तुत किया है उन्होंने यह किसी उद्देश्य विशेष से किया है। यद्यपि इस उद्देश्य का प्रस्ताव में उल्लेख नहीं है। परन्तु प्रस्ताव को प्रस्तुत करते हुए प्रस्तावक ने अपने भाषण में राज्य के एक सर्वोच्च अधिकारी को स्पष्ट अकारण निन्दनीय प्रकट करने का यत्न किया था। प्रस्तावक ने उस उच्च अधिकारी का स्पष्ट नामोल्लेख भी किया था और उसकी निन्दा की थी। अतः मेरा और बाहर खड़ी जिस जनता का प्रतिनिधि बनकर मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ, उन का विचार है कि प्रस्ताव के पक्ष में मत देने वालों के नाम पण्डितजी महाराज इस कारण छिपा रहे हैं कि कदाचित् उस उच्च अधिकारी को निन्दनीय कहने वाले स्वयं ही निन्दनीय न बन जायें।"

न्यायाधीश ने कहा, "तो क्या जिन्होंने निन्दा का प्रस्ताव करने में भाग लिया है उनके विरुद्ध वे उच्चाधिकारी कोई प्रतिकार की बात करेंगे?"

"उनके मन में क्या है, यह मैं किस प्रकार बता सकता हूँ? मेरा कथन तो इतना ही है कि बाहर एकत्रित जन-समूह यह कह रहा है कि उन उच्चाधिकारी की निन्दा करने वाले ब्राह्मण उनके पुरोहित नहीं रह सकते।

"विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष उन मतदाताओं की रक्षा का प्रबन्ध कर रहे हैं।"

न्यायाधीश ने पण्डित विभूतिचरण से कहा, "कहिये, आप क्या कहते हैं?"

"मेरी याचिका का इस सबसे कोई प्रयोजन नहीं है। मैंने केवल यही कहा है कि मत-पत्रक केवल परिषद् के सदस्य ही देख सकते हैं।"

न्यायाधीश ने अपना निर्णय देते हुए कहा, "राज्य समझता है कि विद्वत्-परिषद् का गठन समाज के ज्ञानवर्द्धन के लिए किया गया है। सर्वसाधारण को इसकी कार्यवाही देखने-सुनने का अधिकार है। ऐसी स्थिति में इसकी कोई भी कार्यवाही गोपनीय नहीं हो सकती। अतः हमारा मत है कि अध्यक्ष महोदय को उन मत-पत्रकों को छिपाकर रखने का कोई अधिकार नहीं है।"

उसी दिन सायंकाल वह थैला जिसमें मत-पत्रक बन्द थे सेठ घनश्याम बाटक और पण्डित पंचानन मिश्र को खोलकर देखने की अनुमति मिल गयी। दोनों ने उन सदस्यों की सूची बनायी जिन्होंने प्रस्ताव के पक्ष में मतदान किया था।

जबतक विभूतिचरण की याचिका न्यायालय के विचाराधीन रही तबतक राजकुमार अपने माता-पिता के साथ पण्डित शिवकुमार की यज्ञशाला में कथा सुनने के लिए आता रहा। परन्तु इनमें से किसी ने भी कभी विद्वत्परिषद् के वाद-विवाद अथवा न्यायालय में विद्यमान विवाद पर कोई चर्चा नहीं की।

राजकुमार समझता था कि उच्च न्यायालय में विभूतिचरण की याचिका स्वीकार कर ली जायेगी। इस कारण वह मौन रहता था। शिवकुमार को इस बात का तो सन्तोष था कि विद्वत्परिषद् का बहुमत प्रस्ताव के विरुद्ध था, तदपि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह यह अनुभव करने लगा था कि ब्राह्मण वर्ग बहुत बड़ी संख्या में वेद और संस्कृति के ज्ञान से अनभिज्ञ होता जा रहा है।

महाराज और महारानी दोनों ही इस विवाद से दुःखी थे। वे दोनों समझते थे कि राम और उसकी माता अब दोनों ही स्वतन्त्र रूप से उज्जयिनी में रह रहे हैं। महाराज की मृत्यु के बाद राजकुमार के अपने हितों का राम द्वारा विरोध स्पष्ट हो जायेगा तो स्वयं निपट लेगा। उस समय यदि शिवकुमार अथवा उस जैसा ही कोई विद्वान् व्यक्ति महामात्य के पद पर होगा तो वह प्रजा के हितों की रक्षा का प्रबन्ध कर लेगा।

यही कारण था कि न्यायालय में विवाद के समाप्त होने तक कथा सामान्य रूप से ही चलती रही।

: ९ :

जिस दिन न्यायालय ने पण्डित विभूतिचरण की याचिका को अस्वीकार किया उसी दिन पण्डित पंचानन मिश्र ने शिवकुमार को एक पत्र लिखा। उसमें उसने लिखा कि मत-पत्रक देखने से विदित होता है कि विद्वत्परिषद् के पुराने सदस्यों में से केवल तीन व्यक्तियों ने ही प्रस्ताव के पक्ष में मतदान किया है। प्रस्ताव के पक्ष में मतदान करने वाले अन्य वे सब सदस्य हैं जो विशाखदत्त के सदस्य बनने के बाद परिषद् के सदस्य बने हैं। उनमें से अधिकांश सदस्यों का तो विधिवत् मनोनयन भी नहीं हुआ है।

पंचानन ने यह भी लिखा कि वह पुनः पण्डित विभूतिचरण को विद्वत्परिषद् से निकालने का यत्न करेगा। प्रथम बार जब यज्ञ सम्बन्धी अनावस्था उत्पन्न हुई थी तो आपने स्वयं अध्यक्ष बनने की बात कहकर विभूतिचरण को बचा लिया था। मैं समझता हूँ कि इस बार उसका बचना कठिन है। मैं तो यहाँ तक विचार करता हूँ कि कदाचित् वह पाटलिपुत्र ही छोड़कर चला जायेगा।

शिवकुमार समझता था कि यह सब राजकुमार का षड्यन्त्र है। वह यह भी भली-भाँति जानता था कि विशाखदत्त राजकुमार के हाथ की कठपुतली मात्र है। अतः उपयुक्त यही होगा कि इस विषय में राजकुमार को अपनी दूषित नीति बदलने के लिए प्रेरित किया जाय।

किन्तु न्यायालय के निर्णय के अगले दिन नियमानुसार राजकुमार अपने माता-पिता के साथ कथा सुनने के लिए आया ही नहीं। शिवकुमार को इससे निराशा हुई। तब उसने राजकुमार को समझाने की अपेक्षा महाराज और महारानी को सावधान करने का विचार किया।

इस उद्देश्य से उसने उस दिन की कथा का प्रसंग धृतराष्ट्र और गान्धारी का महाभारत युद्ध में योगदान पर अपनी विवेचना से आरम्भ किया।

शिवकुमार ने कौरवों और पाण्डवों के बाल्यकाल की उन घटनाओं का, जिनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौरवों ने पाण्डवों का अहित करने का यत्न किया था, उल्लेख कर अन्त में युद्ध से पूर्व दुर्योधन और गान्धारी के मध्य हुए संवाद पर समाप्त कर दिया।

उस कथा का निष्कर्ष यही था कि अधिकांश बच्चों में जो विकार उत्पन्न होते हैं वे माता-पिता की असावधानी के कारण उत्पन्न होते हैं। कभी-कभी उनके परिणाम महाभारत जैसे विनाशकारी युद्ध के रूप में निकलते हैं।

यह कथा सुनकर महाराज को अपेक्षा थी कि कदाचित् महारानी इस परिपेक्ष्य में राजकुमार द्वारा विद्वत्परिषद् में किये जा रहे नाटक का स्पष्टीकरण करेगी। परन्तु महारानी ने अपना मुख खोला ही नहीं। वह चुपचाप जलपान करती रही। जलपान समाप्त होने पर दोनों उठे और चल दिये।

उस दिन राज-प्रासाद को लौटते समय रथ में भी पति-पत्नी में परस्पर कोई बात नहीं हुई। किन्तु जब वे प्रासाद के बैठक-घर में पहुँच गये तो महाराज ने मौन को भंग करते हुए कहा, "हम समझते हैं कि पुरोहितजी ने आज की कथा का पूर्ण प्रसंग महारानीजी द्वारा कुछ शंका-समाधान की अपेक्षा से किया था।"

"मैं तो समझती हूँ कि पुरोहितजी मगध के महाराज से अपेक्षा कर रहे थे कि वे अपने संशयों का निवारण करवाना चाहें तो कर सकते हैं। उन्होंने तो विभीषण का उदाहरण भी दिया था। युद्ध से पूर्व विभीषण ने अपने भाई को समझाया था परन्तु वह माना नहीं।

"धृतराष्ट्र और गान्धारी के व्यवहार के विपरीत विभीषण ने भाई का साथ छोड़ दिया था। पुरोहितजी का कहना था कि विभीषण का व्यवहार ठीक था। धर्म की दृष्टि से विभीषण गान्धारी और धृतराष्ट्र से श्रेष्ठ था। यही कारण है कि भारतवासी विभीषण को धर्मात्मा कहकर उसका समादर करते हैं।

"दुर्योधन की मृत्यु के उपरान्त उसके माता-पिता दोनों विलाप करते थे। उनको अत्यन्त दुःख भी था और उसकी मृत्यु के निमित्त कारण भीम पर अपना रोष भी व्यक्त करते थे। परन्तु अपने पुत्रों के कुकर्म के लिए पश्चात्ताप का एक भी शब्द उनके मुख से नहीं निकला था।

"पुरोहितजी का कहना था कि क्योंकि उन्होंने शरीर के सम्बन्धों को महत्त्व दिया और इस प्रकार धर्म को हीन समझा।

"यद्यपि उस शोक के समय जब वे प्रलाप कर रहे थे तो कृष्ण आदि ने उन दोनों को डाँटा नहीं अपितु उनके साथ सहानुभूति व्यक्त की थी और उनके अवशिष्ट जीवन को सुखी बनाने का भी यत्न किया था परन्तु उनके मन में तथा भारतीय समाज में उनके प्रति आदर-भाव तो दूर की बात अपितु किसी को उनके प्रति सहानुभूति भी नहीं रही थी।"

महारानी के मुख से इस प्रकार की विवेचना सुनकर महाराज समुद्रगुप्त गम्भीर विचार में डूब गया। महाराज ने एकाएक ताली बजायी। प्रतिहारी आया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो उसने राजकुमार को बुलाने के लिए कहा।

राजकुमार को इसकी अपेक्षा थी क्योंकि वह आज कथा सुनने के लिए गया नहीं था।

यद्यपि आज उसकी कथा सुनने के लिए न जाने की कोई योजना नहीं थी। वह जाने के लिए तैयार भी हुआ था किन्तु तभी विशाखदत्त आ गया। परिणाम-स्वरूप उसको रुकना पड़ गया। विशाखदत्त न्यायालय की आज्ञा पर विचार-विमर्श करने के लिए आया था।

इस परामर्श में बहुत समय लग गया। विशाखदत्त उसी समय गया जब राज-कुमार को महारानीजी द्वारा बुलाये जाने का सन्देश मिला था। सन्देश मिलने पर राजकुमार राज-प्रासाद की बैठक में पहुँच गया। महाराज और महारानी उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। महाराज ने पूछा, "क्या बात है आज तुम कथा सुनने नहीं गये ? तुम्हारी माताजी चिन्ता कर रही थीं।"

"महाराज ! मैं जाने के लिए तैयार था कि तभी गुरुजी आ गये। उनसे वार्त्तालाप करते हुए कथा का समय बीत गया।"

"तो क्या वे कल के न्यायालय के निर्णय के विषय में कुछ करने के लिए कहने आये थे ?"

राजकुमार ने एक क्षण विचार किया और फिर बोला, "गुरुजी का कहना था कि इस विषय में अधिक चिन्ता नहीं करनी चाहिए।"

"क्योंकि इस कार्यवाही से ब्राह्मण समाज और साधारण प्रजा भी राज-परिवार से रुष्ट हो रहे हैं इसलिए ?"

"नहीं महाराज ! ऐसी बात नहीं है। हमारे इस प्रयत्न का परिणाम तो यह हुआ है कि जनता और ब्राह्मण समाज अब शिवकुमार की उतनी अन्धभक्त नहीं रही जितनी कि वह प्रारम्भ में थी। विद्वत्परिषद् में भी अब बहुत कम सदस्य उसका आदर करते हैं। पहले तो शत-प्रतिशत उसके शिष्य ही माने जाते थे।"

"और जो उसके विरोधी सदस्य हैं उनमें से अधिकांश तो छल-प्रपंच द्वारा परिषद् के सदस्य बनाये गये हैं। इस सम्बन्ध में विभूतिचरण के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा रहा है।"

"कौन प्रस्तुत करेगा ?"

"सेठ घनश्याम बाटक की सहायता से पंचानन मिश्र।"

"सेठ का विद्वत्परिषद् से क्या सम्बन्ध है ?"

"परिषद् से भले ही न हो किन्तु नगर के ब्राह्मणों से तो है जो उसकी दान-दक्षिणा पर पलते हैं।"

"परन्तु हमारी दान-दक्षिणा पर तो पूर्ण ब्राह्मण समाज ही पलता है।"

"ओह, यह बात है। परन्तु हमें तो इसका ज्ञान नहीं है। जब से पण्डित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवकुमार राज-परिवार के पुरोहित बने हैं तब से तो हमने किसी अन्य ब्राह्मण की चिन्ता ही नहीं की थी। हाँ, बहुत-से ब्राह्मण परिवार राज्याश्रय में हैं। परन्तु राज्य तो जैसा हमारा है, वैसा घनश्याम बाटक का है अथवा जैसे किसी अन्य नागरिक का है वैसा ही उनका भी है। इसमें राज-परिवार उनकी पालना करने वाला कैसे हो गया? वस्तुस्थिति तो यह है कि राज-परिवार भी राज्याश्रय में ही पल रहा है।"

राजकुमार इस जीवन मीमांसा को नहीं मानता था। वह इन विचारों के लिए शिवकुमार को ही दोषी मानता था। वह समझता था नित्य शिवकुमार अपनी कथा में महाराज और महारानी के मस्तिष्क को विकृत कर रहा है। यही कारण था कि वह उनके मस्तिष्क से शिवकुमार का प्रभाव मिटाने का यत्न कर रहा था। उसने कहा, "महाराज! यह बात नहीं है। हमारा परिवार राज्य की वह सेवा कर रहा है जिसे कोई अन्य नहीं कर सकता। महामात्य तो आते-जाते रहेंगे परन्तु आप जैसा सम्राट् मगध की प्रजा को मिलना असम्भव है।"

"तुम्हारा कथन ठीक मान लिया जाय तो भी अन्य सब कर्मचारियों की अपेक्षा राज्य हमको उस सबका प्रतिकार भी तो बहुत अधिक मात्रा में देता है?"

"तो क्या हम राज-कर्मचारी हैं?"

"निस्सन्देह। तुम्हारे विषय में तो यह निर्विवाद ही है।"

"मैं स्वयं को राज्य का सेवक नहीं मानता।"

"तुम भी ठीक ही कहते हो। सेनाध्यक्ष को तो हटाया जा सकता है किन्तु किसी कुंजड़े का पुत्र सम्राट् का पुत्र नहीं कहा जा सकता। परन्तु कुमार इस बात को मत भूलना कि प्रजा चाहे तो वह सम्राट् को भी पदच्युत कर सकती है। और प्रजा का नेतृत्व ब्राह्मण वर्ग के हाथ में है।"

"परन्तु महाराज! शिवकुमार ब्राह्मणों का नेता नहीं रहना चाहिए। मैं यह भविष्यवाणी कर रहा हूँ कि दिन-प्रतिदिन वह ब्राह्मण समाज में निन्दनीय होता जा रहा है।"

"ठीक है, उसको निन्दनीय बनने दो। तब हम उसको पदच्युत कर देंगे।"

"धन्यवाद महाराज! यही मैं चाहता था। यह अवसर शीघ्र ही आने वाला है।"

यह कहकर राजकुमार उठने ही वाला था कि उसकी माता ने पूछ लिया, "तुम कथा सुनने के लिए तो चला करोगे न?"

"जी माताजी! कल से नियमित चला करूँगा।"

कुछ और सुनने की प्रतीक्षा किये बिना राजकुमार वहाँ से उठकर तुरन्त बाहर चला गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: १० :

विद्वत्परिषद् का यह झमेला तो चल ही रहा था कि उस दिन शिवकुमार के सम्मुख एक और समस्या खड़ी हो गयी। मध्याह्न भोजन के लिए वह जब घर पर आया तो उसने बाहर बैठक में उसकी पत्नी के साथ एक महिला और एक कुमारी को बैठे देखा।

उनको वहाँ बैठा देखकर शिवकुमार उस ओर जाने की अपेक्षा अपने निजी आगार की ओर जा रहा था कि उसकी पत्नी ने उसको देख लिया। उसने कहा, "देव! यह बहिन आपसे मिलने के लिए आयी है।"

शिवकुमार भीतर जाता हुआ रुककर बैठक में आ गया। वह खड़ा ही था कि उसकी पत्नी ने कहा, "आप इनसे बात कीजिये, मैं तबतक भोजन की व्यवस्था करती हूँ।"

"इन्होंने भोजन कर लिया है?"

शिवकुमार ने पूछा तो उसकी पत्नी ने उस महिला की ओर देखा। इसका अभिप्राय यही था कि वह महिला इसका उत्तर दे। वह भी उनका अभिप्राय समझ गयी और बोली, "पिछले एक प्रहर से तो यहाँ बैठी आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।"

यह स्पष्ट संकेत था कि उन्होंने भोजन अभी नहीं किया है। चन्द्रमुखी बोली, "ठीक है आप भी भोजन कर लीजिये।"

शिवकुमार बोला, "यदि आपकी बात मेरी पत्नी से गुप्त नहीं है तो भोजन के समय ही आपसे बात भी हो जायगी।"

"नहीं, इनसे गुप्त नहीं है। हमारी तो एक याचिका है। उसका सम्बन्ध राज्य-कार्य से नहीं है। वह तो केवल आपसे ही सम्बन्ध रखती है। जहाँ तक मैं समझती हूँ पति की बातें पत्नी से अथवा पत्नी की बातें पति से गुप्त नहीं हो सकतीं।"

"तब तो ठीक है। आप मेरी पत्नी के साथ भोजनालय को चलिये। मैं अपने आगार में जाकर वस्त्र बदल हाथ-मुख धोकर आता हूँ।"

शिवकुमार अपने आगार को गया और चन्द्रमुखी उन दोनों को साथ लेकर भोजनालय को चली गयी।

चन्द्रमुखी ने अतिथियों को भोजन के लिए बैठाया। महिला को उसने अपने तथा अपने पति के बीच की चौकी पर बैठने के लिए कहा और अपनी दूसरी ओर उसने उस कुमारी को बैठने के लिए कहा। उसके बराबर में बृहस्पति और फिर सूर्य और कृष्णा के बैठने की व्यवस्था थी।

सबके सम्मुख भोजन परसा गया। घर के प्राणियों के सम्मुख तो नित्य की भाँति पत्तलें थीं और अतिथियों के सम्मुख चाँदी के थाल आदि थे। यह देख उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिला ने कहा, "यह भेदभाव किसलिए ?"

"यह यहाँ की प्रथा है।" सेवक ने उत्तर दिया।

"इसी का अर्थ तो मैं जानना चाह रही हूँ।"

"यह तो प्रथा प्रचलित करने वाले ही बतायेंगे।"

यह सुनकर उस महिला ने चन्द्रमुखी की ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखा तो उसने अपने आते हुए पति की ओर मुख कर लिया।

महामात्य के बैठते ही भोजन प्रारम्भ हो गया। शिवकुमार ने अभ्यागता से पूछा, "हाँ तो अब कहिये। पहले अपना परिचय करा दीजिये।"

उस महिला ने देखा कि न केवल उनके सामने चाँदी के बर्तन हैं अपितु भोजन में भी अन्तर है। महामात्य का परिवार तो साधारण भोजन कर रहा है और उनके सम्मुख अतिथि के लिए उचित आदर-सत्कार का भोजन परसा गया है। उस महिला को संशय हो रहा था और वह इसके समाधान के लिए महामात्य की ओर देख रही थी। महामात्य ने उसकी ओर देखा नहीं। अपितु दाल-भात का ग्रास मुख में डालते हुए उसने कहा, "हाँ, परिचय से ही अपनी बात आरम्भ कीजिये।"

उस स्त्री ने सभ्य भाषा में कहा, "श्रीमान् ! परिचय तो में व्याख्या सहित किसी पृथक् स्थान पर ही बताऊँगी। अभी तो केवल इतना ही निवेदन कर देती हूँ कि मैं ब्राह्मण परिवार से सम्बन्धित हूँ, मेरा नाम कल्याणी है। यह मेरी कन्या है। इसका नाम मृदुला है। मैं विधवा हूँ और यह कुमारी है।

"मैंने इसे स्वयं शिक्षा दी है। अबतक यह पाणिनी का महाभाष्य पूर्ण कर चुकी है। मैं समझती हूँ कि ब्राह्म ग्रन्थों और उपनिषदों का यह इस समय अति सरलता से अध्ययन कर सकती है।

"मेरी शिक्षा की यह सीमा है। किन्तु इसकी उत्कट इच्छा है कि यह वेद का अध्ययन करे। इसको पढ़ाने वाला कोई मिल नहीं रहा है। जहाँ भी जाती हूँ सब यही कहते हैं कि स्त्री होने के नाते इसको वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है।

"कुछ दिन से राजधानी में यह चर्चा है कि महामात्य मनुष्यमात्र के लिए वेदाध्ययन की स्वीकृति की बात करते हैं। इस कारण हम अपनी यह याचिका लेकर उपस्थित हुई हैं कि इस कुमारी के वेदाध्ययन का प्रबन्ध कर दिया जाय। यह विदुषी होने के साथ-साथ तीव्र बुद्धि वाली भी है।"

शिवकुमार ने कहा, "भद्रे ! वेद श्रवण का अधिकार तो में मनुष्यमात्र को देता हूँ। विद्वान् के मुख से वेदार्थ सुनने का अधिकार तो सबको ही है।

"किन्तु वेदाध्ययन की स्वीकृति मैं केवल उसी को देने के पक्ष में हूँ जिसमें उसको प्राप्त करने की योग्यता हो। वेदाध्ययन का अधिकार मैं केवल द्विजों को ही देता हूँ।"

"आप द्विज किसको मानते हैं ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जिसका विधिवत् उपनयन हो चुका हो।"

"उपनयन के लिए स्त्री-पुरुष में भेद भी है ?"

"नहीं, ऐसा विधान तो कहीं नहीं है। यह ठीक है कि स्मृति ग्रन्थों में 'कुमार' शब्द का प्रयोग है। किन्तु वहाँ कुमार शब्द जातिवाचक है। ग्रर्थात् कुमार से ग्रभिप्राय है कौमार्यावस्था को प्राप्त कर चुके हैं। इससे कुमार ग्रौर कुमारी दोनों का ग्रभिप्राय सिद्ध होता है। मनु ने कहा है—"गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मस्योपनयनम्।' ग्रर्थात् गर्भ से ग्राठ वर्ष व्यतीत हो जाने पर ब्राह्मण का उपनयन हो जाना चाहिए। वहाँ कन्या ग्रौर पुत्र में भेद नहीं है।"

"तो भगवन्। इसका उपनयन संस्कार भी ग्राप ही कर दीजिये। तदनन्तर इसकी शिक्षा का भी वैसा ही प्रबन्ध कर दीजियेगा जैसाकि कुमार वृहस्पति का ग्रापने किया है। ग्रथवा जैसे ग्राप किसी कहार के पुत्र का कर रहे हैं।"

"इसमें एक ही कठिनाई है कि मेरे पास समय इतना नहीं रह गया है कि मैं इसको स्वयं शिक्षा दे सकूं। यही कारण है कि मैं वृहस्पति को भी काशी भेजने की व्यवस्था कर रहा हूँ।"

"मैं काशी हो ग्रायी हूँ। वहाँ पण्डित चक्रपाणिजी के विद्यालय में गयी थी। पण्डित चक्रपाणिजी का तो देहान्त हो चुका है। उनके पुत्र पीयूषपाणि उस विद्यालय के ग्रध्यक्ष हैं। उनका कहना था कि शास्त्र तो इसके लिए बाधक नहीं है। परन्तु समाज बाधक बन गया है।

"मुझे वहाँ से भी निराश लौटना पड़ा है। मैं पाटलिपुत्र की निवासिनी भी नहीं हूँ। मैं तो यहाँ इस प्रलोभन से ग्रायी हूँ कि कदाचित् यहाँ का कोई विद्वान् इस कन्या की मनोकामना पूर्ण कर सके। हमें यहाँ ग्राये ग्रभी कुछ ही दिन हुए हैं। पण्डित विभूतिचरण ग्रौर पण्डित पंचानन मिश्र से मैं भेंट कर चुकी हूँ। कल ही पंचानन मिश्रजी ने मुझे बताया है कि ग्राप कदाचित् यह कार्य सम्पन्न करा सकें। उन्होंने बताया कि ग्राप विद्वान् होने के साथ-साथ स्त्री-पुरुष में विभेद नहीं करते। इस सूचना पर ही मैं यहाँ ग्रायी हूँ।"

जिस समय कल्याणी यह वार्त्तालाप कर रही थी ग्रौर पति-पत्नी उसकी बात को सुन रहे थे उस समय उसकी पुत्री वृहस्पति से बात करने में मग्न थी। उसने वृहस्पति से पूछा, "सुना है ग्रापको पूर्व जन्म की बातें स्मरण ग्राती रहती हैं ?"

"हाँ ग्राती हैं। कुछ-कुछ झलक-सी ग्राती है जिस प्रकार बादलों के पीछे विद्युत् चमकती दिखायी देती है। मैं यत्न कर रहा हूँ कि ग्रपने भूत ग्रौर भविष्य का स्पष्ट दर्शन कर सकूं।"

"क्या लाभ होगा इससे ?"

"वही जो किसी वृद्ध को ग्रपने बाल्यकाल की पूर्ण घटना स्मरण हो ग्राने पर होता है। जितनी घटनायें मन में स्मरण रहती हैं मनुष्य उतना ही ज्ञानी माना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। यदि उस ज्ञान का लाभ उठाने की उसमें बुद्धि हो तो फिर उसका अपार कल्याण हो सकता है। इससे वह संसार को तैरकर पार कर सकता है और फिर अपने पुण्य-कर्मों से मोक्ष भी प्राप्त कर लेता है।"

"परन्तु शास्त्र में तो इसके विपरीत बात लिखी है। वहाँ तो लिखा है कि पुण्य करने से चन्द्रलोक अर्थात् स्वर्ग की प्राप्ति होती है। और ज्ञान से ऊपर का लोक अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है।"

यह सुन वृहस्पति को ब्रह्मसूत्र का कथन और उसके पिता द्वारा की गई उसकी व्याख्या स्मरण हो आयी। तब उसने कहा, "नहीं, उसका अभिप्राय यह नहीं है। कर्म तो सदैव होते रहते हैं। जीव मोक्षावस्था में भी कर्म करता रहता है। इस लिए ज्ञानयुक्त कर्म और अज्ञानयुक्त कर्म में विवाद है। जो कर्म पुण्यमय होते हैं किन्तु ज्ञान से युक्त नहीं होते वे कर्म तो मनुष्य को स्वर्ग तक ही पहुँचाते हैं। कदाचित् वह स्वर्ग भी यहीं है। परन्तु जब पुण्यमय कर्म ज्ञानयुक्त भी होते हैं तो वे मोक्ष तक पहुँचाते हैं।

"जो ज्ञान अपने भूत और भविष्य को जानने से होता है वह इस संसार का ही ज्ञान है। उसे अविद्या कहते हैं। अविद्या भी ज्ञान ही है। वह उन पदार्थों का ज्ञान है जो सदा विद्यमान नहीं रहते। सदा विद्यमान वस्तुओं का ज्ञान विद्या कहलाता है। यह ज्ञान भी सदा रहता है। इस कारण कहा है कि जिनके कर्म विद्यायुक्त होते हैं वे मोक्ष पाते हैं। और जिनके कर्म अविद्यायुक्त होते हैं वे स्वर्ग तक ही पहुँचते हैं।

"दोनों अवस्थाओं में कर्म पुण्यमय ही होने चाहिए।"

"आपने तो अभी कहा है कि पुण्य कर्म स्वर्ग में ले जाते हैं ?"

"हाँ, ले जाने और ले आने वाले तो कर्म ही होते हैं। पुण्य कर्म ऊपर को ले जाते हैं और पाप कर्म नीचे को। मोक्षधाम ऊपर अर्थात् श्रेष्ठ धाम है। यह देवलोक से भी श्रेष्ठ है। किन्तु विना कर्म के गति नहीं हो सकती।"

इस प्रकार बातें करते-करते भोजन समाप्त हुआ। हाथ धोकर शिवकुमार और कल्याणी तो पृथक् कमरे में चले गये और वृहस्पति तथा मृदुला बैठक-घर में बैठकर अपनी शास्त्र चर्चा करने लगे।

पृथक् कमरे में पहुँच कल्याणी ने कहा, "अपना परिचय मैं पृथक् कमरे में ही देना चाहती थी इसी कारण मैंने वह बात कही थी। यह मेरी लज्जा की बात है। आपकी पत्नी के सम्मुख कहते मुझे लज्जा लगने लगी थी। यद्यपि मैं जानती हूँ कि आप अपनी पत्नी से यह बात गुप्त नहीं रखेंगे, तदपि वह परोक्ष में ही तो होगा।"

शिवकुमार शान्तचित्त से उसकी बात सुनता रहा। कल्याणी बोली, "इस बात को गुप्त रखने का औचित्य-अनौचित्य मैं आप पर छोड़ती हूँ।

"नर्मदा तट पर अवस्थित एक छोटा-सा गाँव है विश्रुत। मैं वहाँ की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवासिनी हूँ। मेरे पति मेरे लिए वहाँ एक बहुत बड़ा भूमि खण्ड छोड़ गये हैं। उसकी उपज से मेरी आजीविका चलती है। मेरे पति का नाम शुचिमान कौशिक था। वे प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनमें प्रचण्ड बल और ओज भी था। तदपि दस वर्ष के हमारे विवाहित जीवन में उनसे कोई सन्तान नहीं हुई।

"मेरे भरपूर यौवन काल की बात है। तब मैं पच्चीस वर्ष की थी। एक दिन मैं कुएँ पर जल भरने के लिए गयी कि उसकी मुंडेर पर बैठकर अपने निःसन्तान शोकमय जीवन पर विचार करने लगी। तभी अपने देश की एक महान् विभूति उधर से अश्व पर आरूढ़ जा रही थी। उन्होंने मुझे देखा और वे वहीं रुक गये। एक-दो क्षण मुझे देखते रहे और फिर बोले, 'सुन्दरी! यदि मुझपर अनुग्रह करो तो मैं आजीवन तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा।'

"मेरी स्थिति विचित्र थी। तदपि यन्त्रचालित-सी मैं उठी और समीप ही झुरमुट में जाकर बैठ गयी। वहाँ से लौटकर जब मैं आयी तो पूर्ण तृप्ति का अनुभव कर रही थी। वह विभूति भी उसी प्रकार तृप्त थी। जाते हुए उसने मुझे इस संयोग की स्मृतिस्वरूप एक बहुमूल्य मुक्ताहार प्रदान किया था।

"उस एक संयोग से ही मैं गर्भवती हो गयी और मुझे उस अवस्था में देखकर मेरे पति को भी बहुत प्रसन्नता हुई। परन्तु मेरी आत्मा मुझे विवश कर रही थी कि मैं सब कुछ उनको बता दूं। और जब मैंने उनको अपना रहस्य प्रकट किया तो उनको बहुत दुःख हुआ। उसीके परिणामस्वरूप एक दिन उन्होंने नर्मदा में प्रवाह ले लिया।

"मैं विधवा हो गयी। उनके देहान्त के छः मास उपरान्त इस कन्या ने जन्म लिया। यह अति सुन्दर होने के साथ-साथ अत्यन्त प्रखर बुद्धिवती और प्रतिभा-शालिनी भी निकली तो इसकी शिक्षा का प्रबन्ध मैंने स्वयं किया।

"जितना मुझे ज्ञान था उतना मैं उसको पढ़ा चुकी हूँ। इसकी आयु इस समय इक्कीस वर्ष की हो चुकी है किन्तु यह विवाह करना स्वीकार नहीं करती। इसका कहना है कि यदि इसे कोई नहीं पढ़ायेगा तो यह स्वयं पढ़ने का यत्न करेगी।

"इसने यत्न किया भी है। किन्तु उसे किसी पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता है। सबसे कठिन समस्या यह कि वह भले ही काशी हो अथवा पाटलिपुत्र, कहीं किसी पुस्तकालय में इसको वेद सम्बन्धी ग्रन्थों को स्पर्श भी करने नहीं दिया जाता। अपने घर में महर्षि अग्निवेश का भाष्ययुक्त वेद की प्रति है। वह भाष्य एक तो बहुत ही संक्षिप्त है तथा दूसरे वह एकपक्षीय प्रतीत होता है। यह बेचारी उसको समझ नहीं सकी।

"बस, यही मेरी समस्या है। इसके बीजारोपण करने वाले द्वारा दत्त मुक्ताहार इसके पास ही है। वह गुरुदक्षिणा के निमित रखा हुआ है। वह कम-से-कम दस सहस्र स्वर्ण मूल्य का होगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तदपि वह हार विद्या का मूल्य तो नहीं हो सकता ?"

"मूल्य न सही, दक्षिणा तो हो ही सकता है।"

यह सब सुनकर शिवकुमार गम्भीर विचारों में खो गया। कल्याणी उसके मुख को देख रही थी। कुछ क्षण तक विचार कर शिवकुमार ने कहा, "मैं आपके विषय में जाँच कराऊँगा। यदि आपका कथन सत्य सिद्ध हुआ तो मैं इस कन्या के वेदाध्ययन में सहायता करने का यत्न करूँगा।"

"मैं आजीवन आपकी आभारी रहूँगी। और इस पुण्य-कर्म का फल तो परमात्मा ही आपको देगा।"

"आप कहाँ ठहरी हुई हैं ?"

"गंगातट पर स्थित नन्दिनी पंथागार में ठहरी हूँ। मुझे वहाँ रहते हुए एक सप्ताह हो गया है। अभी तीन सप्ताह तक तो उसी में रह सकती हूँ, उसके बाद अन्यत्र व्यवस्था करनी होगी।"

"एक सप्ताह तक अपने निश्चय से मैं आपको अवगत करा दूंगा। यदि शिक्षा के विषय में निर्णय हो गया तो फिर निवास की भी व्यवस्था हो जायेगी। यदि आर्थिक सहायता की आवश्यकता हो तो वह भी बताइये। उसकी व्यवस्था भी की जा सकती है।"

"अपने निर्वाह के लिए हमें किसी प्रकार की आर्थिक सहायता की आवश्यकता नहीं है।"

"ठीक है, एक सप्ताह के उपरान्त मिलने का यत्न करिये।"

दोनों पृथक् आगार से निकलकर बैठक में आये तो मृदुला और वृहस्पति में शास्त्र-चर्चा जारी थी। अपनी माता को आती देख लड़की उठी और बोली, "आपकी विवेचना अद्वितीय है। मैं आपसे फिर कब मिल सकती हूँ ?"

"मध्याह्न के भोजनोपरान्त मुझे आधा प्रहर का अवकाश होता है। तदनन्तर मैं पुस्तकालय चला जाता हूँ। दीपक जलने तक मैं वहाँ रहता हूँ।"

"आप पढ़ते किस समय हैं ?"

"पिताजी को प्रातःकाल देवयज्ञ से पूर्व ही केवल थोड़ा अवकाश मिलता है। इस कारण रात्रि का चतुर्थ प्रहर आरम्भ होते ही हम जाग पड़ते हैं। स्नानादि से निवृत्त होकर दो मुहूर्त भर पिताजी मुझे पढ़ा दिया करते हैं।"

"मैं चाहती हूँ कि आपसे मिलकर आज की चर्चा को जारी रखूं ?"

"ठीक है आ जाइये।"

कल्याणी ने कहा, "मृदुला, महामात्य को प्रणाम करो, फिर हम चलते हैं।"

इस समय चन्द्रमुखी भी आ गयी थी। मृदुला उठी और उसने महामात्य और उनकी पत्नी को प्रणाम किया। फिर दोनों माँ-पुत्री बैठक-घर से निकलकर चली गयीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवकुमार ने वृहस्पति से पूछा, "यह क्या कह रही थी?"

"पिताजी! यह बहुत पठित कन्या है। परन्तु इसके और मेरे निर्वचनों में बहुत अन्तर है। हम अधिकांश पदों का अर्थ समान रूप से नहीं कर सके। पग-पग पर मुझे इसको समझाने की आवश्यकता पड़ रही थी।

"किन्तु जाने से पूर्व उसने स्वीकार किया है कि उसकी विवेचना की अपेक्षा मेरी विवेचना श्रेष्ठ है।"

"हाँ यह अपनी माताजी से पढ़ी है और इसकी माता अपने पिताजी से पढ़ी है। यह कन्या अब वेदाध्ययन करना चाहती है।"

"मुझे भी बता रही थी। किन्तु क्या आप इसे पढ़ायेंगे?"

"क्यों, नहीं पढ़ाना चाहिए?"

"मेरा अभिप्राय यह नहीं था। परन्तु आप पढ़ायेंगे किस समय?"

"मैं महामात्य का कार्य छोड़ दूंगा।"

वृहस्पति और चन्द्रमुखी यह सुन शिवकुमार का मुख देखने लगे। चन्द्रमुखी ने कहा, "देव! ये विपक्ष के गुप्तचर भी तो हो सकते हैं?"

"परन्तु देवी! यहाँ तो कुछ गुप्त है ही नहीं?"

"आपके राज-कार्य में तो वहुत कुछ गुप्त होता है, मैं उसकी बात कर रही थी।"

"उसके विषय में मैंने जाँच करने का निर्णय किया है। इनको एक सप्ताह उपरान्त फिर मिलने के लिए कहा है।"

"देव! यह भी तो विचारणीय है कि एक कन्या को पढ़ाने से अपना और जन-जन का अधिक कल्याण हो सकता है अथवा कि साम्राज्य की सेवा करने से?"

"यदि शिष्य योग्य हो तो वेदाध्यापन साम्राज्य की प्राप्ति से भी अधिक कल्याण-कारी होता है।"

"विचार कर लीजिये।"

"यदि मैं वृहस्पति को वेद-ज्ञान से पूर्ण कर दूं तो सम्राट् समुद्रगुप्त के सामाज्य के प्रबन्ध से सौ गुणा अधिक मैं स्वयं को कल्याण का भागी समझूंगा।"

चन्द्रमुखी चुप रही। उसी समय कार्यालय का प्रतिहार आकर कहने लगा, "भगवन्! पण्डित पंचाननजी मिलने के लिए पधारे हैं।"

शिवकुमार कार्यालय चला गया। आज दिन को विश्राम का अवसर नहीं मिला।

कार्यालय पहुँच मिश्रजी का आदर-सत्कार करने के उपरान्त उन्होंने पूछा, "कहिये किस प्रयोजन से आना हुआ?"

"मैं आपको यह सूचित करने आया हूँ कि मैंने विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव उसको भेज दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरा विशेष निवेदन यह है कि इस बार आप उसकी रक्षा का प्रबन्ध मत कीजिये। मैं चाहता हूँ कि विद्वत्परिषद् राज्य में प्रबल शक्ति के रूप में गठित हो। विभूतिचरण तो राज्य का पिट्ठू बनकर कार्य करता रहा है। मेरा विचार राष्ट्र में एक तृतीय शक्ति के निर्माण का है। एक शक्ति राजसत्ता है। दूसरी जनता है। और तीसरी शक्ति देश के विद्वान् हैं। शताब्दियों से विद्वानों की सामर्थ्य राजसत्ता के अधीन चलती आ रही है। ये तीनों शक्तियाँ समानान्तर रेखाओं में चलनी चाहिए। जब भी इनमें से कोई राष्ट्र के हितों का उल्लंघन करे, अन्य दोनों शक्तियाँ उसका प्रतिरोध कर सकें।"

शिवकुमार मुस्कराता हुआ पंचानन की बात सुन रहा था। जब वह कह चुका तो शिवकुमार ने कहा, "यह स्थिति है तो आदर्श स्थिति। पर इसमें दो बातें बाधक हैं। एक तो ब्राह्मणवर्ग का स्वार्थ और दूसरे विदेशी आक्रमण। इन दोनों का पेट भरने का समय-समय पर यत्न होता रहा है। परन्तु विदेशी आक्रमणों के विरोध के लिए यह समझा गया है कि राजसत्ता को सुदृढ़ किया जाय। राजसत्ता को सुदृढ़ करने के लिए यह समझा गया है कि विद्वान् और प्रजा दोनों राजसत्ता की सहायता करें। यह सहायता उसी रूप में होनी चाहिए जिस रूप में राजसत्ता चाहे। इस पूर्ण योजना का यह अर्थ हो गया कि राजसत्ता ही सर्वोपरि है। इस वृत्तिकार परिस्थिति का किस प्रकार सुधार करोगे और वह सुधार आरम्भ कहाँ से करोगे?"

"मेरा विचार तो यह सुधार ब्राह्मण वर्ग से ही आरम्भ करने का है।"

"मैंने अश्वमेध यज्ञ के समय ब्राह्मण वर्ग का सुधार करने का यत्न किया था। परन्तु वह नहीं हो सका। अब भी जब आपने विद्वत्परिषद् की ओर ध्यान किया है तो ब्राह्मणवर्ग के एक नेता राज्य की छाया में जा बैठे हैं और फिर वहाँ बैठे हुए आपकी योजना को विफल करने का यत्न भी करेंगे।"

"इस समय तो राज्य में आप हैं और प्रजा में भी आपकी ख्याति है। तब यदि आपका आशीर्वाद हमें प्राप्त रहा तो मैं इस जीवन में इस दिशा में कुछ तो यत्न कर ही पाऊँगा।"

"मेरा यथासम्भव सहयोग आपको प्राप्त रहेगा, आप यत्न कीजिये।"

"बस, मुझे यही आश्वासन चाहिए था।"

पंचानन इस भेंट वार्त्ता से सन्तुष्ट हो चला गया।

: ११ :

शिवकुमार ने कल्याणी के विषय में जो जाँच करवायी थी वह एक सप्ताह में पूर्ण हो गयी। यह विदित हुआ कि पण्डित विशाखदत्त का एक सम्बन्धी विश्रुत ग्राम से उन दोनों को पाटलिपुत्र में लाया है। उसने इन महिलाओं को नन्दिनी पन्यागार में ठहरा दिया है और स्वयं वह विशाखदत्त के साथ उसके घर में ही रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है।

उस व्यक्ति का नाम पण्डित हरिहरदेव कौशिक है। वह मृदुला के पिता का दूरस्थ सम्बन्धी भी है। जब से वह यहाँ आया है तब से ही वह इन्हें भिन्न-भिन्न लोगों से मिलाता रहा है। हरिहरदेव स्वयं सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति है और कुछ अधिक पढ़ा-लिखा भी नहीं है।

कल्याणी की कथा की जानकार क्षेत्रों से पुष्टि हुई। उसके काशी जाने और उसके पति के देहान्त के उपरान्त उसके जीवन पर खोज करने के लिए दोनों स्थान पर गुप्तचर भेजे गये। उनसे प्राप्त सूचना के अतिरिक्त शेष सब वृत्तान्त पहले ही प्राप्त हो चुका था।

इस परिपेक्ष में यही उचित समझा गया कि अभी कल्याणी से न मिला जाय। अतः उसको सूचना भेज दी गयी कि वह अपना मिलना अभी एक सप्ताह के लिए और स्थगित कर दे।

इसी अवधि में विद्वत्परिषद् में घोर विप्लव आरम्भ हो गया। पंचानन मिश्र ने विभूतिचरण के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव भेजा तो विभूतिचरण ने अध्यक्ष पद से ही त्याग-पत्र दे दिया। उनके साथ ही पचास अन्य सदस्यों ने भी विद्वत्परिषद् की सदस्यता से त्याग-पत्र दे दिया। उसका परिणाम यह हुआ कि पंचानन मिश्र विद्वत् परिषद् का अध्यक्ष निर्वाचित हो गया।

विभूतिचरण ने ज्यों ही विद्वत्परिषद् से त्याग-पत्र दिया उसे तुरन्त ही राजकीय दान-दक्षिणा कोष का अध्यक्ष बना दिया गया। महाराज के दान-दक्षिणा विभाग का साधारण-सा सम्बन्ध राज-परिवार के पुरोहित के साथ था। यह विभाग राज-पुरोहित के अधीन तो नहीं था परन्तु यदि महाराज की रुचि हो तो उसके सम्बन्ध में उसकी सम्मति भी ले ली जाती थी। पहले कभी कोई वृद्ध ब्राह्मण इसका अध्यक्ष था। उसे किसी गाँव में कुछ भूमि देकर सेवानिवृत्त कर दिया गया था।

जिस दिन पंचानन मिश्र विद्वत्परिषद् का अध्यक्ष बना और वह परिस्थिति से पण्डित शिवकुमार को परिचित कराने के लिए आया उसी दिन महाराज ने प्रातःकाल कथा के उपरान्त पण्डित शिवकुमार को सूचना दी कि पण्डित निर्मल चन्द्र को दान-दक्षिणा विभाग से सेवानिवृत्त कर उसके स्थान पर पण्डित विभूति-चरण को उसका अध्यक्ष बना दिया गया है।

इस सूचना पर शिवकुमार ने किसी प्रकार की कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

अल्पाहार करते हुए महाराज ने कहा, "आप विभूतिचरण की इस नियुक्ति के विषय में क्या कहते हैं ?"

"गरीब ब्राह्मण का पालन होना ही चाहिए।"

"वह क्या इस कार्य के योग्य नहीं है ?"

"क्यों नहीं, वह सर्वथा योग्य है। क्योंकि इस पद के लिए किसी योग्यता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता भी नहीं है।"

"किन्तु आप कदाचित् जानते नहीं कि यह विभाग हमारे परिवार का महान् सहायक है। इसकी पहुँच तो साम्राज्य के दूर-दूर के कोनों तक है।"

"यह तो मुझे विदित है। परन्तु दूर-दूर तक हाथ तो दानी महाराज और महारानी का ही जाता है, अध्यक्ष का नहीं।"

"तदपि नाम तो उसका ही होगा।"

"यह सब आपकी कृपा का फल है।"

उस समय इससे अधिक कोई बात नहीं हुई। परन्तु इस वार्त्तालाप का निष्कर्ष यह निकला कि पंचानन के प्रभाव को शिथिल करने के लिए विभूतिचरण को एक सीढ़ी और ऊपर चढ़ा दिया गया। पंचानन ने जब अपने विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष बनने की सूचना दी तो शिवकुमार ने उसको विभूतिचरण की नयी नियुक्ति की सूचना दे दी।

ब्राह्मणवर्ग पर इस विभाग का क्या प्रभाव है, यह पंचानन मिश्र जानता था। यह सुनकर उसको विस्मय हुआ। फिर कुछ विचार कर कहने लगा, "इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि विद्वत्परिषद् के झगड़े में महाराज रुचि लेते रहे हैं।"

"तो आप क्या समझते थे?"

"मैं तो इसे विशाखदत्त का झगड़ा समझता था और क्योंकि विशाखदत्त राजकुमार विक्रम का गुरु है इसलिए वही उसकी धनादि की सहायता करता होगा।"

"मिश्रजी! जब राजसत्ता का प्रश्न उत्पन्न होगा तो राज्य को राज-परिवार की बपौती समझने वाले सब एकत्रित हो जायेंगे। परस्पर वे भले ही लड़ते रहें राजसत्ता को एक परिवार की बपौती बनाये रखने के लिए वे परस्पर एकत्रित हो जायेंगे। उसी दिशा में यह कार्य हो रहा है।"

कल्याणी और मृदुला के विषय में विश्रुत और काशी से भी सूचना प्राप्त हो गयी। जैसा कि कल्याणी ने कहा था उसी की पुष्टि उस सूचना ने की। इस सूचना के उपरान्त पण्डित शिवकुमार ने कल्याणी को बुलाकर कहा, "कल्याणी बहिन! यदि तुम्हें अपनी कन्या को मुझसे पढ़वाना है तो आप दोनों को मेरे इसी भवन में आकर रहना होगा। मुझे केवल प्रातःकाल सूर्योदय से दो घड़ी पूर्व ही समय रहता है यदि आपकी कन्या को मेरे उस समय से लाभ उठाना है तो उसे इस भवन ही आकर रहना होगा। वृहस्पति भी उसी समय मुझसे पढ़ता है।"

कल्याणी इससे कृतकृत्य हो गयी। उसने हाथ जोड़कर पूछा, "हमें कब तक यहाँ आ जाना चाहिए?"

"आपके रहने की व्यवस्था की जा चुकी है, आप जब चाहें आ सकती हैं।"

उसी दिन सायंकाल से पूर्व दोनों माँ-बेटी पन्थागार को छोड़ महामात्य प्रासाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रांगण में स्थित एक आगार में आकर रहने लग गयीं।

प्रात:काल सूर्योदय से अढ़ाई मुहूर्त पूर्व मृदुला अपने निवास से महामात्य की बैठक में आ जाया करती थी। उस समय वृहस्पति भी वहीं बैठा हुआ अपने पिता की प्रतीक्षा कर रहा होता था। पण्डित शिवकुमार के आते ही अध्ययन आरम्भ हो जाया करता था।

वेदाध्ययन की एक निश्चित विधि थी। सूक्त अथवा मन्त्र का देवता देखकर ही उसके विषय में विवेचना होती थी। देवता का स्वरूप उस सूक्त के मन्त्रों के आधार पर निश्चय किया जाता था। देवता का नाम और उसका अभिप्राय कभी ब्राह्मण ग्रन्थों की सहायता से तो कभी कोष की सहायता से विदित किया जाता था। देवता और उसका स्वरूप जब निर्धारित कर लिया जाता था तो फिर मन्त्र का अर्थ सरल हो जाता था। मन्त्रार्थ के साथ निर्वचन में दर्शन ग्रन्थों की भी सहायता ली जाती थी।

कभी-कभी तो मन्त्रार्थ और मन्त्र निर्वचन में बहुत अन्तर हो जाया करता था। तब फिर मन्त्र और सूक्त का सम्बन्ध वेद के पूर्वापर प्रसंग से जोड़ना पड़ता था।

इस प्रकार यह अध्ययन चल रहा था। जब भी इसमें अन्य ग्रन्थों से तुलना करने के आवश्यकता होती थी, शिवकुमार वृहस्पति को पुस्तकाल्य में जाकर ग्रन्थ निकलवाकर उसकी व्याख्या देखने के लिए कह दिया करता था। इस प्रकार मृदुला और वृहस्पति साथ-साथ पुस्तकालय में जाते और अध्ययन करके साथ ही वापस लौटते।

राजकीय पुस्तकालय का चित्र संग्रहालय उन दिनों आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। एक विशेष बात यह भी हो रही थी कि राजकुमार विक्रम को बहुत अधिक पुस्तकालय में आते-जाते देखा जाता था।

इस प्रकार छ: मास से अधिक का समय बीत गया। एक मन्त्रि-मण्डल की बैठक के उपरान्त महाराज ने महामात्य से पूछा, "महामात्य ! राज्य में कार्य कैसा चल रहा है?"

"महाराज ! लगभग ठीक ही चल रहा है। यह तो आज ही अर्थमन्त्री महोदय ने बताया है कि इस वर्ष राज्य की आय विगत वर्ष से द्विगुणित होनी निश्चित है।"

"परन्तु हम तो आपकी पाठशाला की बात पूछ रहे हैं।"

"मेरे लिए तो वह कार्य मनोरंजन से अधिक कुछ भी नहीं है। रात सोने से पूर्व मदनगोपाल को शतपथ ब्राह्मण और प्रातः यज्ञ से पूर्व वृहस्पति और मृदुला को ऋग्वेद पढ़ाता हूँ।"

"हम उन्हीं के विषयों में पूछ रहे हैं। वह लड़की कैसी है?"

"उसका अध्ययन बहुत अधिक है। परन्तु उस अध्ययन का उपयोग वह अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धि से उस प्रकार नहीं कर सकती, जिस प्रकार कि वृहस्पति करता है।"

शिवकुमार को महाराज द्वारा मृदुला के विषय में पूछताछ करने से आश्चर्य हो रहा था। यद्यपि महाराज ने जो पूछा था उसका उत्तर उसने दे दिया था।

शिवकुमार का यह विस्मय अधिक समय तक नहीं रहा। क्योंकि महाराज ने जो अगला प्रश्न किया उससे ही उनके इस वार्त्तालाप अभिप्राय स्पष्ट हो गया।

महाराज ने तब पूछा, "नगर में यह चर्चा चल पड़ी है कि महामात्य के निवास पर भी वेश्याओं का आना-जाना आरम्भ हो गया है। कुछ लोग तो यहाँ तक कहने लगे हैं कि माँ और पुत्री दोनों का ही इस कार्य के लिए प्रयोग होने लगा है।"

"ऐसी तो कोई बात नहीं है।"

"तब यह विवाद क्यों प्रसारित हो रहा है?"

"मैं नगर आयुक्त को इसकी जाँच करने के लिए कहूँगा।"

"परन्तु हमने तो नगर आयुक्त से ही इस विषय में पूछा था।"

"उस भले व्यक्ति ने मुझसे तो इस विषय में कभी कुछ कहा नहीं।"

"कदाचित् वह आपसे डरता हो।"

"तो महाराज! मैं इस बात की जाँच स्वयं कराऊँगा। यह सर्वथा मिथ्या दोषारोपण है। लड़की को तो मैं लड़की के समान ही मानता हूँ और उसकी माता मुझे अपने पुत्र के समान मानती है।"

"कल राजकुमार भी कुछ इसी प्रकार की बात सुनकर आया था। वह बता रहा था। हमने पुस्तकाध्यक्ष से भी जाँच की है। उसने आपके विषय में तो कुछ नहीं कहा। आप तो कभी पुस्तकालय में जाते नहीं। वृहस्पति वहाँ उस लड़की के साथ जाता है और वे दोनों परस्पर पृथक् में बैठे घण्टों कानाफूसी करते रहते हैं।"

"महाराज! मुझे दो दिन का अवसर दीजिये। मैं इस विषय की पूर्णतया जाँच करके आपको बताऊँगा।"

"ठीक है आप जाँच करवाइये। हमारी इस विषय में जानने की रुचि है। आप हमारे पुरोहित ही नहीं अपितु इस राज्य के महामात्य भी हैं। इस प्रकार आपसे हमारा दोहरा सम्बन्ध है।"

शिवकुमार ने अपने कार्यालय में पहुँचते ही एक पत्र लिखा और उसको प्रतिहारी को देकर नगर आयुक्त को अपने पास बुलवा लिया। आयुक्त आने से पहले उसने घर से वृहस्पति को भी बुलवा लिया। वृहस्पति और मृदुला उसी समय पुस्तकालय से आये थे। वे अभी आकर अल्पाहार ही कर रहे थे।

अपने पिता के बुलाने पर वृहस्पति ने दूध पीना छोड़ा और वह बाहर बैठक-घर में आ गया। शिवकुमार ने पूछा, "तुम पुस्तकालय में किस-किससे मिलते हो?"

"पुस्तकाध्यक्ष कभी-कभी आकर आपके विषय में पूछा करता था। ऐसा वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार पहले भी कर चुका है। यह उस समय की बात है जब विद्वत्परिषद् में विवाद चल रहा था।"

"वह कभी मृदुला के विषय में भी पूछता है ?"

"जी, कुछ दिन हुए उसने पूछा था कि राजकुमार मृदुला से क्या बातें किया करता है। मुझे तो यह ज्ञात नहीं था। मैं तो केवल यही जानता था कि पण्डित हरिहरदेव जो विशाखदत्त और मृदुला दोनों का ही सम्बन्धी है, कभी-कभी उससे मिला करता है। वे कभी पृथक् में जाकर भी बातचीत किया करते हैं। मुझे मृदुला के राजकुमार से मेलजोल का ज्ञान नहीं है।"

"राजकुमार कभी तुमसे भी बात करता है ?"

"कभी-कभी। वह पूछा करता है कि मृदुला पढ़ाई में कैसी है।"

"और मृदुला की पढ़ाई कैसी चल रही है ?"

"उसमें किसी प्रकार की शिथिलता नहीं है। वह पूर्ववत् चल रही है।"

"आज किस विषय पर किस ग्रन्थ को देख रहे थे ?"

"शतपथ ब्राह्मण में इन्द्र के विषय में देख रहे थे। आज तो पूर्ण समय इसी विषय में जानकारी प्राप्त करने में बीत गया। मृदुला ने कई स्थान पर से इन्द्र का वर्णन निकालकर पढ़ा था। हम यत्न कर रहे थे कि किस-किस स्थान पर क्या-क्या लिखा गया है।"

"अच्छा, तुम जाओ और मृदुला को भेज दो।"

वृहस्पति गया और उसने मृदुला को भेजा तो वह उपस्थित हो गयी।

शिवकुमार ने पूछा, "राजकुमार तुमसे क्या बात किया करता है ?"

"गुरुदेव ! पिछले मास तक तो वह मुझसे विवाह करने की बात किया करता था। तब मैंने उसको सदैव यही उत्तर दिया था कि वह इस विषय में मेरी माताजी से बात करे।

"उसने मुझे राज-प्रासाद में चलने का निमन्त्रण भी दिया था। मैंने उसे सदैव यही उत्तर दिया है कि वहाँ तो विवाह के उपरान्त ही जा सकती हूँ और मेरा विवाह जहाँ मेरी माताजी उचित समझेंगी करेंगी।

"किन्तु अब कुछ दिन से वह यह कहने लगा है कि क्योंकि मेरा वास्तविक विवाह तो हो चुका है, इसलिए वह मेरे साथ विवाह नहीं कर सकता। विवाहित स्त्री से वह विवाह नहीं कर सकता।

"मैंने जब इसका प्रतिवाद किया कि मेरा विवाह नहीं हुआ है, वह झूठ बोल रहा है तो उसने कहा कि पण्डित हरिहरदेव और नगर आयुक्त ने इस विषय में जाँच की है। उनकी जाँच से इस बात की पुष्टि होती है।

"मैंने उसे कहा कि वे दोनों ही झूठ बोल रहे हैं।

"तब से मैं उससे नहीं मिली। एक दिन हरिहरदेव मुझे बुलाने के लिए आया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। मैंने उसे डाँट दिया था। वह मुझसे और माताजी से राजकुमार की प्रशंसा करता रहता है। वह यह भी कहता है कि राजकुमार को सदा प्रसन्न रखने का यत्न करना चाहिए। क्योंकि वास्तविक सम्राट् तो वही है।

"माताजी ने उसको कहा था कि वह आपसे मिले। आप उसको सुमति देंगे।

"माताजी ने मुझे और उसे भी यही कहा कि मेरा राजकुमार के साथ विवाह करके अथवा बिना विवाह किये भी उसके घर पर जाकर रहना धर्मानुकूल नहीं है।"

शिवकुमार ने उससे कहा कि वह अपनी माताजी को भेज दे।

कल्याणी के आने पर शिवकुमार ने उससे पूछा, "राजकुमार द्वारा मृदुला से विवाह के प्रस्ताव का आपको ज्ञान है?"

"जी हाँ है। मृदुला ने मुझे बताया था कि राजकुमार ने उसे वेश्या के रूप में उसके आगार में जाने का प्रस्ताव किया था।"

"आपने उसको क्या कहा है?"

"मैंने कहा था यह केवल असम्भव ही नहीं अपितु अधर्मयुक्त भी है।"

"मृदुला की आभ्यन्तरिक इच्छा क्या है?"

"मैं तो उतना ही बता सकती हूँ जितना कि उसने मुझे बताया है। वह तो जब उससे राजकुमार ने कहा कि उसके निवास-स्थान पर चले तो, उसका अर्थ भी नहीं समझ सकी थी। जब मैंने उसे राजकुमार का अभिप्राय समझाया तो वह भय से काँप उठी। मैंने उसको यह भी बताया कि उस जीवन का परिणाम मेरी भाँति माँ बनना भी हो सकता है। तब उसने कहा था कि वह ऐसा कभी नहीं करेगी।

"महामात्य! मैं आपको रहस्य की बात बताती हूँ। महाराज समुद्रगुप्त स्वयं इस कन्या का पिता है। जिस दिन वह मुझे उस कुएँ पर मिला था उन दिनों वह वहाँ से कुछ दूर पर अपनी सेना के साथ टिका हुआ था। इस बात का ज्ञान तो मुझे कुछ समय बाद ही हुआ था कि मेरे गर्भ में स्थित प्राणी का पिता महाराज समुद्रगुप्त है। इस स्थिति में मैं न तो मृदुला का राजकुमार से विवाह कर सकती हूँ और न उसकी प्रेयसी के रूप में रहने के लिए कह सकती हूँ।"

"शायद आपको विदित नहीं कि पाटलिपुत्र में यह विख्यात हो चुका है कि आपसे और आपकी कन्या मृदुला से मेरा अनुचित सम्बन्ध है।"

"इसका एक ही अभिप्राय हो सकता है। वह यह कि राजकुमार जब मृदुला को अपने मनोनुकूल नहीं कर सका तो उसने यह वितण्डावाद खड़ा किया होगा।

"मैं जानती हूँ कि मृदुला कमल के समान निर्मल है।"

"माताजी! यह षड्यन्त्र है और इस षड्यन्त्र का राजनीतिक उद्देश्य है। खैर! अब आप जा सकती हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने से पूर्व कल्याणी ने पूछा, "ऐसी स्थिति में हमें क्या करना चाहिए ?"

"अभी कुछ नहीं। शान्ति से देखती जाइये। मैं यत्न कर रहा हूँ। देखिये क्या हो सकता है।"

कल्याणी के जाने के बाद ही नगर आयुक्त आ गया। उसे बैठाकर महामात्य ने पूछा, "मुझे महाराज ने बताया है कि आपके पास मृदुला नाम की एक कन्या के विषय में कुछ विशिष्ट सूचना है। क्या मैं जान सकता हूँ कि वह विशिष्ट सूचना क्या है और आपको वह कहाँ से प्राप्त हुई है ?"

"मेरे नियमित कार्यालय से तो उस लड़की के विरुद्ध कोई भी सूचना प्राप्त नहीं हुई है। हमारे कार्यालय में उसके विषय में इतना ही ज्ञात है कि वह आपके यहाँ रहती है और नित्य पुस्तकालय में आपके लड़के वृहस्पति के साथ पढ़ने के लिए जाया करती है। मैं इसे ऐसी बात नहीं मानता कि जिसे चरित्रहीनता समझ कर लिखा जाय और इसकी सूचना किसी को दी जाय।"

"मुझे तो यह बताया गया है कि आपने राजकुमार को कहा है कि उसकी माता और वह दोनों ही वेश्यायें हैं ?"

"ऐसी कोई बात मेरे पास लिखित में नहीं है। हाँ, एक देहाती पण्डित ने जो राजकुमार के गुरु विशाखदत्त के पास ठहरा हुआ है, एक दिन मिलकर बातों ही बातों में कहा था कि मृदुला नाम की एक लड़की राजकुमार के घर आती-जाती रहती है। वह राजकुमार के लिए भारी अपमान का कारण बन सकती है।

"उसने ही मुझे यह भी सुझाव दिया था कि मैं महाराज से मिलकर इस लड़की को पाटलिपुत्र से भगा दूं।

"तब मैंने उससे कहा था कि मैं पहले इस विषय की जाँच कर लूं कि कोई मृदुला नाम की लड़की राजकुमार के आगार में आती-जाती है, उसके बाद ही मैं महाराज़ के सम्मुख इस प्रकार की बात प्रस्तुत कर सकता हूँ। अकारण मैं इस प्रकार का लांछन राजकुमार पर नहीं लगा सकता।

"तब उसने कहा कि वह मुझे यह सूचना दे रहा है।

"मैंने उसको कहा कि मैं उसकी सूचना की सत्यता की परीक्षा करूँगा।

"ऐसा सुनने पर वह कहने लगा कि यह सब आपका कुकृत्य है। आपने पहले उस लड़की को दूषित किया है और अब वह राजकुमार को अपने मोहजाल में फाँस रही है।

"दो दिन पूर्व महाराज ने मुझे बुलाकर इस विषय में पूछा था। मैंने उनको बताया कि पण्डित हरिहर नाम के व्यक्ति ने मुझे यह सूचना दी है और मैं इसकी जाँच कर रहा हूँ।

"महाराज का कहना था कि इस विषय की जाँच की आवश्यकता नहीं है। घूरे को उघाड़ने से दुर्गन्ध ही आती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इस बात का सम्बन्ध राजकुमार के भविष्य से है। इसलिए हम चाहते हैं कि बिना किसी को सूचना हुए माँ और पुत्री दोनों को पाटलिपुत्र से भगा दो।

"मैं तो 'जो आज्ञा' कहकर वहाँ से चला आया था। मेरा विचार इस सम्बन्ध में आपसे मिलकर सारी बात बताकर आपसे निवेदन करने का था कि आप इन माँ-पुत्रियों को इनके गाँव वापस भेजने की व्यवस्था करवा दीजिये।

"मैं निश्चय नहीं कर पा रहा था कि आपसे किस प्रकार बात करूँ कि आपका बुलावा आ गया। अब मैं आपको यह सब बताकर आपसे रक्षा की याचना करता हूँ।"

शिवकुमार ने इस बात पर विचार किया और फिर बोला, "ठीक है। आप जैसे अधिकारियों की रक्षा का प्रबन्ध तो करना ही चाहिए।

"अब आप जा सकते हैं। सम्भवतया कल तक इस दिशा में कुछ निर्णयात्मक कर लिया जायेगा।"

इससे नगर आयुक्त यही समझा कि कुछ ऐसा ही किया जायेगा जैसा कि उसने कहा है। इससे वह प्रसन्न होकर वहाँ से चला गया।

रात के भोजन का समय हो गया था। शिवकुमार भीतर गया और हाथ-मुख धोकर भोजन के लिए तैयार हो गया।

भोजन के समय शिवकुमार की मनःस्थिति सामान्य ही समझी जा सकती थी। अपने परिवार के सदस्यों के साथ वह सामान्य विषयों पर ही बात करता रहा। यहाँ तक कि उसकी पत्नी ने भी यह अनुभव किया कि उसका पति प्रसन्न और निश्चिन्त है।

भोजन समाप्त होने पर शिवकुमार ने अपने परिवार के सभी सदस्यों को बैठक में बैठने के लिए कहा। वहाँ बैठकर उसने कहा, "हम लोग आज रात को यहाँ से गुप्त रूप से किसी गुप्त स्थान के लिए प्रस्थान करेंगे। आप लोग केवल अपने वस्त्रों के ही साथ जा पाओगे। यहाँ से कुछ भी नहीं ले जाना होगा।"

"तो हमारी पुस्तकें?" वृहस्पति ने प्रश्न किया।

"यदि कभी फिर यहाँ आने का अवसर मिल गया तो आकर ले जायेंगे। किन्तु अभी तो खाली हाथ ही जाना होगा।"

यह सुनकर चन्द्रमुखी का मुख पीला पड़ गया। उसने पूछा, "मैं क्या-क्या ले जा सकती हूँ?"

"केवल वह स्वर्ण जो मुझे पुरोहित के रूप में दक्षिणा में मिलता रहा है।"

"यह बात मृदुला से भी गुप्त है?"

"हाँ, और अपनी सेविका से भी।"

शिवकुमार के घर में पिता की आज्ञा सर्वोपरि थी। किन्तु इस आज्ञा में किसी प्रकार का शासन नहीं होता था। उसका व्यवहार प्रेममय रहता था। उससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई उसकी आज्ञा के विषय में कभी प्रतिप्रश्न नहीं करता था।

यह आज्ञा पाकर सब अपने-अपने आगार में चले गये।

शिवकुमार अपने कार्यालय में गया। वहाँ उसने महाराज समुद्रगुप्त को बहुत ही विस्तृत पत्र लिखा। उसने उस पत्र को एक आवरण में बन्द किया और उस पर मुद्रा अंकित कर दी। उसके बाद उसने अपने निवास-स्थान के प्रबन्धक को बुलाया और कहा, "नरसिंहदेव! कल प्रातःकाल जब महाराज हमारे निवास-स्थान पर कथा सुनने के लिए आयें तो रथ से उतरते ही उनको यह पत्र दे देना।"

"आप इसे स्वयं देना नहीं चाहते?"

"मुझे कोई आवश्यक कार्य आन पड़ा है। मैं कदाचित् रात को अपने गाँव चला जाऊँ।"

नरसिंहदेव मुख देखता रह गया। शिवकुमार ने कहा, "अब रात काफी हो गयी है। मैं महाराज को जगाकर यह पत्र देना उचित नहीं समझता। और मेरा जाना भी अत्यावश्यक है वह रुक नहीं सकता।"

यह कहकर शिवकुमार उठा और बोला, "इस भवन के कर्मचारियों को इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की सूचना देने की आवश्यकता नहीं। कम-से-कम मेरे जाने से पूर्व किसी को भी यह सूचना न मिले कि मैं जाने वाला हूँ।

"मेरे चले जाने के बाद प्रातःकाल बता देना कि आवश्यक कार्य से मुझे अपने गाँव जाना पड़ गया है जिसे कि टाला नहीं जा सकता था। मैं शीघ्र ही लौटकर आऊँगा, यह भी बता देना।"

नरसिंहदेव इस सबमें कुछ रहस्य तो समझ रहा था किन्तु वह जानता था महामात्य और महाराज के मध्य किसी को झाँकने का कोई अधिकार नहीं है। उसने पत्र को अपने उत्तरीय में सुरक्षित रख लिया और फिर बोला, "पण्डितजी! कुछ और आज्ञा भी है?"

"नहीं, अब आप जाकर सो जाइये।"

इस बार जब शिवकुमार उज्जयिनी से पाटलिपुत्र आया था तो अपने रथ पर ही आया था। उस रथ को उसने पद्मावती पन्थागार में रखवा दिया था। रथ के लिए घोड़े पड़ाव पर मिलते जाते हैं।

शिवकुमार ने पन्थागार के प्रबन्धक को एक पत्र लिखा और उसे अपने निजी सेवक द्वारा उसके पास भेज दिया। पत्र में शिवकुमार ने लिखा था कि उसके रथ को यात्रा के योग्य बनाकर उसके लिए अश्वों का प्रबन्ध कर दिया जाय। अश्व, सारथी और रथ को रात्रि के तीसरे प्रहर तक महामात्य भवन पर पहुँचा दिया जाय और सारथी को निर्देश दिया जाय कि वह अपने पहुँचने की सूचना भीतर भिजवा दे।

इस प्रबन्ध के अन्तर्गत मध्य रात्रि के आधा प्रहर उपरान्त महामात्य भवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बाहर उनका अपना रथ तैयार खड़े होने की सूचना महामात्य को दी गयी। महामात्य परिवार सहित इसकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। अपना संक्षिप्त-सा सामान उठाकर वे लोग रथ में आरूढ़ हुए और वहाँ से चले दिये।

महामात्य को जब इस प्रकार बिना किसी सामान के जाते देखा तो द्वारपाल आदि यही समझे कि महामात्य अपने परिवार सहित नगर में ही किसी स्थान पर जा रहे होंगे। अतः उन्होंने किसी प्रकार की उत्सुकता व्यक्त नहीं की। महामात्य से उनके गन्तव्य के विषय में पूछने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था।

इस प्रकार एक बार पुनः पण्डित शिवकुमार पाटलिपुत्र से प्रस्थान कर गया।

: १२ :

दूसरे दिन प्रातःकाल यथानियम महाराज और महारानी कथा सुनने के लिए आये। उनके साथ आज राजकुमार विक्रम भी था। महाराज के रथ को देख नरसिंहदेव, जोकि उनकी प्रतीक्षा में ही खड़ा था, उनके सम्मुख आ प्रणाम कर पण्डित शिवकुमार का दिया हुआ पत्र उनको देने लगा।

महाराज ने पूछा, "यह क्या है ?"

"जाने से पूर्व महामात्य यह पत्र आपके लिए दे गये थे।"

"पण्डितजी कहीं गये हैं ?"

"जी।"

"कहाँ ?"

मध्यरात्रि के समय वे अपने रथ पर आरूढ़ होकर चले गये हैं। जाने से पूर्व यह पत्र देते हुए उन्होंने कहा था कि प्रातःकाल जब आप कथा सुनने के लिए आयें तो महाराज को मैं यह पत्र दे दूँ। वह आवश्यक कार्य से गाँव जा रहे हैं, शीघ्र ही वापस आ जायेंगे। कार्य अत्यावश्यक था, उसे टाला नहीं जा सकता।"

"भीतर कोई नहीं है ?"

"जी नहीं, महाराज !"

समुद्रगुप्त विक्रम का मुख देखता रह गया। राजकुमार स्वयं विंस्मय में नरसिहदेव का मुख देख रहा था। सभी मौन खड़े थे। कोई कुछ बोल नहीं रहा था।"

"चलो, भीतर चलकर देखें वे क्या कुछ ले गये हैं ?" महाराज ने सुझाव दिया।

तब नरसिंहदेव ने कहा, "महाराज ! वे कुछ भी लेकर नहीं गये हैं। केवल जो वस्त्र उन्होंने पहन रखे थे, उन वस्त्रों में ही वे यहाँ से निकल गये हैं। एक गठरी में कदाचित् धोती-अंगोछा होगा। उनकी पत्नी के हाथ में एक छोटी-सी पेटिका थी। बच्चों के किसी के हाथ में कुछ नहीं था।"

"सुना है बृहस्पति ने बहुत पुस्तकें लिखकर रखी हैं ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जी वे सब भीतर ही रखी हैं।"

तदपि महाराज, महारानी और राजकुमार भीतर गये। वे सब आगारों में घूम-घूमकर देखने लगे। वे समझ रहे थे कि शीघ्रता में असावधानी के कारण कुछ तो उथल-पुथल हुई होगी। किन्तु उन्हें यह देखकर प्रसन्नता हुई कि सब वस्तुयें यथावत् रखी हैं।

पूर्ण निवसा-गृह का निरीक्षण-परीक्षण करने के उपरान्त वे यज्ञशाला में गये। यज्ञकुण्ड ठण्डा पड़ा था। महाराज परस्पर कुछ कहने ही वाले थे कि द्वार पर खड़ी कल्याणी ने भीतर आने की स्वीकृति चाही। उसके साथ उसकी पुत्री मृदुला भी खड़ी थी।

"हाँ, आइये। कौन हैं आप ?"

कल्याणी ने महाराज को नमस्कार किया और फिर बोली, "मुझे आपसे पृथक् में बात करनी है। जाने से पूर्व महामात्य ने मुझसे बहुत पूछा था। उस वार्त्तालाप के आधार पर उनके जाने के विषय में कुछ ज्ञान हो सकता है।"

"बोलो, कहाँ बात करना चाहती हो ?"

"जहाँ की आप स्वीकृति दें।"

"परन्तु भद्रे ऐसा लगता है कि तुम्हें कहीं देखा है ?"

"हाँ महाराज ! आपकी स्मरण-शक्ति अभी ठीक है। तदपि अपने विषय में भी मैं पृथक् में ही बात करूँगी।"

महाराज को सन्देह हुआ। उन्होंने मृदुला की ओर देखा। कल्याणी ने उसका परिचय देते हुए कहा, "महाराज ! यह मेरी कन्या है। मृदुला इसका नाम है। इसके विषय में मैं कुछ निवेदन करना चाहती हूँ। परन्तु वह भी पृथक् में ही सम्भव है।"

"आधा प्रहर उपरान्त राज-प्रासाद में पहुँच जाना, वहीं हम तुमसे पृथक् में बात करेंगे।"

कल्याणी ने नमस्कार किया और यज्ञशाला से बाहर जाने लगी तो महारानी ने हाथ उठाकर उसे जाने से रोक दिया। कल्याणी फिर खड़ी हो गयी। उसे खड़े होते ही महारानी ने कहा, "परन्तु मैं तुमसे अभी बात करना चाहती हूँ।"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

"तो इधर आओ, मैं भी पृथक् में ही बात करूँगी।"

कल्याणी ने महाराज की ओर देखा। महाराज अनिश्चित मन थे। महारानी बोली, "महाराज ! हमारे राज-प्रासाद में लौटने में अभी पर्याप्त समय है। मैं उस समय से पूर्व ही अपनी बात पूर्णकर लूंगी। मैं महामात्य के विषय में इनसे कुछ जानना चाहती हूँ।"

महारानी ने कल्याणी का हाथ पकड़ा और उसे बैठकघर में ले गई। वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठकर उसने पूछा, "पण्डित शिवकुमार के साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है ?"

"माँ-पुत्र का ।"

"और उस कन्या का ?"

"गुरु-शिष्य का । महामात्य उसे अपनी पुत्री के समान ही मानते हैं ।"

"दोनों पति-पत्नी भाव नहीं हैं ?"

"महारानी जी ! इस विषय में इस प्रकार सोचना भी महान् पाप होगा । इसी लाँछन के कारण महामात्य यहाँ से चले गये हैं । उन्होंने जाने से पूर्व मुझको बताया था कि महाराज कुछ इस प्रकार का सन्देह करते हैं । उनका कहना था कि राजनीतिक उद्देश्य से प्रेरित यह उनके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा जा रहा है ।"

"मुझसे मिलने किस समय आ सकती हो ?"

"महाराज से मिलने के उपरान्त जिस समय भी महारानी आज्ञा करें ।"

"महाराज से मिलने के तुरन्त बाद मुझसे मिलने के लिए आ जाना ।"

"यदि आपसे मिलने में किसी प्रकार की बाधा न हुई तो अवश्य आ जाऊँगी ।"

"किसी प्रकार की कोई बाधा नहीं होगी । प्रतिहारी से कह देना वह तुम्हें मेरे आगार तक पहुँचा देगी ।"

कल्याणी चुप रही, महारानी ने पूछा, "यह लड़की तुम्हारे अपने पति से ही है ।"

"महारानी जी ! मेरे ग्राम के सभी निवासी जानते हैं कि यह मेरे अपने पति से उत्पन्न सन्तान है ।"

"पण्डित हरिहरदेव तुम्हारे क्या लगते हैं ?"

"वह दूर का मेरा सम्बन्धी है । जब मैं पाटलिपुत्र के लिए आने लगी तो मुझे किसी संरक्षक की आवश्यकता पड़ी । वह आने के लिए तैयार हो गया । तब से वह मेरा वेतनभोगी संरक्षक है ।"

"और तुम्हारे पति ?"

"यदि उसने इस प्रकार की कोई बात की है तो उसने असत्य भाषण किया है । मैं विधवा हूँ । मेरे पति नही हैं ।"

महारानी फिर अधिक नहीं बोली ।

महारानी जब यज्ञशाला में पहुँची तो राजकुमार उस समय पण्डित शिवकुमार द्वारा दिया गया पत्र पढ़ रहा था । महाराज ने महारानी को बैठने को कहा । वह बैठ गई तो राजकुमार ने पुनः उस पत्र को आरम्भ से पढ़ा । उसमें लिखा था—

"महाराजाधिराज !

'मुझे खेद है कि मैं आपसे मिले बिना यहाँ से जा रहा हूँ । इस पत्र द्वारा मैं अपने महामात्य पद से मुक्ति की याचना करता हूँ । इस याचना के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकार होने तक अवकाश की याचना करता हूँ।

साम्राज्य के कार्य सब मन्त्रियों द्वारा किये जा रहे हैं। वे सब आपको विदित ही हैं। मैं तो केवल उनके कार्यों का समन्वय ही करने वाला था। वह कर पाना अब मेरे लिए सम्भव नहीं है।

अभी तो मेरी इच्छा अपने ग्राम जाने की है। मेरा इस प्रकार सहसा यहाँ से जाने का निश्चय इस कारण हुआ कि आप विवेक छोड़कर मुझ जैसे राजभक्त को जान-बूझकर दोषी बना रहे हैं।

यद्यपि इन आरोपों का राज्य से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। ये मिथ्या होने पर भी राजनियम के आधार पर दण्डनीय नहीं हैं, यदपि ये मिथ्या और मिथ्या उद्देश्य की पूर्ति के लिए लगाये गये हैं। इनमें रंचमात्र भी आधार नहीं है।

यद्यपि जाने से पूर्व मैं इनका कोई उल्लेख करना नहीं चाहता था किन्तु आपने मन्त्रिमण्डल के सम्मुख इनका उल्लेख किया है। इस कारण उनका खण्डन करना मैंने आवश्यक समझा है।

जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ, उन लाँछनों का उद्देश्य मुझे पाटलिपुत्र से भगाना ही था। एक सामान्य से उद्देश्य के लिए भगीरथ असत्य और निन्दात्मक अभियान आरम्भ किया गया है। आपने मुझे बुलाकर स्पष्ट कह दिया होता कि मुझे महामात्य पद छोड़कर पाटलिपुत्र से चला जाना चाहिए तो मैं आपका कृतज्ञ होता और तुरन्त सेवा-मुक्त हो पाटलिपुत्र छोड़ देता।

अब मैं जा रहा हूँ। अपने साथ केवल मात्र वही मैं लेकर जा रहा हूँ जो आठ वर्ष पूर्व लेकर आया था। मेरा अभिप्राय है कि हम केवल अपने वस्त्रों को लेकर ही जा रहे हैं। वस्त्रों के अतिरिक्त वह धन भी ले जा रहा हूँ जो मुझे पुरोहित के रूप में दक्षिणास्वरूप मिला है।

मैंने कोई अपराध नहीं किया। इस कारण यहाँ से लुक-छिपकर भी नहीं जा रहा हूँ। यही कारण है कि यह पत्र लिखकर आपको इसकी सूचना दे रहा हूँ।

अब तक की आपकी कृपाओं के लिए आभारी,

आपका सेवामुक्त महामात्य
पण्डित शिवकुमार"

राजकुमार ने पत्र पढ़ा और उसे महाराज को लौटाते हुए कहने लगा, "महाराज ! अब चलिये।"

"महाराज ने ताली बजाई। नरसिंहदेव आ गया। महाराज ने कहा, "इस भवन को ताला लगादो, यहाँ की कोई भी वस्तु इधर-उधर न हो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जी आज्ञा महाराज !" यह कहकर नरसिंहदेव एक ओर को खड़ा हो गया।

महाराज अपनी पत्नी और पुत्र को साथ ले रथ पर आरूढ़ हो राज-प्रासाद के लिए चले गये। प्रासाद में पहुँचते ही राजकुमार ने कहा, "अब मैं जाऊँ।"

"हाँ जा सकते हो।"

विक्रम के जाने पर महाराज को सुख का अनुभव हुआ। अब वह अपनी पत्नी से खुलकर बात कर सकते थे।

बैठक में पहुँचकर महारानी ने कहा, "मैं कुछ इस प्रकार की ही अपेक्षा कर रही थी?"

"क्या अपेक्षा कर रही थीं?"

"यही की राजमुकुट का बोझ वहन करना अब आपके वश में नहीं रहा है।"

"अर्थात् अब हमको संन्यास ले लेना चाहिए।"

"हाँ आपको तो संन्यास ले लेना चाहिए। परन्तु कठिनाई यह है कि आपके बाद विक्रम में तो उतना भी सामर्थ्य नहीं है जितना आप में है। एक भले ब्राह्मण को शान्ति से काम करने का अवसर भी उसने नहीं दिया।"

"उसकी बात मैं जानता हूँ। उसके गुरुजी साहित्याचार्य हैं। वे राजनीति का वर्णाक्षर भी नहीं जानते।"

"किन्तु वह शिवकुमार को भगा देने की युक्ति को भली-भाँति जानता है। यदि इस समय हरिषेण पण्डित यहाँ होते तो विशाखदत्त का चिह्न भी यहाँ दिखाई नहीं देता।"

"यदि ऐसी ही बात है तो हम उज्जयिनी के आयुक्त को लिख देते हैं कि वह हरिषेण को पकड़कर यहाँ भेज दे। वह जब यहाँ आ जाय तो तुम उसको मना लेना। वह फिर यहाँ का महामात्य बन जायेगा तो विशाखदत्त का चिह्न मिटवा देना।"

"मैं यहाँ की महाराजाधिराज नहीं हूँ।"

"हम आज ही अपना पद त्यागकर आपको मगध की साम्राज्ञी बना देते हैं। तब तुम हरिषेण अथवा शिवकुमार, जिसको भी चाहो मगध का महामात्य बना लेना।"

"एक बार पण्डित शिवकुमार ने कहा था कि विद्वान् लोग राज्य पलट सकते हैं। वास्तविक विद्वान् तो कोई दिखाई ही नहीं देता। इसलिए भला यही है पहले उस विद्वान् महामात्य को एक बार बुला लीजिये उसके बाद ही सत्ता हस्तान्तरण की बात उचित होगी।

"मेरी सम्मति तो यही है कि राजकुमार और शिवकुमार में सन्धि करवा दीजिये। उस सन्धि में विशाखदत्त को राज्य से निष्कासन की शर्त भी होनी चाहिए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उधर राजकुमार सीधे विशाखदत्त के पास पहुँचा और उसने उसको पण्डित शिवकुमार के भाग जाने की सूचना दी। यह सूचना पाकर विशाखदत्त बहुत प्रसन्न हुआ। उसने पूछा, "राजकुमार! अब राज्य का महामात्य कौन होगा?"

"गुरुदेव! यही तो समस्या है। महामात्य तो महाराज, महारानी, राजकुमार और ब्राह्मणवर्ग तथा सेना की रुचि का होना चाहिये।

"रुचि का ज्ञान पहले होना चाहिए अथवा नियुक्त महामात्य इन सब वर्गों में स्वयं के प्रति रुचि उत्पन्न कर सके।"

"तो ऐसा व्यक्ति ढूंढ़ना होगा।"

"महाराज के जीवनकाल में यह कार्य हो जाना चाहिए।"

राजकुमार चाहता था कि विशाखदत्त को महामात्य नियुक्त किया जाय। परन्तु इसके लिए प्रजा की सहमति होना आवश्यक था। राजकुमार बोला, "आप विद्वत्परिषद् में अपनी विद्वत्ता प्रकट कीजिये, तभी कार्य सिद्ध हो सकता है।"

"क्या कार्य सिद्ध हो सकता है?"

"आप इस विशाल साम्राज्य के महामात्य बन सकेंगे। महाराज और मन्त्री-मण्डल को तो मैं आपके पक्ष में कर लूंगा। प्रजा को अनुकूल करने के लिए ब्राह्मण वर्ग को अपने साथ करना आवश्यक है।

"यह कार्य विद्वत्परिषद् द्वारा सम्पन्न हो सकता है।"

"पण्डित विभूतिचरण को बुलवाइये, उनके द्वारा ही इस सम्बन्ध में कुछ विचार कर कार्य किया जा सकता है।"

राजकुमार वापस आ गया।

राज-प्रासाद के दूसरे कक्ष में प्रातःकाल के अल्पाहार के उपरान्त महाराज कल्याणी से बात कर रहे थे। कल्याणी के आने की सूचना पाने पर उसे बैठक-घर में बुलवा लिया गया। उसे बैठाकर महाराज ने पूछा, "देवी! बैठिये। आप कौन हैं?"

"महाराज! विश्रुत गाँव के बाहर स्थित कुंए पर जल भरने वाली एक सुन्दर युवती का आपने उस कुएँ के समीप आम्रवन में उपभोग किया था। वह रमणी वहाँ के एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण की विवाहिता पत्नी थी।"

"हम भी कुछ वैसा ही विचार कर रहे थे।"

"हाँ महाराज! और वह लड़की, जिसे प्रातःकाल आपने देखा था, उसी संसर्ग का परिणाम है।

"मेरे पति ने दस वर्ष के विवाहित जीवन के उपरान्त जब अपनी पत्नी को गर्भवती पाया तो बहुत प्रसन्नता व्यक्त की थी। परन्तु महाराज! मैं उस सरल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित् ब्राह्मण को छल नहीं सकी। मैंने उसको बता दिया था कि यह सन्तान मैं कहीं से लायी हूँ। मैं इसे अब आपको सौंपकर इस संसार से विदा होना चाहती हूँ।

" 'किन्तु तुमने उस समय समर्पण किया ही क्यों था ?' उन्होंने पूछा था।

"महाराज ! समर्पण तो उसके पिता के ओज को न सहन कर सकने के कारण किया था। परन्तु अब उसका उचित प्रायश्चित करने के विचार से कह रही हूँ। मैं इस निर्दोष जीव को आपको सौंपकर इस पतित शरीर को छोड़ देने को संकल्प कर चुकी हूँ।

"वे भद्रपुरुष उस समय तो चुपचाप सुनते रहे। किन्तु जब स्नान करने के लिए नदी पर गये तो स्वयं ही उन्होंने नदी में प्रवाह ले लिया। इस कारण मुझे अपना विचार फिर त्यागना पड़ा।

"मैंने इस कन्या का पालन-पोषण किया है और जितना में स्वयं पढ़ी-लिखी हूँ उतना सब मैंने इसको पढ़ाया-लिखाया है। लड़की की वेदाध्ययन की उत्कट इच्छा थी। मैंने महामात्य से निवेदन किया और उसकी वह इच्छा यहाँ रहकर पूर्ण भी होने लगी थी परन्तु आपने उसको ही यहाँ से भागने पर विवश कर दिया है।"

इसके उपरान्त कल्याणी ने वह सबकुछ बता दिया जो पहली सायंकाल पण्डित शिवकुमार ने उसको बताया था। अन्त में कल्याणी ने कहा, "आज प्रातःकाल नियमानुसार मेरी पुत्री पण्डितजी के पास पढ़ने के लिए गयी तो उसने देखा कि उनका निवास-गृह सूना पड़ा हुआ है।"

"तुम हमको पृथक् में क्या बताना चाहती थीं ?"

"यही कि शिवकुमार के विपरीत जिसने भी जो कुछ विष आपके भीतर भर दिया है, वह सब निराधार है। आपने मेरा और मेरी पुत्री का अपकार तो किया ही है उससे अधिक अपकार आपने अपनी कोटि-कोटि प्रजा का किया है। महाराज ! आपको यह पाप तो बहुत ही महँगा पड़ेगा।"

"देखो कल्याणी ! अभी तुम उसी भवन में रहो। हम पण्डित शिवकुमार को यहाँ लाने का यत्न करेंगे।

"उन्होंने महामात्य पद से त्याग-पत्र दिया है परन्तु उन्होंने हमारे पुरोहित पद से त्याग-पत्र नहीं दिया है। उस नाते तो उन्हें हमारे प्रास रहना ही चाहिए। उन्हें अपने यजमान के पास वापस आना चाहिए। वह आयेगा तो तुम्हारी कन्या की शिक्षा का प्रबन्ध भी हो जायेगा।"

इस प्रकार महाराज से भेंट-वार्त्ता समाप्त कर कल्याणी महारानी के पास जा पहुँची। महाराज की बैठक से निकलते ही एक अन्य प्रतिहारी उसको अन्तःपुर के द्वार पर ले गया। वहाँ से एक सेविका उसको महारानी की बैठक-घर में ले गयी।

उसका स्वागत करते हुए महारानी ने कहा, "आओ कल्याणी देवी ! बैठो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने तुम्हें केवल यह जानने के लिए बुलाया है कि यह कन्या तुम्हारी अपनी औरस सन्तान है अथवा कि पालित सन्तान ?"

"महारानीजी ! यह मेरी औरस सन्तान है।"

"राजकुमार इससे विवाह करने की इच्छा व्यक्त कर रहा है। कन्या ने जब उसका प्रस्ताव अस्वीकार किया तो उसने उसको कुख्यात कर अपनी रखैल बनाने का यत्न किया था। परन्तु आज प्रातःकाल तो वह विधिवत् विवाह का प्रस्ताव लेकर ही महामात्य के भवन पर गया था।"

"परन्तु जो कुछ राजकुमार ने उस लड़की के साथ किया है उसके बाद तो विवाह का विचार ही मन में नहीं लाना चाहिए था।"

"उसके लिए वह लज्जित है और क्षमायाचना करता है। एक समय उस कन्या ने कहा था कि उसके विवाह की बात उसकी माँ से की जाय।"

"जी हाँ। मुझे इस बात का ज्ञान है। परन्तु महारानीजी ! जो कुछ राजकुमार ने उसके साथ किया है उसके परिपेक्ष्य में तो लड़की जीवित चिता पर जलकर मर जाना उपयुक्त समझेगी, किन्तु उससे विवाह नहीं करेगी।"

"तब तो तुम्हारे लिए इस नगर में रहना कठिन हो जायेगा।"

"मैं तो आज ही इस नगर से चली जाने वाली थी, किन्तु महाराज ने आज्ञा दी है मैं और मेरी लड़की कुछ समय तक यहाँ रहकर प्रतीक्षा करें।"

"बहुत कठिन हो जायेगा। महाराज के अतिरिक्त यहाँ अन्य शक्तियों का भी आविर्भाव हो रहा है। महाराज का उनपर नियन्त्रण हो पाना सम्भव नहीं है।"

"तो मैं महाराज को इसकी सूचना देकर यहाँ में चली जाना चाहूँगी। परन्तु मेरी कन्या का विवाह राजकुमार से नहीं हो पायेगा।"

"सोच लो। एक ओर मगध की पटरानी का आसन है और दूसरी ओर मगध के राजमहल में बन्दी-बाँदी का जीवन।"

"आप इस विषय पर महाराज से परामर्श कर लीजिये। मेरा तो केवल यही कहना है कि यदि ब्राह्मण कन्या का अपमान किया गया तो वह कहीं राज्य को ही न ले डूबे।"

"अब तुम जा सकती हो।" महारानी ने सहसा कह दिया।

कल्याणी उठकर राजप्रासाद के द्वार की ओर चल दी।

कल्याणी अन्तःपुर से निकलकर राजमार्ग पर आयी तो उसने देखा कि राजधानी की सारी दुकानें बन्द होने लगी थीं। दुकानदार अपनी दुकान के द्वार बन्द कर रहे थे और चलते-फिरते लोग इसकी चर्चा करते जा रहे थे। एक स्थान पर एक झुण्ड खड़ा था। कल्याणी वहाँ पहुँच एक व्यक्ति से पूछने लगी, "यह क्या हो रहा है ?"

"बहिनजी ! पता नहीं पूर्ण नगर ही बन्द हो रहा है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब एक अन्य व्यक्ति बोला, "कदाचित् महाराज का देहान्त हो गया है।"

महाराज के निधन की बात का कल्याणी को विश्वास नहीं हुआ। अभी दो घड़ी पूर्व ही तो वह महाराज से बात कर रही थी और उस समय महाराज पूर्णतया स्वस्थ थे।

वह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती जाती थी पूर्ण नगर में क्रोध की लहर-सी व्याप्त होती देख रही थी। उसे विचार आया कि जितना शीघ्र सम्भव हो उसको अपने निवास-गृह पर पहुँच जाना चाहिए। वहाँ चलकर ही यथार्थ स्थिति का ज्ञान हो पायेगा।

जब तक कल्याणी अपने निवास अर्थात् महामात्य भवन तक पहुँची पूर्ण नगर में हड़ताल हो चुकी थी। लोग अपने घरों से निकलकर सड़कों पर आ गये थे। महामात्य भवन के बाहर अपार भीड़ एकत्रित हो रही थी। बड़ी कठिनाई से उस भीड़ में से मार्ग बनाकर वह भवन के मुख्य द्वार तक पहुँच पायी थी।

मुख्य द्वार पर पहुँच उसने देखा कि द्वार बन्द है। कुछ नागरिक द्वार की रक्षा के लिए खड़े सुभट्ट से कहा-सुनी कर रहे हैं। सुभट्ट उनको भीतर जाने से रोक रहा था।

सुभट्ट से झगड़ा करने वाला पण्डित पंचानन मिश्र था। कल्याणी ने उसे पहचान लिया था। वही वह व्यक्ति था जिसने कल्याणी को बताया था कि केवल महामात्य ही उसकी कन्या को वेद पढ़ा सकते हैं।

उसे पहचान कल्याणी ने पूछा, "पण्डितजी! क्या बात है?"

"हम महामात्य से मिलने के लिए आये हैं और ये लोग हमें भीतर ही नहीं जाने दे रहे हैं।"

"किन्तु महामात्य तो भीतर नहीं हैं।" कल्याणी ने बताया।

"तो कहाँ हैं?"

"वे अपने गाँव लौट गये हैं।"

"क्यों?"

"यह बात यहाँ खड़े-खड़े नहीं बतायी जा सकती।"

"तो कहाँ चलकर बताओगी?"

"भीतर मेरी लड़की है, वहाँ आइये। आपको सब कुछ बता दूँगी।"

"परन्तु यह नायक भीतर नहीं आने देगा।"

"नायक महोदय! पण्डितजी को आने दो।" कल्याणी ने कहा।

"मैं केवल एक ही व्यक्ति को भीतर आने दूँगा।"

"हाँ, केवल इन्हें ही।"

इस प्रकार कल्याणी उसको लेकर भीतर चली गयी।

उसको साथ लेकर कल्याणी अपने आवास के बाहर पहुँची तो उसने देखा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुदृला उसकी प्रतीक्षा में खड़ी है। माँ को देख अनायास उसके मुख से निकल गया "माँ ! क्या हो गया है ?"

अपनी पुत्री का प्रश्न सुनकर कल्याणी ने मिश्रजी की ओर देखा। मिश्रजी कहने लगे, "आज ब्रह्ममुहूर्त में ही मुझे यह समाचार मिला था कि महामात्य का आवास खाली पड़ा है। अभिप्राय यह कि महामात्य कहीं चले गये हैं।

"मैं इसका कारण जानने के लिए इधर को भागा। परन्तु अपने निवास-स्थान से निकला ही था कि सेठ घनश्याम वाटक कहीं से आकर अपने निवास-स्थान की ओर जाते हुए मिल गये। वे मेरे पड़ोस में ही रहते हैं।

"मैंने पूछा, 'सेठजी ! इस समय कहाँ से आ रहे हैं ?'

"वह कहने लगे, 'राज-परिवार की मति भ्रष्ट हो गयी है।'

"क्या हुआ है ?

" 'रात दूसरे प्रहर के मध्यकाल में पद्मावती पन्थागार के प्रबन्धक धनेश्वरजी ने मुझे बुलवाया था। मैं अपने सम्बन्धी के पुत्र के विवाह पर गया हुआ था। वहाँ से रात के तृतीय प्रहर घर लौटा तो उनका सन्देश मुझे मिला। मैं उसी समय पन्थागार जा पहुँचा।

"धनेश्वरजी ने मुझे बताया कि पिछले दो वर्ष से महामात्य का रथ उनके पास व्यर्थ में पड़ा था। आज सहसा महामात्य ने उस रथ को और उसके लिए अश्व और सारथी का प्रबन्ध कर मँगवा लिया है।

"धनेश्वर का विचार था कि महामात्य कहीं रहस्यमय स्थिति में यहाँ से चले जा रहे हैं। राजकीय रथ में न जाकर उनका इस प्रकार अपने रथ में अर्द्धरात्रि में जाना यही प्रकट करता है।

" 'यह सुनकर मैं उसी समय महामात्य के निवास पर गया। वहाँ जाकर द्वार पर खड़े सुभट्टों के नायक से विदित हुआ कि महामात्य रात को नगर के आयुक्त से मिले थे। मध्यरात्रि के कुछ ही समय उपरान्त वे अपने परिवार को केवल पहने हुए वस्त्रों में ही लेकर रथ पर सवार होकर यहाँ से चले गये हैं।

" 'मैं अभी नगर आयुक्त से मिलकर आ रहा हूँ। उससे विदित हुआ है कि महाराज और राजकुमार महामात्य पर झूठा लाँछन लगाकर उन्हें अपमानित कर यहाँ से निकालना चाहते थे। परन्तु महामात्य उससे पूर्व ही यह नगर छोड़कर चले गये हैं। नगर प्राचीर के पश्चिमी द्वार से यह समाचार आया है कि रात तृतीय प्रहर के आरम्भ से कुछ पूर्व महामात्य एक रथ पर आरूढ़ पश्चिम की ओर गये हैं।'

"अतः देवीजी ! यह समाचार पाकर मैं ब्राह्मण वर्ग को यहाँ एकत्रित करने का यत्न करने लगा। अपने प्रयास में तो सफल हो गया हूँ। दिन का दूसरा प्रहर ही अभी आरम्भ हुआ है तदपि समस्त नगर के ब्राह्मण परिवार यहाँ एकत्रित हो गये हैं। यहाँ से नवीनतम समाचार लेकर मैं राजप्रासाद पर घेरा डालना चाहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ। और इस सम्बन्ध में मैं पूर्ण वृत्तान्त महाराज से ही जानना चाहता हूँ।"

"परन्तु नगर किस कारण बन्द हो रहा है ?"

"सम्भव है कि यह सेठ बाटक के प्रयत्नों का परिणाम है। कदाचित् वे भी राजप्रासाद की ओर ही जा रहे हों।"

कल्याणी को जितना स्थिति का ज्ञान था वह उसने मिश्रजी को बता दिया। उससे जानकारी प्राप्त कर मिश्रजी बाहर आये और उन्होंने एकत्रित समुदाय को सम्बोधित कर कहा कि उन सबको राजप्रासाद पर एकत्रित होकर महाराज से पूछना है कि पण्डित शिवकुमार को महामात्य पद से क्यों च्युत किया गया है ?

मिश्र अब चला गया तो मृदुला ने अपनी माता से पूछा, "अब क्या करोगी ?"

"महाराज ने कहा है कि हमें इसी भवन में रहना चाहिए। वे महामात्य को वापस लाने कर यत्न कर रहे हैं। उनका कहना था कि यदि महामात्य पद पर नहीं तो पुरोहित पद पर कार्य करने के लिए तो उनको आना ही होगा।"

"माँ ! यह कुछ नहीं होगा। महामात्य इस कारण नहीं गये कि उनके किसी राज-कार्य में किसी ने आपत्ति की थी। वे तो अपने चरित्र पर मिथ्या लाँछन लगाये जाने से दुःखी होकर गये हैं। और इन लाँछनों की विद्यमानता में वे पुरोहित बनना भी किस प्रकार स्वीकार कर सकते हैं ?

"इतने मास यहाँ रहकर जो कुछ मैंने सीखा है उसके आधार पर तो मैं यही कह सकती हूँ कि वर्तमान परिस्थिति में उनका यहाँ रहना अयुक्त, अनुचित और अपमानजनक है। इसके लिए दोषी तो राजकुमार है। किन्तु राजकुमार को दण्ड दिया नहीं जायेगा इसलिए वे वापस भी नहीं आयेंगे।

"उनके बिना हमारा यहाँ रहना अर्थहीन है। हम यह यत्न करके तो देख ही चुके हैं कि इस समय समस्त भारत में मुझे वेद विद्या पढ़ाने वाला न तो कोई विद्वान् है और कोई मिल भी जाय तो वह पढ़ाना उपयुक्त नहीं समझेगा।

"महामात्य ने ही एक दिन कहा था कि यह नगर रसातल को जायेगा, और क्योंकि यह विशाल साम्राज्य की राजधानी होने के कारण पूर्ण साम्राज्य और फिर समस्त देश को ही रसातल को पहुँचाने में सहायक हो जायेगी।"

"तो क्या किया जाय ?" कल्याणी ने पूछा।

"हमें महामात्य के निवासस्थान से चला जाना चाहिए। हम यहाँ से अयोध्या जी, वहाँ से कौशाम्बी और वहाँ से हस्तिनापुर और फिर मंगला जायेंगे। हमें वहाँ महामात्य के दर्शन अवश्य हो जायेंगे।"

"किन्तु उसमें एक कठिनाई है।"

"वह क्या ?"

"हमारा कोष समाप्त होता जा रहा है। इसे भरने के लिए पहले हमें विश्रुत जाना होगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं माँ ! इसमें तो बहुत विलम्ब हो जायेगा। क्योंकि मुझे भय है कि तब तक वे कहीं अन्यत्र न चले जाएँ।"

"बिना मुद्रा के इतनी लम्बी यात्रा किस प्रकार पूर्ण हो पायेगी ?"

"मेरे पास जो मुक्ताहार है उसके एक-दो मोती बेच देंगे।"

"वे भी तो आज यहाँ बिक नहीं सकते। आज तो पूर्ण नगर बन्द हो गया है। मैं स्वयं यह देखकर आयी हूँ।"

"परन्तु माँ ! यात्रा आरम्भ करने के लिए हमारे पास कुछ तो है। उसके आधार पर अयोध्या तक चलते हैं। चलकर फिर मुक्ताहार का सदुपयोग कर लिया जायेगा।"

कल्याणी को सुझाव पसन्द आ गया। नगर की हलचल देख वह शंका करने लगी थी कि कहीं राज्य उनको भी यहाँ से लापता करने की योजना न बना ले।

राजकुमार के दोष को छिपाने के लिए यह भी किया जा सकता है। इस निमित्त उनको बन्दी-गृह में भी डाला जा सकता है।

इतना निश्चय होते ही कल्याणी और मृदुला ने अपना सामान बाँधा और प्रासाद नायक नरसिंहदेव की सहायता से रथ मँगवाकर उसपर आरुढ़ हो वे माता-पुत्री भी पाटलिपुत्र से प्रस्थान कर गयीं।

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुदत्त की रचनाएं

विवेचनात्मक ग्रंथ

दर्शन एवं विज्ञान
अद्वैत मीमांसा (प्रेस में)
न्याय दर्शन (भाष्य)
ब्रह्मसूत्र सरल भाषा-भाष्य-१
ब्रह्मसूत्र सरल भाषा-भाष्य-२
ईश-केन-कठ उपनिषद् (भाष्य)
तैत्तिरीय उपनिषद् (भाष्य)
माण्डूक्य—मुण्डक-उपनिषद (भाष्य)
प्रश्न—ऐतरेय उपनिषद्
यजुर्वेद और गृहस्थ धर्म
विज्ञान और विज्ञान
विश्वे देवा
वेद और वैदिक काल
वेद प्रवेशिका भाग-१
वेद प्रवेशिका भाग-२
वेदों में सोम
श्रीमद्भगवद्गीता (अध्ययन)
श्रीमद्भगवद्गीता (भाष्य)
सायंस और वेद
सांख्य दर्शन

इतिहास
इतिहास में भारतीय परम्पराएँ

राजनीति
धर्म तथा समाजवाद
प्रजातन्त्र अथवा वर्णाश्रम व्यवस्था
बुद्धि वनाम बहुमत
भारत : गांधी नेहरू की छाया में
भारत में राष्ट्र
राष्ट्र राज्य और संविधान
वर्तमान दुर्व्यवस्था का समाधान—हिन्दू राष्ट्र
हिन्दुत्व की यात्रा
स्व अस्तित्व की रक्षा

संस्मरण
भाग्य-चक्र
भाव और भावना
मैं हिन्दू हूं

श्री गुरुदत्त के उपन्यास

अन्धे की लाठी
अनदेखे बन्धन
अन्तरिक्ष में
अमानत
अमृत मंथन
आवरण
अन्धकार
अग्नि परीक्षा
अन्धेर नगरी
अपने पराये
अवतरण
असमंजस
अस्ताचल की ओर
आकाश पाताल
आशा-निराशा
आह्वान
इबलीस
ईमानदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उलझती राहे
उलझन
उल्टी बही गंगा
उन्मुक्त प्रेम
उमड़ती घटाएं
ऊंचे मकान
एक मुंह दो हाथ (दो हाथ)
कला
कामना
काल चक्र
कांहे होत उदास
कुंकुम
कुमार संभव
कौमुदी
खण्डहर बोल रहे हैं ३ भाग
खेल और खिलौने
गगन के पार
गंगा की धारा
गिरते महल
गुण्ठन
गोरखधंधा
गृह-संसद
घर की बात
चंचरीक
चितेरे
चौराहा
छलना
छोटी सी बात (लाड़-प्यार)
जनम-जनम तुम
जमाना बदल गया (६ भाग)
जग इक सपना
जनप्रवाह
जयदमन
जागृति
जात न पूछ कोय (परिग्रह)
जीवन ज्वार
झरोखे
डाल डाल के पंछी
ढकोसला (संस्कार)
डूबती नौका
तब और अब
तबेला
दस साल बाद
दासता के नये रूप
दायरे
दिग्विजय
दो भद्र पुरुष
दो लहरों की टक्कर २ खण्ड
देश की हत्या
द्रष्टा
धरती और धन
धूप छांह
नगर परिमोहन
नई दृष्टि
नवरंग
नदी तीरे
नारी नटेश्वर
नास्तिक
नये विचार नयी बातें
निर्मल
निर्लेप
निष्णात (जंजाल)
न्यायाधिकरण
पड़ौसी
पतन का मार्ग
पथिक
पंकज
परदे के पीछे
परम्परा
परिभव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिमल	ममता
पाणिग्रहण	महाकाल
परित्याग	महानगर
परिवर्तन	मानव
पत्रलता	मायाजाल
पाप ग्रौर पुण्य	मेघवाहन
पिंजरे का पंछी	मैं न मानूं
पुष्यमित्र	मौजमेला
पूर्वग्रह	मृगतृष्णा
प्रगति के पथ पर (मंज़िल)	यह क्यों है (पुकार)
प्रगतिशील	यह सब झूठ है (झूठ है)
प्रतिशोध	यह संसार
प्रवृत्ति	यात्रा का ग्रन्त
प्रवंचना	युद्ध ग्रौर शांति (भाग-१)
प्रभात वेला	युद्ध ग्रौर शांति (भाग-२)
प्रारब्ध ग्रौर पुरुषार्थ	रानी साहिबा
प्रेरणा	रीति रिवाज
प्रेयसी	लकीर के फकीर
फैलती छाया	लालसा
बहती रेता	लुढ़कते पत्थर
बदलते ग्रायाम	लोक परलोक
बनवासी	वसुन्धरा
बसन्त राग	वाम मार्ग
बाहर ग्रौर भीतर	विकार
बीती बातें	विक्रमादित्य साहसांक
भग्नाश	विकृत छाया
भाग्य रेखा	विडम्बना
भूत ग्रौर भविष्य	विधुर
भैरवी चक्र	विवेक
भगवान भरोसे	विद्यादान
भाग्य का सम्बल	विश्वास
भावुकता का मूल्य	विनाशाय च दुष्कृताम्
भूल	विलोम गति
मधु	विश्वासघात
मनीषा	वीर पूजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शादी
सच या झूठ
सदा वत्सले मातृ-भूमे !
सफर
सफलता के चरण
सब एक रंग
सभ्यता की ओर
सम्पदा
सम्बन्ध
सम्भवामि युगे-युगे
सहज सगाई
सीमाबद्ध
सर्वमंगला (मंगला)
सहस्रबाहु
साधना
सागर और सरोवर
सागर तरंग
साहित्यकार
सुख की खोज
सुमति
संगम

संस्खलन
स्नेह का मूल्य
स्वराज्यदान
स्वार्थी
स्वाधीनता के पथ पर
षड्यन्त्र
हम और तुम
क्षितिज

नाटक

मेरी पसन्द
वन्दे मातरम्

कहानी-संग्रह

बिखरे चित्र

किशोरोपयोगी साहित्य

जगत् की रचना
द्वितीय विश्वयुद्ध
महर्षि दयानन्द
युगपुरुष राम

विविध

अन्तिम यात्रा

× × ×

उपन्यासकार गुरुदत्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व : मनमोहन सहगल
श्री गुरुदत्त अभिनन्दन ग्रन्थ सं० अशोक कौशिक

Central Library
167884
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

हिन्दी साहित्य सदन
2 बी डी चैम्बर्स, 10/54 डी बी गुप्ता रोड
करोल बाग, नई दिल्ली-05

081
167884
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

R 0 84.9143

वर्ग संख्या...[redacted]..... GUR-A आगत संख्या...167884

[redacted]

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदत्त

8-12-1894 से 8-4-1989

शिक्षा : एम. एस.सी.

प्रथम उपन्यास "स्वाधीनता के पथ पर" से ही ख्याति की सीढ़ियों पर जो चढ़ने लगे कि फिर रुके नहीं।

विज्ञान की पृष्ठिभूमि पर वेद, उपनिषद् दर्शन इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन आरम्भ किया तो उनको ज्ञान का अथाह सागर देख उसी में रम गये।

वेद, उपनिषद् तथा दर्शन शास्त्रों की विवेचना एवं अध्ययन अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत करना स्व. गुरुदत्त की ही विशेषता थी।

उपन्यासों में भी शास्त्रों का निचोड़ तो मिलता ही है, रोचकता के विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि उनका कोई भी उपन्यास पढ़ना आरम्भ करने पर समाप्त किये बिना छोड़ा नहीं जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्ताचल की ओर

यह कथा आरम्भ होती है सम्राट समुद्रगुप्त के द्वारा किए गए अश्वमेध यज्ञ से। मानव बुद्धि पर छा रहे अन्धकार का दर्शन ही 'अस्ताचल की ओर' का अभिप्राय है।

भारतीय सभ्यता का ह्रास महाभारत काल के राज्य सेवक चाटुकार ब्राह्मण गुरु द्रोणाचार्य और कृपाचार्य से प्रारम्भ हो गया था। अशोक के काल में अत्यधिक हिंसा व तत्पश्चात उससे भी बढ़कर अहिंसा ने इस पतन की गति को बढ़ाया । इसका कारण था अशोक के बुद्धिविहीन सलाहकार और प्रमाण है सीदियनों के आक्रमण।

समुद्रगुप्त का अश्वमेध उस बढ़ते अंधकार में टिमटिमाते दीपक के प्रकाश के समान माना जा सकता है। जिस तरह मानव महीन से प्रकाश में रांगे को कंचन समझकर अपने को धन्य मानता है इसी तरह इतिहासकार समुद्रगुप्त के काल को स्वर्णयुग मानते है। वास्तव में हूणों के भयंकर आक्रमण इसी काल की देन थे।

यही सार है इस उपन्यास का।

ISBN No.: 81-88388-90-4

हिन्दी साहित्य सदन

2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 देश बंधु गुप्ता रोड;
करोल बाग, नई दिल्ली-110 005
फोन : 23553624, 23551344 ई-मेल : indiabooks@rediffmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar